श्रीचक्रचरितम्

सभी मनोकामना पूर्ण करने वाली हनुमद्धाम शुकतीर्थ
में स्थापित 700 करोड़ रामनाममयी गगन चुम्बी विशाल प्रतिमा

समर्पण
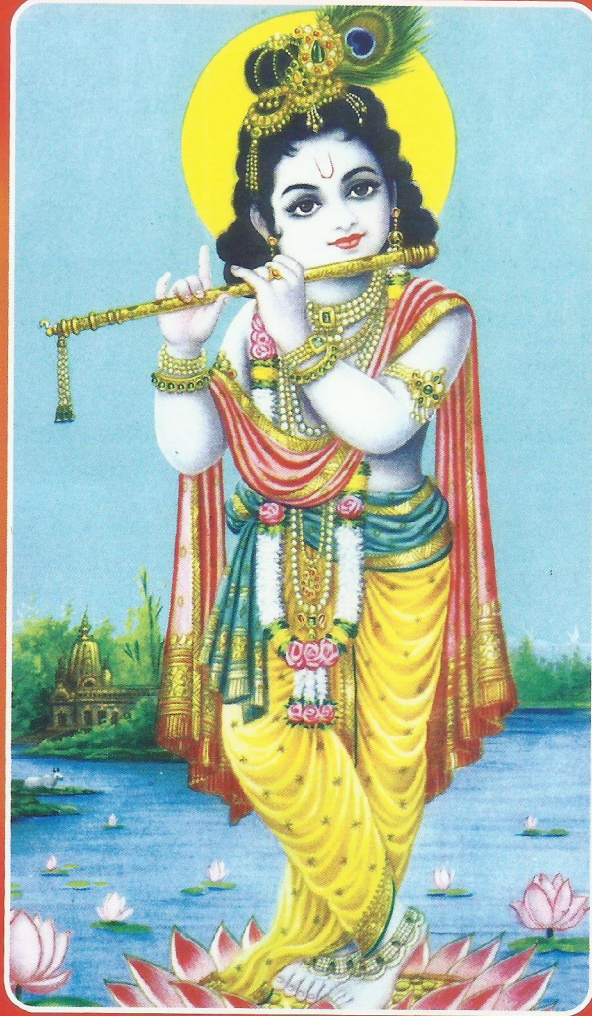
श्रीचक्रानुजः एवं उनके निजजनों को

दर्शनीय स्थल

मंगलाचरण

कृष्ण! तुम्हारे गुण चरितोंकी कहाँ कहीं कुछ मिति है।
किन्तु बुद्धिकी, मनकी, करकी शक्ति सदा सीमित है।।

नन्हा मत्स्य अनन्त सिन्धुकी सीमा क्या पायेगा।
किन्तु सिन्धुका अंक त्यागकर भला कहाँ जायेगा।।

मीन रहे मन-बुद्धि तुम्हारे चरित गुणोंके रसके।
इनका पार भला क्या पाना—ये वाणीके बसके।।

इस सागर ब्रजराज-तनय तुम सदा-सदाके जनके।
रहे रहो प्रिय प्राण-प्राणके, जन तक तुम निज जनके।।

सानुकूल तुम रहो, शारदा सानुकूल कल्याणी।
सानुकूल गणनाथ सफल हो सांगपूर्ण यह वाणी।।

आओ! स्वयं आवरण तोड़ो, चरित कौमुदी छाये।
शब्द, वाक्य-रस-रूप धरो, अन्तर उज्ज्वल हो जाये।।

मेरे श्याम! समग्र तुम्हीं, तुम क्रीड़ामय अविनाशी।
वाङ्मय मूर्ति तुम्हारी मंगल मेरे घट-घट वासी।।

श्रीचक्रचरितम्

संकलन
डॉ० बालचन्द्रिका पाठक
डी० लिट्०

संयोजन
राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत

हनुमद्धाम
श्रीराम आध्यात्मिक प्रन्यास
शुकतीर्थ, जि० मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) फोन : 01396-228224, फैक्स : 228226

■ **प्रकाशक :**

हनुमद्धाम (श्रीराम आध्यात्मिक प्रन्यास)
शुकतीर्थ मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) 251316

■ **संस्करण :**

आश्विन कृष्ण एकादशी सं० 2065 वि०
सन् 2008 ई०

■ **आवरण, टाइपसेटिंग एवं मुद्रक :**

मोती पेपर कनवर्टर्स
बेतियाहाता, गोरखपुर
फोन : 2334184

■ **पत्र-पुष्प : 150**

आशीर्वचन

जगत जनायो जेहि सकल, सोइ हरि जान्यो नाहिं।
इन आँखिन सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं।।

नेत्रोंके द्वारा सारे जगत्‌को देखा जाता है पर इन नेत्रोंके द्वारा अपने नेत्रको देखना सम्भव नहीं लगता। आवश्यकता पड़ती है नेत्रोंको देखनेकी तो दर्पणका सहारा लेकर देखा जाता है। यद्यपि दर्पणमें नेत्र तो नहीं, अपितु नेत्रका प्रतिबिम्ब दिखता है, तथापि नेत्रकी स्थितिका आभास होता है, इसी तरह कभी-कभी मनमें आया करता था कि 'चक्र' दादाने भारतीय भक्ति-साहित्यको अपनी लेखनीके द्वारा अतिशय समृद्ध बनाया। जिन पौराणिक भगवंत-भागवत चरित्रोंके सम्बन्धमें जिज्ञासु साधक जन पूर्णतया अन्धकारमें रहते आये। उन्हें अपनी गवेषणापूर्ण दृष्टिसे अनुसन्धान एवं अनुभव कर-करके अत्यन्त मनोरम औपन्यासिक शैलीमें प्रस्तुत कर समीचीन एवं युक्ति-युक्त सम्यक् समाधान दिया। उन 'चक्र' दादाके जीवनवृत्तसे हम सभी समाश्रित जन प्रायः नितान्त अनभिज्ञ हैं। ये 'चक्र' दादा हमारे लिये हमारे नेत्र ही सिद्ध हुए हैं।

'चक्र' (कहानी) चक्र कहकर एक स्वतंत्र लेख गीताप्रेसकी 'कल्याण' नामक पत्रिकामें प्रायः प्रकाशित हुआ करता था। बचपनसे ही अभिरुचि रही है धार्मिक प्रसंगोंको पढ़नेमें। अतः कल्याण पत्रिकापर हाथ जाते ही सर्वप्रथम कहानी 'चक्र' की खोज होती थी। आत्माको बड़ा बल मिलता 'चक्र' दादाके लेखोंसे। धीरे-धीरे क्रम-क्रमसे इनके द्वारा लिखित अन्यान्य ग्रन्थोंकी जैसे-जैसे

सुलभता होती गयी, मन-मस्तिष्क इनके प्रति अपनेको ऋणिया स्वीकारते गये। बड़ी-बड़ी शंकाओंका समाधान मिलता गया। अगणित जिज्ञासाओंकी पूर्ति होती गयी।

अब उत्कण्ठा जगी इस महापुरुषके जीवनवृत्तके प्रति। ये तो हमारे नेत्र सिद्ध हुए। अब इन नेत्रको देखनेके लिये दर्पणकी आवश्यकता प्रतीत हो रही है। '**राम सदा सेवक रुचि राखी**' के अनुसार प्रभुने इस आवश्यकताकी पूर्ति-हेतु सौभाग्यवश सौभाग्यवश कुँवर राणावत जिनके माध्यमसे प्रभुने 'मीरा चरित्र' को उजागर कराया तथा श्रीबालचन्द्रिका पाठक (मुन्नी दीदी) जिनके द्वारा 'श्रीरामचरितमानस' एवं श्रीमद्‌भागवत-संरचना एवं लक्ष्यका समानान्तर दिग्दर्शन करानेवाला शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत हुआ है। इन दोनों बहनोंको उपलब्ध कराया। ये दोनों बहनें मेरे लिये 'चक्र' दादारूपी नेत्रका दर्शन करानेवाला दर्पण सिद्ध हुईं। ये दोनों बहनें 'श्रीचक्र' दादाके निकटतम छोह-दुलारकी भाजन रही हैं। मेरी जानकारीमें इन दोनोंके अतिरिक्त उनके जीवनवृत्तके ठोस जानकार और कोई दीख नहीं रहे हैं। इन दोनोंके द्वारा समय-समयपर इनके जीवनकी विलक्षण घटनाएँ एवं लोकोत्तर भाव संस्मरणके रूपमें सुननेको मिलने लगे। लगता है प्रभुने इस 'चक्र' नामक अपनी विशिष्ट विभूतिको इसी कार्यके लिये अपने धामसे इस भूतलपर भेजा था।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।
(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता 10।41)

'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाइ' के न्यायसे संस्मरण-श्रवणका लोभ जीवनवृत्त लेखन और प्रकाशनकी ओर बढ़ता-बढ़ता वामनसे त्रिविक्रम हो गया। इन दोनों बहनोंसे आग्रह किया कि इन संस्मरणोंका लेखन करो। ये दोनों बहनें बहुत दिनोंतक कन्नी काटती रहीं— 'अजी हम इस लायक कहाँ हैं', जो तातके जीवन वृत्तपर कुछ लिख सकें। कुछ विशेष आग्रहपर प्रभुकी किसी विशिष्ट प्रेरणावश राजी हो गयीं और लिख दिया, नहीं तो यह चरित्ररूपी निधि गुप्त रहकर सदाके लिये लुप्त हो ही गयी होती। भगवान् इनका भला करें। अब वह प्रकाशनमें आनेवाला है, यह सुनकर हृदय आसमानमें उछल रहा है।

'चक्र' दादाने अपने अनुजस्वरूप 'कन्नू' (श्रीकृष्ण) एवं 'बल्लू' (श्रीबलरामजी) - का जीवनचरित्र 'श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' को माध्यम बनाकर प्रकाशित किया तो अब लगता है कि कन्नू एवं बल्लूने अपने 'चक्र' दादाकी रामकहानीको उजागर करना चाहा है— इस ग्रन्थरत्नके माध्यमसे।

सादे-सरल जीवनका उच्च विचारवाला यह व्यक्तित्व एवं कृतित्व अग्रिम पीढ़ियोंका मार्ग-दर्शन एवं भक्ति-पथके साधकपथिकोंका उत्साहवर्धन करता रहे, यह हमारे ठाकुरजीकी तरफसे मंगल कामना है।

श्रद्धाविनत लघु किंकर —
नारायण दास भक्तमाली
बक्सर (बिहार)

विनम्र निवेदन

'ईशा वास्यमिद सर्वम्' के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टिके कण-कणमें सर्वेश्वर ही परिव्याप्त हैं। उनके लीलानुचरित, कथानुचरितका जैसा भी वर्णन होगा, जो भी होगा कल्पभेदसे उनका ही होगा; किन्तु उनके ही किसी स्वजन, परिकर अथवा महापुरुषोंके सम्बन्धमें यथातथ्य निरूपण करना बड़ा कठिन ही नहीं, अपितु दुरूह कार्य है। कारण कि ये महाभाग अपने आन्तरिक दिव्य भावोंको, स्वानुभूतियोंको प्रकट नहीं होने देते और बाह्य रूपसे उनकी सामान्य वेशभूषा और डाँट-फटकार कर चल देनेवाला अक्खड़ स्वभाव और फक्कड़ व्यक्तित्व पहचानने ही कहाँ देता है? जबकि उनका नवनीत कोमल हृदय जीवमात्रके प्रति असीम करुणा एवं लोक कल्याणकी पुनीत भावनासे अनुप्राणित रहता है। ऐसे ही महापुरुषोंकी परम्परामें हुए हैं— श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' जिनकी विरक्त जीवन-रहनीके समक्ष श्रद्धाभिभूत मस्तक स्वतः झुक जाता है और जिनका विपुल साहित्य-सृजन साधकोंके लिये परमार्थ-पथके पथिकोंके लिये प्रेरणा-स्रोत होनेके साथ ही अध्यात्म-जगत् एवं साहित्य-जगत् दोनोंके लिये परम उपयोगी सिद्ध हुआ है।

लोक-दृष्टिसे वर्ष 1991 में श्रीमती जया द्वारा आगरा विश्वविद्यालयसे 'श्रीचक्रजीके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व' पर शोध-प्रबन्ध स्वीकृत हो चुका था, किन्तु वह विश्वविद्यालयकी सीमा-परिधिमें सिमटकर रह गया। उसमें उनके अन्तरंग जीवनके दिव्य भावोंका उत्कर्ष, हृदयस्थ अपने 'कन्हूँ' के प्रति प्रीतिका उमड़ता प्रवाह, असीम भगवत्-निष्ठा एवं आस्थाके प्रति दृढ़ताकी किंचित् भी झलक नहीं मिल सकी। उनके इस पावन चरित्रको उजागर कर स्वजनोंके बीच लानेके पुनीत कार्यमें परम श्रद्धास्पद मामाजी श्रीमन्नारायणदासजी

भक्तमाली (बक्सरवाले)-की असीम सर्वसमर्थ प्रेरिका शक्ति रही है। उनकी अनुपम करुणापूर्ण प्रेरणासे सिंचित एवं पल्लवित होकर इसी आश्रयसे प्रकाशमें आ रहा है कि रसग्राही भावुक जनोंका हृदय श्रीकृष्णचरणानुरागमें निमज्जित हो सके।

बड़े विचित्र यायावर थे 'श्रीचक्रजी' सदा अनिकेत, अपरिग्रही चिर-पथिक, बन्धन-मुक्त, सहज स्वतंत्र। शिष्य नहीं, पुत्र नहीं, दो महीनेसे अधिक कहीं नहीं टिके, भ्रमण ही स्वभाव बन गया। ऐश्वर्य-संग्रहसे सहज वितृष्णा। ऐसी जटिल परिस्थितिमें चरित्र-लेखनके लिये प्रामाणिक सशक्त तथ्योंका संकलन कठिन हो गया। वस्तुतः तथ्योंका प्रामाणिक विवरण तो उनकी ही कृतियोंमें यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। उन्होंने अपने स्वजनोंको व्यक्तिगत सत्संग-गोष्ठीमें अपने अनुभवोंको, अपने संस्मरणोंको कृपापूर्वक सुनानेकी अनुकम्पा की।

'श्री कृष्ण सन्देश' पत्रिकाके 'श्रद्धांजलि अंक' एवं अन्य वर्षोंके अंकोंसे प्रमाण लिये हैं। 'अर्चा विग्रहके अनुभव','कन्हाईने भागवत सुनी', 'आत्मीयताके अनुभव' आदि दस संस्मरणात्मक लेख श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी (आत्मज—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)-ने श्रीचक्रजीसे लिये हैं जिन्हें 'आनन्द-बोध' पत्रिकामें 'आनन्द कानन प्रेस' वाराणसीसे प्रकाशित कराया। अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराजकी पुस्तक 'पावन प्रसंग' से उनका सान्निध्य-काल एवं संत-समागमके प्रसंग समेटे हैं। ये सब आत्मसंकेत स्वयंमें प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कुछ साक्ष्योंका मौखिक सहयोग भी मिला है जिन्हें श्रीचक्रजीके सान्निध्य-सत्संगमें उनके कृपापात्र स्वजन परिकरोंने अपने मानस-पटलपर उन स्मृतियोंको सँजोकर रखा है, उनमें बहन सौभाग्य कुँवर राणावत, भाई श्रीकैलाशजी, श्रीहरिनारायणजी गोयल, बेटी स्वयंप्रभा सिसौदिया हैं। वर्ष एवं दिनांक निर्धारणमें भाई श्रीप्रभुदयालजी झुनझुनवालाके संकलित पत्र बहुत सहायक हुए हैं जिन्हें श्रीचक्रजीने इनके पत्रोंके उत्तरमें लिखे

हैं।

एक बात और भी है— 'चक्र' नाम कैसे पड़ा? यह बहुत लोगोंकी जिज्ञासाका विषय है। इस सम्बन्धमें निर्विवाद तथ्य है कि परम वन्दनीय पूज्यश्री बाबा रामदासजी महाराज, 'करह' ग्वालियर (म०प्र०) द्वारा प्रदत्त है जिसे श्रीचक्रजीने भगवद्रसानन्दमें निमग्न महान् संतकी प्रसादी मानकर शिरोधार्य की थी। यह उपनाम क्यों और कैसे' पड़ा यह कभी नहीं बताया। यह रहस्य तो अभी तीन वर्ष पूर्व श्री 'करह' वाले बाबाने ही बताया कि 'वृन्दावनमें बहुत पहले 'समस्या पूर्ति' के समान एक अर्धाली कई लोगों को 'करुण रस' में परिणत करनेको दी थी। उन सभीमें श्री 'चक्रजी' ने सर्वप्रथम अपनी प्रतिभासे कुछ ही देरमें वह अर्धाली नवरसोंमें लिखकर पूज्य बाबाको प्रस्तुत कर दी। पूज्य करहवाले बाबाने अपने यहाँकी सायंकालीन गोष्ठीमें वह अर्धाली बोलकर सुनायी भी और बहन सौभाग्य कुँवरने सुनी भी, किन्तु ध्यान इसलिये नहीं दिया गया कि इस चरित्र-लेखनके विषयमें उस समय सोचा भी नहीं गया था और जब चरित्र-लेखनका उपक्रम बना और सोचा कि पूज्य श्रीबाबा सरकारके चरण सन्निधानमें जाकर पूछनेका प्रयास करें तबतक पूज्य बाबा साकेत-धाम सिधार गये, अतः अर्धालीकी पंक्ति पुस्तकमें नहीं दी जा सकी है। साथ ही एक निवेदन है कि स्वप्रमादवश अपने अविवेकसे तथ्यों या घटनाओंमें सम्भवतः एक-आध वर्षका आगे-पीछे होनेमें सम्भवतः कहीं अन्तराल हो सकता है, उन सभी जान-अनजानमें हुई त्रुटियोंके लिये विद्वद्वरेण्य संतजन, समादरणीय विद्वान्, सुधीजन पाठक एवं स्वजन अपना जानकर क्षमा करेंगे।

सच बात तो यह है कि वर्तमान युगमें 'भक्तमाल' के सुमेरु महाभाग श्रीनाभादासजी, श्रीप्रियादासजीकी परम्पराके परमोज्ज्वल प्रकाशस्तम्भ पूज्य

श्रीमन्नारायणदासजी 'भक्तमाली' जो जगज्जननी जानकी अम्बाके लाड़ले-दुलारे अनुज तो हैं ही, हमारे तो परमार्थ पथके परम श्रद्धास्पद मामाजी महाराज हैं जिनकी कथामृतकी दिव्य सुवास जनमानसको अलौकिक भगवद्रससे आप्लावित कर कृतार्थ कर देती है। एकमात्र इन्हीं महामहिमकी प्रत्यक्ष प्रेरणा और परोक्ष अनुकम्पाके सहारे श्रीचक्रजीकी वात्सल्य-भाजना 'मानस-पुत्री' बहन सौभाग्य कुँवर राणावत द्वारा इस 'श्रीचक्र चरितम्' के लेखनका लघु प्रयास हो सका है।

इस पुनीत कार्यमें सहयोग देनेवाले श्रीचक्रजीके कृपा-प्रसाद-जन उनके एवं उनके श्यामसुन्दरके हैं। श्रीचक्रजी हनुमद्धामके संस्थापक थे। उन्हींके हनुमद्धाममें नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी महाराजके श्रेयस्कर प्रयाससे ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है, जिनका जीवन निःस्वार्थ भावसे संत-सेवामें संलग्न है तथा ये हनुमद्धामके सर्वोन्मुखी विकासके कुशल निर्देशक एवं प्राणवन्त संचालक हैं।

सभी जन हमारे आदरणीय एवं प्रणम्य हैं। हम सबका मानस-चंचरीक नन्दनन्दनके चारु-चिन्तनमें लगे, इसी अभिलाषाके साथ उन्हींके शाश्वत सखाका चरित उन्हींके लाड़ले चित्तचोर कन्हाईको सादर समर्पित है।

निवेदिता

बालचन्द्रिका पाठक

श्रीचक्रजीके व्यसन

— बालचन्द्रिका पाठक

कृष्णानुराग

जगसे विराग अनुराग लाल कृष्णके।
सखा, अनुज, मीत सब कनूँ सरसावते।।

नित नयो लाड़ लड़ाते उन्हें चावसे।
दुलारते मनुहारते सदा ही अनुरागते।।

देवे कूँ अँकमाल अरु नित नयो प्यार।
चन्दा कूँ चकोरकी भाँति अकुलावते।।

सुनिबेको कृष्ण-कथा गुनिबेको कृष्ण-लीला।
लिखिबे को कृष्ण-चरित गोविन्द पुकारते।।

पुष्पानुराग

सौरभमय सुमन सुगन्धिमय प्रसूनोंसे।
शोभा धाम श्याम कूँ सजाते मनोयोगसे।।

सोमको श्वेत पुष्प कुंद, कुन्दी, कामिनीसे।
भौमको गुलाबी आभा लसित गुलाबसे।।

तुलसीकी मञ्जरी हरीतिमासे बुधवार।
गुरु पीत पुष्प शुक्रवार बेला मोतियासे।।

शनिको नीलाभ पुष्प शस्य श्यामलासे युक्त।
रवि बिम्ब अरुण पराग 'लाल' लालसे ।।

लीलानुराग

अपने श्यामसुन्दरके शाश्वत सखा बन,

वृन्दा-परिक्रमामें एकाकी विराजे रहें।

कालिन्दी कगार बैठ नित नव लीला हैरे,

भाव-उन्मेष भीगि रस-सिन्धु सुख लहैं।।

लीला-रस चिन्तन प्रवाह चल जातो नित,

जानी नहिं जात कब साँझ अरु सकारो रहे।।

मालाके 'मनके' सम मानसमें गुँथि जाती

'राम-श्याम झाँकियाँ' उसीका प्रतिरूप हैं।।

श्रीचक्रजीका भावोन्माद

(1)

पगली छलाँग दीन्ही ऋषिकेश गंग माँहि,

उर्मिल प्रवाह परे पार दोऊ पावे ना।

जन प्रतिपाल स्वजनको सँभारन हार,

कर-पल्लव सों छुवाय लगाय दिये पार ना।।

दिव्य संस्पर्श सुख-सिन्धुको अलौकिक जान,

भाव उन्मेष भीगि प्रेम-रस पगे प्रान।।

चित्त चढ़ी कनूँकी रुखाई करुनाई ऐसी।

जग दीखै श्याम-मय नभ घन-श्याम जान।।

---

* अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज, वृन्दावनद्वारा सुनाये गये संस्मरणके आधारपर।

(2)

कण्टक कटीले तरु जान परे नीलमणि,

भेटें अकुलावें लपटायें विकल है।

लोहू-लुहान रक्त रंजित सरीर भयो,

देख दशा थाके महाराजश्री अधीर है।

छुड़ावैं जब एक तें तो दूजे कूँ आलिंगन दें,

दूजै तें तीजै कूँ अगणित बार लहैं।

जल-अभिसिञ्चन हूँ नाहि परिताप हरै

दिन अवसान बेला वन्य पशु शब्द अहै।।

(3)

क्षण-क्षण संयोग सुखकी सिहरन सरसावै चित,

दूजै छिन विरहाग्नि देत झकझोर-से।

अश्रु, स्वेद, कंप, वैवर्ण्य एक साथ भये

सात्त्विक अनुभाव अष्टरूप मूर्तिमान-से

प्रलाप, उन्माद, मूर्च्छाके बीच धँसे ऐसे

गौर-देह कान्ति स्याम भई-पूर्ण कालिमा-से

औचक सचेत प्रान श्रवण सुनि कृष्ण नाम

शंख-ध्वनि प्रणव-निनादकी गम्भीरता-से।।

---

* अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज, आनन्द-वृन्दावन, वृन्दावन

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

।। श्रीगणेशाय नमः ।।
।। श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।।

श्रीहरिप्रिया भूरिभागा भगवती वसुन्धरा रत्नगर्भा हैं। इनका अंक कभी संत, सती, ज्ञानी, योगी और वीरोंसे रिक्त नहीं रहा है। कभी जीव स्वयं भक्ति-रसकी परिपाक अवस्थामें इनको आह्लाद प्रदान करता है तो कभी इनके अभावमें प्रभु कारक पुरुषोंको भेजकर अथवा अपने स्वजन परिकरमेंसे किसीको भेजकर जन-साधारण जीवोंका कल्याण और देवी वसुधाकी गोदको विभूषित करते हैं। यहाँतक कि कभी-कभी उन्हें आह्लादित करनेके लिये स्वयं भी नर रूप धारण कर पधारते रहते हैं। ऐसे ही एक कारक पुरुषके जीवन चरित्रके अंकित करनेके लोभको संवरण न कर पानेसे जैसे शफरी (मछली) समुद्रकी थाह लेने दौड़ पड़ती है, नन्हा शिशु आकाशकुसुम पानेको हाथ बढ़ा देता है और मक्षिका अनन्त गगनको नाप लेनेकी ललकसे अपने नन्हे पंख फैलाकर उड़ती है ठीक उसी प्रकार यह कृष्णजिह्वा लेखनी भी अपनी लघु सामर्थ्यको विस्मृत कर उन्हीं महापुरुषका चरणाश्रय लेकर श्वेत-पथपर दौड़ पड़ी है।

वंश-परिचय एवं जन्म

पश्चिमी वाहिनी भगवती भागीरथीके तटपर त्रिभुवन गुरु जीवाचार्य भगवान् विश्वनाथकी मोक्षदायिनी पुरी वाराणसी जिलेके अन्तर्गत 'चन्दौली' तहसीलमें मुगलसराय कलकत्ता लाइनपर सकलडीहा रेलवे स्टेशनसे छः किलोमीटरपर स्थित भेलहटा गाँव है। यहाँ भृगुगोत्रीय क्षत्रियोंका बाहुल्य है किन्तु बहुत समय पूर्व गाजीपुर जिलेके तुर्कवलिया गाँवसे एक सूर्यवंशीय परिवार भी आकर बस गया था। इसी परिवारके ठाकुर श्रीगोवर्धन सिंहने अपने परिश्रम और बल-पौरुषसे पर्याप्त भूमि, गो-धन, अपने सुखके निवास योग्य आवासके साथ-साथ गाँवमें अच्छा सम्मान एवं प्रतिष्ठा भी अर्जित कर ली थी।

श्रीगोवर्धन सिंहके चार पुत्र हुए — आदित्य सिंह, रामकिशोर सिंह, रामनिहोर सिंह और रामाज्ञा सिंह। चारों भाइयोंमें ठा० रामकिशोर सिंह ही गृहस्थ हुए।

संक्षिप्त वंशवृक्ष परिचय
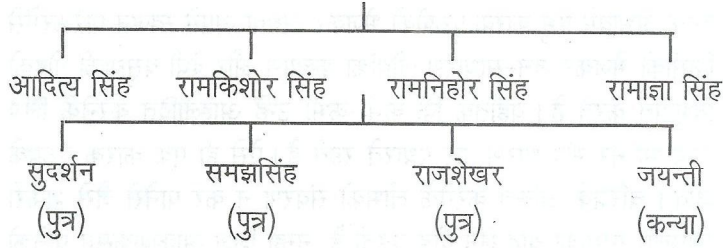
ठाकुर रामकिशोर सिंहकी साध्वी पत्नी सरूपाके गर्भसे दिनांक 14 नवम्बर सन् 1911 ई० को प्रथम पुत्रका जन्म हुआ। बालक गौर वर्ण, हृष्ट-पुष्ट और मातृमुखी था। मातृमुखी पुत्र और पितृमुखी कन्या भाग्यशाली होती है— लोककी इस अवधारणाके अनुसार घरमें सभी आनन्द और उल्लाससे भर गये कि बालककी मुखाकृति माँसे मिलती है। अतः बालक बड़ा भाग्यशाली होगा। सोहर गानेको इकट्ठी हुई स्त्रियोंने बारी-बारीसे बालकका मुख देखा और क्रमशः इसी बातकी पुनरावृत्ति की।

चौपालमें बड़ा-सा फर्श बिछा दिया गया। पूरे गाँवमें जैसे आनन्दोत्सवकी लहर छा गयी हो। द्वारपर बधावे बजने लगे और घरके भीतरी चौकसे स्त्रियोंके गाने-बजानेके स्वर गूँजने लगे। ठाकुर रामकिशोरसिंह अपने छोटे भाई रामाज्ञा सिंहके साथ बधाई देनेके लिये आनेवालोंका स्वागत कर रहे थे। रामाज्ञा सिंहकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसके पैर मानो धरतीपर नहीं पड़ रहे थे। प्रसन्नतासे खिला चेहरा लिये वह चारों ओर व्यवस्था करता हुआ घर-बाहर उत्साहमें घूम रहा था। ठाकुर रामकिशोर सिंह धीर-गम्भीर प्रसन्न-मुख फर्शपर

बैठे हुए आने-जानेवालोंसे बातें करते। किसी वयोवृद्धको आते देखकर उठकर उनका स्वागत करते और सामाजिक परम्पराके अनुसार किसीकी पद-वन्दना करते, किसीको हाथ जोड़कर सिर झुका लेते। पुत्र-जन्मकी बधाई देनेवाले याचकोंको मनमाना दान देकर उन्हें सुप्रसन्न-मन सन्तुष्ट करके ही भेजते।

ठाकुर रामकिशोर सिंहने अपनी सनातन परम्पराके अनुसार इस नवजात शिशुके विविध संस्कार कराये। इस सुन्दर सौम्य गौर वर्ण बालकका नामकरण-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया जिसके अनुसार इनका नाम 'सुदर्शन' रखा गया। इनके पिता ही क्या? कोई भी नहीं जानता था कि ग्रामीण अंचलमें पलनेवाला बालक किसी दिन महान् प्रतिभाका धनी होगा।

सुदर्शनके अतिरिक्त ठाकुर रामकिशोर सिंहको तीन सन्तानें और हुई—समझसिंह, राजशेखर तथा एक कन्या जयन्ती। इनमें राजशेखर और जयन्ती अल्प कालमें ही दिवंगत हो गये।

शक्ति-उपासना

ठाकुर रामकिशोर सिंह भगवती सिंहवाहिनी दुर्गा माँके अनन्य उपासक थे। बिना दुर्गापाठ किये उनके कंठसे जल भी नहीं उतरता था। चैत्र शुक्ल नवरात्र एवं आश्विन शुक्ल नवरात्रमें निष्ठापूर्वक नियमोंका पालन करते हुए दुर्गा-सप्तशतीका पाठ, यज्ञादि अनुष्ठान विधिपूर्वक करनेके पश्चात् अन्तमें नवमी तिथिको बलि भी अर्पित करते। जब वे पशुबलिके रक्तसे अंजलि भरकर यज्ञ कुण्डमें आहुति देते उस समय अग्निकुण्डसे तनिक भी दुर्गन्ध या धुआँ नहीं उठता—मानों घृताहुति ही दी गयी हो ऐसे अग्नि सदा प्रज्वलित रहती। नवमी तिथिको प्रायः उन्हें देवीका आवेश भी आता। ऐसे समयमें आस-पासके गाँवके लोग अपनी आपत्ति-विपत्ति तथा दुःख-क्लेश आदिके निवारणके लिये इनके स्थानपर आकर इनके समक्ष निवेदन करते और इनके द्वारा बताये गये उपायोंद्वारा उनके कष्टोंका निवारण भी हो जाता। एक

बार जब रामकिशोर सिंह दुर्गाके आवेशमें सिरपर उत्तरीय धारण किये हाथमें खड्ग लिये बैठे थे और उनके चारों ओर देवीकी जय-जयकार हो रही थी। तब भेलहटाके ही निवासी श्रीबद्री तिवारी अपने रुग्ण पुत्रको लाकर इनके चरणोंमें डालकर उसे आरोग्य प्रदान करनेकी प्रार्थना करने लगे। तब देवी भावमें आवेशित रामकिशोरने कहा— 'अब ... अब लाया है इसे? अब कुछ नहीं हो सकता। कल इसी समय इसकी चिता जलेगी।' उसी समय माँ सरूपाने डरते-डरते अपने बालक सुदर्शनको लाकर उनके चरणोंमें रख दिया तो शिशुको स्नेहसे देखते हुए अनायास खिलखिलाकर हँसते हुए देवीने कहा— मैं सदा इस शिशुकी रक्षा करूँगी। यह मेरी पूजा-अर्चना तो नहीं करेगा, किन्तु सदा ही मैं इसे साक्षात् दर्शन देती रहूँगी। इसे किसी भी निकृष्ट शक्तियोंसे कोई भय नहीं होगा। डर मत, यह चिरायु होगा।

शैशव

दुर्गाभक्त ठा० रामकिशोर सिंहका अपने ज्येष्ठ पुत्र सुदर्शनपर असीम वात्सल्य था। अपने सिद्धान्तोंके प्रति निष्ठा, सदाचारी मनोवृत्ति और तेजस्विता बाल्यकालसे सुदर्शनको अपने पितासे विरासतके रूपमें प्राप्त हुई थी। पिताने इन्हें बहुत छोटी अवस्थामें ही अक्षर ज्ञान होनेसे पहले रक्षाके लिये 'दुर्गाकवच' एवं 'हनुमानचालीसा' रटा दिया था। छः वर्षकी अवस्थासे ही पिता बालक सुदर्शनको अपने समीप पृथक् खटोलेपर सुलाते थे। जब वे प्रातः चार बजे उठते तभी बालकको भी उठा देते। शीतकालमें भी कुएँके जलसे अपने साथ नहला देते। जब सुदर्शन स्नान करके 'दुर्गाकवच' और 'हनुमानचालीसा' सुना देते तो पुनः सो जाते। अक्षर-ज्ञान होनेपर तो प्रतिदिन सुदर्शन सुन्दरकाण्डका पाठ करने लगे। तब पिता अपनी पूजापर बैठ जाते और दस ग्यारह बजे उठते थे। वात्सल्यवश माँ बालकके शीघ्र उठनेके पक्षमें नहीं थी। वह चाहती थी जब वह स्वयं स्नान कर ले, तब बालक उठे जिसमें सुविधासे जलपान करा सके, अन्यथा बालक तो प्रातःकी रोटीको

मध्याह्नमें देनेपर भी नहीं खाता। सीधे कह देता कि यह तो 'सड़ी' है।

रात्रिको पिता सुदर्शनको नित्य ही पौराणिक कथाएँ सुनाते, जिन्हें वे बड़े उल्लसित मनसे सुनते। जब रामायणका पाठ करते तब पिताका संकेत पाकर सुदर्शन सन्मुख बैठ जाते। भरत-चरित, चित्रकूट मिलन-प्रसंगपर उनके नेत्र भर आते। सुन्दरकाण्डमें हनुमान्‌जीका चरित्र पढ़ते-सुनते समय वीर रसमें भर जाते। उनको यह चरित्र बहुत प्रिय लगता। पिताके तेजस्वी स्वभाव और ओजस्वी वाणीसे वही क्या घरके सभी सदस्य और नौकर, हलवाहे और चाचा रामाज्ञा सिंह भी बहुत डरते। सभी उनकी बातको महत्त्व देते थे।

अलौकिक मीठी पुकार

छः-सात वर्षका बालक सुदर्शन गर्मीकी एक रातमें अचानक नींदसे चौंककर अपनी चारपाईपर उठकर बैठ गया, वह चारों ओर दृष्टि घुमाकर जैसे किसीको खोज लेना चाहता हो। अपने स्वयंके प्रयत्नमें असफल हो उसने अपने समीप सोये पिताको जगाया— बाबू! मुझे अभी किसीने पुकारा है।

'इतनी रातको कौन पुकारेगा? सपना देखा होगा'। सो जा' कहकर पिताने करवट बदल ली।

'नहीं बाबू! मुझे स्वप्न नहीं आया। बालक अपनी उत्सुकताको—जिज्ञासाको नहीं दबा पाया। उसने पिताको पुनः जगाया— बाबू! किसीने मेरा नाम लेकर पुकारा है। बहुत स्नेहभरे प्यारसे पुकारा है बाबू! मैं तो पहली पुकारपर ही जाग गया था, लेकिन उठते-उठते पुनः दूसरी पुकार सुनायी पड़ी। यह आवाज, पुकार उधरसे आयी थी, उधरसे। बालकने चारपाईपर बैठ-बैठे ही सामनेवाले घरकी पिछली दीवालकी ओर अपने दाहिने हाथकी तर्जनीसे संकेत किया।

पिता एक बार तो झुँझलाये, किन्तु पुत्रकी पूरी बात सुनकर उठ खड़े हो गये और बोले— तू यहीं बैठ, मैं देखकर आता हूँ। कहते हुए सामनेवाले घरकी ओर चल दिये उस समय रातके ढाई-तीन बजे होंगे। पिता और

चाचा रामाज्ञा सिंहके साथ बालक सुदर्शन घरके बाहर चहारदीवारीसे घिरे चौकमें सोया था। पिता-पुत्रके स्वरसे चाचा रामाज्ञा सिंह भी जाग गये। बालकको चारपाईपर बैठा देखकर उन्होंने पूछा – कहा हुइली बचवा? 'चाचा' बालक उछलकर चाचाकी गोदमें चढ़ गया और गलेमें बाहें डालते हुए बोला– 'हमके के बुलावत हउआ?-'(हमको कौन बुलाता है)

'केउ तुमका डरायल बाटा बा?' (किसीने तुमको डराया है क्या?) 'नहीं चाचा! किसीने मेरा नाम लेकर बड़े प्यारसे बुलाया है। मैंने जागनेपर दूसरी पुकार भी सुनी है। मुझे किसीने नहीं डराया। वह बड़ी मीठी आवाज थी' सुदर्शनने अपनी बात समझानी चाही।

'कहाँसे पुकारा? भैया कहाँ गये हैं?' चाचाने उसे हृदयसे लगाते हुए सिर और पीठपर हाथ फेरते हुए पूछा।

ऊँ.....आ वहाँसे – सुदर्शनकी बात आधी ही हो सकी कि पिताको लौटते देखकर वह चुप हो गया।

रामकिशोर सिंह लौटकर अपनी शय्यापर बैठे तो सुदर्शन भी चाचाकी गोदसे उतरकर पिताके अंकमें आ बैठा और उत्सुकतासे पिताकी ओर निहारने लगा।

'का भइल?' (क्या हुआ?) रामाज्ञा सिंहने बड़े भाईसे पूछा– 'कौन था? इसे क्यों पुकारा?'

बालकने जिधर संकेत दिया उधर तो कोई नहीं है। बालकको स्वप्नमें किसीने पुकारा है अथवा इसे भ्रम हुआ है। रामकिशोरने भाईको समझाया। 'नहीं.....नहीं बाबू! हम जागत रहली (मैं जगा हुआ था)' सुदर्शनने पुनः समझानेका प्रयास किया।

'सूत जाइ बचवा, कुछ नाय वाय' (बेटा सो जाओ कुछ नहीं है)।' पिताने आज्ञाके स्वरमें कहा और पुत्रके लेटते ही उसे चादर ओढ़ाते हुए सिरपर हाथ रख लिया।

प्रातः उठकर सुदर्शनने माँको रातकी बात बतायी। माँने कहा— 'बेटा! तुम्हारे पिता मुझे बता चुके हैं। उनका कहना है कि यह तो कोई देवी माँकी अनुकम्पा एवं चमत्कार है। हो सकता है कि माँ ही तुम्हें पुकारती हों। अतः चिन्ता-जैसी कोई बात नहीं है। तुम भाग्यशाली हो, माँकी स्नेहदृष्टि तुम्हारा कल्याण ही करेगी।'

'किन्तु माँ, वह स्त्रीका नहीं, अपितु पुरुषका स्वर था और बड़ा मीठा स्नेहसे भरा स्वर था।' बालकने दृढ़तासे अपनी बात समझानेकी चेष्टा की।

अच्छा! तब मैं तुम्हारे पितासे ही पूछूँगी। हो सकता है कि वे कथावाले आचार्य श्रीपण्डितजीसे पूछकर बतायें; जिनका द्वार सभीकी समस्याओंके समाधानके लिये सदा खुला रहता है।

बातको साधारण-सी घटना समझकर सब भूल गये। किन्तु बात न साधारण थी और न भविष्यमें साधारण रही।

चौथे दिन पुनः वही तीन बजेके लगभग रातमें 'क्या है? कौन है?' कहता हुआ बालक सुदर्शन चारपाईपर उठकर बैठ गया। वह सिर घुमाकर इधर-उधर देखने लगा। जिधरसे स्वर आ रहा था उधर चलनेको खड़ा ही हुआ कि पिताके बदले आज चाचा जाग गये थे। उन्होंने प्यारसे बालकको अपने समीप सुला लिया।

प्रातः उठकर बालकने पुनः अपनी माँसे रातवाली मधुर पुकारकी चर्चा की। सदाकी भाँति माँने समझानेका प्रयास किया—बेटा! तुम्हारे पिता यही कहते हैं कि वात्सलयमयी माँकी असीम कृपा है तुमपर। उन्हींपर विश्वास रखो। जगत्-जननी ही सँभालेंगी तुम्हें, अन्यथा यह मधुर स्वर किसका हो सकता है?

माँकी बातसे सुदर्शनका सुकुमार कोमल हृदय समाधान न पा सका। रह-रहकर उस मीठी पुकारका मधुर स्नेहिल प्यार भरा स्वर कर्ण कुहरोंमें गूँज उठता था और वे उस पुकारनेवालेके मुख-कमलको देखनेके लिये

अधीर हो उठते। उनके आकुल-व्याकुल नेत्र कभी आकाशको देखते तो कभी पृथ्वीको। अनेक बार वह चुपकेसे उठकर अनुमानसे उस दिशाकी ओर चल देते जिधरसे वह मेघ-गम्भीर मधुर कोमल स्वर निःसृत होता। जब कोई समाधान नहीं मिल पाता तब धैर्य विचलित होने लगता। बाल-मन मन-ही-मन रो उठता—कैसे करूँ? कहाँ पाऊँ उसे? आत्मीयता भरी पुकारका स्मरण प्राणोंको व्याकुल कर देता।

अब बालक धीरे-धीरे इस मधुर स्वरका अभ्यस्त हो गया। इसके पश्चात् इसके विषयमें किसीको कुछ नहीं बताता। वह जानता था कि इस विषयमें वह किसीको नहीं समझा सकेगा। कुछ बड़े होकर एक बार पिताने ही किसी मनोवैज्ञानिक डॉक्टरसे पूछा था, किन्तु वे भी सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। कालान्तरमें एक अच्छे संत सुयोगसे पधारे और उनसे चर्चा की तो उन्होंने उल्लसित होकर बालकको वक्षसे लगाकर सिरपर हाथ फेरते हुए हँसकर कहा— 'विश्वका कण-कण व्याकुल है वत्स! यह हलचल देखते हो न! यह कोलाहल कुछ पा लेनेकी ललक लिये जो क्रियाशीलता दिखायी देती है। उसका एक ही अर्थ है— कोई उसे पुकार रहा है। उससे मिले बिना शान्ति, सुख और विश्राम नहीं है पुत्र!'

'मुझे पुकारनेवाला कौन है? मुझसे क्या चाहता है वह?'

'वह तो सभीको पुकारता है।' संत खुलकर हँस पड़े थे। 'कोई सुनता कहाँ है? तुम्हारा परम सौभाग्य कि तुम्हें 'पुकार' सुनायी दी। इस 'पुकार' को, स्वरको स्मरण रखो। पुकारनेवाला कौन है? यही तो बस, जानना है। लोग उसे छोड़कर व्यर्थकी वस्तुओंमें खोजनेमें दौड़ रहे हैं। खोज सब उसीको रहे हैं, किन्तु विपरीत दिशामें। कोई-कोई ही गन्तव्यका अवलम्बन कर पाते हैं। तुम भी उसे जानो बस, चलते रहो, वह स्वयं सँभाल लेगा।''

संत जैसे आये थे वैसे ही प्रसन्न मनसे बालककी मनःस्थिति देखकर अपने-आपमें खोये-से उठकर चल दिये।

प्रश्नका समाधान तो उस दिन भी नहीं हो सका, किन्तु उपाय क्या था? केवल स्मरण... स्मरण रखनेको ही संतने कहा था, किन्तु वह तो चाहकर भी उस स्वरके अपनत्वको, मधुरताको, उस मीठी पुकारको कहाँ एक क्षण भी भूल पाता है? सोचता है– जननी भी पुकारती है उसे, पिताकी अधिकार और ममत्वपूर्ण पुकार भी सुनता है, चाचाकी स्नेहविगलित पुकार, मित्रोंकी, छोटे भाईकी, बड़ोंकी, अपनोंकी, परायोंकी और जीवनमें यायावर रहकर जगत्की ढेर सारी पुकारें सुनी हैं, किन्तु उस स्वरकी, उस मीठी पुकारकी समता जो मन-प्राणोंको रसमें डुबो देती है—उसकी समता कहीं नहीं पा सका। इस पुकारने शैशवमें ही उसे सदाके लिये गम्भीर और एकान्तप्रिय बना दिया।

अनुत्तरित प्रश्न

सुदर्शनकी मुखाकृति माँ-जैसी गौर एवं सौम्य थी, पर स्वभावसे पिता- जैसे मितभाषी, गम्भीर एवं शान्त प्रकृतिके थे। सात्त्विक विचार, आस्तिकमति, सबके प्रति समान व्यवहार, अकलुष आचरण और निःस्पृह जीवन-परम्परासे प्राप्त थे। अतः दैहिक और मानसिक सुख-दुःख शान्त भावसे भीतर-ही-भीतर सह लेते। सत्यप्रेमी, तितिक्षापूर्ण जीवन और मितभाषी होनेके कारण उनके अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते। अपने पितासे 'श्रीरामचरितमानस' सुनते रहते और उन्होंने बहुत-सी चौपाइयाँ कण्ठस्थ भी करा दी थीं, जिन्हें सोते समय सुनाया करते। एक दिन उन्होंने पढ़ा —

'राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना।'

पढ़कर कठस्थ करके कुछ एक-एक कर समझनेका प्रयास करने लगे और अर्थ स्पष्ट न होनेसे पितासे पूछा—'बाबू! रामायणमें लिखा है कि '**राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना**' इसका यही अर्थ हुआ न! कि श्रीरामजी सर्वत्र व्याप्त हैं। जब सर्वत्र आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दायें-बायें रामजी ही हैं तब हम, आप, सब कहाँ हैं? जो कुछ दिखायी दे रहा है वह और आप मैं...

पिताने एक बार सस्मित दृष्टि उठाकर पुत्रकी ओर देखा और मन-ही-मन बालककी उचित जिज्ञासा देखकर उसकी विवेकपूर्ण परिपक्व बुद्धि निहारकर हृदयमें प्रसन्नता हुई, किन्तु बोले कुछ नहीं, अपने नाम-जपमें लगे रहे। पिताकी मूक दृष्टिसे सहमकर सुदर्शन अपने प्रश्नकी व्याख्या करते-करते चुप हो गया। प्रश्न ऐसा नहीं था कि बाल-मानस स्वयं सुलझा सके। बालक असमंजसमें पड़ गया। उसने पुनः प्रश्न करना चाहा– 'बाबू'! पिताने उसकी भगवदास्था देखकर समझाना चाहा – 'बचवा! चुप रहा छोट बाटा, ना समझ पइबा (बच्चा चुप हो जाओ, अभी छोटे हो, नहीं समझ पाओगे) भगवान्‌का आश्रय लो, बड़े होकर सब स्वयं समझ जाओगे। बालक चुप तो हो गया, किन्तु उत्तर पानेकी जिज्ञासा शान्त न हो सकी।

शैशव कालमें ऐसी ही जिज्ञासा पुनः हो गयी। जब बालक सुदर्शन पिताकी आराध्या माँ दुर्गाकी अष्टभुजाका दर्शन कर रहा था। खड्ग, कृपाण आदि आयुधोंको देखकर सोचने लगा कि माँ तो सर्वशक्तिशाली हैं, इनकी इच्छासे ही सब कुछ सम्भव है, तब इतने आयुध क्यों लिये हैं? वह एकटक उन्हें निहार रहा था तभी पिता आ गये। पिताके आते ही बालकने बड़ी उत्सुकतासे पूछा—ये देवी भगवती दुर्गा इतने हथियार क्यों लिये रहती हैं? वे चोरोंको, दुष्टोंको मार क्यों नहीं देती हैं?

पिताजीने पुनः डाँट दिया– भगवती माँ तुझसे पूछकर काम करेंगी न!

पिताजीसे डर तो लगता ही था, अतः पुनः चुप हो गये किन्तु प्रश्न चुप नहीं हुआ।

बादमें उन्होंने कुछ बड़े होकर कई विद्वानों और महात्माओंसे पूछा।

केवल एक भगवदाश्रय संतने समझाया – यह जगत् रामलीला है वत्स! यदि रावण न बने तो क्या रामलीला होगी?

सुदर्शन सोचने लगे – सचमुच तब रामलीला कैसे होगी? फिर रावण। बनेगा। उसे तो रामजीको भला-बुरा कहना ही पड़ेगा। इसमें उसका क्या

दोष और अपराध?

बौद्धिक रूपसे तब समझमें आया—सब जगत् रामलीला ही तो है, ऐसी रामलीला, जिसे श्रीराम ही संचालित कर रहे हैं, तब इसे जीवनमें समझना ही चाहिये।

गो-वंशसे अनुराग

प्रश्न तो उस दिनका भी समाप्त नहीं हुआ था जिस दिन पिताने किसी अशिष्ट व्यवहारपर नाराज होकर उसके चाचाको थप्पड़ मारा था, जिस समय वे गायको सानी दे रहे थे। बालक सुदर्शनका अपने चाचा रामाज्ञा सिंहसे बड़ा प्रेम था। उसे गायोंसे भी स्नेह था। वह एक मुट्ठी घास गायके मुखमें देता हुआ उनका नाम ले-ले कर सहलाता, पुकारता। पुनः बछड़ोंके साथ खेलता उनका नाम पूछता हुआ चाचाके संग बात कर रहा था कि तड़ाककी आवाजके साथ पिताके स्वरकी गर्जना भी सुनायी दी। पिताका ऐसा कड़ा स्वर बालकने जीवनमें पहली बार सुना था। वह सहम कर एक खम्भेकी ओटमें हो गया। उसी समय क्षणभरमें जो आश्चर्य घटित हुआ। उसने सुदर्शनको तत्काल तो कर्त्तव्यविमूढ़ किन्तु जीवन भरके लिये गो-प्रेमी बना दिया।

थप्पड़ मारकर रामकिशोर सिंह अभी ठीकसे हाथ भी नहीं हटा पाये कि तीन-चार गायोंने झटकेसे अपने बन्धन तुड़ा लिये और रामकिशोर सिंहकी ओर झपट पड़ीं। सुदर्शनके चाचा मल्ल थे— शरीरसे सुदृढ़ एवं फुर्तीले। उन्होंने विद्युत्-गतिसे अपने बड़े भाईको सिरसे ऊपर तक उठाया और दौड़कर भूसेकी कोठरीमें डालकर द्वार बाहरसे बन्द करके वहीं खड़े हो गये। गायें फुफकारती हुईं क्रोधमें भरकर बार-बार भूसेकी कोठरीकी ओर झपटतीं और चाचा रामाज्ञा सिंह उन्हें नाम ले-लेकर सहलाते, फुसलाते और उनपर हाथ फेरते हुए समझानेका प्रयास करते हुए पैर छूते। बड़ी देरमें कठिनाईसे वे गायोंको शान्त कर सके। गायोंकी सँभाल करते हुए उन्हें उनके स्थानोंपर

बाँध सके। इसके पश्चात् कोठरी खोलकर हाथ जोड़कर भाईसे बोले– भैया! मैं कैसा भी बड़ा अपराध कर बैठूँ, पर इन गायोंके सामने मुझे मत मारना। ये पशु तो कुछ समझते नहीं, आज अनर्थ होते-होते बच गया। यह सब एक साथ आपपर आक्रमण कर बैठतीं तो मैं भौजीको क्या मुख दिखाता?

सुदर्शन गायोंका स्नेह और बालकके प्रति उनकी आत्मीयता समझ गये। वैसे ही सदा स्वयं गायोंको सहलाते, दुलारते, पुचकारते रहते, किन्तु पिताका थप्पड़ नहीं समझ पाये। रातको देरसे पिताको चाचासे कहते सुना—'भगवान्‌ने बल दिया है तो झुककर चलना सीखो। सदाचारको कठोरतासे निभाना चाहिये। किसीका उपहास मत करो।' कहते-कहते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो चला और उनका हाथ चाचाके गालोंको सहला रहा था प्यारसे। चाचा भी अपने अपराधकी क्षमा माँगते हुए पैरोंपर पड़ गये थे। 'चाचाको क्यों मारा बाबूने?' सुदर्शनने माँसे पूछा।

'बेटा! सदाचारकी शिक्षा देनेके लिये, समाजमें मर्यादासे रखनेके लिये और अपने बल-पौरुषपर किसीका उपहास न करनेको समझाया। इसीसे अपने पड़ोसी रामबीरकी शिकायतपर ताड़ना दी थी। इसी प्रताड़नासे चाचा रामाज्ञा सिंह न्याय और नीतिके पथपर चलना सीख गये। उन्हें अपने भाईपर गर्व था कि वे मुझे सुधारनेके लिये ही करते हैं अन्यथा उनका असीम भातृ-प्रेम, दुलार मुझे सदासे प्राप्त होता रहा है।

नाड़ी-ज्ञान

कभी-कभी सुदर्शन अपने पिताके मित्र बद्री तिवारीकी दुकानपर जा बैठते और उन्हें रोगियोंकी नाड़ी देखकर रोगका निदान करना, पुड़िया बाँधकर दवा देना, रोगीको पथ्य बताना आदि कार्य चुपचाप देखा करते। एक बार जब कोई रोगी दुकानपर नहीं था तो सुदर्शनने वैद्यजीसे पूछा– 'बड़े बाबू! हाथ पकड़कर आप कैसे जान लेते हैं कि इसे कौन-सा रोग है?'

तुम सीखोगे बचवा? वृद्ध वैद्यजीने मुस्करा कर पूछा।

'हाँ ....हाँ अवश्य सीखूँगा, क्या आप मुझे सिखा देंगे? उत्साहसे सुदर्शनने प्रश्न किया।'

'हाँ अवश्य, इधर आकर मेरे पास बैठो' कहते हुए वैद्यजीने हाथ बढ़ाकर सुदर्शनको अपने समीप खींच लिया। उन्होंने अपने हाथकी नाड़ीपर बालककी कोमल अंगुलियाँ रखीं।

'कुछ उछलत है' सुदर्शनने आश्चर्य सहित चकित स्वरमें कहा।

'यही नाड़ी है बचवा!' वे नाड़ीकी सम, विषमादि गतियाँ समझाने लगे।

सुदर्शन अब नित्य ही निश्चित समयपर वैद्यजीके यहाँ नाड़ी-विज्ञान और रोग-निदान सीखने लगे। घर आकर वे कभी छोटे भाईकी, कभी माँकी और कभी चाचाकी नाड़ीपर अंगुलियाँ रखकर उसकी चाल, गतिविधि समझनेका प्रयत्न करते। इस प्रकार धीरे-धीरे वायु, पित्त, कफके वेग एवं उनका मन्द रूप और उनकी दवाओंके विषयमें थोड़ी-थोड़ी जानकारी प्राप्त कर ली।

भेलहटामें शिक्षाका कोई प्रबन्ध न होनेके कारण पिताने इन्हें समीपके गाँवकी ग्रामीण पाठशालामें, जहाँ 'अलफ' 'बे' से पढ़ाया जाता था, प्रवेश दिलाया। वहाँ उर्दूके साथ हिन्दी भी पढ़ायी जाती। पढ़नेकी ललक होनेसे सुदर्शन मनोयोगसे अपना पाठ याद कर लेता। अभी वे कक्षा दोमें ही पहुँच सके थे कि घरपर अनायास चाचा रामज्ञा सिंहका देहान्त हो गया।

चाचाका निधन

बालक सुदर्शनको किसीकी मृत्यु देखनेका यह प्रथम अवसर था। उन्होंने अपने परम धैर्यवान् गम्भीर पिताकी आँखोंमें आँसूकी धारा बहते देखी। सर्वस्व लुट जानेपर भी अडिग रहनेकी मानसिकतावाले रामकिशोर सिंह अपने भाई रामाज्ञा सिंहकी असामयिक मृत्युपर असहाय-से अवसन्न रह गये। उनकी गृहस्थीके सुचारु रूपसे संचालनकी नींव ही हिल गयी।

'खेती-बाड़ी देखना, गायोंकी साज-सँभाल, नौकरों और हलवाहोंको अनुशासनमें रखना और प्रेमसे उन्हें कार्यके लिये प्रोत्साहन देना, उनके दुःख-सुखमें साथ देना और घरमें आवश्यक सामग्री पहुँचानेकी व्यवस्था अपनी भौजीसे पूछकर करना आदि सभी उत्तरदायित्व मेरा भाई ही निभाता था'— सोचते-सोचते रामकिशोरजी रो पड़े। माँका भी रोते-रोते धैर्य छूट रहा था। गाँवकी स्त्रियाँ सँभाल रही थीं। वे भी जान रही थीं कि वे झूठा आश्वासन दे रही हैं। सभी समझते थे— रामकिशोर पूजा-पाठमें ही लगे रहते हैं। उनसे खेत-खलिहानका काम कैसे होगा एवं क्या सरूपासे गोशालाके काम होंगे? हाय! गायोंमें तो छुटकू रामाज्ञाके प्राण बसते थे। नाम लेकर पुकारते ही वे हुंकार करती हुई दौड़कर उसे घेर लेतीं। अब इन गायोंका क्या होगा? मनुष्य तो विपत्तियोंको हृदयपर पत्थर रखकर सह लेता है, किन्तु ये मूक पशु—इन्हें कैसे समझाया जा सकता है?

माँको रोते देखकर सँवरू और नन्हीं बहिन जयन्ती भी चीख-चीखकर रोने लगे। बालक सुदर्शन सहमे-से एक कोनेसे सब दृश्य देख रहे थे। उनकी समझमें नहीं आ रहा था— 'चाचाको क्या हो गया है? उन्हें तो कोई चोट भी नहीं लगी है, फिर सब लोग रो क्यों रहे हैं? चाचा बोल क्यों नहीं पा रहे? हिल-डुल भी नहीं रहे। ये लोग सफेद कपड़ेमें लपेटकर इन्हें बाँध क्यों रहे हैं? कहाँ ले जायँगे? यदि अभी चाचा उठ गये तो सबको पटकनी दे देंगे। ये बड़के बाबू, काका आदि बड़े-बूढ़े लोग भी बाँधनेवालोंको मना नहीं कर रहे। सभी..... सभी आँसू भी बहा रहे हैं और चाचाकी प्रशंसा भी किये जा रहे हैं। सचमुच मेरे चाचा तो बहुत अच्छे हैं। हम तीनों भाई-बहिनपर बहुत प्यार करते हैं, फिर ये सभी किस अपराधसे चाचाको बाँधकर ले जा रहे हैं,' सोचते-सोचते सुदर्शनने माँके पास आँसू भरी आँखें उठाकर पूछा— 'माई! ये लोग चाचाको क्यों बाँधकर ले जाना चाहते हैं?'

रोती हुई माँने उसे बरबस छातीसे लगा लिया। वे कुछ बोल नहीं सकीं। धैर्यका बाँध टूट चुका, तब दूसरी वृद्धा स्त्रीने बालकको समझाया– 'अब तेरे चाचा नहीं रहे, बचवा!'

'चाचा तो हैं, उन्हें तो लोगोंने बाँसपर बाँध दिया है' – कहते हुए सुदर्शनकी भी रुलाई छूट गयी। उसी समय बाहरसे जगदीश काकाने सुदर्शनका हाथ पकड़कर कहा – चलो, बाहर चलें।

बाहर आकर सुदर्शनने देखा तो देखता ही रह गया आश्चर्यसे। उसके बँधे हुए चाचाको चार लोगोंने कन्धेपर उठा रखा है। एक दूसरे व्यक्तिने उसके हाथमें रस्सी बँधी छोटी-सी हाँडी पकड़ा दी जिसमेंसे धुआँ निकल रहा था। उसकी समझमें कुछ भी नहीं आ रहा था। उसने भय और झिझक त्याग कर पिताका कुर्ता पकड़ कर साहससे पूछा–बाबू! ये लोग चाचाको कहाँ ले जा रहे हैं? चाचाने तो कुछ नहीं किया है, उन्होंने ऐसा क्या कर दिया? पिताने रोते हुए बालकको हृदयसे लगाकर पीठपर हाथ फेरते हुए मूक सान्त्वना देते हुए उसके हाथसे हाँडी ले ली।

'चाचा अब वापस कब आयेंगे बाबू? पिताने बिना उत्तर देते हुए अपने हितैषी जगदीशसे कहा– बालकको घर पहुँचाकर आ जाओ।'

'चाचा! चाचा!! चाचा!!!' कहते हुए बालक आगेको भागा। तब तक जगदीशने हृदयसे लगाते हुए पकड़ लिया और समझाना चाहा– 'बेटा! तेरे चाचा मर गये हैं।

'वे कहाँ मरे हैं? सब मेरे चाचाको बाँधकर ले जा रहे हैं। बाबू भी उनके साथ हैं। चलो, चाचाको ले आयें, मेरे चाचा बहुत अच्छे हैं।

'अरे! तू समझता क्यों नहीं है? वे रामजीके घर चले गये हैं।'

'रामजीका घर कहाँ है? क्या कहा? किसने कहा रामजीके घर ले जानेको? 'रामजीका घर ऊपर है' साथीने आकाशकी ओर अँगुली उठाते हुए कहा।

हताश सुदर्शन धमसे वहीं बैठ गये। उसका बाल-मन, बुद्धि समझ नहीं पा रही थी कि यदि रामजी आकाशमें रहते हैं तो ये सब चाचाको वहाँ कैसे ले जायँगे? बाँधकर ही क्यों? चाचा ही क्यों चुपचाप लेट गये? वे स्वयं भी तो जा सकते थे? कुछ खोये-खोये-से सोचते रहे। सम्भवतः अब चाचा कभी नहीं आयेंगे, इसीलिये माँ और बाबू इतना रो रहे हैं। अवश्य ही कुछ ऐसा हुआ है जिसका कुछ उपाय सम्भव नहीं है।

इस आघातने जैसे सबको मूक बना दिया। जैसे कहनेको कुछ बचा ही न हो। केवल छोटे बालक सँवरू एवं बच्ची जयन्तीके स्वर सुनायी पड़ जाते थे—रोनेके और तुतलाकर बोलनेके। गायें अपने चरानेवालेको बार-बार हुंकार करती हुई गोशालाके द्वारकी ओर देखतीं। प्रातः-सायं रँभा-रँभा कर आकाश सिरपर उठा लेतीं। माँ-सरूपा कृष्णा, गौरी, श्यामा, सुवर्णा आदि गायोंके नाम लेकर सहलाती, पुचकारती तथा उन्हें खानेको देती, किन्तु गायें तो नियत समयपर रामाज्ञा सिंहको ही केवल देखना चाहतीं। गायोंकी पुकारसे राह चलते लोगोंकी आँखें भी भर जातीं। माँ सरूपाको वे दूध निकालने ही नहीं देतीं अथवा दुलत्ती मारकर दूधका पात्र ही गिरा देतीं। जिस घरमें दूध-दहीकी प्रचुरतासे नदियाँ बहती थीं, वहाँ अब दूध अलभ्य होने लगा।

सुदर्शन जब कभी हरा चारा और गायको रोटी लेकर गोशालामें आते तो सभी गायें स्नेहभरा हुंकार कर बैठतीं, मानो नयी ब्यायी गायें अपने वत्सको पानेके लिये हुंकार रही हों और हाथसे जो भी देते वही मुखमें ले लेतीं। इसी समय तो चाचा-भतीजे साथ-साथ गोशालामें आते थे। गायें मानो इनसे पूछ रही हों—तुम अकेले कैसे? तुम्हारे चाचा कहाँ हैं? उनके बिना न खाना-पीना अच्छा लगता है और न दूध देना।

रामकिशोर सिंह भी गायोंकी हालत देखकर, उनका करुण स्वर सुनकर अकुला उठते। उन्होंने गायोंको चरानेके लिये चरवाहेकी व्यवस्था की। उनको समयपर दाना-पानी देना, दूध निकालना आदिका प्रबन्ध करनेपर भी असमयमें

गायें घर लौट आतीं। किसी-किसीको बीमारी भी ऐसी हो गयी कि धीरे-धीरे एकके बाद एक मरने लगीं। इनके मरनेपर इनपर स्नेह होनेसे सुदर्शन छिपकर रोने लगते। इधर रामकिशोर सिंहको भी अपने आज्ञाकारी, कार्य-कुशल स्नेही भाईके बिना घर-द्वार, खेत-खलिहान सब सूना लगता।

बाल-मनकी सहज जिज्ञासा

अल्पायुसे ही सुदर्शनको समवयस्क बालकोंके साथ न उछल-कूद पसन्द थी, न व्यर्थकी बातचीत। चाचाका निधन और गायोंका मरना देखकर वे और भी गम्भीर हो गये थे। छोटे भाई समझ सिंहके शरीरका रंग सुदर्शनके गौर वर्णसे कम था, इसीसे सब लोग 'सँवरू' पुकारने लगे थे। पाठशालासे लौटकर सुदर्शन सँवरूको लेकर शामके समय गाँवके बाहर एकान्तमें निकल जाते। छोटा भाई खेतमें, बागमें खेलनेमें लग जाता और सुदर्शन पालथी लगाकर अन्तर्मुख होकर किसी सोचमें डूब जाते—मनुष्य मरकर कहाँ चला जाता है?… अरे! जहाँसे आता होगा वहीं तो जाता होगा। सब लोग कहते हैं कि रामजीके पास चला जाता है पर रामजीके पास जाता कैसे है? यह तो पिताजी मेरे पूछनेपर भी नहीं बताते। ठीक है, मैं बड़ा हो जाऊँगा तब ढेर सारी पुस्तकें पढ़ूँगा और स्वतः जान लूँगा। पिताजीको रामायण सुनाते समय मैंने यही तो पूछा था— **'राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना'** कैसे हैं? जब सब जगह रामजी ही व्याप्त हैं, तब हम सब उन्हींमें तो कुछ होंगे। वे तो बहुत बड़े होंगे। ये धरती, आकाश, वायु, अग्नि, जल सब क्या उन्हींके सहारे टिके हैं? ये चाँद-सूरज घूमते हुए क्या उन्हींकी आरती करते हैं? बादल पानी बरसा कर क्या उन्हींके चरण धोता रहता है? पवन क्या उन्हींका पंखा झलता है? क्या ये काली कोयल उन्हींके गीत गाती रहती है? इन रंग-बिरंगे फूलोंको बनानेवाला कौन है? कौन सारे संसारको चलाता है? पिताजी तो कहते हैं कि रामजी ही सब करने-करानेवाले हैं। पुस्तकोंमें उनसे

मिलनेका उपाय अवश्य लिखा होगा। अतः मैं मनसे खूब पढ़ूँगा? तभी तो उनसे मिल पाऊँगा? पर ... व्यापक रामजीसे मिल कैसे पाऊँगा? भले ही वे व्यापक हों, मुझे उनसे क्या लेना-देना? मुझे तो मेरे साथ खेलनेवाले, हँसनेवाले, बोलनेवाले तथा देखने-सुननेवाले रामजी चाहिये। क्या वे मुझसे मिलेंगे? अवश्य मिलेंगे। पर कैसे? मैं क्या करूँ? अरे हाँ, जब मैं हनुमान-चालीसा रोज पढ़ता हूँ, तब हनुमान्जीसे ही मनकी बात कहूँगा। मैं उन्हें मना लूँगा। मुझे भरोसा है कि वे मुझे अवश्य मिला देंगे। स्पष्ट तो लिखा है — '**तुम्हरे भजन राम को पावै**'।

हनुमान्जी तो रात-दिन 'राम-राम करते रहते हैं। इनकी बात वे अवश्य मान लेंगे तभी तो इन्हें वे हृदयसे लगा लेते हैं। सुना है कि वे बड़े कोमल स्वभावके हैं और अयोध्याके राजा हैं। मैं उनके पास थोड़ा बड़ा होते ही अयोध्या जाऊँगा। अहा! तब मुझे भी हृदयसे लगा लेंगे। इन विचारोंमें न जाने कब तक खोये रहे। तभी रात होनेसे छोटे भाई सँवरूने कन्धा पकड़ कर झकझोर दिया— भैया! रातमें डर लगता है अब घर चलो। बालक सुदर्शनकी भाव-तन्द्रा लोप हो गयी। उदास मन भाईका हाथ थामे घर लौट आये।

बड़के बाबूका कोप

श्रीरामकिशोर सिंहके बड़े भाई श्रीआदित्य सिंहजी फक्कड़ स्वाभावके थे। वे सदासे साधु-सन्तोंकी मण्डलीके साथ विचरते रहते। तीर्थाटन एवं भ्रमण करके जब भी घर लौटते तब कठिनतासे एक महीने भी नहीं टिकते और रमते राम हो जाते। स्वभावसे भी कठोर एवं भाँग-गाँजाके व्यसनमें भी पड़ गये। घर आनेपर अपने छोटे भाइयोंकी कुशल भी नहीं पूछते और न उनके प्रति उत्तरदायित्वको ही समझते। बालकोंका ममत्व भी उन्हें घरमें न बाँध सका। सदा अपने व्ययके लिये पर्याप्त इच्छित धनराशि लेकर चले जाते और एक वर्ष बाद ही धन समाप्त हो जानेपर पुनः लौट आते और

येन-केन-प्रकारेण इच्छित धन ले ही लेते। उनके आते ही उनके दोनों छोटे भाई आदर-सत्कारमें कोई कसर नहीं छोड़ते। उनके पूछनेपर विनयपूर्वक संक्षेपमें उत्तर देते रहते। मितभाषी होनेके साथ रामकिशोर सिंह कभी भी बड़े भाईकी अवज्ञा नहीं करते। कदाचित् परिस्थितियोंको समझानेका साहस करते भी तो इस प्रकारका कोई प्रयत्न सफल नहीं हो पाता था। दुःखी मनसे उनकी मनमानी सहते रहते थे।

रामाज्ञा सिंहकी मृत्युके पश्चात् जैसे ही फसल खलियानमें आयी कि बड़के बाबू आदित्य सिंह एक दिन सहसा घर आ गये। परिवारके सभी लोगोंने आकर प्रणाम किया। छुटकू रामाज्ञा सिंहके मरनेका समाचार सुनकर एक बार तो स्तब्ध रह गये — बेचारा मेहनत कर-करके मर गया। क्या ले गया साथ? बहुत परिश्रमी एवं सबका हितैषी था। केवल एक दिन ममत्वका भाव जगा किन्तु दूसरे दिन ही बदल गये। अपने स्वभावके अनुसार कठोर बुलन्द स्वरमें पूछा — गायें कहाँ चली गयीं सब?

'मर गयीं' रामकिशोर सिंहने संयत शान्त स्वरमें संक्षिप्त उत्तर दे दिया।

'मर गयीं या बेच दी?'

'भैया! एक भी गाय मैंने बेची नहीं है। छुटकूके विरहमें कुछने चारा-पानी छोड़ दिया और कुछ बीमारीमें .... उनका उपचार भी बहुत किया किन्तु सफल नहीं हुआ' — कहते-कहते रामकिशोर सिंहकी आँखोंसे बरबस आँसू टपक पड़े।

तीखे तेज स्वरमें आदित्य सिंह बोले— 'मैं अपना आधा हिस्सा लेकर ही रहूँगा।'

'भैया! हिस्सा क्या, सब कुछ आपका ही तो है। मैं भी आपका, सारी जमीन, घर भी आपका। आप जैसी आज्ञा देंगे, मैं वैसा ही करूँगा। आप जैसा चाहें वैसा करें। आप तो मेरे पिताके समान हैं। यहीं घरपर रहिये। अपने परिवारको पालिये-पोसिये। कहीं मत जाइये। मैं आपकी मनोयोगसे

पूरी सेवा करूँगा' रामकिशोर सिंहने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे कहा।

'अब हम तुम्हारी मीठी-मीठी बातोंमें नहीं आनेवाले' कहकर आदित्य सिंहने सारा अनाज बनियेको बेचकर रुपये स्वयं ले लिये और भूमिको अगले वर्षके लिये बटाईपर दे दी। गाँवके वयोवृद्ध लोगोंने भी आदित्य सिंहको समझानेका प्रयास किया किन्तु सदाकी भाँति आदित्य सिंह **'रमता जोगी और बहता पानी'** के समान घरसे चल दिये।

प्रवास-काल

रामकिशोर सिंहजी अपने बड़े भाई आदित्य सिंहके व्यवहारसे सदा उद्विग्न रहते। किन्तु उनके आदेशकी अवज्ञा करना इनके स्वभावमें ही नहीं था। बिना विरोध किये सब सहते रहे तथा छोटे भाई रामाज्ञा सिंहके निधनसे घर, खेती और गोशालाकी सुव्यवस्था भी बिगड़ गयी।

भाई आदित्य सिंहके जानेके पश्चात् इन्होंने दूर रिश्तेकी एक बालविधवा वृद्धा बुआको बुलवाया। घरमें उनके रहने और खाने-पीनेका प्रबन्ध करके अपनी पत्नी सरूपा, आठ वर्षके पुत्र सुदर्शन, छः वर्षका पुत्र सँवरू तथा एक वर्षकी पुत्री जयन्तीको साथ लेकर वर्ष 1920 ई० के प्रारम्भमें गाँवसे किसी अज्ञात मंजिलके लिये चल पड़े। अपने परिवारके स्वतंत्र आर्थिक प्रबन्ध और जीविका ढूँढ़ते हुए वे घूमते-घूमते वर्धा जिलेकी आर्वी तहसीलमें पहुँचे। वहाँ एक धर्मशालाको ही अपना स्थायी आवास बना लिया। रामकिशोर सिंह समीपकी रूई-प्रेस मिलमें नौकरी करने लगे। परिवारके दिन पुनः सुखसे बीतने लगे और दोनों बालकोंको पासके स्कूलमें प्रवेश दिला दिया।

काल, प्रारब्ध अथवा नियति कभी किसीको एक-सी स्थितिमें नहीं रहने देती। रामकिशोर सिंहके ये सुखके लौटे दिन भी नियति नहीं सह सकी। वह जैसे क्रूर अट्टहास कर उठी हो... ।

यद्यपि विपत्तियाँ जीवनमें निखार और मनको निर्मल बनानेके लिये ही

आती हैं किन्तु इसे सहना भी क्या इसे कहने और लिखनेके समान ही सरल है? वह तो भुक्तभोगी ही जानते हैं कि सहना कितना कठिन.... कितना असहनीय होता है। कितना भी कठिन हो, धैर्यवान् व्यक्ति भी नियतिके सामने झुकनेको, उसे सहनेको सदासे विवश हैं। गृहत्यागके दो वर्ष ही सहज सरल रूपसे बीते थे कि सन् 1922 ई० में दिसम्बरकी शीतलहर लगनेसे नन्हीं बालिका जयन्ती बीमार हो गयी। पिताकी दौड़-धूप, माँकी परिचर्या उसे नहीं बचा सकी। तीन दिन तक निमोनियाका असह्य कष्ट झेलकर वह चल बसी। मृत्युसे सुदर्शनका यह दूसरी बार सामना हुआ। वे समझ चुके थे कि मौत कैसे होती है। समूचा शरीर जैसेका तैसा रहते हुए भी वह न बोल सकता है और न हिल-डुल सकता है। श्वास भी नहीं लेता, देखता-सुनता भी नहीं, केवल मिट्टीके ढेले-जैसा हो जाता है। ऐसा लगता है, सब क्रियाओंका कोई संचालक तत्त्व चेतन आत्मा है, वह निकल जाता है और निर्जीव शरीरको लोग जला देते हैं अथवा जलमें विसर्जित कर देते हैं। इस शरीरकी ऐसी गति जानकर सुदर्शन स्तब्ध रह गये। उनकी गुड़िया-जैसी बहिनको भूमिमें गाड़ दिया गया था। बहिनके जानेके बाद दोनों भाई आपसमें सटकर खूब रोये।

माँकी वेदना कैसे कही जाय। उसके आँसू थमनेका नाम नहीं लेते थे। रामकिशोर सिंहने हृदयपर पत्थर रखकर अपने दोनों बालकोंको गोदमें खींच लिया। समझायें भी तो क्या और कैसे? रोती हुई पत्नीको सान्त्वना दी, किन्तु माँकी ममता कई महीनों तक छिप-छिपकर आँखोंसे झरती रही। रामकिशोर सिंहको ही पत्नीके स्वास्थ्य और खाने-पीनेका ध्यान रखना पड़ता था।

एकके पश्चात् एक-एक करके निरन्तर आनेवाली आपदाओंसे माँ सरूपा भीतर-ही-भीतर टूट गयी। वह सोचती रहती— 'मेरा लक्ष्मण-जैसा देवर

क्या गया मानो दुर्भाग्य मूर्तिमान् होकर गृहस्थी उजाड़ने लगा। देश छूटा, घर-द्वार छूटा, खेलती चहकती गुड़िया भी छूट गयी। अपनी भरी-पूरी गृहस्थीके वे सुखमय दिन उसकी आँखोंके आगे घूमने लगे— 'सदाचारी धीर-गम्भीर पति मिला, आज्ञाकारी देवर मिला, गोदमें खेलते-किलकते तीन बालक मिले, धन-धान्यसे भरा घर, दूध-दही, बहती गोशाला, लहलहाते हुए खेतोंकी फसल आदि सब कुछ था। स्वर्गका सुख भी इससे अधिक और क्या होगा? मैं अपने-आपमें प्रसन्न और सन्तुष्ट थी, किन्तु दैवके विधानके आगे किसका वश है? इन्हीं भावोंमें खो जाती।

माँ सरूपाका प्रयाण

माँ सरूपा परम साध्वी, पतिप्राणा और सदाचारोंकी पुंज थी। आदर्श गृहिणीके समान गृह कार्योंमें व्यस्त रहती किन्तु बालिका जयन्तीका स्मरण आते ही आँखें बरस पड़तीं। बच्चे पढ़ने चले जाते, पति कामपर चले जाते और स्वयं घरकी व्यवस्थामें संलग्न हो जाती। धीरे-धीरे शरीर दुर्बल होता जा रहा था। जयन्तीकी मृत्युके ठीक एक वर्ष पश्चात् सन् 1923 ई० में दिसम्बरकी एक रात धर्मशालाके चौकमें कई स्थानपर आग (अलाव) जल रही थी, जिसके आस-पास शीत निवारणके लिये लोग बैठे हुए इधर-उधरकी बातोंमें मग्न थे। धर्मशालाको कई परिवारोंने अपना स्थायी आवास बना लिया और सभी आपसमें प्रेम-सद्भावसे रहते थे।

दोनों बालकोंको और पतिको भोजन कराकर माँ सरूपा स्वयं भोजन करने बैठीं। उन्होंने पतिकी थालीमें बची रोटीका एक ग्रास मुखमें रखा तो रामकिशोर सिंहने टोका — 'यह क्या कर रही हो? ठीकसे भोजन क्यों नहीं किया?

जी ठीक नहीं है और भूख भी नहीं है, अतः केवल प्रसाद ले रही हूँ। एक ही ग्रास खाकर वे उठ गयीं और झूठे बर्तन स्वच्छ करने लगीं। 'यह

क्या कर रही हो? सबेरे महरी बर्तन मलने आती तो है।' पतिने पुनः टोका। 'आज झूठे बर्तन पड़े रहना ठीक नहीं लग रहा' कहकर वे काममें लगी रहीं। उन्होंने चौकेकी बची रोटियाँ गायको दे दी। चौका साफ करके वे पतिके बायीं ओर आकर बैठ गयीं। दाहिनी ओर बालक सुदर्शन बैठे थे। छोटा भाई सो गया था। सुदर्शनने देखा – माँ पिताजीकी बायीं जाँघपर सिर रखकर सीधी लेट गयी हैं। सुदर्शनने माँका ऐसा व्यवहार कभी नहीं देखा था, अतः उनकी आँखोंमें आश्चर्य था। उन्होंने देखा – माँने दाहिने हाथको सिरकी ओरसे ले जाकर पिताके बायें तलवेको स्पर्श किया। स्पर्श करते ही बन्दूक चलने-जैसा तेज धड़ाका हुआ। सोये हुए बालक सँवरू, समीप बैठे पिता और स्वयं उसपर भी रक्तके छींटे पड़े। आवाजसे सँवरू जाग गया। पिताने हाथ बढ़ाकर उसे थपथपा कर सुला दिया।

'बाबू! क्या हुआ?' चकित होकर सुदर्शनने पूछा।

'जाओ! सो जाओ बेटा' पिताने प्यार भरे स्वरमें कहा।

भला! क्या ऐसी स्थितिमें कहीं सोया जा सकता है? अवाक् बालक सुदर्शन देखता रहा।

धमाकेकी आवाज सुनकर कई हितैषी लोग रामकिशोरजीके समीप आ गये थे और जिज्ञासा प्रकट करते हुए बोले– क्या हुआ यह कैसी आवाज थी, समीप आकर कइयोंने एक साथ पूछा।

'कुछ नहीं भैया! आप लोग जायँ। एक-दो तो चले गये, किन्तु आत्मीयतासे भरे प्रायः लोग खड़े ही रहे।

रामकिशोर सिंहने सुदर्शनसे कम्बल लानेको कहा। वे दौड़कर कम्बल ले आये। तख्तपर कम्बल बिछाकर रामकिशोरजीने पत्नीके शरीरको सिरकी ओरसे और पुत्र सुदर्शनको पैरोंकी ओरसे उठानेका संकेत किया। दूसरे लोगोंने सहायता करनी चाही पर उन्होंने संकेतसे सबको मना कर दिया।

पिता-पुत्रने मिलकर उन्हें कम्बलपर लिटाकर एक कम्बल ऊपरसे ओढ़ा दिया।

सुदर्शनसे सोनेको कहकर रामकिशोर सिंह कई लोगोंके साथ सारी रात जागते हुए बैठे रहे। प्रातः काल सुहागिन स्त्रियोंने आकर सरूपाके निर्जीव शरीरको स्नान कराकर नवीन वस्त्र धारण कराये, उनका पूरा शृंगार किया, उनके हाथोंकी उतरी चूड़ियाँ और भालका सिन्दूर सुहागिनोंने बड़े आदरसे बाँटकर पहना। माँ सरूपाका पार्थिव शरीर और मुख-मण्डल तेजसे चमक रहा था। सभी इनके सौभाग्यकी सराहना कर रही थीं।

'माँको क्या हो गया बाबू?' सुदर्शनने पितासे रातका प्रश्न पुनः दोहराया। तब रामकिशोरजीने स्नेहसे पुत्रको उसकी माँके समीप लाकर दिखाया। सुदर्शनने देखा—माँ जहाँपर सिन्दूर लगाया करती थी— उस स्थानसे पुरुष जहाँपर चोटी रखते हैं — वहाँ तक सिर ककड़ीकी भाँति फट गया था। दरार-हाथ जा सके, इतनी चौड़ी थी। भीतरसे सफेद-सफेद कुछ दिखायी दे रहा था, किन्तु रातको जो रक्तके छींटे उड़कर पड़े थे उनके अतिरिक्त रक्त कहीं भी दिखायी नहीं दे रहा था।

बालक सुदर्शन समझ नहीं पा रहा था कि बिना चोटके माथा फटा कैसे?

पुत्रकी जिज्ञासा देखकर पिताने समझाया — 'बेटा, तुम्हारी माँ योगियोंकी भाँति मरी हैं।'

पिताका श्रद्धाभरित स्वर सुनकर उसने मस्तक उठाकर देखा — पिताकी आँखोंमें केवल श्रद्धा ही नहीं अपितु बहुत कुछ है — वियोगका दुःख अभाव और सम्भवतः दाम्पत्य जीवनकी अकथ कथा जिसे सुदर्शन पूरी तरह न समझ पाये हों, किन्तु पिताकी दर्दभरी दृष्टिने बाल-हृदयको छू अवश्य लिया था। पुत्रको अपनी ओर एकटक देखते पाकर पिता अपने दुःखको हृदयकी गहराईमें धकेलकर पुत्रको अपने हृदयसे लगाकर सान्त्वना देते हुए सिरपर हाथ फेरते रहे।

छोटी बहिनकी मृत्युपर फूट-फूटकर रोनेवाले दोनों भाई माँकी अरथी उठते ही खेलमें लग गये। सम्भवतः माँकी ममताने विश्वनियन्तासे यही माँगा होगा कि— 'मेरे अभावमें बालक दुःखी न हों।'

देवी सरूपाकी मृत्युके पश्चात् रामकिशोरजी और बालकोंका मन उस धर्मशालासे उचट गया। वे रूई-मिलके एक पृथक् क्वार्टरमें ही रहने लगे। सुदर्शन उस समय कक्षा तीनमें पढ़ते थे और बारह वर्षके थे। छोटा भाई दस वर्षका था। जो स्त्री चौका-बर्तन करने आती थी वही भोजन बनाने लगी।

जीवन सहज गतिसे चलने लगा। दोनों बालक स्कूल चले जाते। पिता कामपर चले जाते। शामको इकट्ठे होनेपर पिता पढ़ाईके विषयमें जानकारी लेते और भोजनके बाद बालकोंको पौराणिक कथाएँ सुनाया करते।

पत्नीके निधनके दो वर्ष बाद रामकिशोरजीको घर-गाँवकी स्मृति और बुआके प्रति अपने कर्तव्यका बोध झकझोरने लगा। वे सोचने लगे— मैं यहाँ चला आया। पाँच-छः वर्षोंमें बुआने क्या खाया होगा व क्या पहना होगा? उनकी हारी-बीमारीमें किसने सेवा की होगी? मैं इधर अपनी परिस्थितियोंसे ही जूझता रहा। अब मैं जाकर उन्हें कैसे बता पाऊँगा कि फूल-सी बच्ची जयन्तीको नहीं बचा सका और न बचा सका अपने सुख-दुःखकी संगिनी पतिव्रता, सेवा और सदाचारकी मूर्ति देवी सरूपाको।

एकान्तकी नीरवतामें सरूपाका स्मरण उन्हें असंयत कर देता। धैर्यका भूधर धँसकने लगता। गम्भीरताके अतल सागरको स्मृतियोंकी लहरें आक्रान्त कर उठतीं देवी! तुम्हीं तो मेरे हृदयका बल थी। तुम-जैसी अमूल्य नारी-रत्न पाकर अन्ततः मैं कंगाल ही रहा। कुछ भी तो सुख नहीं दे पाया तुम्हें। सब सुख त्यागकर गृहत्याग कर चुपचाप मेरे पीछे चल दी। एक बार भी मुड़कर पीछे नहीं देखा। भूल मेरी थी। भैयाकी बातें सहता रहता, बड़े ही तो थे। अपनी हेकड़ीमें घर, ठिकाना न छोड़ा होता तो तुम-जैसी सुकुमारीको

बालकोंको क्यों भटकना पड़ता? क्या सोचा था और क्या हो गया? हे भवितव्यता, तुझे प्रणाम!

'सरूपा! तुम जहाँ हो वहीं सुखी रहो। हे देव! हे हरि! तुमसे यही ऐकान्तिक प्रार्थना है वह जहाँ हो, सुखीसे रहे। दुःखकी, कष्टकी छाया भी उसका स्पर्श न करे।' हताश होकर वे गाँव जानेकी लालसा छोड़ देते किन्तु मातृभूमिका मोह सहज नहीं छूट पाता। वे खेत-खलियान, पैत्रिक घर-द्वार, मित्रोंका साहचर्य, शामको रँभाती गायोंका आना, वह गोधूलिमण्डित गगन और शस्य-श्यामला धराके अदम्य आकर्षणने उनके पदोंको गाँवकी ओर बढ़ा ही दिया।

गाँवमें वापसी

सन् 1926 में फरवरीके अन्तिम सप्ताहमें रामकिशोरजी अपने पुत्र सुदर्शनके रहने एवं खानेका प्रबन्ध अपने घनिष्ठ मित्रके यहाँ करके छोटे पुत्र सँवरूको लेकर गाँवमें वापस लौटे। रामकिशोरजीको देखते ही वृद्धा बुआ बिलख पड़ी। बेटा! मुझे समाचार मिल गया था। क्या सचमुच मेरी लक्ष्मी-सी बहू सरूपा और खिलौना-सी बच्ची चली गयी? हा! विधाता! मेरे सामने ही मेरे बालकोंपर यह कैसी विपत्ति टूट पड़ी है! आस-पासकी स्त्रियाँ बुआको सान्त्वना देने लगीं।

पुरुष वर्ग इकट्ठे होकर रामकिशोरजीसे समाचार पूछने लगे। परम हितैषी श्रीबद्री तिवारीने समझाते हुए कहा— भैया! मेरी बात मानो तो घर वापस आ जाओ। परदेशमें अपना कौन है? घरमें सब मिलजुल कर रहते हैं। समय-असमय दुःख-सुखमें एक-दूसरेके काम आते हैं।

'भैया! तुम्हारी बात सच है, किन्तु यहाँ रहकर क्या कुछ कर सकूँगा? बालक कहाँ पढ़ेंगे? उनका भविष्य कैसे बनेगा?'

'क्या बात करते हो ठाकुर साहब! तुम्हारी इतनी जमीन-जायदाद है, घर-द्वार है। धरती कभी बाँझ नहीं होती, सोना उगलती है।'

श्रीबद्री तिवारीकी इस बातका कई कंठोंने समर्थन किया।

'किन्तु जमीन तो बड़े भैयाने बटाईपर दे दी होगी। वे बड़े हैं, मुझसे उनका विरोध नहीं होगा। वे मेरे सम्माननीय हैं।' रामकिशोरजीने मनकी बात कह दी।

'अरे! यहाँ रहते ही कहाँ हैं? आधी जमीन तो तुम्हारी है ही। पूरा घर खाली पड़ा है। थोड़ा प्रयत्न करनेसे सब सुधर जायगा। यह बोला— बड़का बचवा सुदर्शन कहाँ है?

'वहीं पढ़ रहा है चाचा। उसकी पढ़ाईकी व्यवस्था ठीक है। परीक्षा समीप है, इसीसे नहीं लाया........ लगता है कि यहाँ गाँवमें उसकी पढ़ाईका कोई प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। इसीसे ....।'

'बस....बस आगे कुछ नहीं कहो.........तुम जाकर उसे ले आओ.......... यहाँ किसीके पास रखकर पढ़ा लेंगे। यहाँ जब-जब तुम्हारी चर्चा होती, हम लोगोंकी आँखें गीली हो जाती थीं। क्या तुम्हें हम लोगोंकी, गाँवकी याद नहीं आती थी?' भृगु गोत्री रामखिलावन सिंहने कहा।

'इसीसे तो सबको देखन लौट आया। अन्यथा' कहते-कहते रामकिशोरजीकी आँखें भर आयीं। इसपर तो उमंगमें भरा रामखिलावन सिंह उनके गलेसे-लिपट गया और भरे-भरे गलेसे बोला—'भैया! रामाज्ञा सिंह नहीं रहा तो मैं हूँ न! उनकी बराबरी तो क्या कर पाऊँगा, फिर भी सेवामें कोर-कसर नहीं रखूँगा। मैं आजसे ही आपका छोटा भाई हूँ।'

'हाँ ठाकुर साहब! जो हो गया उसे छोड़ो, अब सँभाल लो और लौट आओ।' विपत्तियोंसे थके रामकिशोरजीने अपना आग्रह छोड़ दिया और निश्चय हो गया कि एक महीनेके अन्दर अभी रामकिशोरजी लौट जायँगे और सुदर्शनको परीक्षा दिलाकर दोनों बालकोंके साथ लौट आयेंगे। ग्रीष्मावकाशमें ही तय करेंगे कि बालकोंको आगे पढ़नेको कहाँ भेजना है।

मनुष्य नये-नये मनोरथ करता है, किन्तु नियतिकी विडम्बना और विधिका विधान कौन जान सकता है? जैसी हो भवितव्यता .... ।

पिताका निधन

लगभग एक महीना गाँवमें रहकर रामकिशोर सिंह छोटे बालक सँवरूको साथ लेकर चल पड़े। अपने परिजनों, प्रियजनोंके साथ गाँवमें रहनेका निर्णय ही उन्हें समुचित लगा।

चार अप्रैल सन् 1926 को वे वाराणसीसे ट्रेनमें चढ़े। रास्तेमें उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। बालक सँवरू बार-बार पितासे पूछता— बाबू! कैसा लग रहा है? पानी पीयेंगे? बच्चेके आग्रहसे दो-दो घूँट पानी पीते रहे। अत्यधिक सोच-विचार, सम्भवतः मानसिक तनावसे उन्हें चक्कर आने लगे। बढ़े हुए रक्तचापसे शरीरपर नियंत्रण नहीं रहा और 'दुर्ग' स्टेशन आते-आते मूर्च्छित हो गये। सह-यात्रियोंने पुलिसकी सहायतासे उन्हें नागपुर स्टेशनपर उतार लिया। पुलिसने मेयो हॉस्पिटल, नागपुरमें उन्हें भर्ती करा दिया। बारह वर्षीय सँवरू पिताके सिरहाने आँसू बहा रहा था। उसने पिताकी जेबसे कागजोंको निकाला जिसमें आर्बी और 'भेलहटा' गाँवके पते मिल गये। पुलिसने दोनों स्थानोंपर सूचना भेज दी। चिकित्सकोंने जाँच करके बताया कि रामकिशोरजीको 'ब्रेन-हेमरेज' हो गया है और वे 'कोमा' में चले गये।

सूचना मिलते ही बालक सुदर्शन वर्धासे अपने पिताके परिचित घनिष्ठ मित्र जो रेलवेके कार्यालयमें कार्यरत थे, उन्हें लेकर तुरन्त नागपुरको चल दिये। अस्पतालमें पहुँचकर देखा— पिता मूर्च्छित अवस्थामें पड़े हैं और उनकी समुचित चिकित्सा चल रही है। निरुपाय-से दोनों बालक समीप बैठे-बैठे पिताका मुख देखते रहे। 12 अप्रैल सन् 1926 ई० की रातको पिताने शरीर त्याग दिया। वर्धासे पिताके अन्य मित्र भी आ गये थे। उन सबके

साथ सुदर्शनने 13 अप्रैलको मध्याह्नमें नागपुरके श्मशानपर अपने बाल-करोंसे अपने पिताकी अन्त्येष्टि सम्पन्न की। चौदह वर्ष चार महीनेका बालक सुदर्शन आज अपने छोटे भाईका अभिभावक एवं जीवनका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वहन करनेवाला वरिष्ठ व्यक्ति बन गया।

उधर 10 अप्रैलको अनायास आदित्य सिंहजी भेलहटा आ गये। उन्हें वृद्धा बुआ और बद्री तिवारीने रामकिशोरजीके घर लौटने और बहू सरूपा एवं बच्ची जयन्तीकी मृत्युका समाचार दिया। गाँवके सम्मान्य वयोवृद्ध जनोंने आदित्य सिंहको समझाया— तुम्हारा भाई रामकिशोर तुम्हारा बहुत सम्मान करते हैं इसलिये सब छोड़कर स्वावलम्बी हो गये। आजके युगमें क्या किसीके घरमें ऐसा भाई है? भैया! अब तुम उसके साथ अन्याय मत करो। सोचो तनिक, छः साल कोई कम नहीं होते। तुम्हारा भाई आधा हो गया है सूखकर। यह ठीक है कि घरपर भजन, पूजा, पाठ, कथा-वार्तामें ही उनका समय बीतता है। अकस्मात् रामाज्ञा सिंह मर गया— इसमें उसका क्या अपराध? बहू भी चली गयी, अब रामकिशोरको कदाचित् कुछ हो गया, तो तुम क्या कर लोगे अकेले?

सब कुछ सुनकर आदित्य सिंह गम्भीर होकर कुछ सोचने लगे। दुलहिनकी मृत्यु सुनकर उनका क्रोध जाता रहा। सोचने लगे— सचमुच, रामकिशोर अकेला रह गया। उसने कभी मेरी अवज्ञा नहीं की। उसके दोनों मासूम बच्चे बिना माँके हो गये।' अपने इन वंशधरोंका मोह उन्हें कचोटने लगा।

चौपालसे गाँवके लोग जानेको खड़े हुए, उसी समय डाकियेने आकर पूछा—रामकिशोर सिंहका घर कौन सा है? 'हाँ-हाँ' यही है। 'हाँ' का उत्तर सुनकर उसने तार पकड़ा दिया। बद्री तिवारीने उसे अपने पुत्र जगदीश तिवारीको पढ़नेको दिया और आशंकित होकर जाननेकी जिज्ञासामें खड़े रह गये। जगदीश तिवारीने पढ़ा—''रामकिशोर इज सीरियस, कम सून।'

पता-मेयो हॉस्पिटल, नागपुर। 'यह लो, जिसकी आशंका थी, वही हुआ' बद्री तिवारीने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा। 'क्या हुआ मेरे भाईको?' आदित्य सिंहने पूछा।

'अपना रामकिशोर गम्भीर रूपसे बीमार है और 'मेयो हॉस्पिटल नागपुरमें भर्ती है।'

'हे भगवान्! साथमें दो छोटे बच्चोंको छोड़कर कोई भी तो नहीं है' कहते हुए रामखिलावन रो पड़ा।

'अरे! यह क्या हो गया? मैं जाता हूँ, इसी समय जाता हूँ।' उदास मन बिना जल पिये आदित्य सिंह उठकर चल पड़े। वे सोचनेको विवश हो गये –कैसा भी है, मेरा भाई ही तो है .... मैंने सचमुच उसके साथ न्याय नहीं किया। अपनी तानाशाही ही चलाता रहा। वाराणसी स्टेशनपर पहुँच कर ट्रेनकी प्रतीक्षा करते हुए ट्रेनमें पैर ही रखा कि छींक हुई। दिल धड़कने लगा, यह क्या? सगुन भी विपरीत दिखायी दे रहे हैं। अगले दिन सूर्यास्तके समय नागपुर पहुँचकर हॉस्पिटलके बाहर ही पहुँचे थे कि सामनेसे देखा मुण्डित केश, श्वेत वस्त्र कंधेपर लिये सुदर्शन पिताका अन्तिम संस्कार कर बीस-बाईस लोगोंके साथ लौट रहे थे।

साधु वेश आदित्य सिंहके हृदयमें प्रथम बार बालकोंके प्रति स्नेह जगा। सुदर्शनने जैसे ही चरण छुए, उन्होंने दोनों बालकोंको हृदयसे लगा लिया। दोनों बालकोंको लेकर वे 'आर्वी' (वर्धा) आये।

गर्वितोंके प्रति आक्रोश

आदित्य सिंहने सुदर्शनको आदेश दिया 'तुम्हें मेरे साथ ही गाँव चलना है। आदेश शिरोधार्य करके सुदर्शन अपने छोटे भाई सँवरूको बड़के बाबू (ताऊजी) - के पास घरमें बैठाकर अकेले ही उस सेठके पास पहुँचे जहाँ उनके पिताके रुपये जमा रहते थे। गाँव जाते समय पिताने उन्हें बताया

था— 'इस सेठके पास मेरे आठ सौ रुपये जमा हैं। बही खाता नं०-2 में उन्होंने अंकित कर लिये हैं। तुम्हें जब भी धनराशिकी आवश्यकता पड़े वहाँसे ले लेना।

'मेरे पिताजीका देहान्त हो गया है और हमलोग अपने बड़के बाबूके साथ गाँव जा रहे हैं। पिताजीने मुझे बताया था कि आपके पास उनके आठ सौ रुपये जमा हैं। वे रुपये आप हमें दे दीजिये तो हमलोग सुविधासे घर जा सके।'

सेठने आँखें कपालपर चढ़ाते हुए कहा— यहाँ तो तुम्हारे कोई रुपये जमा नहीं हैं। तुम्हारे पिता रामकिशोरने यहाँ कुछ भी जमा नहीं किया है।

'मेरे पिताजी कभी झूठ नहीं बोलते थे। मेरे पिताजीका नाम तो आपको स्मरण है और रुपये याद ही नहीं या जान-बूझकर भूल गये हैं।' सुदर्शनने निर्भीकताके स्वरमें कहा।

'तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ?' सेठने व्यंग्यसे कहा।

'हाँ, आप झूठ बोल रहे हैं और सब समझते हुए अनजान बने हुए हैं।' सुदर्शनने उसी दृढ़तासे कहा।

'तुम बच्चे हो, घर जाना चाहते हो तो दस-बीस रुपये ले जाओ। घर पहुँचनेको पर्याप्त है।' सेठने दया दिखाते हुए कहा। उस सेठने मनमें सोच लिया था कि पिता तो मर ही गये हैं, ये छोट-छोटे बच्चे मेरा क्या बिगाड़ लेंगे?

'मुझे.... मुझे आपकी कृपा-भिक्षा नहीं चाहिये। मुझे तो मेरा स्वत्व, मेरे पिताकी धनराशि चाहिये।'

सेठके चुप रहनेपर सुदर्शनने क्रोध और घृणासे सेठकी ओर देखा और तुरन्त घर लौट पड़े। निराश मनसे घर आकर पढ़नेवाली टेबुल-कुर्सी पलंग (तीन), ओढ़ने-बिछानेके वस्त्र तथा बड़े-बड़े बर्तन, डेग, कलशे आदि बेचकर

छोटे भाई सँवरू और बड़के बाबू आदित्य सिंहके साथ गाँवकी ओर चल पड़े।

चौदह वर्षीय इस किशोर बालकने यह भी नहीं सोचा कि वह इस परदेशमें अपने छोटे भाईके साथ अनाश्रित हो गया है। सेठसे आक्रोश प्रकट करनेका समय नहीं है। आज उसकी इस तेजस्विताका महत्त्व समझनेवाला कौन है? आज कौन है, जो उसे मनुहार करके मनायेगा? विचारोंमें खोये-खोये सुदर्शन ट्रेनमें ही भाई सँवरूके सिरपर हाथ रखकर कब सो गये, पता ही नहीं चला। स्वयं प्रातः चार बजेके लगभग जाग गये। जागते ही सेठकी व्यंग्योक्तिका स्मरण कर चित्त क्षुब्ध हो उठा— आह! क्या यही संसार है? सेठने कैसे मना कर दिया? मेरे पिता सदा सत्यवादी एवं बातके पक्के रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा था—सेठपर मेरे आठ सौ रुपये जमा हैं। कष्ट मत पाना, आवश्यकता पड़ते ही ले लेना। अब अपना और छोटे भाईका जीवन भगवान्के ही सहारे। पूर्वाभ्यासके पाठसे स्वतः शब्द निकल पड़े—

सब सुख लहै तुम्हारी सरना।
तुम रच्छक काहू को डर ना।।

सचमें, अकिंचनोंके परम धन सर्वेश्वर ही हैं। मोह जनित दुर्बलता धीरे-धीरे तिरोहित होती गयी और काव्यधारा स्वतः फूट पड़ी। उनके हृदयोद्गार शब्द-पुष्पकी माला बनाने लगे—

ठहरो! यों न मुझे ठुकराओ।
दीन अनाश्रित दुर्बल लखकर, यों मत आँख दिखाओ।।
भूल रहे हो मैं अनाथ हूँ,
आश्रयहीन मलीन गात हूँ,
नीच तुच्छ हूँ पतित त्याज्य,
जैसा भी वैसा मैं उनका कहूँ हरिसे,

कृपासिन्धु अब आओ।। 1।।
सुना नहीं वे दीनबन्धु हैं,
निर्बलके बल कृपासिन्धु हैं,
पतित-पात दाहक सुसाथ हैं,
परम अकिंचन तुच्छोंके ही जगन्नाथ हैं।
अतः न त्याज्य बनाओ।। 2।।
मेरे वे धन हैं, बल, जन हैं,
भाई हैं, स्वामी तन, मन हैं,
आश्रयदाता मम जीवन हैं,
जो कुछ हैं वे ही प्रियजन हैं
उन्हें भूल मत जाओ।। 3।।
अश्रु बहाता जब मैं रोकर
आर्त्त दीन, प्रति आतुर होकर
उसे पुकारूँ तब वह आकर
ले लेगा अपनी गोदीमें, अश्रु पोंछकर
कह देगा सुख पाओ।। 4।।
पछताओगे तब अपनेको
दोष न फिर कुछ देना हमको
परम अकिंचन ही प्रिय उसको
ज्ञान प्राप्त हो अब भी सत्वर भाई तुमको
मन प्रियतममें लाओ।। 5।।

अनुभवहीन सुकुमार बालक सुदर्शनकी आँखें भर आयीं। तभी अन्तरमें पिताका स्नेहिल स्वर सुनायी पड़ा— बचवा! जिसका कोई नहीं होता उसके रक्षक और सहायक भगवान् हैं, तुम उन्हींका सहारा लो, वही कल्याण करेंगे। बस, आश्वासनभरी वाणी सुनकर सुदर्शनका आकुल मन अपने परम-धन, परम आश्रयको पुकार उठा—

माधव! और पुकारूँ किसको?
तेरे बिना बता तो भाई, आश्रय और भला क्या मुझको।
आह! यही जगका नाता है,
केवल स्वार्थ दृष्टि आता है,
हृदय न कोई लख पाता है,
अरे करूँ क्या?
धनी जनोंके सब साथी हैं, निष्ठुर होकर त्यागा मुझको।। 1।।
अब तक बातोंमें भूला था,
हृदय नहीं मैंने जाना था,
धोखा ही सारा धोखा था,
मुग्ध हुआ मैं!
कितनी मीठी थी वह वाणी, अमृत बना विष दिया दीन।। 2।।
अच्छा अब तो शरण तुम्हारी,
क्या होगी सुधि तुम्हें हमारी?
क्या अपनाओगे गिरधारी,
अथवा तुम भी?
ठुकराओगे? ओ करुणामय! इस अशरण अनाथ निर्धन को।। 3।।
मृत्युदान दो, या ठुकराओ
अथवा प्रिय अब तो अपनाओ।
मुझको आज सनाथ बनाओ,
मोहन देर करो मत!
दया करो, आओ अपनाओ, क्यों न दया आती है तुमको।। 4।।

घरपर आगमन

घर लौटनेका समाचार पाकर गाँवके लोग और आस-पासके गाँवोंमें जिनसे रामकिशोरजीकी मित्रता थी वे सभी एक-एक, दो-दो करके शोक संवेदना प्रकट करने आने लगे। ननिहाल हिंगुतरगढ़से सुदर्शनके मामाके पुत्र धर्मदेव सिंह भी आये। इन्हीं दिनों सँवरू सिंह बीमार हो गया था। उसका लिवर बचपनसे ही खराब रहता था। कुपथ्य और चिकित्साके अभावमें रोग भी बढ़ गया था। भूख नहीं लगती, फिर भी कुछ-न-कुछ खाते रहना चाहता था। बात-बातमें रोने और चिड़चिड़ानेवाला स्वभाव बन गया था। वह चुपचाप बैठा रहता और मन-ही-मन माँकी याद करता रहता। उसकी बीमारी देखकर धर्मदेव सिंह उसे ननिहाल ले गये। वहाँ बच्चोंके साथ उसका मन भी लग गया और गो-मूत्र पिलानेसे लिवर भी ठीक होने लगा।

पिताकी शोक-संवेदना प्रकट करनेवालोंमें रामकिशोर सिंहके घनिष्ठ मित्र ठा० गदाधर सिंह भी आये थे। उन्होंने सुदर्शनसे पूछा— तुम आगे क्या करना चाहते हो?

'मैं पढ़ना चाहता हूँ।'

'अब तक कितना पढ़े हो?' उन्होंने पूछा।

'आर्वी (वर्धा) - में चौथी कक्षा उत्तीर्ण कर ली है'।

प्रमाण-पत्र है?

'नहीं' प्रमाणपत्र मिलनेसे पहले बाबू नहीं रहे और मैं यहाँ चला आया।

'बेटा! मैं तुम्हारे पिताका मित्र हूँ। प्रभूपुर गाँवमें रहता हूँ जो केवल मील भर दूर है। यहाँके कार्योंसे निवृत्त हो जाओ तो मेरे पास आना। मैं मास्टर हूँ। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, करूँगा।

पैत्रिक एक सौ दस बीघा भूमिमेंसे दस बीघा भूमि बेचकर सुदर्शनने अपने पिता रामकिशोरजीका मृत्युभोज एवं श्राद्ध कार्य सम्पन्न कर दिया।

श्राद्ध-कर्मके सम्पन्न होनेके बाद आदित्य सिंहको लोगोंने समझाया कि वे घरपर रहकर जमीन-घर-द्वार देखें और सुदर्शनको पढ़ायें किन्तु घुमक्कड़ व्यक्तिका एक स्थानपर पैर नहीं टिक सकता। वे पुनः निकल गये। घरपर वृद्धा बुआ और सुदर्शन अकेले रह गये।

मेधावी छात्रके रूपमें

जब ताऊजी आदित्य सिंह चले गये तब सुदर्शनजी श्रीगदाधर सिंहके घर गये। इनसे बातचीत करके ठाकुर गदाधर सिंह परम सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने प्रमाणपत्रके अभावमें सुदर्शनजीको अलगसे परीक्षा दिलायी जिसमें उनकी योग्यता पाँचवीं कक्षाकी पायी गयी। पाठशाला घरसे छः मील दूर थी, अतः ठा० गदाधर सिंहने अध्ययनकी सुविधाके लिये सुदर्शनके लिये पृथक् कमरेकी व्यवस्था कर दी जिसमें वे अकेले ही रहते थे। यहाँ रहकर इन्हें ज्ञात हुआ – ठाकुर गदाधर सिंह हरिद्वारमें स्थित 'गुरुकुल काँगड़ी' की स्थापनाके समय स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा नियुक्त प्रारम्भिक शिक्षकोंमेंसे एक थे और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि गुरुकुल दानके पैसेसे चलता है तब वे त्यागपत्र देकर चले आये और इस विद्यालयमें आकर शिक्षण-कार्य करने लगे। ये कवि भी थे और 'हरिगीतिका छन्द' पर इनका पूरा अधिकार भी था। सुदर्शनने प्रारम्भमें इन्हींको अपना आदर्श बनाया और यहींसे इनका आत्मनिर्भरतापूर्ण स्वावलम्बी जीवन प्रारम्भ होता है।

पढ़ाईके दिनोंमें भी सुदर्शन छुट्टीके दिन घर आते थे। जब कभी ताऊजी आ जाते तब थोड़ा निश्चिन्त होकर छुट्टी स्कूलमें ही व्यतीत कर लेते थे। ये स्काउटिंगके सदस्य बने और फुटबालमें विशेष अभिरुचि रखनेके स्कूलके जाने-माने खिलाड़ी बन गये।

स्वभावसे ही सुदर्शन एकान्तप्रिय थे। विद्यालयमें इनका कोई मित्र नहीं था। वहाँके अधिकांश विद्यार्थी मारवाड़ी थे। अतः उनसे घुलना-मिलना नहीं

हो पाता था। सदैव हिन्दी, साहित्य, गणित, रेखागणित, इतिहास, भूगोलमें सर्वोच्च अंकोंको लेकर कक्षामें प्रथम आते थे। सभी शिक्षकोंका अपने इस मेधावी छात्रपर असीम स्नेह-दुलार था। माता-पिताकी मृत्यु हो जानेपर स्वतः प्रयाससे पढ़नेका उत्साह देखकर प्रखर प्रतिभा-सम्पन्न इस शिष्यपर ठाकुर गदाधर सिंहका विशेष कृपा-वात्सल्य था। उन्होंने सुदर्शनको पुस्तकालयमें अबाध प्रवेश ही नहीं दिया, अपितु सामयिक पत्रिकाओं— 'इन्दु', 'सरस्वती', और 'हिन्दी प्रदीपकी' सभी प्रतियाँ इन्हें उपलब्ध कराते। सुदर्शन भी ठाकुर गदाधर सिंहके पुस्तकालयकी एक-एक अलमारी खोलते और उसकी एक-एक पुस्तक क्रमशः पढ़ना प्रारम्भ करते — भले ही वे पुस्तकें इतिहास, भूगोल, गणित, कहानी, कविता, उपन्यास, जीवन-चरित्र अथवा ज्योतिष, निबन्ध आदि किसी भी विषयकी हों। पूरी अलमारीकी पुस्तकें पढ़ लेनेके पश्चात् ही दूसरी अलमारी खोलते।

प्रारम्भसे ही इन्हें पढ़नेका विलक्षण व्यसन था। जब कभी घर जाते तब पुस्तकों एवं पत्रिकाओंका पाँच-सात किलो बोझ ढोकर ले जाते और पढ़कर विद्यालय लौटकर वापस कर देते। पत्रिकाओंमें 'सरस्वती' से ये अधिक प्रभावित थे। 'सरस्वती' पत्रिकाके तत्कालीन सम्पादक श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदीके प्रति इनके मनमें बहुत श्रद्धा एवं आदर था। श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदीजीने पाठकोंकी रुचिको ऊर्ध्वोन्मुखी बनाया था। अपने सम्पादन-कालमें उच्च कोटिकी रचनाओंको 'सरस्वती' में प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्यको गौरव प्रदान किया। सचमें द्विवेदीजीने 'सरस्वती' और 'सरस्वती' ने द्विवेदीजीको यशोज्ज्वल किया।

सुदर्शनकी प्रज्ञा एवं स्मृति इतनी विलक्षण थी कि किसी भी पुस्तक या लेखको एक बार पढ़ लेनेके पश्चात् यदि वही लेख संयोगसे पढ़नेको आ जाता तो तुरन्त अपने शिक्षकको उसका प्रसंग सन्दर्भ सहित पुस्तक बता देते। कभी-कभी शिक्षक भी भाषा-साहित्य, गणित एवं रेखागणितमें इनसे

सहायता लेते। कभी-कभी ऐसे पर्यायवाची शब्दोंका प्रयोग करते कि शिक्षकको शब्दकोशकी सहायता लेनी पड़ती। एक बार देवराज इन्द्रका कोई प्रसंग आ गया जिसमें सुदर्शनने एक ही पैराग्राफमें महेन्द्र, सुरपति, सुरेन्द्र, शतक्रतु, बिडौजा, सहस्राक्ष तथा शचिपति — ये सात नाम लिख दिये। इन्हें खोजनेके लिये शिक्षकने 'शब्दकोश' का आश्रय लिया। विद्यार्थी जीवनमें सुदर्शनके लिये सबसे कठिन कार्य था भोजन बनाना। तीन-चार छात्र मिलकर भोजन बनाते थे। सुदर्शनने स्वेच्छासे लकड़ी लानेका काम ले लिया। जहाँ वे रहते थे वहाँ शरीफेकी सघन झाड़ियाँ थीं। ये अपने खेलके समय वहाँ जाकर डालियाँ तोड़कर चले आते। ऐसा प्रतिदिन करते और पहलेकी टूटी डालियाँ दो दिनमें सूख जातीं, तब उन्हें ले आते।

शिक्षामें व्यवधान

सर्वेशकी महिमा कुछ नहीं कही जाती। वे जिसपर अनुकम्पा करते हैं, जिसपर रीझते हैं—उसके जीवनमें पीड़ा, वेदना आपत्ति-विपत्ति और कठिनाइयोंकी आँधियाँ प्रदान कर देते हैं और उपेक्षितोंको कंचन-कामिनीकी विलास-भूमिका अधीश्वर बना देते हैं।

अध्ययनके समयमें बीच-बीचमें सुदर्शन घर आ जाते थे पिताजीकी वृद्धा बुआजीको देखने-सँवारने। ताऊजी भी जब घर लौटते तब आते ही खेतोंका लगान-बटाईकी जितनी धनराशि मिले उसे लेकर चले जाते और पूरे वर्ष लापता हो जाते। यह उनका सहज स्वभाव बन गया था। कहा भी है-**'स्वभावोऽति दुरतिक्रमः'**। पढ़ाईके बीच सुदर्शनका खर्च ठाकुर गदाधर सिंह मनसे उठाते थे।

एक बार छः-सात किलो पुस्तकोंका बोझ उठाये छः मील चलकर घर आये तो रात हो गयी। वे घरका उदास परिवेश देखकर चकित हो गये। घरके सामने श्रीबद्री तिवारीकी वृद्धा माँने बताया कि अभी आधा घण्टे पहले

ही हैजेके प्रकोपको सहकर वृद्धा बुआजी मर गयीं हैं, मैं तुम्हारी बाट जोह रही थी। उन लोगोंने सुदर्शनको कुछ खिलाने-पिलानेकी बहुत चेष्टा की किन्तु सुदर्शनने जल भी ग्रहण नहीं किया। हारे-थके, भूखे-प्यासे उदास मनसे प्रातः काल बुआजीके प्राणहीन शरीरको बैलगाड़ीमें रखकर कुछ लोगोंके साथ गंगाजीमें विसर्जित कर आये। एक-एक करके सारे अवलम्बन छूटते जा रहे थे।

छठी कक्षाकी परीक्षा देकर घर आ गये। बुआजीके मरनेका समाचार पाकर हिंगुतरगढ़ गाँव (ननिहाल) -से धर्मदेव सिंह पुनः संवेदना प्रकट करने आये। वे सुदर्शनकी इच्छाके विपरीत उन्हें ननिहाल ले गये। ननिहालमें मामाने अपने इस होनहार भांजेको गायें चरानेमें लगा दिया। उन्होंने सोचा— क्या करेगा पढ़कर? उन्हें एक चरवाहा मिला और सबसे बड़ा लालच था, जमीन-जायदादको हड़प लेनेकी आशा।

ननिहाल जाकर सुदर्शन गायोंको चरागाहमें प्रवेश कराकर किसी वृक्षकी छायामें बैठकर पुस्तकें एवं पुरानी पत्रिकाएँ पढ़ते रहते। पढ़ाई छूटनेकी गहरी पीड़ा मनमें थी। धीरे-धीरे निराशाका गहरा अंधकार बढ़ता जा रहा था। भरी-भरी आँखें उठाकर आकाशकी ओर देखने लगते, कभी पृथ्वीकी ओर। विश्व-नियन्ताके अतिरिक्त कौन उनकी गहरी निःश्वास सुन पाता? हृदयकी वेदना जाग पड़ी—

जागी आज वेदना मेरी,
अन्तस्तलमें एकत्रित पीड़ाकी लेकर ढेरी।।

आज कौन है जो सिरपर हाथ रखकर आश्वासन देगा? कौन चिन्ता करेगा कि इस होनहार किशोरका जीवन नष्ट हो रहा है? कान आत्मीयताके दो मीठे बोल सुननेको तरस गये। कोई अपना नहीं, जैसे चारों दिशाएँ सूनी हो गयी हैं। हृदयकी पीड़ा अनायास शब्दका रूप धरकर कागजपर अंकित होने लगी—

वेदना मेरी दुखद अपार।

भरे हुए शत-शत आशा के हैं इसमें उद्गार।।

बुझते हुए दीप कलिका का अन्तिम दीप्ति प्रकाश।

गूँज रहा कितनी पीड़ाका निर्मम निर्दय हार।

अरे! ठहर मत छेड़ इसे यह भर देगी आकाश।

भरा है इसमें तेरा प्यार।। 1।।

भाई! अब इच्छा है यों ही सतत रहे विरहानल प्रतिपल,

रहे प्रज्वलित शान्त न होवे मैं तड़फूँ उसमें जल प्रतिक्षण,

नाम नित्य जिह्वापर तेरा तेरे बिन मन आकुल व्याकुल,

इसी पीड़ामें सुखका सार।। 2।।

बस यों ही रोऊँ दिन काटूँ कभी सदय वह आ जायेगा,

कभी द्रवित हो मोहन अपनी मोहन मुरलि सुना जायेगा,

तृप्त करेगा तृषित हृदय को प्रेमामृत वर्षा जायेगा।।

करेगा कभी प्रकट हो प्यार।। 3।।

निराशाके घन अंधकारमें ही आशाका दीप प्रज्वलित होता है जिसका कोई नहीं है– सर्वसुहृद्, विश्वाधिदेव सृजनहारपर उसीका स्वत्व है। सुदर्शनके मनमें बिजली-सी कौंधी और वही मीठा स्वर गूँजा– वत्स! अमृत-पुत्र है तू! इस प्रकार पराजय स्वीकार करना शोभा नहीं देता तुझे!'

सुदर्शन भाव-विह्वल हो उठे। मन-प्राण-देह सबमें भर गया वह मधुर स्वर....। सचमें यह तो वही... स्वर है जो कभी-कभी आधी रात और ढलती रातमें सुनायी देता था। कहाँ है वह? कैसे कहाँ ढूँढ़ूँ? इस उन्मुक्त कर देनेवाले स्वरको– मेरे प्राण! मेरे सर्वस्व–

मत पूछो क्या है गति मेरी,

कभी डूबता कभी उतरता, प्रिय पावन स्मृतिमें तेरी।

वे व्याकुल हो उठे। नेत्र झर-झर झरने लगे। पृथ्वीपर गिर गये। प्राण पुकार उठे—'तुम कहाँ हो मेरे जीवनधन! हृदय-तंत्री झंकृत हो उठी—'

छेड़ता कौन हृदयके तार?
निकल रही पीड़ा बन जिससे यह नीरव झंकार।
इस टूटी तन्त्रीको लेकर
कौन हठी जो कष्ट उठाकर
कोमल स्वरसे मुझे जगाकर
प्रकट कर रहा यह अन्तरमें करुणामय गुंजा ।। 1 ।।
होता मथित विकल अन्तर है
कौन विवश कर खींच रहा है?
यह किसका यों आकर्षण है?
क्या तू ही सब करता है— मेरे नन्द कुमार ।। 2 ।।
ठहर, छोड़ दे छेड़ न मुझको,
जगा नहीं सोई पीड़ाको,
रोक तनिक इस आकर्षणको
क्या इतना कर देगा प्यारे! केशव प्राणाधार ।। 3 ।।
नहीं नहीं झंकृत कर इसको,
बढ़ा वेदना आकर्षणको।
क्षुब्ध बना दे इस अन्तरको,
शान्त सफल आनन्द मगन यह पाकर तेरा प्यार ।। 4 ।।
उरका कोमल स्वर निकलेगा,
सारा त्रिभुवन मुग्ध बनेगा।
क्या तू इतनी दया करेगा?
बैठ प्रकट नयनोंमें सन्मुख छेड़ हृदयके तार ।। 5 ।।

चित्तकी वृत्ति सहज ही अन्तर्मुख होती चली गयी। जीवनमें साधनाकी ओर वे आन्तरिक प्रेरणासे ही प्रवृत्त हुए। सभी ओरसे निराश होकर उन्होंने अशरण-शरण सर्वाधारके नामका आश्रय लिया, मानो इसी समयके लिये पिताने नाना पौराणिक कथाओं और 'श्रीरामचरितमानस' के रूपमें संस्कार स्वरूप आस्तिकताकी आधारशिला रखी हो। चिन्तन-साधना अनवरत चलती रही। भगवान्के प्रति यह आत्मीयता सुदर्शनके स्वभावकी सहज वृत्ति बन गयी। उन्मादकी अवस्थामें कभी विरहकी बड़वाग्नि भड़क उठती। विरहाकुल होनेपर हृदयका क्रन्दन बाहर फूट पड़ता—

मैं तो प्यारेके गुण गाऊँ।
मेरे अश्रुबिन्दु ही कोई अब उस तक पहुँचाओ।
बड़ी कृपा होगी यह मुझपर,
चिर कृतज्ञ होऊँगा उसपर।
क्रन्दन करता व्यथासे अन्तर,
कोई किसी भाँति भी मुझको प्रिय पद तक पहुँचाओ।। 1।।

कभी मिलनका सुख हृदयको विभोर कर देता। अन्तर सर्वेश्वरके सहारे आनन्दकी तरंगोंमें डूब जाता तब संसारका कोई अभाव समीप नहीं फटकता। वही मीठा स्वर हृदयमें अमृत-सिंचन कर विरहमें संजीवनीका काम कर देता। जो मिला खा लिया, जो मिला पहन लिया। भौतिक वस्तुओंकी ओर उनकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। किसीसे कुछ नहीं चाहिये—

बाँकी-झाँकी थी एक झलक,
कुछ क्षण इन नयनोंसे अपलक।
देखूँ धर चरणोंपर मस्तक
झरती आँखोंसे अश्रुधार।।

पुनः शिक्षा प्रारम्भ

यह क्रम भी लम्बा नहीं चला। छः महीने पश्चात् जब ताऊजी लौटे तब लोगोंसे समाचार पाकर इन्हें ननिहालसे लिवा लाये। सुदर्शनको घर भेलहटामें ही रहनेका निर्देश देकर सातवीं कक्षामें प्रवेश दिला दिया। प्रतिदिन घरसे छः मील दूर पाठशालामें पढ़ने जाते। पड़ोसमें रहनेवाले श्रीबद्री तिवारीका परिवार इनमें बहुत स्नेह-प्रेम करता था। परिवारके सदस्यकी भाँति दोनों समय भोजन कराते और अध्ययनके लिये व्यवस्था भी करते। इसके बदलेमें सुदर्शनने अपने दो खेत आग्रहपूर्वक उनके नाम कर दिये।

पक्षपातपूर्ण निर्णयसे क्षोभ

सन् 1928 में जब सुदर्शन सातवीं कक्षाके मेधावी छात्रके रूपमें अध्ययन कर रहे थे, इनके शिक्षक ठाकुर गदाधर सिंह इनकी विलक्षण प्रतिभाको देखकर 'कहानी प्रतियोगिता' में भाग लेनेके लिये सुदर्शनको अपने साथ 'नागरी प्रचारिणी सभा' वाराणसीमें लाये। प्रतियोगी साथियोंमें प्रेमचन्दजी आये थे जिन्होंने साहित्यिक जगत्में उस समयतक अच्छी ख्याति अर्जित कर ली थी। इनकी अवस्था इस समय अड़तालिस वर्षकी थी।

निर्णायक-मण्डलमें उस समय महाकवि जयशंकरप्रसादजी आये थे। उन्होंने बालक सुदर्शनकी प्रतिभा एवं कहानी लेखन-शैलीकी कलाको देखकर इनकी कहानी प्रथम घोषित कर दी। प्रेमचन्दके पक्षपातियोंको यह निर्णय आपत्तिजनक लगा। उन्होंने श्रीजयशंकरप्रसादजीसे अनुरोध किया कि निर्णयपर एक बार पुनः विचार कर लिया जाय, कारण कि प्रेमचन्द-जैसे वरिष्ठ कहानीकारको द्वितीय एवं सत्रह वर्षीय सातवीं कक्षाके छात्रको प्रथम स्थान प्रदान करना प्रेमचन्दजीकी छविको धूमिल करने–जैसा प्रतीत होता है।

महाकवि जयशंकरप्रसादजीको यह पक्षपात अप्रिय लगा। उन्होंने दृढ़तासे कहा— मैंने निर्णय कहानीके आधारपर किया है न कि आयु, ख्याति तथा अपने-परायेका विचार करके। निर्णय सोच-विचारके पश्चात् ही होता है। अब विचारके लिये स्थान नहीं है— कहकर सदन त्याग कर चले गये।

तब साहित्यिक गुटबन्दीके विद्वानोंने एक घंटेका विलम्ब करके लिखित रूपसे प्रेमचन्दको प्रथम घोषित कर दिया जबकि प्रथम स्थान सुदर्शनका था।

किशोर सुदर्शनपर इस पक्षपातपूर्ण निर्णयका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने सदा-सर्वदाके लिये सामाजिक लेखोंसे उपरामता ले ली। जीवनमें आध्यात्मिक लेख लिखनेका संकल्प ले लिया।

सुना है सर्वेश जिसे निज जनके रूपमें अपनाते हैं उसके लिये सांसारिक सफलताके सारे द्वार बन्द कर देते हैं। एक-एक करके अपने साथ छोड़ देते हैं। वह अपनी जीवन-नैया जिस ओर भी किनारा पानेको बढ़ाता है, उस ओरसे बड़े-बड़े भँवर उसे निगलनेको मुँह फाड़े बढ़ आते हैं। जब किसी ओर राह न पाकर, सहायक, परिजनविहीन होकर ऊपर हाथ उठा देता है तभी प्रभु दौड़कर उसे अपने सदय वक्षसे लगा लेते हैं।

सुदर्शनके लिये भी यही विधान सक्रिय था। ये जिधर भी सुखकी आशासे हाथ बढ़ाते, मानो जलता हुआ अंगारा हथेलीपर आ जाता। ये एक-एक तृण जोड़कर घोंसला बनानेकी चेष्टा करते और नियतिकी क्रूर आँधी इतनी दूर उड़ा ले जाती कि नामोनिशान ढूँढना अशक्य हो जाता। इतनेपर भी सुदर्शनको अपने घनश्यामका सहारा है। उसीपर विश्वास रखकर बोल उठते हैं—

कर्णधार! मेरा माधव है,
जीवन सरिताके प्रवाहमें, विघ्नोंसे व्याकुल होकर।

हो जाते हैं जब उद्यम सब, निज अपनी आशा खोकर,
तेरा आश्रय लेकर ही, शाश्वत महाशान्ति पाते जन।।

कलकत्तेका स्वावलम्बी जीवन

सातवीं कक्षा उत्तीर्ण करनेके पश्चात् सुदर्शनजीने जीवनको स्वावलम्बी बनानेके उद्देश्यसे अपने ही गाँवके दो व्यक्तियोंसे बातचीत की जो कलकत्ते – जैसे महानगरमें अंग्रेजोंकी कम्पनीमें कार्यरत थे। सुदर्शनजी इन दोनोंके साथ कलकत्ते पहुँच गये और जिस कम्पनीमें वे लोग कार्य करते थे उसीमें इन्हें सीलिंग-पैकिंगका काम मिल गया। यद्यपि वेतन अल्प था किन्तु उसीमें निर्वाह कर लेते। रविवारके अवकाशके समय पत्र-पत्रिकाओंके स्टॉलपर बैठकर पढ़ते-पढ़ते व्यतीत कर देते। शामको कुछ पुस्तकें खरीदकर ले आते। अनवरत पढ़नेकी इस लोकोत्तर प्रतिभाने सुदर्शनजीको असीम ज्ञान भण्डारका स्वामी बना दिया।

ज्ञान, वैराग्य और देशभक्तिकी पुस्तकें पढ़-पढ़कर इनका मन वैराग्यकी दिशामें सोचने लगता। कभी निर्जनवनमें बैठकर तप करनेकी लालसा अकुलाने लगती तो कभी हिमशिखरपर जानेकी, इन्हीं विचारोंमें खोये हुए एक दिन कलकत्तेसे बिना किसीको बताये पैदल चल पड़े। सोचा था कि आते समय ट्रेनसे जो हजारीबागके वन देखे थे, वहाँ पहुँच कर तपस्या करूँगा, किन्तु पैदलका मार्ग तो जानते ही नहीं थे, अनुमानसे ही चलते गये। कई घंटोंतक चलते-चलते कलकत्ता तो पीछे छूट गया, बंगालके गाँव मिलने लगे। सड़क भी एक बड़ी-सी नदीके किनारे आकर समाप्त हो गयी। भूखसे पेटमें कुड़कुड़ाहट होने लगी, किन्तु माँगें कैसे? माँगना जानते ही नहीं थे। अतः इस ओरसे अनुभवहीन सुदर्शनके विवेकहीन वैराग्यने हार मान ली और कलकत्ता लौट आये।

इन्हीं दिनों कलकत्तेमें विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारने स्वदेशी आन्दोलनका रूप ले लिया। सम्पूर्ण देशमें देश-भक्तिकी एक दैवी चेतना व्याप्त हो गयी। विदेशी वस्तुओंकी सरेआम होली जलायी जाने लगी। विदेशी वस्तुओंके साथ विदेशी शिक्षाके बहिष्कारकी भी लहर फैली। सड़कों, चौराहों और गलियोंमें जिस ओर दृष्टि जाय, वहीं देशभक्तिके गीत गाते उत्साही छात्रोंकी टोलियाँ नज़र आतीं। प्रायः उनके गीत होते— '**निज वास भूमे, परवासी हो लो**'। राष्ट्र-प्रेमका ज्वार इतना प्रबल था कि पत्र-पत्रिकाओं, नाटक, संगीत, कविताओं, लेखोंमें इसकी गहरी छाप मिलती।

सुदर्शनजी इससे अछूते नहीं रहे। इनके हृदयमें भी राष्ट्रप्रेमकी ज्वाला धधक उठी। राष्ट्रीय क्रान्तिके मुख्य कार्यक्षेत्र कलकत्तामें खादीके प्रचार-प्रसारपर जोर दिया जा रहा था। खादी अहिंसा, पवित्रता, सादगी, सदाचार, स्वावलम्बन, वैराग्य व्यवहार और परमार्थकी प्रतीक मानी जाने लगी। एक दिन स्वदेशकी स्वतंत्रताके दीवाने सुदर्शनजी आपादमस्तक खादी धारण कर कार्यालय पहुँच गये कार्य करनेके लिये। कार्यालयका बड़ा अफसर अंग्रेज था। उसने सुदर्शनजीके इस वेशको देखा तो तिलमिला उठा और उसने उसी दिन इन्हें कार्यालयसे कार्यमुक्त कर दिया।

उनके मनमें निश्चय था कि ऐसा तो होना ही है और गाँव लौटकर अपने सर्वेश्वरके दर्शनको उनके प्राण अकुला उठे—

सच है कण्टकमय पथ मेरा,
बिना कष्ट झेले कब पाया किसने दर्शन तेरा।
यज्ञ दान व्रत संयम नाना,
धर्माचरण जहाँ तक जाना,
किये सभी अब तक लाखोंने,

व्यर्थ हुए सब।

नहीं कभी वह मूर्ति मनोहर, भर आँखों उन हेरा।। 1।।
हाँ उससे तुझसे है नाता,
जो सब दे तुझको अपनाता,
किन्तु प्रेमका वह पथ भी तो,
सरल नहीं है।
प्राण हथेली धरे पथिक हो, तब दर्शन हो तेरा।। 2।।
तो आने दो प्रलय घटाको,
झंझानिलको वज्रपातको,
व्याघ्र सिंहमय दुस्तर वनको,
भ्रमर पूर्णनद।
रोक न पावेंगे इस गति को करें यत्न बहुतेरा।। 3।।
ओ! न इनसे मुझे डराओ,
प्यारे इतनी दया दिखाओ,
चाहे जो जितनी बाधा हो,
सब स्वीकृत हैं।
पर पाऊँ पावन पद-रज मैं पाऊ दर्शन तेरा।। 4।।

विवाह-प्रस्ताव

कलकत्तासे लौटनेपर गाँवके बड़े-बूढ़ोमें जैसे प्राण आ गये। उन लोगोंने समझाया— अब तुम विवाह कर लो तो घर बस जाय। कहाँ तक इधर-उधर भटकते फिरोगे? छोटा भाई सँवरू सिंह बीमार ही रहता है। बाप-दादाके घरकी धरा सूनी पड़ी है। कोइ सँभालनेवाला नहीं है। दोनों भाई मारे-मारे क्यों भटकते हो? अब तुम दोनों ही बड़े हो गये हो, दोनों मिलकर खेती करो तो धरती सोना उगलेगी।

पहले तो सुदर्शनने सशक्त स्वरमें स्पष्ट मना कर दिया — नहीं चाचा! रहनेका तो ठिकाना नहीं, कहाँ ब्याहके चक्करमें फसूँ? क्या मैं खाऊँ और क्या आनेवालीको खिलाऊँ?

'अरे बचवा! पशु-पक्षी भी घोंसला बनाते हैं। मनुष्य हो, भगवान् जिसे जन्म देता है, अन्न भी वही उसके मुखमें देता है।'

सुदर्शनजीने हँसकर कहा — 'चाचा! सच बात तो यह है कि देश गुलाम है। उसकी आजादीके लिये प्रयत्न करना मेरा पहला कर्त्तव्य है। मेरी भारत माँ मुझे बुला रही है। ऐसा पवित्र कार्य छोड़कर क्या ब्याहका ढोल बजवाना कोई अच्छी बात है?

'ए बचवा!' रामखिलावनने तैशमें आकर कहा — देशकी आजादीका सेहरा क्या तुम्हारे ही माथे बाँधनेका ठेका किसीने दिया है तुझको?

श्रीबद्री तिवारी भी समझाने लगे— बचपना छोड़ो और ब्याह कर लो। ब्याहके बाद आजादी लेना या कुछ करना। बच्चोंकी चहल-पहल और गायों-बछड़ोंकी रँभाहट गूँजता तुम्हारा घर सूना है, हमसे नहीं देखा जाता। इसे मेरी आज्ञा समझो। इन्होंने ऐसा विवश कर दिया कि सुदर्शनजीको अनुमति देनी पड़ी।

छोटा भाई सँवरू यह समाचार सुनते ही प्रसन्नतासे नाचने लगा। वह अपना घर बसनेके सपने देखने लगा। स्वीकृति मिलते ही बद्री तिवारीने एक व्यक्ति हिंगुतरगढ़ दौड़ा दिया, क्योंकि मामाके पाससे सगाईवाले दो बार भेलहटा आ चुके थे। तब सुदर्शनजी तो वहाँ थे ही नहीं। संदेश पहुँचते ही सगाईवाले, मामा और मामाके पुत्र आदि आ गये। बद्री तिवारीके घरवालोंने ही सारा प्रबन्ध किया। धूमधामसे सगाई हो गयी। स्त्रियोंने मंगल गीत गाये। सगाईवाले भी घर-जमीन देखकर प्रसन्न मन लौट गये।

भेलहटाके लोग तो खुशी मना रहे थे कि आठवें दिन समाचार आया

कि लड़की हैजाके प्रकोपसे मर गयी है किन्तु सगाईवाले उसकी छोटी बहिनसे विवाह करनेको उसी तिथिपर उत्साहसे तैयार हैं। वर-वधूको हल्दी चढ़नेके पूर्व समाचार मिला कि बागमें छोटी बहन आम लेने गयी थी, उसे विषैले साँपने काट लिया और परलोक सिधार गयी। सुदर्शनजीका मन अपने सर्वेश्वरकी कृपापर रीझ गया और गाँवके बड़े-बूढ़ोंसे, बद्री तिवारीसे अपना स्पष्ट निर्णय सुना दिया— चाचा! मैं आप सबके हाथ जोड़ता हूँ। अब ब्याहके झंझटसे मुक्त कर दो। अब कितनी लड़कियाँ मरवाओगे? और घरसे ऐसे भाग छूटे— **'मनहुँ भाग मृग भाग बस'**।

दूसरी बार यही विवाह-प्रस्ताव आगे चलकर सुदर्शनके गोरखपुर आ जानेपर वर्ष 1938 के आस-पास आया। भेलहटाके बद्री तिवारी जानते थे कि उनके सुदर्शन 'कल्याण' के यशस्वी सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी बात नहीं टालेंगे। अतः उन्होंने एक सज्जनको समझाकर भेजा कि अपनी बहिनका विवाह-प्रस्ताव पूज्य भाईजीके समक्ष निवेदन करना, वही सुदर्शनजीको विवाहके लिये आग्रह कर सकते हैं।

विचार-विमर्श करके वे सज्जन निश्चित कार्यक्रमके अनुसार गोरखपुर पहुँचे और पूज्य श्रीभाईजीको प्रणाम करके अपना प्रस्ताव निवेदन किया।

पूज्य भाईजीने सहजतासे सुदर्शनजीको बुलाकर कहा— 'भाया! मेरी एक बात मानेंगे?'

'मैं और आपकी बात न मानूँ? आदेश तो दीजिये।' सुदर्शनने साश्चर्य कहा। 'मान तो लेंगे?' भाईजीने पुनः बात खराई।

'आपको सन्देह क्यों हो रहा है? आप कहकर तो देखिये।'

'तब, आप विवाह कर लीजिये'—श्रीभाईजीने कहा।

एक क्षणको सुदर्शनजी सन्न रह गये। अवाक् देखते रहे भाईजीकी ओर। थोड़ा संयत होकर उदास मनसे बोले— आज्ञा न मानना तो सम्भव नहीं

है, पर कहाँ और किससे?

'यह सब मुझपर छोड़ दीजिये' श्रीभाईजीने कहा।

अब वे सज्जन बातचीतके लिये सन्मुख आये और नाम, गोत्र तथा लड़कीके विषयमें बताने लगे। तब सुदर्शनजीने बीचमें रोककर कहा— यह सब मुझे जाननेकी आवश्यकता नहीं है। यह सब भाईजी जानें, उन्हें ही जानना चाहिये। मुझे तो आदेश दिया है। मेरी केवल एक शर्त है— मेरी कलमसे अर्जित जो भी मिल जायगा, उसीमें आपकी बहिनको निर्वाह करना पड़ेगा। मैं घुमक्कड़ प्रकृतिका हूँ। कब वृन्दावन, अयोध्या, चित्रकूट— कहाँ चल दूँ, क्या ठिकाना? उन सज्जनने यह शर्त स्वीकार कर ली।

सुदर्शनजी सीधे अपनी कुटियामें आये, अपने कन्हाईसे पूछा— कनूँ! यह क्या खटपट कर रहा है? .... मैं नहीं चाहता कि तेरे और मेरे बीचमें कोई आये ..... अब .... बस तुमको ही सँभालना है। लगभग पन्द्रह दिन बाद समाचार मिला — पैर फिसलनेसे पानीमें डूबकर लड़की मर गयी है। सुदर्शनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। बस....बस.... अब कुछ नहीं, यह मारनेका धन्धा छोड़। सुदर्शनको लगा— जैसे बहुत बड़ा अवरोध हट गया है। कुटिया बन्द करके आँखें मूँदकर बैठ गये अपने अनुजके समीप और हर्ष-विह्वल स्वरमें अपना मनोरथ व्यक्त करने लगे—

प्रिय, पावन होगा वह क्षण कब?
मेरे हृदय स्थलपर होगा तू मम आश्रय जीवन धन कब?

अब स्वतंत्रताकी लड़ाईके लिये सुदर्शनजी चल दिये उस ओर— जहाँ देशके दीवाने आजादीके यज्ञमें सर्वस्वकी आहुति दे रहे थे।

स्वतंत्रताकी लड़ाईमें

अब सुदर्शनजीको कलकत्तेसे ही क्रान्तिकारियोंकी जीवन-गाथा और

आत्मोत्सर्गके वृत्तान्त पढ़नेका चाव बढ़ता गया और क्रान्तिकारियोंद्वारा अपनाये गये पथपर चलनेके लिये मन अकुला उठा। श्रीसुभाषचन्द्र बोसके निःस्वार्थ देश-प्रेम, उनके उच्च नैतिक आदर्श व्यक्तित्वसे सुदर्शनजी बहुत प्रभावित हुए। राष्ट्रीय भावनाको उद्दीप्त करनेमें बँगला और हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंने घृताहुतिका काम किया। समकालीन पत्रोंमें 'वन्देमातरम्' 'युगान्तर' और 'सन्ध्या' — ये तीन बड़े प्रभावशाली थे। इनके सम्पादक — अरविन्द घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त और ब्रह्म बान्धव उपाध्यायके लेखोंने सुदर्शनजी-जैसे नवयुवकोंमें आत्माहुतिकी प्रेरणा भर दी। सन् 1930 ई० में निःस्वार्थ भावसे सर्वस्व बलिदान करनेको कूद पड़े।

संयोगसे उसी समय जिला-कांग्रेसके द्वारा काशी विद्यापीठके एक व्यक्तिको शिविरका कार्य संगठित करनेके लिए जूड़ागढ़ गाँवमें भेजा।

7 अप्रैल 1930 ई० से ही पूरे देशमें 'नमक-आन्दोलन' प्रारम्भ हो चुका था। चन्दौली तहसीलका शिविर भी जूड़ागढ़से चलता था। सुदर्शनजी अनाहूत जूड़ागढ़ पहुँच गये थे, जहाँ गाँवके बाहर एक निर्जन क्षेत्रमें बाँसोंके झुरमुटके बीच फूसकी झोपड़ीमें 'कांग्रेस शिविर' चलता था। वहीं काशी विद्यापीठसे आये व्यक्तिने सुदर्शनजीसे कुछ बातें कीं और वे सन्तुष्ट हो गये। स्वाधीनता आन्दोलन चलाये रखनेके लिये वहाँ चार स्वयंसेवक चुने गये, जिनमेंसे एक सुदर्शनजी भी थे। ये चारोंमें सबसे कम उम्रके थे। किन्तु इनमें कुछ ऐसे गुण देखे गये कि इनको ही शिविरमंत्री नियुक्त किया। जब इनसे सहनशक्तिकी परीक्षा देनेकी बात कही तो सुदर्शनजी तुरन्त तैयार हो गये। उस व्यक्तिने एक मोमबत्ती जलायी और उसपर सुदर्शनजीके दाहिने हाथकी कलाई रख दी। हाथ जलता रहा और ये सहज भावसे बात करते रहे। बीचमें उसने एक-दो बार पूछा कि हाथमें दर्द हो रहा है? दो बार पूछे जाने तक तो ये चुप रहे, किन्तु जब तीसरी बार पूछा तो सुदर्शनजी बोले—

हाथ जल रहा है— दर्द हो रहा है, यह बात हाथ जाने, मैं तो एकाग्रचित्तसे आपकी बात सुनते हुए आगेकी योजनापर विचार कर रहा हूँ। उनकी यह स्थितप्रज्ञता देखकर परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ और उसने तुरन्त लौ परसे इनका हाथ हटा लिया। औषधि लगाते हुए कहा— विशेष पदके लिये विशेष परीक्षाएँ ली जाती हैं कि वह पकड़े जानेपर पुलिसद्वारा दी गयी यातनाएँ सह सकता है या नहीं; अन्यथा पुलिस उससे पार्टीके भेद, साथियोंके नाम, रहनेके स्थान आदि बातें उगलवा लेती है। तुम्हें मंत्री बनाया गया है; अनेक उत्तरदायित्वोंके साथ-साथ हमारी योजनाओंको कैसे कार्यान्वित किया जाय आदि सारी बातें तुम्हें ज्ञात रहेंगी। तुम इन्हें कितना गुप्त रख सकते हो यही जाननेके लिये यह परीक्षा ली गयी है। यह जलनेका निशान सुदर्शनजीकी कलाईपर जीवनपर्यन्त रहा।

सुदर्शनजीके साथ जितने स्वयंसेवक थे, वे सब-के-सब प्राथमिक विद्यालयके शिक्षक-पदसे त्यागपत्र देकर आये थे। एकदम सीधे-सादे और आन्दोलनके क्रिया-कलापोंसे पूर्णतः अनभिज्ञ। आन्दोलनको सही दिशामें चलानेका प्रथम कदम सुदर्शनजीको ही बढ़ाना पड़ता। नमक-आन्दोलन चलता रहे— इसके लिये योजना बनाना, काम बताना, द्वार-द्वार घूमकर आन्दोलनके लिये जन-जागरण करना आदि अपने विवेकद्वारा अकेले उन्हींको कर पड़ता था।

नमक-कानून पूरे देशमें लागू करनेके लिये अंग्रेज सरकार पूरी शक्तिसे उठ खड़ी हुई थी। ऐसा नहीं कि गाँधीजीके इस आन्दोलनसे पूर्व नमक कानूनकी अवहेलना नहीं होती थी। सज्जी बनानेवाले कारखानोंमें चोरी-छिपे नमक बनता, पर बहुत घटिया, केवल पशुओंको खिलानेके काम आता।

नमक-आन्दोलनने सरकारी कानूनको चुनौती दी थी। जूड़ागढ़के कांग्रेस शिविरके मंत्री सुदर्शनजीने पुलिस थानेमें नोटिस भिजवाया था, 'हम चौदह स्थानोंपर नमक बना रहे हैं, आप जो चाहें, कर सकते हैं।'

उस समय चन्दौली थानेमें केवल बारह सिपाही थे। दरोगाने ऊपर लिखा-पढ़ी की। सुदर्शनजीने चरवाहों, गाँवके नीचेके स्तरके लोगोंका सुदृढ़ समूह तैयार कर लिया। सभी चौदह स्थानोंपर नमक बनने लगा, बड़े उत्साहके साथ लोग लगे थे, बीच-बीचमें सिपाही आकर देख जाते, उन्हें कहींसे भी अतिरिक्त पुलिसकी सहायता नहीं मिल सकी। केवल बारह सिपाही इतने जनसमूहका सामना कैसे करते? नमक बन जानेके बाद भी जब किसीकी गिरफ्तारी नहीं हुई तो सुदर्शनजीने एक और खुराफात की — बने हुए सारे नमकको थानेके सामने ढेर कराया और उसकी नीलामी करा दी। पुलिसवाले थानेमें चुपचाप बैठे रहे। जन-समूह नारे लगा रहा था— 'महात्मा गाँधीकी जय', 'हम खुद नमक बनायेंगे, नमक बाँटकर खायेंगे' आदि।

नमक-आन्दोलनकी सफलतासे सुदर्शनकी ख्याति फैलने लगी। वे गिरफ्तार तो नहीं हुए; पुलिसकी नज़रोंमें खटक तो गये ही थे। आन्दोलनमें व्यस्त होनेके कारण घर नहीं जा पाते थे। इसीलिये साथी भी इनके घर-परिवारके विषयमें कुछ नहीं जानते थे; यही नहीं, इनका नाम तक नहीं जानते थे। कोई पूछनेका साहस भी नहीं करता। सभी 'मंत्रीजी' कहकर सम्बोधन करते थे।

जिन चार नेताओंको सुदर्शनजीके आगमनसे पूर्व नमक-आन्दोलनमें गिरफ्तार किया गया था, उनपर मुकदमा चला। इस मुकदमेमें सरकारकी ओरसे गवाही देनेवाले लोग समाजके बड़े सम्मानित व्यक्ति थे। उनकी गवाहीपर उन चारोंपर जुर्माना हुआ। जुर्मानेकी धनराशि न देनेपर दो वर्षसे अधिककी सज़ा दी गयी। जिन लोगोंने गवाही दी थी उन लोगोंका सामाजिक बहिष्कार हो गया। उनके घर लोगोंका आना-जाना, नाई, धोबी, सौदा देना-लेना सब बन्द हो गया। इससे उन लोगोंको बड़ी परेशानी झेलनी पड़ी। स्वयंसेवकोंके मनमें गवाहीको लेकर जो डर समाया था, वह इस घटनासे

दूर हो गया। सुदर्शनजीके प्रयाससे स्वयंसेवकोंकी संख्यामें कल्पनातीत वृद्धि हुई। नगर या चन्दौलीमें जब भी विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कार या नशाबन्दीका आन्दोलन हुआ तो सबसे अधिक कार्यकर्त्ताओंको लेकर सुदर्शनजी ही पहुँचते। इनका कार्यक्षेत्र अठारह-बीस मीलके दायरेमें था। मंत्रणा या योजना निर्धारित करनेके लिये वे बस्तीसे दूर एक टूटे-फूटे मकानमें जाते थे जिसे 'भुतहा' मकानके नामसे जाना जाता था। इस मकानकी खिड़कियाँ इस प्रकार बनी थीं कि अन्दरका मनुष्य तो बाहरवालेको देख सकता था किन्तु बाहरवाला भीतरवालेको नहीं देख पाता। उसी मकानमें मंत्रणाओं, योजनाओंके क्रियान्वित करनेका सिलसिला जारी रहता।

प्रेतकी मुक्ति

एक बार किसी साथीने पुलिसवालोंको इनकी मंत्रणाका स्थान बता दिया। उस आधारपर पुलिस अपने दस साथियोंके साथ आ गयी। इन लोगोंको जब पता चला कि पुलिस अति निकट आ गयी है तब सबने अति शीघ्रतासे अपना सामान समेटा और भागनेकी तैयारीमें लगे। सुदर्शनजी साथियोंको बिलकुल चुप रहनेका निर्देश देकर खिड़कीके समीप खड़े हो गये। इधर साथियोंको लगा कि ये किसीसे बात कर रहे हैं, पर किससे— यह नहीं जान सके। उधर पुलिस बहुत निकट आ गयी। रातका समय था। दस मीटर दूरी होगी कि पुलिसने और सुदर्शनजीने दोनोंने देखा — मकानसे बाहर एक लम्बा विशालकाय पुरुष आकर खड़ा हो गया है। वह तो जहाँ-का-तहाँ खड़ा है किन्तु उसकी भुजाएँ पुलिसवालोंकी ओर बढ़ती जा रही हैं। पुलिसवालोंकी तो घिग्घी बँध गयी और तुरन्त ही 'भूत है' कहते उलटे पैर भागे। पुलिस तो चली गयी पर बात यह हुई कि सचमुच इस मकानमें प्रेत रहता था। सुदर्शनजीने कई बार इसे सफेद कपड़े पहने आते-जाते देखा था। उसने किसीको तंग नहीं किया। साथी लोग कहीं डर न जायँ, इसलिये

किसीको इस बारेमें बताया भी नहीं। असलमें, जब पुलिसको सुदर्शनजीने आते देखा था तभी खिड़कीकी औटकमें इस प्रेतको खड़ा देखकर इसके समीप आकर बोले—

'जीवित अवस्थामें तुम कुछ कर नहीं सके। अब मरकर थोड़ी देश-सेवा कर लो। तभी प्रेत विशालकाय बनकर बाँहें फैलाकर बाहर खड़ा हो गया था।

दूसरे दिन सुदर्शनजी दुकानपरसे चना-लाई आदि खानेका सामान लेने गये, तब उस दुकानदारने हँसते हुए कहा—

आपने बहुत अच्छा किया बाबू! दो सिपाही तो घोड़ोंसे गिरकर वहीं बेहोश हो गये और आठ-दस ऐसे भागे कि थानेंमें आकर ही साँस ली। थानेदार बड़बड़ा रहा था— महात्मा गाँधीके चेले कहलाते हैं और जिंद पालते हैं— कहकर दुकानदार फिर हँसा।

तीसरे दिन सुदर्शनजीने प्रेतके दिखनेपर उससे पूछा— 'तुम कौन हो? तुम्हें प्रेतयोनि क्यों मिली?'

उसने संक्षेपमें बताया— मैं ब्राह्मण था। मुझे इसी दीवारमें जीवित चिनवा दिया गया था।

सोचते हुए सुदर्शनजी बोले— तब तुम्हारे उद्धारका कोई उपाय करना होगा। शुभ दिन शोधकर वे बताशे और जनेऊ खरीद लाये। इन वस्तुओंको प्रेतको अर्पित करके उन्होंने ग्यारह पाठ 'गजेन्द्र-मोक्ष' के किये।

इसीसे उसे ऐसी तुष्टि मिली कि उसने कहा— आपकी कृपासे मैं प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया। भगवान् तुम्हारा भला करें। इसके बाद सुदर्शनजीने उस मकानसे कार्यक्षेत्रका डेरा उठा लिया। कई दिनों बाद जब उन्होंने साथियोंसे इसकी चर्चा की तो सबने बताया— हम तो डरते रहते थे। यह तो पहलेसे 'भुतहा' मकानके नामसे प्रसिद्ध है। आप हमारे साथ रहते थे इसीसे वहाँ

किसीको इस बारेमें बताया भी नहीं। असलमें, जब पुलिसको सुदर्शनजीने आते देखा था तभी खिड़कीकी औटकमें इस प्रेतको खड़ा देखकर इसके समीप आकर बोले—

'जीवित अवस्थामें तुम कुछ कर नहीं सके। अब मरकर थोड़ी देश-सेवा कर लो। तभी प्रेत विशालकाय बनकर बाँहें फैलाकर बाहर खड़ा हो गया था।

दूसरे दिन सुदर्शनजी दुकानपरसे चना-लाई आदि खानेका सामान लेने गये, तब उस दुकानदारने हँसते हुए कहा—

आपने बहुत अच्छा किया बाबू! दो सिपाही तो घोड़ोंसे गिरकर वहीं बेहोश हो गये और आठ-दस ऐसे भागे कि थानेंमें आकर ही साँस ली। थानेदार बड़बड़ा रहा था— महात्मा गाँधीके चेले कहलाते हैं और जिंद पालते हैं— कहकर दुकानदार फिर हँसा।

तीसरे दिन सुदर्शनजीने प्रेतके दिखनेपर उससे पूछा— 'तुम कौन हो? तुम्हें प्रेतयोनि क्यों मिली?'

उसने संक्षेपमें बताया— मैं ब्राह्मण था। मुझे इसी दीवारमें जीवित चिनवा दिया गया था।

सोचते हुए सुदर्शनजी बोले— तब तुम्हारे उद्धारका कोई उपाय करना होगा। शुभ दिन शोधकर वे बताशे और जनेऊ खरीद लाये। इन वस्तुओंको प्रेतको अर्पित करके उन्होंने ग्यारह पाठ 'गजेन्द्र-मोक्ष' के किये।

इसीसे उसे ऐसी तुष्टि मिली कि उसने कहा— आपकी कृपासे मैं प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया। भगवान् तुम्हारा भला करें। इसके बाद सुदर्शनजीने उस मकानसे कार्यक्षेत्रका डेरा उठा लिया। कई दिनों बाद जब उन्होंने साथियोंसे इसकी चर्चा की तो सबने बताया— हम तो डरते रहते थे। यह तो पहलेसे 'भुतहा' मकानके नामसे प्रसिद्ध है। आप हमारे साथ रहते थे इसीसे वहाँ

भी डॉक्टरी परीक्षामें कमजोर ही माने गये थे, अतः इनके लिये पृथक् दूधकी व्यवस्था हुई। सुदर्शनजीने दूध पीनेसे इन्कार कर दिया कि जब तक उनके बैरकके सभी बन्दियोंको दूध नहीं दिया जायगा, वे स्वयं अकेले दूध पीयेंगे ही नहीं। इनके इस हठको देखकर सभी लड़कोंको दूध मिलने लगा। सब लड़के इनका सम्मान करने लगे।

राजनैतिक बन्दियोंके अतिरिक्त जेलमें दो अन्य बन्दियोंसे सुदर्शनजीकी मैत्री हो गयी। उनमें एक नेपालकी तराईका बहुत खूंखार बन्दी था; उसने कई बार जेल कर्मचारियोंपर हमला करके उन्हें घायल कर दिया था। वह सुदर्शनजीकी कोठरीके सामनेवाली कोठरीमें रहता था और इनसे नियमित रामायण सुनता था। इसी कारण सुदर्शनजीपर उसका विशेष स्नेह था, लेकिन इस मित्रतासे जेलके कर्मचारी भी इनसे डरने लगे। दूसरा बन्दी सुदर्शनजीकी बगलवाली कोठरीमें ही रहता था; उसे अनेक उपन्यासोंकी कहानियाँ याद थीं। वह इन्हें कहानियाँ सुनाया करता था।

जेलमें 'गीतारहस्य' का अध्ययन

प्रत्येक रविवारको पढ़नेके लिये जेलमें इन बन्दियोंको एक पुस्तक दी जाती थी। सुदर्शनजीने बिना यह देखे कि पुस्तक किस विषयकी है, अथवा उसका नाम क्या है, जो सबसे मोटी पुस्तक थी— उसे ही ले लिया। संयोगसे यह पुस्तक लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा लिखित 'गीता रहस्य' थी। अगले सोमवारको पुस्तक वापस करनेका नियम था। सबने अपनी-अपनी पुस्तकें दे दीं। माँगनेपर भी सुदर्शनजीने पुस्तक नहीं दी, कारण कि वे पुस्तक कम पढ़ते उसका चिन्तन अधिक करते। उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया— जब तक पूरी पुस्तक नहीं पढ़ लूँगा, वापस नहीं करूँगा।

बात जेल अधीक्षक तक पहुँच गयी। उसने क्रोधमें आकर आदेश दिया— पुस्तक उससे छीन लो।

सुदर्शनजी भी अपनी बातके पक्के थे, जैसे ही पुस्तक लेनेका प्रयास किया, तेज स्वरमें बोल—नहीं दूँगा! नहीं दूँगा!! नहीं दूँगा!!! अगर छीननेका प्रयत्न किया तो मैं पुस्तक ही फाड़ दूँगा। ऐसी बात सुनकर जेलर भी किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा हो गया, क्योंकि सभी सजाएँ उनपर आजमायी जा चुकी थीं। जेलरने अपने लोगोंसे पता लगानेको कहा कि छिपकर देखना सुदर्शनजी पुस्तक पढ़ते भी हैं या केवल परेशान करनेके लिये वापस नहीं कर रहे। तब मालूम पड़ा दिनमें और देर राततक टिमटिमाती रोशनीमें भी ये एकाग्र चित्तसे पुस्तक पढ़ते रहते हैं और बीच-बीचमें आँख बन्द करके कुछ सोचते रहते हैं। तब जेल-अधीक्षकने कह दिया— जब तक वह चाहें, उस पुस्तकको रखकर पढ़ सकते हैं। सुदर्शनजी जब तक जेलमें रहे, तब तक नियमित पुस्तक पढ़ते रहे अपने पास ही रखकर।

जेल-जीवनमें साथियोंसे पुस्तकोंको देने-लेनेके माध्यमसे पत्रोंका आदान-प्रदान भी हो जाता। बाहरके कार्य-कलापोंका भी पता लग जाता। जेलर सोचता—पैसेके अभावमें यह कैसे सम्भव है? एक दिन जेलरने सुदर्शनजीसे ही पूछा— पैसे हैं तुम्हारे पास?

'हैं' सुदर्शनजीने उत्तर दिया।

'कहाँ है?'

'इसी कोठरीमें।'

'अभी निकाल कर दो?'

'आप ही खोजकर ले लीजिये।'

'कहाँ है? तुम्हीं बताओ' – जेलरने कड़ककर कहा।

'झूठ बोलूँगा नहीं और सच बताऊँगा नहीं' – सुदर्शनजीने दृढ़ और सधे स्वरमें उत्तर दिया। निराश होकर जेलर चला गया।

इन्हीं दिनों वाराणसीकी सेन्ट्रल जेलमें वरिष्ठ लोगोंके बीचमें बाबू सम्पूर्णानन्दजी थे। वे भी सुदर्शनजीकी निर्भीकतासे बड़े प्रसन्न थे। उनका 'लड़का-बैरक' में सुदर्शनजीसे परिचय भी हो गया था और इनसे स्नेह करते थे। सजा पूरी होनेपर इन्हें जेलसे छोड़ दिया गया।

लखनऊके 'कैम्प' जेलमें

दिनांक 3 मार्च 1932 ई० में जब 'गाँधी इर्विन समझौता' होना निश्चित हुआ, उसके डेढ़ माह पूर्व देशके प्रमुख आन्दोलनकारियोंको जेलमें बन्द कर दिया गया। उसी क्रममें सुदर्शनजी भी पकड़े गये और उन्हें लखनऊ कैम्प जेलमें भेज दिया गया। गाँधी-इर्विन समझौतेके बाद ही जेलसे छूटे। कुछ दिनों पश्चात् जब अंग्रेज सरकारने कांग्रेस संगठनको गैर कानूनी संस्था घोषित किया; तब देशव्यापी आन्दोलन होने लगा। उन दिनों सुदर्शनजी जूड़ागढ़ शिविरमें ही थे। वहींसे इनको गिरफ्तार कर बलुआ थानेमें बन्द कर दिया गया। कांग्रेसके सदस्यको चार महीनेकी सज़ा और दस रुपया जुर्माना था। इन्हें थानेसे बनारस जेल पुनः भेज दिया और जुर्मानेकी राशिके बदले इनके घरकी किवाड़ पुलिस उतार ले गयी।

कलकत्ताकी 'प्रेसीडेंसी' जेलमें

उसी वर्ष जब कांग्रेसका कलकत्तेमें अधिवेशन हो रहा था तब बनारससे कांग्रेसके प्रतिनिधिके रूपमें सुदर्शनजीको कलकत्ता भेजा गया। उस अधिवेशनमें भाग लेनेके लिये जाते हुए मार्गमें ही पुलिसने इन्हें गिरफ्तार कर 'प्रेसीडेन्सी जेल, कलकत्ता' में भेज दिया। सात दिन बाद अधिवेशन समाप्त होनेकी अवधिके पश्चात् छोड़ दिया गया। ये पुनः अपने कांग्रेस शिविरमें आकर स्वाधीनता आन्दोलनके कार्योंमें जुट गये।

प्रशस्ति-पत्रसे उपरामता

स्वाधीनता-आन्दोलनके कार्योंमें सफलता होते देख कांग्रेसके बड़े नेताओंने स्वाधीनता आन्दोलनमें भाग लेनेवालोंको 'प्रमाणपत्र' और 'प्रशस्ति-पत्र' देनेका निश्चय किया। अन्य स्थानोंपर होते हुए बाबू सम्पूर्णानन्दजी जूड़ा-शिविर भी आये और कार्यकर्त्ताओंका उत्साहवर्धन करते हुए प्रभावशाली भाषण दिया। भाषणकी समाप्तिपर प्रमाणपत्र सहित प्रशस्ति-पत्र वितरण करने लगे। जब सुदर्शनजीका नाम पुकारा गया तो ये बाबू सम्पूर्णानन्दजीके पास न जाकर व्याख्यान मंचपर जाकर खड़े होकर कहने लगे– स्वतंत्रता आन्दोलन कोई फुटबालका मैच नहीं है; जिसकी सफलतापर हमें पुरस्कृत किया जाय। स्वतंत्रता-आन्दोलनमें सम्मिलित होकर इसे सफल बनाना अपनी भारतमाताके प्रति हमारा गौरवपूर्ण कर्त्तव्य है। श्रद्धेय बाबू जी! आन्दोलनमें मैंने किसी प्रमाणपत्र या प्रतिदान प्राप्त करनेकी आकांक्षासे भाग नहीं लिया था। मैंने जो कुछ किया, अपनी मातृभूमिके लिये किया है। तन-मनसे सेवा करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य था। अब बड़े अच्छे-अच्छे नेता इस कार्यको आगे बढ़ानेको आ गये हैं तो मेरा कार्य समाप्त हो गया– 'प्रणाम! मैं जा रहा हूँ' कहकर वे सभासे निकल गये।

सच तो यह है– जब गाँधीजीने सत्याग्रह आन्दोलनको 'व्यक्तिगत आन्दोलन' बना लिया तभी सुदर्शनजीने इससे पृथक् हो जानेका निश्चय कर लिया।

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीसे प्रथम मिलन

'गाँधी–इर्विन' समझौताके वर्ष जेलसे सब लोग छूट गये थे। चन्दौली तहसीलके बड़े नेताओंने बागडोर सँभाल ली थी। अब तहसीलकी बैठक होती थी – सकलडीहा स्टेशनके पास शिवमंदिरमें। यहीं सकलडीहाका कांग्रेस शिविर भी था।

इस बैठकमें बलुआ-शिविरसे सुदर्शनजी आते थे; क्योंकि जूड़ा-शिविर गंगा किनारे बलुआ बाजारके पास 'वामन बाबा' नामके साधुकी कुटियामें आ गया था। इसमें 'वामन बाबा' तो थे नहीं। अतः कुटियामें अकेले सुदर्शनजी ही रहते थे। धानापुर शिविरकी ओरसे महराई गाँवके पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी आते थे। यद्यपि पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी स्वतंत्रता आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेवालोंमें नहीं थे, न कभी जेल गये थे। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी इस बड़े क्षेत्रके बहुतसे लोगोंके कुल-गुरु थे। उनके पिता-पितामहकी शिष्य-परम्परा चालीस-पचास गाँवोंतक फैली थी।

बैठकमें सुदर्शनजीका पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीसे परिचय होनेके साथ घनिष्ठता प्रगाढ़-मैत्रीमें परिवर्तित हो गयी। दोनों परस्पर सत्संग करते एवं शास्त्र-चर्चा। दोनों ही परमार्थ-पथके पथिक, अध्यात्मके जिज्ञासु थे। साधनहीन सुदर्शनजी अध्यात्म-चर्चा और सत्संगके अनन्य अनुरागी थे और पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी काशी रहकर शास्त्राध्ययन जमकर कर चुके थे। इन्हें पण्डित शान्तनुविहारी द्विवेदीजीसे अनेक धर्मग्रन्थ पढ़नेको सुलभ ही नहीं होते; अपितु नयी-नयी उच्च कोटिकी साधना, वेदान्त, भक्त और भगवत्चरित भी श्रवण करनेको मिलते। सुदर्शनजीको लगता मानो अब तक वे अँधेरेमें व्यर्थ ही हाथ-पाँव मारते रहे थे और अब जैसे सहसा ही अपना गन्तव्य प्राप्त हो गया।

उनकी रुचिका मनभावन पथ मिल गया। उनका प्यासा हृदय आतुरतापूर्वक पण्डित शान्तनुविहारी द्विवेदीजीसे प्राप्त दिव्य ज्ञान और भगवद्भक्त-चरित्रोंको अपनेमें समाहित करता जा रहा था। एक दिन पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी एक पुस्तक लेकर आये। इसमें एफ०जे० अलेक्जेण्डरकी पुस्तक 'इन दि आवर ऑफ मेडीटेशन' का हिन्दी अनुवाद पण्डित शान्तनुविहारी द्विवेदीने अपनी भाषामें किया था। उनके मित्र ठाकुर

झगरू सिंह कानूनगोको बोलकर लिखवाया था। इस कापीका हिन्दी नाम था— 'ध्यानके समय।'

कई वर्ष बाद कापीको 'ध्यानके समय' के नामसे सुदर्शनजीने जो आगे चलकर सुदर्शन सिंहजी 'चक्र' हो गये रामवन, सतना (म०प्र०) से प्रकाशित करायी। इसका दूसरा संस्करण पं० द्विवेदीजीने संन्यास ग्रहणके पश्चात् जब वे स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी हो गये तब प्रकाशित करायी। एफ०जे० अलेक्जेण्डर स्वामी विवेकानन्दजीके अमेरिकन शिष्य थे। इस पुस्तकके रामकृष्ण मिशनने अंग्रेजीमें बीस-पच्चीस संस्करण कराये। यह पुस्तक बहुत प्रभावशाली और साधकोंके लिये अत्यन्त आवश्यक सिद्ध हुई है। इसका सुदर्शनजीपर बहुत प्रभाव पड़ा। बहुत समयतक उन्होंने इस कापीको अपने पास रखा और उससे पथ प्राप्त किया।

छोटे भाईकी बीमारी

इसी बीच भाई सँवरूकी बीमारीका समाचार पाकर सुदर्शनजी भेलहटा आये। उन्होंने देखा सँवरूको जलोदर हो गया है, अतः उसे वाराणसी ले आये और प्राकृतिक-चिकित्सालयमें भर्ती करा दिया। दस दिन पश्चात् ही अति आवश्यक कार्यसे सुदर्शनजीको नागपुर जाना पड़ा। जानेके दो-चार दिन पहले उन्होंने हिंगुतरगढ़ धर्मदेव सिंहको समाचार भेज दिया कि उनके लौटने तक वे वाराणसी आकर भाईकी साज-सँभाल कर लें।

जब हिंगुतरगढ़ समाचार पहुँचा उस समय धर्मदेव सिंहके पास एक अन्य व्यक्ति भी बैठा था जो अपनेको सूर्यवंशी और रामकिशोर सिंह एवं सुदर्शनजीका सम्बन्धी बताता था। इसी गाँवमें इनका घर धर्मदेव सिंहके घरसे कुछ दूर था, अतः सुदर्शनजी तो इनसे कभी मिले भी नहीं थे।

इस समाचारको सुनकर उस व्यक्तिने धर्मदेव सिंहसे कहा— आप क्यों जायँगे? ये तो हमारे अपने ही हैं। मैं वाराणसी चला जाता हूँ। धर्मदेव सिंहने भी आश्वस्त होकर कह दिया— ठीक है भैया! आज आप पहुँचिये, मैं परसों

अवश्य आ आऊँगा।

इन संबंधी महोदयने वाराणसी पहुँचकर सँवरूको बड़े प्यारसे रखते हुए दूसरे दिन ही अपने पुत्रको सँवरू सिंहका दत्तकपुत्र घोषित करके कानूनी कार्रवाई पूरी कर ली। अब सँवरू सिंहकी आवश्यकता तो रही नहीं' इसीसे वे संवरू सिंहको प्रसन्न रखनेके लिये कुपथ्यमें सहायता करने लगे।

इन्हें सँवरू सिंहसे नहीं अपितु उनकी 'भूमि-सम्पत्ति' से प्रेम था।

सुदर्शनजीके नानाकी दो ही सन्तानें थीं; एक इनकी माँ दूसरे इनके मामा जिनका बचपनमें ही देहान्त हो गया। इनके नानाके एक भाई और थे; जो हिंगुतरगढ़में बस गये थे। इनके नाना और मामा दोनोंका देहान्त हो गया तो इनकी नानी तुर्कवलियासे हिंगुतरगढ़ अपने देवरके पुत्रोंके पास चली आयीं। इन छोटे नानाके दो पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठका नाम धर्मदेव सिंह था। सुदर्शनजी अपने माँ और भाईके साथ जब भी ननिहाल जाते तो इन्हीं धर्मदेव सिंहके घर रहते। छोटे भाई सँवरू सिंहका अपने ननिहालवालोंसे अधिक स्नेह था; इसीसे अधिकतर वहीं रहा करता। सँवरू सिंहको जलोदर हुआ और सुदर्शनजीने उसे वाराणसीके प्राकृतिक चिकित्सालयमें भरती करवा दिया। उन्हें विशेष कार्यवश नागपुर जाना पड़ा। ट्रेनमें बैठते ही सँवरूकी चिन्ता करते हुए अपनी विवशतापर मन-ही-मन खीज उठे—

मत पूछो क्या है गति मेरी,
मूक वेदना अन्तस्तलमें
वाष्प बिन्दु कुछ युग नयनोंमें
धक्-धक् जलता उर ज्वालामें
खड़ा अकेला कर्म दोषसे, कब तक यह दुःख पाऊँगा मैं।। 1।।
विपतिग्रस्त मैं बना कन्हाई!
तेरे आश्रय छोटा भाई।
मेरे प्राणोंपर बन आई,
जाऊँ कहाँ तुम्हींपर आश्रित और लगा मत देरी।। 2।।

श्रीकृष्ण-दर्शन

सन् 1933 में जब सुदर्शनजी बाईस वर्षके थे नागपुरमें धर्मदेव सिंहका वाराणसीसे भेजा हुआ सँवरू सिंहके देहान्तका तार मिला। तार पढ़ते ही आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। एकमात्र वही तो था संसारमें अपना कहनेको। मानवोंसे भरी मेदिनीपर वे अकेले हैं, नितान्त अकेले। क्या? कोई नहीं रहा अपना। इस सृष्टिमें कोई नहीं मेरा, मैं अकेला हूँ, बिलकुल अकेला। यह विचार आते ही पैरोंतले जैसे पृथ्वी घूमने लगी, ब्रह्माण्ड घूमने लगा। हृदयको विदीर्ण करके वेदना बह पड़नेको आतुर हो उठी। मूर्च्छा! मूर्च्छा!! ऐसे समयमें मूर्च्छा तो औषधिके समान होती है; किन्तु सभी रोगियोंको समयपर औषधि प्राप्त हो ही जाय—ऐसा तो कोई विधान है नहीं। सुदर्शनजीको भी मूर्च्छा समीप नहीं फटकी।........पीड़ा! तीव्रतम पीड़ा!! पीड़ा अपने अन्तिम छोर तक पहुँच गयी। उन्होंने अनुभव किया—भाई नहीं अपितु छाती चीर कर जैसे उन्हींका कलेजा निकाल लिया गया हो अथवा हृदयमें धधकते हुए अंगारे भर दिये गये हों।

स्पष्ट लगा कि तीव्रतम अन्तर्व्यथासे हृदय विदीर्ण हो जायगा—उसी समय ठीक उसी क्षण जैसे हृदयमें विद्युत् लहरी-सी कौंध गयी। एक दिव्य शीतल स्निग्ध प्रकाशका प्रसारण होने लगा— उज्ज्वल स्निग्ध उस प्रकाशके मध्य आठ वर्षीय नव-जलधर अनुपम सुन्दर एक अलौकिक तेजोमय आभा संयुक्त बालक दीखा उन्हें। ऐसे दीखा जैसे— प्रत्यक्ष खड़ा हो सम्मुख—उसके लहराते मयूरपिच्छ, घुँघराली अलकोंसे लेकर चारु-चरणों तक एक-एक अंग प्रत्यक्ष दिखायी दे रहे थे।

उसकी मंद मुस्कान निरखते ही जगत्-देह सब लोप हो गये। वह दारुण भातृ-शोक कब तिरोहित हो गया हृदयसे, यह वे जान ही न सके। सुध-बुध भूले-से वे तो देखते रह गये इस सौन्दर्भ-वारिधिको एकटक।

सन्मुख था— केवल वह अशरण-शरण, सर्व सुहृद्, अनाथनाथ,

दीनबन्धु, प्रेमैकप्राण, त्रिभुवन मोहन, भुवन मनोहर, परम सुकुमार; बस, उसने अपनी वे बड़ी-बड़ी कमलकी पंखुरी-सी कोमल पलकें उठायीं बाल सुलभ वह भोली नज़र! मत्त हो गये सुदर्शनजी। उसने अपना दक्षिण कर-पल्लव उठाया। सुदर्शनका वाम स्कन्ध स्पर्श करके मधुर स्वरमें बोला— दादा! मैं तेरा छोटा भाई नहीं हूँ?— वह मुस्करा दिया धीरेसे।

क्या कहें सुदर्शनजी? क्या करें वह? कहिये तो जैसे किसी उन्मत्तको भाँग या सुरा पिला दी जाय। नशा चढ़ रहा हो या फिर कहिए— गूँगेका गुड़ स्वाद ....नहीं! नहीं!! नहीं!!! बताने-जैसा कुछ है ही नहीं, शब्द, भाषा सब बौने हैं! बात सच है पर हमें तो इन्हींसे काम चलाना है, तब फिर एक ही वाक्यसे कुछ इंगित किया जा सकता है—

'अनिर्वाच्य' – इसके अतिरिक्त कोई उपाय जो नहीं है।

-और वह 'शोक'!

क्या आपने कभी सूर्यके सम्मुख अंधकारको खड़े देखा है?

नहीं न!

फिर आनन्दघनके सन्मुख शोक अपना अस्तित्व कैसे बचा पायेगा?

वह तो सदा-सर्वदाको समाप्त ही हो गया। अब कहिये तो सुदर्शनजीने कौन-सा तप, यज्ञ, अथवा साधना की थी, इस सर्वोच्च तत्त्वको पानेके लिये?

वह क्या साधन, ध्यान, तपसे पाया जा सकता है? नहीं रे! यह सब तो मनको निर्मल करनेके साधन हैं। वह तो ढूँढ़ता फिरता है सहज स्नेह, सरल स्वच्छ मनका आसन— जिसपर आरामसे निज-गेह मानकर सुखसे बैठा जा सके। आसन मिल जाय बस, फिर नहीं देखता कि उसे नौकर बनना पड़ेगा या मालिक। कोई प्रेमके इस पुजारीको उठक-बैठक करायेगा, कान पकड़कर अथवा चरणोंपर सिर रखेगा। वह तो बस, दीवाना है आसनका, फिर तो उससे जो चाहो करा लो। अपने-आपको ही दे देता है और रीझ जाय तब बाकी क्या रह जाता है भला?

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम्।।
(कठोपनिषद् 1।2।23)

वह स्वयं ही किसीको न अपना ले तो मनुष्यका कितने भी समयका, कितना भी उत्कृष्ट साधन इसे अपना बनानेमें कभी समर्थ है? सुदर्शनजीका यह छोटा भाई 'कन्हाई' क्या एकाध दिनके लिये आया है? यह तो सदा सर्वदाके लिये उनका हो गया। 'दादा' 'दादा' करते सदा उनके आगे-पीछे घूमनेवाला, पल-पल उनका मुख देखता, उनकी इच्छा जानकर पूरी करनेको तत्पर, उनका यह नन्हा सुकुमार हँसता-मुस्कराता नन्हा-सा सुकुमार भाई कन्हाई।

गाँवसे विदा

नागपुरसे लौटकर गाँव भेलहटा आये। भाई सँवरू सिंहका श्राद्ध-संस्कार सम्पन्न किया। श्रीबद्री तिवारी द्वारा समझाने-बुझानेपर भी द्वार-विहीन घर सुदर्शनजीको भाया नहीं और मनमें सदाके लिये घर छोड़नेका संकल्प कर लिया। खेतोंको बटाईपर दे दिया और पहलेका बकाया लेकर बलुआकी ओर 'वामन बाबा' की कुटीकी ओर चले पड़े—

जाता हूँ, पर भूल न जाना।
छोड़ रहा हूँ जन्मभूमि मैं, प्रिय! प्रसन्न करनेको तुमको।
सुखी रहें ये चपल तितलियाँ, नव किसलय हो इस लतिकाको
कष्टोंकी न तनिक चिन्ता है, त्याग रहा हूँ उपवन सुखको
पर इस तपका परम लाभ भी तो है तुझको पाना!
जाता हूँ पर भूल न जाना।। 1।।
जाने कहाँ निवास बनेगा? किस जंगलका आश्रय होगा?
मृदुल लता तृण वहाँ न होंगे, कंकड़ कंटकका दल होगा?
नित्य-नित्य जल कहाँ मिलेगा? वृष्टि-वारि ही सिंचन होगा।

आशा बस घनश्याम तुम्हारी, तुम्हीं दयाकर आना।। 2।।
जाता हूँ पर भूल न जाना।। 3।।
मेरे पल्लवके दोनेमें ले लेगा मधुमय मम फल जब।
पाकर मलय पवनका झोंका तब ऊपर पुष्पोंको मैं तब।
वर्षा दूँगा इस जीवनको हा विधि! आयेगा वह दिन कब?
भूल न जाना जल्दी आना, मेरी प्यास बुझाना।।
जाता हूँ पर भूल न जाना।। 3।।

आकुल-व्याकुल चित्तसे जगत्‌की ओरसे मुख मोड़कर सदा-सर्वदाके लिये प्यारे कृष्णके लिये चल पड़े भौतिक वैभव, सुख-भोग, पद-प्रतिष्ठासे विदा लेकर—

विदा! विदा! बस आज विदा!
अरी कल्पने! अरे प्रलोभन! ओ सारे सुख साज विदा!
विदा विदा हो, ओ आशाओ!
छोड़ चला अब मत ललचाओ
जाओ इप्सित गतिको पाओ
छोड़ रहा हूँ, बस-बस-बस अब मायामय संसार विदा।। 1।।
क्या चिन्ता जो घन छायेगा,
उपल देहपर वर्षा देगा,
भीषण झंझावत आवेगा,
पर स्वतंत्र पक्षीके रक्षक। प्यारे कारागार विदा।। 2।।
अरुणोदय होनेवाला है,
दिनकर तम खोनेवाला है,
चक्रवाक रोनेवाला है,
अंधकारमें रहनेवाले निशिचर-भ्रम-मोहादि विदा।। 3।।

बीत रहा वर्षोंसे प्रतिपल,
चित्त हो रहा व्याकुल चंचल,
बहुत हो चुका बस अब मत छल,
छल न चलेगा उससे मिलनेमें ओ मायामय जाल विदा।। 4।।

प्रेमावेशमयी-स्थिति

कुटीमें वामन बाबा लौट आये थे। एकान्तप्रिय सुदर्शनजीका वामन कुटीसे भी मन उचट गया। इन्हीं दिनों बनारस जिलेका कांग्रेस राजनैतिक सम्मेलन कमालपुरमें होना था। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी सम्मेलनके कोषाध्यक्ष थे, इसलिये उन्हें हर मीटिंगमें जाना पड़ता था। वहीं पुनः सुदर्शनजीकी इनसे तथा नन्दकिशोर तिवारीसे भेंट हो गयी। प्रेमाधिक्य और घनिष्ठ मित्रता होनेसे पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी दोनोंको अपने घर आग्रहपूर्वक ले आये। श्रीशान्तनुविहारी द्विवेदीके स्नेहके संबंधमें सुदर्शन सिंहने लिखा है—

'श्रीशान्तुनविहारी द्विवेदी मेरे मित्र हैं, सब कुछ हैं। इनके लिये क्या लिखूँ, इन्होंने दो-तीन वर्ष तक अपने घर अपने सगे भाईसे भी बढ़कर प्रेमसे रखा है। अपने साथ भ्रमण कराया है। मेरे हठको रखा है, मेरी भूलोंको बिना ध्यान दिये सहा है। जब लिखता हूँ 'घर' तो उन्हींके घरसे अर्थ होता है। मेरे न घर है, न कुटुम्ब, न कोई स्थान'। वहीं कानूनगो श्रीझगरू सिंहसे भी मिलना हुआ।

अब पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजीके घरपर सत्संगकी गोष्ठी जुड़ने लगी। प्रातः ही कानूनगो झगरू सिंहजी धानापुरसे आ जाते। स्वामी गणेशानन्दजी अवधूत आ जाते। सुदर्शनजी तो वहाँ होते ही थे। ये सभी गीतकी भिन्न-भिन्न टीकाएँ लेकर बैठते। उनके अर्थ और तात्पर्यपर विचार करते। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी संस्कृतके विद्वान् थे। शब्दोंके नये-नये अर्थ कर देते, इससे कानूनगो झगरू सिंहजीकी संस्कृतमें रुचि बढ़ी। उन्होंने गीताके श्लोकोंसे ही व्याकरणके नियमोंको अच्छी तरह समझ लिया। वे वेदान्तके

ग्रन्थ भी पढ़ने लगे।

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी नित्य ही घरपर प्रातः नौ-दस बजेसे श्रीमद्भागवतकी कथा करते थे। प्रथम तो केवल उनकी माताजी ही श्रोता थीं, अब दूसरे श्रोता सुदर्शनजी भी हो गये थे। द्विवेदीजीकी माताजी आँखोंमें आँसू भरे आनन्दमग्न बैठी कथा सुनती रहतीं और सुदर्शनजीकी स्थिति थी— श्रीकृष्णचरित्र सुनकर बेसुध हो जाते। चार-चार, पाँच-पाँच घंटे तक उसी अवस्थामें पड़े रहते। नागपुरमें अपना देखा हुआ अनुज कनूँ स्मरण आते ही अथवा नाम लेते ही सम्मुख आ खड़ा होता और वे रोमांचित पुलकित देह, नेत्रोंसे धारा-प्रवाह अश्रु प्रवाहित होते कभी अपलक देखते रहते। अचकचाये-से, कभी आनन्दाधिक्यसे नेत्र बन्द हो जाते; किन्तु बन्द नेत्रोंके सन्मुख भी उन्हें अपना कन्हाई मुस्कराता दिखता। बाह्य-स्थिति तो प्रकट हो जाती पर मनकी स्थिति बताते ही नहीं थे। इनकी इस स्थितिपर स्वामी गणेशानन्दजी तो हँसी उड़ाते क्योंकि वे घनघोर वेदान्ती थे और कानूनगो साहब सुदर्शनकी मूर्च्छा और स्वामी गणेशानन्दजीका उपहास दोनोंमें सौम्य-शान्त बैठे रहते। उनका ज्ञान और भक्तिमें कोई आग्रह नहीं था। उन्हें परमात्माका चिन्तन ही अभीष्ट था।

कथाके बीच सुदर्शनजीकी मूर्च्छा, अश्रुपात, रोमांच कंटकित देह और हृदयकी सरसता देखकर माताजी बड़ी आनन्दित होतीं, इन्हें असीम स्नेह दिया करतीं। एक बार पं० द्विवेदीजीने सुदर्शनजीको प्रेमसे उपालम्भ दिया था—

'ऐसा लगता है कि घरके लोग और विशेष रूपसे माताजी मुझसे भी अधिक तुमसे स्नेह करती हैं।' सुदर्शनजी भी माताजीपर बहुत श्रद्धा रखते एवं आदर करते। माताजीने ही घरके लोगोंको और बच्चोंको सिखा दिया था कि सुदर्शनको 'भैयाजी' कहकर पुकारें। तबसे उस गाँवके तथा आसपासके लोग एवं पं० द्विवेदीजीका स्वजन-परिकर सब 'भैयाजी' ही कहने लगे। सुदर्शनजी कहीं चले न जायँ, इनका घरमें मन लगा रहे, यह सोचकर

माताजीने गहराईमें घरके पास रात्रि-पाठशाला भी खुलवा दी।

सुदर्शनजी कथाके पश्चात् ज्वार, बाजरा और अरहरके खेतोंमें जाकर घंटों एकान्तमें भजन करते रहते। कभी मूर्च्छित हो जाते तो कभी आकाशकी ओर निहारते रहते; कभी कण-कणमें व्याप्त सौन्दर्य-माधुर्य-निधिकी भुवन-मोहिनी लीला-विलासको निरखा करते—

कौन है इस सुषमा सार?
है चंचल सब जड़ चेतन जग किसके लिये अपार?
रजनीके इस तमस्तोममें किसका मंजुल मधुर प्रकाश?
व्याप्त रहा प्रत्येक कणोंमें किस चिर शिशुका विभव विलास?
कौन इस लीलाका आधार ।।1।।

किसका कोमल मधुर स्पर्श पा हो उठता है विश्व-विभोर?
किस सुखकी सुन्दर आशासे जाते सब अनन्तकी ओर?
किसे देनेको अपना प्यार।। 2।।

सुप्त जगत्के हृदय पटलपर, बनकर चित्रकार यह कौन?
खींच रहा सब स्वप्न चित्र है, अखिल प्रऔति है कैसी मौन?
कौन है इसका नाटककार।। 3।।

यह भ्रम मोह क्षणिक तृष्णामय क्यों सबने अपनाया?
अरे कहा क्या! इन्द्रजाल यह सारा जिसकी माया
वही तो नटखट नन्दकुमार ।। 4।।

सन् 1934 तक इनकी ऐसी स्थिति हो गयी थी कि जब कभी आकाशमें काले उमड़ते-घुमड़ते बादालोंको देखते तो देखते ही देहाध्यास छूट जाता। चेतना आते ही दौड़ पड़ते। बादलोंको ही अंकमें भर लेनेको भूतलपर और चातककी चाहको अपनेमें समा लेना चाहते—

ओ मेरे प्यारे घनश्याम!

आ!आ!!! अरे पुकार रहा हूँ आ! नव शोभाधाम!

कौन बताता तू निष्ठुर है,

मेरा तो तू ही जीवन है,

देख, शुष्क हो गया कंठ है प्यारे जल बिन तेरे,

तेरे बिना सहारा है क्या इन प्राणोंको मेरे।

कितने दिनसे प्यासा हूँ मैं।

राह तुम्हारी देख रहा मैं।

एक बिन्दु बस एक बिन्दु जलसे ही मेरा काम।। 1 ।।

ओ मेरे प्यारे घनश्याम।

तेरे बिना और जल मेरे आवेंगे क्या काम।।

हाँ सर सरिता-सागर सब है,

हैं वे जिनको उनको ही हैं।

मुझे भला उनसे क्या मतलब मेरे तो तुम प्राण,

मर जाऊँगा यदि न मनाओ यह चातकका मान।

और जीव मैं नहीं कहीं भी,

पी लूँगा जल जो कोई भी।

यदि जीवन रखना हो आओ मेरे ललित ललाम।। 2 ।।

ओ मेरे प्यारे घनश्याम।

मैं तो हूँ बस एक तुम्हारा मेरे प्राणाराम।।

बरसाओ पत्थर बरसाओ,

अंग-भंग कर मुझे मिटाओ।

चाहे जो भी करो किन्तु तुम एक बार आ जाओ,

एक बिन्दु जल इस प्यासेको मरते समय पिलाओ।

हाँ दे दो इतना ही दे दो,
और न चाह न तुम जीवन दो।
दे दो अपनी बाँकी-झाँकी जल जग जीवन-धाम।। 3।।

प्रातः पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी इन्हें अकेले नहीं जाने देते। टहलने भी साथ-साथ जाते। एक बार गाँवसे बाहर टहलनेके पश्चात् एक बड़े नालेके ऊपर पुलियापर बैठे थे। श्रीकृष्णके नाम तथा स्मरण मात्रसे मूर्च्छित हो गये और अचेतावस्थामें नालेमें गिर गये। पं० द्विवेदीजी कंकड़ोंपरसे खींचकर किनारेपर लाये। इसी प्रकार दो बार गंगामें ऊँचे कगारसे नीचे जा गिरे। ऐसे अवसरोंपर अक्सर पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी दीर्घ स्वरमें कानोंमें प्रणवका उच्चारण करते तब कहीं घंटों बाद चेतना लौटती।

एक बार टहलनेमें लौटते समय नागफनीका काँटा चुभ गया और तलवेको भेदकर पाँवके ऊपर निकल गया। चलते-चलते ठिठके तो पण्डितजीने पूछा— क्या हुआ?

'काँटा लग गया है' सुदर्शनजीने सहजभावसे कहा।

'किसी तरह चले चलिये—अब तो घर जाकर ही निकाल सकेंगे।'

पण्डितजीने कहा। प्रातः पूर्वका अँधेरा भी था।

रक्त रिसता रहा और ये बिना लँगड़ाये चलते रहे। घर आकर इन्होंने सँड़ासी माँगी तो पण्डितजी बोले— उसका क्या करेंगे?

'काँटा खींचना होगा' कहकर पाँव आगेकी ओर किया।

लहू-लुहान पैर देखकर पं० द्विवेदीजी चकित रह गये।

'कैसे चल पाये इतनी दूर तक?'

जब खींचकर काँटा निकाला गया तो रक्तकी धार छूट पड़ी।

बरबस पं० द्विवेदीजीके मुखसे निकल पड़ा—

'क्षत्रियत्व तेज ही इतना कष्ट झेल पाता है।'

योग-साधना

यहीं रहते हुए सुदर्शनजीका सन्तोंसे परिचय हुआ। पण्डितजीको सत्संगका व्यसन था और इन्हें पढ़नेका व्यसन। महराईमें ही रहकर कल्याणके प्रथम अंकसे लेकर 'शक्ति-अंक' पर्यन्त विशेषांकोंको पढ़कर सम्पूर्ण महाभारत पढ़ा— हिन्दी अनुवादके सहारे। मल्लिनाथ टीकाके सहारे कालिदासके ग्रन्थ पढ़े। स्वयं इन काव्योंको पढ़कर पल्लवग्राही परिचय प्राप्त किया। नौ-दस घंटे प्रतिदिन पढ़ते ही थे। दूर गाँवसे पण्डितजी इनके लिये ढेरों पुस्तकें उठा लाते थे।

यहीं साधन कालमें 'योग-दर्शन' के साथ 'शब्द-मार्ग' जिसे मध्यकालीन संत 'विहंगम मार्ग' कहते हैं— के विषयमें अध्ययन किया।

'प्रणव' और 'ध्यान' की साधना बिना गुरुके ही की। कल्याणके 'योगांक, और 'शक्ति-अंक' से कुण्डलिनीयोगका विवरण पढ़ा। साधनामें मन रमा किन्तु अष्टांग योगका साधन कड़ा है—लम्बा है, अतः इसमें रुचि नहीं जगी। बिना किसीको गुरु बनाये कभी कई महीने महराईसे एक मील दूर अरहरके खेत या सुनसान बगीचेमें आठ-आठ घण्टे बैठकर आज्ञाचक्रमें 'ध्यान' और 'शब्द-श्रवण' का अभ्यास करते। इस प्रयत्नमें 'शंखनाद', 'मेघ-गर्जन' सुनायी पड़ने लगा। पुस्तकोंमें जितना पढ़ा, उसके अनुसार कुण्डिलिनी आज्ञाचक्र भेदकर 'सहस्रार' तक जा चुकी थी। यह सब करने और इतनी सफलता प्राप्तिके पश्चात् भी यह परिणाम ही अन्तिम लक्ष्य है ऐसा भाव नहीं जगा।

मोकुलपुरके बाबाकी सन्निधि

सुदर्शनजीको न सत्संगकी इच्छा थी और न संतोंके समीप जानेमें हिचक। जहाँ-जहाँ पं० द्विवेदीजी जाते इन्हें भी साथ ले जाते। महराईसे आठ-नौ मील बलुआ नामका गाँव है। वहाँ गंगाजीकी धारा मीलों तक पश्चिम वाहिनीके रूपमें प्रवाहित होती है। वहाँसे गंगा पार करके तीन-चार मील चलनेपर

एक मोकुलपुर गाँव मिलता है। वहाँ एक महात्मा रहते थे। श्रीगोपीनाथ कविराजजीकी जीवनीमें उनका नाम 'टोरीवाले बाबा' लिखा है। यहाँ वस्तुतः उन्हें 'मोकुलपुरवाले बाबा' कहा करते थे। यह सिद्ध महात्मा थे। इनका जीवन अनुभवपूर्ण था। उनके लिये गंगाजीने अपने बीचमें स्थान दिया था। चारों ओर गंगाजीकी धारा बहती थी और बीचमें वह टीला था जिसपर बाबा रहते थे।

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी, कानूनगो साहब और सुदर्शनजी प्रायः इनके दर्शन करने जाया करते थे। उन सबसे बाबा कहते — 'चालीस वर्षसे मैं यहाँ गंगाजीके पेटमें रह रहा हूँ। परमार्थकी जिज्ञासासे कोई नहीं आया। अब तुम तीन व्यक्ति आने लगे हो। बाबा कहते— घाससे मांस बनता है अर्थात् जौ, गेहूँ, फल-फूल आदि वनस्पतियोंसे प्राणियोंका शरीर बनता है। मांस पुनः मिट्टीसे एक होकर घास बन जाता है। मांस और घास दोनों गंगा मैयाकी गोदमें बनते रहते हैं और बांगड (परमात्मा) निर्निमेष देखता रहता है। उसका इस बनने-बिगड़नेसे कोई संबंध नहीं है।'

ये शरीरमें ही पंचभूतोंकी उत्पत्ति दिखा दिया करते थे। एक बार बाबाने इन लोगोंको उपदेश दिया था कि 'सत्यका अनुभव कर्मसाध्य नहीं है। बिना कुछ किये तो इतना हो गया है तो कुछ करनेपर इससे छुट्टी कैसे मिलेगी?'

मोकुलपुरवाले बाबा निग्रह-अनुग्रह करनेमें समर्थ थे। इनमें सिद्धियाँ भी बहुत थीं; किन्तु इन तीनोंको सिद्धियोंमें कोई रुचि नहीं थी। सबके सब परमात्माके साक्षात्कारके लिये ही उत्कंठित थे। रविवारके दिन प्रातः उठते ही चौदह मीलके लगभग चलकर बाबाके पास जाते, सत्संग करते और सायंकाल चलकर रात तक लौट आते थे। यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा।

दो बार 'मोकुलपुरवाले बाबा' नावसे महराई आये। झगरू सिंह कानूनगोने उनके लिये सारी व्यवस्था और सेवाका प्रबन्ध किया। हजारों लोगोंकी भीड़

हो जाती। लोग अपना दुःख-दर्द दूर करनेके लिये आशीर्वाद लेते। बाबाका कहना था— 'सबमें सब है, प्रकृतिकी अनन्त शक्तियाँ एक तृणमें भी होती हैं, संकल्पसे वे जग जाती हैं।' उनका यह भी कहना था कि ब्रह्माकी और मच्छरकी आत्मा एक ही है, भेद सर्वथा मिथ्या है'।

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीने सुदर्शनजीसे बाबाकी सेवा करनेका अनुरोध किया और इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार धानापुरके पास गंगातटपर सुदर्शनजी बाबाके पास पूरे एक महीने कूसकी झोपड़ीमें रहे और जीवनमें केवल इन्हीं संतके पास रहकर इन्होंने बड़े प्रेमसे सेवा की। बाबा बनारसके आस-पासके गाँवोंमें बोली जानेवाली भाषामें उपदेश करते थे। ये बाबा लोगोंको प्रायः 'गुरु' कहते थे। किन्तु सुदर्शनजीको 'मास्टरवा' कहते। बाबाके चमत्कारोंसे लोग उनसे बहुत डरते थे, ऐसी प्रसिद्धि थी कि उनके रोषसे दो-तीन व्यक्ति मर चुके थे। उनकी बात काटनेका साहस कोई नहीं करता था; केवल सुदर्शनजी ही इसमें अपवाद थे।

बाबा पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीसे कहते—'यह मास्टरवा मुझसे तनिक भी नहीं डरता है।' एक दिन बाबाने सुदर्शनजीकी सेवासे प्रसन्न होकर पूछा— 'तुझे क्या चाहिये? माँग ले। सुदर्शनजीकी मुखाकृति तो माँके समान सौम्य और स्वभाव पिताके समान तेजस्वी, अतः इन्होंने विनम्रतासे ही उत्तर दिया— बाबा आप संत हैं, आपकी सेवा करना मुझे अच्छा लगता है, इसीलिये करता हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मुझे माँगना नहीं आता और मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिये। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीको बाबासे कुछ प्रश्न करना होता, पूछना होता तो वे एक दिन पहले सुदर्शनजीसे कह देते। जब बाबा शौचके लिये जाते और सुदर्शनजी उनका बड़ा-सा लोटा लेकर साथ चलते तब पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी द्वारा पूछा गया प्रश्न वे बाबासे कर देते और बाबा उस प्रश्नका उत्तर साँझके सत्संगमें दे देते।

दिनमें तो माताजी आकर भोजन बनातीं। शान्तनुविहारी द्विवेदी, बाबा और सुदर्शनजीको भोजन करातीं। शामको सब चले जाते। प्रातः सुदर्शनजी रातको बाबाके लिये खिचड़ी बनाते।

एक दिन झोपड़ीसे बाहर उपले सुलगा कर सुदर्शनजीने खिचड़ी चढ़ा दी। तेज गर्मीका मौसम था। खिचड़ी आधी पक चुकी थी कि अचानक बाबाने आदेश दिया– खिचड़ी झोपड़ीमें बनाओ। सुदर्शनने आदेश अनुसना कर दिया क्योंकि अत्यधिक गर्मीमें भीतर आग जलाना और अधिक गर्मीको निमंत्रण देना था। हवाके बन्द रहनेसे उनकी देहपर बाहर रहनेपर भी पसीनेकी धाराएँ बह रही थीं। बाबाने जब बार-बार कहा और नाराज़ होने लगे तो सुदर्शनजीने खिचड़ीका बर्तन उतार कर जमीनपर रख दिया। अब बाबाने स्वयं झोपड़ीमें उपले सुलगाये और खिचड़ी चढ़ा दी। कुछ मिनट ही बीते होंगे कि तेज वर्षा और उपलवृष्टि होने लगी। सुदर्शनजीको आश्चर्य हुआ कि अभी तो आकाश साफ था – न बादल, न बिजली। पाँच मिनटमें ही यह वर्षा कहाँसे आ गयी। खीजकर बोले – बाबा! आपने यह क्यों नहीं बताया कि वर्षा होनेवाली है तो प्रथम बार कहनेपर ही रख देता' बाबा मुस्करा कर रह गये। दोनोंने चुपचाप भोजन कर लिया।

दूसरे दिनके सत्संगमें बोले – गुरु! यह मास्टरवा मुझसे डरता तो है नहीं, उलटे मुझे भी पढ़ा देता है। जब मै पूछता हूँ कि तू मेरे बिगड़नेपर डरता क्यों नहीं है? तो मुझसे ही कह देता है– जो बिगड़ेगा वह स्वयं ही तो बिगड़ेगा, मेरा क्या बिगाड़ेगा जो मैं डरूँ।

बात तो सच है ही– वह सर्वेश्वर, जिसका लाड़ला अनुज है, उसे किसीसे भयभीत होनेकी क्या आवश्यकता है? महाकालको भी उसे डरानेके लिये एक बार तो विचार करना होगा।

एक महीने पश्चात् बाबा तो मोकुलपुर चले गये और सुदर्शनजीको पं० द्विवेदीजी अपने घर महराई ले आये।

स्वामी योगानन्दका सान्निध्य

महराईसे पाँच-छः मील दूर गंगातटपर 'सहेपुर' गाँव है। वहाँ स्वामी योगानन्दजीकी कुटिया बनी थी। गाँवके लोगोंने नियम बाँध रखा था बारी-बारीसे उनके लिये भिक्षा प्रतिदिन आ जाया करती थी। बड़ा-सा बागीचा था। पासमें गंगाजीका पावन तट था। भव्य दिव्य शरीर, प्रसन्न गम्भीर वाणी, वेदान्तका ज्ञान और अपने गुरु नित्यानन्दपुरीजीकी अनन्य उपासना करते थे। वे कहते थे— मेरे गुरुके चित्रपटमेंसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता प्रकट होकर मुझे दर्शन दिया करते हैं। श्रीमद्भागवतपर हृदयग्राही प्रवचन करते। श्रीरामकृष्ण परमहंसजीकी परम्परामें थे। पं० द्विवेदीने उनसे श्रीकृष्ण मंत्रकी विधि पूर्वक क्रियावती दीक्षा ली थी। उन्होंने पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीपर शक्तिपात और अभिषेक-अनुग्रह किया था। सुदर्शनजी भी इनके सत्संगमें सदा भाग लेते रहे।

मघईपुरके बाबा

वाराणसीके शिवपुर स्थलसे करीब ढाई मील दूर 'मघईपुर' नामका गाँव हैं। यहीं मघईपुरवाले बाबाकी जन्मभूमि थी। जन्मभूमिके गाँवसे बाहर आमके एक बगीचेमें पक्की कुटियामें बाबा रहते थे। दिनभरमें तौलकर एक छटाँक रोटी-सब्जी जो उनके सगे भाई लाते, कुटियामें रखा लेते और कुटिया बन्द कर लेते। दूसरे दिन प्रातः आठ बजे कुटिया खोलते। बाबाका शरीर तो अत्यन्त दुबला था; पर सशक्त थे। मील-दो मील दौड़ लेते। कहीं नर्मदाके किनारे कटनीके पास किसी गुफामें बन्द करके इनके गुरुने ग्यारह वर्ष तक साधना करायी थी, जिसमें सूर्य-दर्शन भी नहीं होता था। उस महात्माने ही इनके मल-मूत्र विसर्जन, भिक्षा आदिकी व्यवस्था अपने जिम्मे ले ली थी। साधनाके पश्चात् पुनः अपने गाँव लौट आये थे। इनके ज्ञानपरक एवं भक्तिपरक उपदेश बड़े मार्मिक होते। इनका सत्संग करना सुदर्शनजीको बहुत रुचिकर था।

झगरूसिंह कानूनगोने इन्हीं महात्मासे दीक्षा ली थी।

कनखलके भिक्षु शंकरानन्दजीका सान्निध्य

भिक्षु शंकरानन्द बड़े तितिक्षु महात्मा थे।

चौबीस घंटेमें एक बार भोजन करते और दो बार जल पीते। उनके कमरेमें दो या तीन चटाई, कुछ बोरे और कमण्डलु-कौपीनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। रातको शीत लगनेपर बोरे ही ओढ़ लेते। इनका शरीर गुजराती था। 'शंकर-वेदान्त' में इनकी दृढ़ निष्ठा थी, और वेदान्तका ही उपदेश करते थे।

गर्मियोंमें प्रायः पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी और सुदर्शनजी कनखल जाते और प्रतिदिन दो घण्टे भिक्षु शंकरानन्दजीके यहाँ बैठते। श्रीद्विवेदीजी और शंकरानन्दजीके सत्संगके बीचमें यदा-कदा एक-दो बात सुदर्शनजी भी बोल देते यदि बात प्रायः वेदान्तकी चलती प्रक्रिया-सम्बन्धी कोई बात होती। इनकी बात सुनकर महात्मा अत्यन्त प्रसन्न होते। वे बार-बार सुदर्शनजीसे आग्रह करते कि 'तुम कुछ लिखो।' उन्होंने पं० द्विवेदीजीसे भी बार-बार कहा— 'तुम कागज-कलम देकर इसे एक कमरेमें बन्द कर दो। यह लिखेगा तो बहुत सुन्दर लिखेगा'।

सम्भवतः संतका यही संकल्प सुदर्शनजीके लेखक बननेकी भविष्यवाणी थी। भिक्षु शंकरानन्दजीने दो बार आग्रह किया कि 'विचार-सागर' पढ़ो, लेकिन सुदर्शनजीका मन इसे पढ़नेका नहीं हुआ।

महराई रहते हुए सुदर्शनजीने 'विशारद' और 'साहित्यरत्न' के कुछ विद्यार्थियोंको पढ़ाया। गोस्वामीतुलसीदासकी भारी भूमिका भी लिखी। 'कृष्ण गीतावली' की टीका भी लिखी। पीछे इस भूमिकाको स्वयं ही नष्ट कर दिया परन्तु 'कृष्णगीतावली' टीकासहित 'मानसमणि' में प्रकाशित हुई तत्पश्चात् गीताप्रेस, गोरखपुरसे छपी।

गर्मियोंमें दो महीनेको सुदर्शनजी पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीके साथ कनखल,

हरिद्वार जाते ही थे। वहाँ कनखलमें महामण्डलेश्वर स्वामी भागवतानन्दजीके यहाँ ठहरते थे। वहींसे ऋषिकेश जाकर कैलाश आश्रममें भी पन्द्रह दिनके लिए रुके।

ऐसी ही यात्रामें गर्मियोंके दिनमें 'कैलाश आश्रम' में रुके थे। यहाँ रहकर 'रामकृष्ण पुस्तकालय' की पुस्तकें पढ़ते थे। यहीं प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'चैतन्य-चरितावली' तथा 'कल्याण' के सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा लिखित 'नैवेद्य' पढ़नेको मिली।

प्रेम-वैचित्र्य

'नैवेद्य' पुस्तकके पढ़नेसे मनको एक निश्चित दिशा मिली— श्रीकृष्ण-प्राप्ति ही जीवनका लक्ष्य है। यों तो बहुत पुस्तकें पढ़ी थीं, ग्रन्थ भी पढ़े थे और पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीके साथ सन्तोंका दर्शन-सत्संग भी प्राप्त किया। श्रीकृष्णके प्रति आकर्षण भी था, स्नेह भी था, अनुभव भी थे, किन्तु अभी तक लक्ष्यबिन्दुका संधान नहीं था। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी वेदान्ती थे, साथी भी सभी वेदान्ती थे, अतः वेदान्त-विचार भी होता-रहता था, फिर भी चित्तकी एक अज्ञात धारा भक्तिकी ओर प्रवाहित रहती। इसी कारण सदा ही श्रीकृष्ण-नाम और श्रीकृष्ण-चर्चा ही प्रिय लगती। लक्ष्य संधान किया— 'नैवेद्य' और 'चैतन्य-चरितावली' ने।

सुदर्शनजीको बुद्धिने सुझाया— तू न ध्रुवके समान तप कर सकता है, न वाल्मीकिके समान एकाग्रचित्तसे दीर्घ कालतक जप, तुझमें प्रह्लादके समान न निष्ठा है और न मीराके समान प्रेम। श्रीकृष्णके प्रति तुझमें उत्कट प्रीति है ही कहाँ? यह सब सोचते-सोचते सब ओरसे उनका मन निराश हो गया क्या मुझे श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी? तब हताश मनको प्रबोध देने लगे—

ओ मन! एक बात सुन मेरी,
और मान चुपचाप शीघ्र ही, लगा न किंचित देरी।

ढूँढ़ रहा मैं व्याकुल मनसे,
कितने युग कितने वर्षोंसे।।
साधन, ध्यान न होगा मुझसे,
उस नटखटसे हार थका मैं किन्तु न उसको पाया।। 1।।
फिर भी मेरा जीवन धन है,
उसके बिना शून्य जीवन है।।
क्या न प्राप्त कर सकता उसको,
तब चरणोंकी ही आशासे दे दो बस अपनी पद रजको।। 2।।
हाँ रोओ अब व्याकुल होकर,
बहो बहो तो आँसू बनकर।।
निश्चित कभी यहाँ वह आकर,
अपना लेगा पिघल उठेगा जीवन-धन ब्रजराज।। 3।।

उन्हें जीवन व्यर्थ लगने लगा। हरिद्वारमें इन्हीं विचारोंमें खोये-खोयेसे रहने लगे। इन दिनों शान्तनुविहारी द्विवेदीके साथ ही हरिद्वार, ऋषिकेशकी ओर एक दिन दोनों मित्र निकल पड़े। दोनों एक-एक धोती मात्र पहने थे। उसी उन्मादावस्थामें एक दिन गंगाजी तैरकर पार की। उस ओर पहुँच गये। उस पार सघन वन और कंटीले वृक्षोंका बाहुल्य था।

निराशाकी प्रबलताने सुदर्शनजीके चित्तमें दावानल सुलगा दिया था। उनके विरहका वर्णन अशक्य है। बार-बार पृथ्वीपर गिर पड़ते थे और मूर्च्छित हो जाते। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीने सुदर्शनजीका सिर अपनी गोदमें ले लिया। देखते-देखते उनका शरीर और मुख ऐसा काला होता चला गया— जैसे तवाके पीछेका भाग। शान्तनुविहारी द्विवेदीजी घबड़ाये और सिर नीचे ज़मीनपर रखकर अपनी आधी धोती गंगाजलमें भिगो लाये और उसे सुदर्शनजीके मुखपर निचोड़ देते थे और गीला भाग ओढ़ा देते। कुछ ही

मिनटमें धोती सूख जाती। तब पुनः भिगोकर ऐसा ही करते।

धीरे-धीरे शरीर, मुखकी कालिमा घटने लगी तो इसके विपरीत होने लगा कि मुख गौर वर्ण होते-होते प्रकाशसे चमकने लगा कि आँखें नहीं ठहरतीं। कुछ देरमें पुनः कुछ सामान्य हुए तो आँखें खोलीं और उठकर हा कृष्ण! हा कृष्ण!! कहते हुए खड़े होकर पागलोंकी भाँति जो वृक्ष दिखे उसीको आलिंगन करने लगे– इन्हें तो वृक्षके स्थानपर मेघश्याम, पीतवसन भुवन-सुन्दर मयूर-मुकुटी ही दिख रहे थे, अतः सँभालनेके लिये बार-बार पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी सामने जा जाते। ये उन्हें ही गाढ़ आलिंगनमें बाँध लेते। कँटीले वृक्षोंके आलिंगनसे छाती रक्त-रंजित हो गयी। अश्रुसिक्त मुख हा श्यामसुन्दर! कहते-कहते बार-बार पृथ्वीपर गिर पड़ते। तब पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी कानमें मुख लगाकर उच्चस्वरमें प्रणवका उच्चारण करते, बहुत देर लगी इस अवस्थासे उबरनेमें। चेतना आते ही कंठसे प्रणवका उच्चारण स्वतः होता। सूर्यास्त ही नहीं, रात्रि हो चुकी थी जंगलके पशुओंकी आवाजें आने लगीं, तब कहीं सचेत होकर दोनों तैरनेके लिये धारामें कूद पड़े पर जल अधिक होनेसे धारामें बहने लगे।

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीको तैरना आता नहीं था। सुदर्शनजी बड़ी कठिनाईसे उनका हाथ थामे तटपर आ सके।[1]

प्रातःकालके निकले दोनों रात्रिके प्रथम प्रहरमें भूखे-प्यासे, हारे-थके अपने निवासपर लौटे किन्तु स्थिति प्रेमवैचित्र्यकी ही रही। शय्यापर लेटे हुए ही भागवत सुनते रहे। पं० द्विवेदीजी पग-पगपर सँभालते अन्यथा उनकी देहका न जाने क्या होता?

1. यह संस्मरण अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी महाराजने कई बार आनन्द वृन्दावनमें स्वयं सुनाया था।

दिव्य घटना

ऋषिकेशसे घर लौटकर भागवत श्रवण करते तो श्रीकृष्णका रूप वर्णन सुनते ही संज्ञा-शून्य हो जाते। धीरे-धीरे गम्भीर होते गये। इसी क्रममें पहले साधु-संतोंके यहाँ जाना-आना होता। एक बार दोनों ही एक लम्बी यात्रापर निकले। आंध्र और उड़ीसाकी पैदल यात्रा समाप्त कर बिहारमें भ्रमण कर रहे थे। तपोवनसे राजगिरि आये। वहाँसे पैदल ही प्रातःकाल चलकर दोपहरमें विहार शरीफमें आये। साथमें भोजनकी व्यवस्था तो थी नहीं; किन्तु वहाँ छात्रावस्थाके मित्र व्याकरणाचार्यजी श्रीशाहीजी मिल गये। उन्होंने बड़े प्रेमसे भोजन कराया। दोपहरके बाद चलनेपर कहीं भी ठहरनेको स्थान नहीं मिला। लोग सड़कपर या पेड़के नीचे सोने नहीं देते थे। गाँवमें मंदिरसे धर्मशाला भेज देते, वहाँ रुचिकर नहीं लगा। अंतमें हारकर बिहार लाइट रेलवेके किसी स्टेशनपर रात्रिके ग्यारह बजे पहुँचे। गाड़ियाँ आ-जा चुकी थीं। आस-पास कोई दुकान-मकान नहीं थे। मीलों तक बस्ती नहीं थी। यह घटना वर्ष 1934-35 की है। थककर चूर-चूर हो रहे थे। खाने-पीनेकी कोई विधि नहीं। सब लोग सो गये थे मुसाफिरखानेमें। ये दोनों बाहर खुलेमें तनिक सबसे हटकर एकान्त स्थलपर चादर बिछाकर सोनेके लिए लेटने ही वाले थे कि दो किशोर बालक उपस्थित हुए—गौर-श्याम वर्ण, स्वच्छ वस्त्र। रात्रिमें भी उनके शरीरसे कान्ति तेजोमय झिलमिला रही थी।

उन्होंने दोनोंसे पूछा—कुछ खाओगे? 'यहाँ क्या मिल सकता है' —इन्होंने पूछा। वे दोनों ही पाँच मिनटमें दो दोनोंमें भरकर खोया ले आये।

'तुम दोनों कहाँ रहते हो?' इन्होंने पूछा।

'यहींपर।'

दोनों क्षणभरमें चले गये। प्रातःकाल उठकर पता लगाया; किन्तु आसपास मीलों तक न कोई गाँव, न गृहस्थ और न ऐसे बालक।

पुनः दोनों अपने घर महराई लौट आये। सुदर्शनजीने नियमित सत्संगके पश्चात् पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीसे भागवत पढ़ानेका आग्रह किया। पहले तो सोचा कि विद्वानोंकी कहावत है— **'विद्यावतां भागवते परीक्षा'**। विद्वानोंकी परीक्षा भागवतसे होती है और सुदर्शनजी तो भागवतसे ही पढ़ना प्रारम्भ करना चाहते हैं, फिर भी उनका मन रखनेके लिए पढ़ाना प्रारम्भ किया। प्रथम दिवसके अध्यापनमें ही हार गये, बोले—पहले तुम 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' पढ़ो।

इस बातपर सुदर्शनजी बोले—व्याकरण और व्यायाम दोनों ही मुझे अरुचिकर हैं; अब मैं आपसे नहीं पढ़ूँगा।

झूँसीके नामानुष्ठानमें

नित्यका सत्संग चलता रहा। इसके पश्चात् दोनोंने घरसे चलनेकी योजना बनायी। महराईमें ही पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीको ज्वर आने लगा। कई दिन आया था। एक दिन तो मूर्च्छित हो गये। ठीक होनेपर घरमें तो कह दिया कि चिकित्साके लिये वाराणसी जा रहे हैं। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी एवं सुदर्शनजी दोनोंकी ही घर लौटनेकी इच्छा नहीं थी। दोनों मित्र वाराणसीसे प्रयाग आये और वहाँसे श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीके यहाँ झूँसी पहुँचे। उनसे तीन-चार दिन रहनेकी आज्ञा माँगी। वहाँ अखण्ड संकीर्तन, कथा-वार्ता चल रही थी। ब्रह्मचारीजीने आग्रहपूर्वक कहा—तुम लोग छः महीने तक रहो। दोनों मित्रोंने आपसमें परामर्श करके रहना स्वीकार कर लिया। झूँसीमें वर्तमान अनुष्ठानका प्रथम सत्र पूरा होने जा रहा था और छः महीनेका दूसरा सत्र दो-तीन दिनमें आरम्भ होनेवाला था।

सन् 1935 ई० में हुए इस नामानुष्ठानमें '**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हर**' की 63 माला प्रतिदिन जप करना आवश्यक था। चार घंटे सम्मिलित कीर्तन, शेष तीन घंटे दिन-रातमें

एक-एक घंटेका नम्बर आता। यह अखण्ड संकीर्तन था।

सब साधक मौन रहते थे, अति आवश्यक होनेपर लिखकर बात कर लेते।

भोजन दो बार—दोपहर और रातको, जिसमें दूध और हल्के तले हुए आलुओंमें नमक डाल कर दिया जाता। एकादशीको केवल दूध मिलता।

पं०शान्तनुविहारी द्विवेदीजी, सुदर्शनजी और एक मारवाड़ी सज्जन पुरुषोत्तमदास सिंघानिया तीनों एक ही कमरेमें रहते थे। यह अनुष्ठान गंगा किनारे एक चौबेजीके मकानमें चल रहा था। ब्रह्मचारीजी हंसतीर्थमें संध्यावटकी कुटियामें रहते और प्रातः संकीर्तनमें आ जाते।

सुदर्शनजी यहाँके सभी नियमोंका कड़ाईसे पालन करते। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी तो यहाँ कथा करने लगे थे। यहाँ रहते हुए भी दूसरी बार सुदर्शनजीको वैराग्य जाग्रत् हुआ, उसी आवेशमें तप करने निकल गये। गंगा किनारे चलते-चलते संध्या हो गयी। तेज ठंडी हवा चलने लगी। सर्दीके दिन थे। केवल एक धोती पहन कर चले आये थे। यह जानते ही नहीं थे कि शीतमें त्यागका आरंभ कैसे किया जाता है। एक नालेके समीप ओटमें खड़े होकर रात व्यतीत की। पैरोंमें बबूलके काँटे चुभ गये थे। अतः प्रातः संकीर्तन-स्थलपर लौट आये। सुदर्शनजीने तब अनुभव किया—कच्चा सामयिक वैराग्य साधकको कहींका नहीं छोड़ता, अतः जब तक तीव्र वैराग्य द्वारा शरीरसे भी उपरामता न हो जाय, घर छोड़ना उचित नहीं।

छः महीनेके अन्तिम दो महीनेमें श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीसे अनुमति लेकर सुदर्शनजी उसी भवनकी गुफामें अकेले रहने लगे। इन दो महीनोंमें सर्दी लग जानेसे इन्हें ज्वर आता रहा, फिर तिजारी ज्वर आता रहा। केवल श्रीकृष्णनामका श्रवण करते ही निरन्तर आनेवाली मूर्च्छित होनेकी स्थिति संकीर्तनमें निरत रहनेसे स्वतः चली गयी और स्वतः चला गया तिजारी

ज्वर।

'अखण्ड संकीर्तन अनुष्ठान' पूरा होते ही पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी तो प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीके साथ प्रयाग-परिक्रमामें निकल गये।

आजीविकाका निश्चय

झूँसी रहते हुए ही सुदर्शनजीने किसीसे सुना था कि प्रभुदत्त ब्रह्मचारीको 'चैतन्य-चरितावली' के पारिश्रमिकके रूपमें पन्द्रह रुपया गीताप्रेससे हर महीने मिलता है और उसीसे अपना काम चलाते हैं। यह बात इन्हें बहुत अच्छी लगी और तभी इन्होंने मन-ही-मन लेखन कार्यको जीविका बनानेका निश्चय किया; क्योंकि कलकत्तेकी नौकरीका बहुत कड़ुवा अनुभव था। किसीके अधीन होकर काम करना स्वाभिमानी सुदर्शनजीके लिये असम्भव था। पढ़ने-लिखनेका व्यसन बचपनसे था। रुचि और जीविका एक ही हो, तो जैसे सोनेमें सुगन्ध मिल जाती है। अतः यह निरापद उपाय ही अपनाया। झूँसीमें रहते हुए ही इन्होंने जो कविताएँ लिखी थीं, वे पत्र-पत्रिकाओंमें छपने लगी थीं। कई पद एवं कविताएँ कल्याणमें भी छपीं। झूँसीमें ही अपने श्यामसुन्दरसे इन्होंने दो इच्छाएँ प्रकट कीं, प्रथम— मैं तुम्हें नित्य एक अध्याय भागवत सुनाऊँगा। तुम मुझे भागवत पढ़ा दो।

द्वितीय, मुझे आजीविकाके लिये लेखन-शक्ति दे दो, जिससे स्वाधीन जीवन व्यतीत कर सकूँ। सचमुच, उनके कन्हाईने उनकी दोनों इच्छाएँ पूरी कर दीं और ये जीवनपर्यन्त उन्हें भागवत सुनाते रहे।

वृन्दावनकी ललक

महराईमें रहते हुए सुदर्शनजीके मनमें बार-बार वृन्दावन जानेकी ललक उठती, किन्तु पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी प्रेमपूर्वक घरपर रोक लेते थे। किन्तु झूँसीके नामानुष्ठानके समापनपर जब वे ब्रह्मचारीजीके साथ प्रयाग परिक्रमाको

निकले वैसे ही सुदर्शनजीने अपने चिर प्रतीक्षित घर वृन्दावन जानेका निश्चय कर लिया। इस निश्चयके साथ ही उनके भावविह्वल प्राण गा उठे—

ब्रज कैसो धाम ब्रजराज अपनो सुघर स्याम,
कलित कलिन्दिता सो कूल कहाँ पाइहौं?
सघन तमालनकी, छइयनमें बैठि-बैठि,
कितहूँ वा कन्हैयाकी गइयन चराइहौं?
गुंजनिके पुंज अरु पुहुप कदम्बनिके,
गूँथि-गूँथि मंजुल बनमालै पहिराइहौं।
रह्यो करैं होइ हैं साकेत-स्वर्ग-गोलोक,
हौं तौ इन करीलनकी कुँजनि बसाइहौं।।

झूँसीके उत्सवमें भाग लेनेको लखनऊसे मिट्ठनलालजी भी झूँसी आये थे और वे सुदर्शनजीके कमरेमें ही ठहरे थे। इन्हें जब ज्ञात हुआ कि सुदर्शनजी वृन्दावन जाना चाहते हैं तो उनसे लखनऊ होते हुए वृन्दावन जानेकी प्रार्थना की। अतः मिट्ठन लालजीके साथ पहले लखनऊ आये और उन्होंने मथुराका टिकट दिलाकर ट्रेनमें बैठा दिया।

मथुरा स्टेशनसे ही अपने जाने कबसे बिछुड़े वृन्दावनकी ओर अकेले और पैदल चल दिये। मस्तीमें पैर कहीं-के-कहीं पड़ रहे थे। मार्गमें करीलकी कुंजें और पथके दायें-बायें झुकी हुई वृक्षावलियाँ देखकर पुकारने लगे अपनी चिर अभिलषित भिक्षाके लिये—

दे दो जीवन-धन यह भिक्षा।
बहुत देर हो चुकी दयामय कब तक करूँ प्रतीक्षा
वृन्दावनकी पुण्य भूमिमें,
कालिन्दीके ललित पुलिनमें
तरु कदम्बकी शुचि छायामें,

बैठ तुम्हारे पद पंकजमें
ग्रहण करूँ तेरे भक्तोंसे परम प्रेमकी शिक्षा।। 1।।
गोपी चरण रेणु नित पाऊँ,
पापताप सब दूर भगाऊँ,
बना मत्त तेरे गुण गाऊँ,
एक भरोसा तब करुणाका—
क्या न अभागा मैं पाऊँगा प्रेम-मंत्र की दीक्षा।। 2।।
सींच रहा हूँ द्वार अश्रुसे,
तेरा यह भिक्षुक प्रिय! कबसे,
उठा लगा ले मुझे हृदयसे,
पोंछे आँसू पीताम्बरसे
रहूँ यहीं ब्रजमें ही प्यारे यही एक बस इच्छा।। 3।।

सोचते हुए एक स्थानपर विश्रामके लिये बैठ गये। विश्राम करके उठे ही थे तब तक एक वैष्णव साधु साथ हो लिये। आगे चलकर विश्रामके लिये दोनों कुएँपर बैठे। साधुने अपनी झोलीमेंसे उबले हुए मसालेदार चने निकाले और सुदर्शनजीको भी दिये। उन्होंने सोचा कि मेरे खानेसे साधु भूखा रह जायगा, अतः मना कर दिया। साधुने हँसते हुए झोली दिखाते हुए कहा—देखो! कितने सारे चने हैं। मैं तो सोच रहा था कि इतने चनोंका मैं क्या करूँगा? अब पता लगा कि मेरे ठाकुरने तुम्हारे लिये भेजे हैं। कुएँपर बैठकर दोनोंने जलपान किया और दोनों साथ-साथ चल पड़े। साधुने पूछा—क्या पहली बार वृन्दावन जा रहे हो? वृन्दावनमें कहाँ ठहरोगे? कुछ ठिकाना है?

'नहीं, कहीं भी रह जाऊँगा।'

'तब मेरे पास ही ठहर जाना।' साधुने स्नेहपूर्वक कहा— 'क्या नाम है तुम्हारा?'

'सुदर्शन सिंह'।

'क्या ठाकुर हो?'

'हाँ'– संक्षिप्त उत्तर दे दिया।

सुदर्शनजीने यह नहीं पूछा कि साधुका नाम क्या है? वह किस सम्प्रदायका है? वृन्दावन पहुँचकर ज्ञान-गुदड़ीमें उसकी कुटियामें रह गये। शामको भी वहीं भोजन किया और सो गये।

प्रातः होते ही यमुना-स्नान करके व्रजके आराध्य अपने प्राणधन बाँके बिहारीजीके दर्शन करके निहाल हो गये। वृन्दावनमें अकेले ही घूमने लगे; कभी यमुना तटपर, वंशीवटके केशी घाटपर और जगन्नाथ घाटपर अकेले विचरते रहते। जगन्नाथ घाटके एक बरामदाको अपना विश्राम-स्थल बना लिया। आँखें लीलादर्शनमें लीन रहतीं। आँखोंमें प्रेम और मनमें श्रीकृष्ण-स्मृतिका नशा छाया रहता। बिना माँगे कहीं-न-कहींसे कोई-न-कोई भोजन पहुँचा देता था। उनका अनुज अपने 'दादा' को भूखे रखनेका प्रमाद कैसे कर सकता था भला? तीसरा दिन बीत गया तब कहीं चौथे दिन सुदर्शनजीको ध्यान आया – अरे! मेरे लिये मेरा सुकुमार कन्हाई भोजन व्यवस्थाके लिये इतना श्रान्त हो रहा है? ऐसे तो यह जीवन भर खिला सकता है पर क्या सुकुमार नन्हा-सा कनूँ क्या सेवा लेने योग्य है? नहीं ...... नहीं, इसे इतना कष्ट नहीं दिया जा सकता।

पाँचवें दिन मंदिर जाते समय इनकी भेंट इन्द्र ब्रह्मचारीसे हो गयी जो प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीके साथी थे। वे नामानुष्ठानके लिये झूँसी भी गये थे। वे वृन्दावनमें 'भजनाश्रम' से निकलनेवाले पत्र 'श्रेय' के भागवत-अंक' का सम्पादन कर रहे थे। 'श्रेय' का कार्यालय पत्थरपुराके भजनाश्रममें था। एक साधु इस कार्यालयमें रहते और व्यवस्था करते थे। ब्रह्मचारीने सुदर्शनजीको आग्रह पूर्वक उस साधुके पास रख दिया। वह स्थान एकान्तप्रिय सुदर्शनजीको

रुचिकर नहीं लगा और वृन्दावनकी परिक्रमा करने चल दिये। चलते-चलते वृन्दावन परिक्रमामें गुरुकुल के पीछे विश्राम करनेके लिये श्रीधर गोस्वामीकी कुटियाके चबूतरेपर बैठ गये। उस समय गोस्वामीजी वहीं खड़े थे– जैसे किसीकी प्रतीक्षा कर रहे हों। तनिक नेत्र बन्द किये और दो मिनटमें ही नेत्र खोलकर हँसते हुए बोले– अरे! तू आ गया? मैं तो तेरी प्रतीक्षा कर रहा था। मेरी किशोरीजीने तुझे भेजकर मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली कि कुटियाकी रखवालीके लिये किसीको भेज दें। बिना कुछ विशेष परिचय लिये सुदर्शनजीको गोस्वामीजीने कुटियाकी चाबी पकड़ाते हुए कहा–मैं तो तीर्थयात्रापर जाना चाहता हूँ, तुम इसी कुटियामें जब तक चाहो रहो। सुदर्शनजी इस कुटियामें छः महीनेसे भी अधिक रहे। यहाँ जमुना किनारे इनकी मैत्री बन्दरों, मयूरों और गायोंसे हो गयी। छोटे-छोटे बछड़े भी बहुत प्रिय लगते थे। अपने घरकी भाँति कहीं भी चले जाते, जहाँ मन होता विचरते रहते। परिक्रमा मार्गमें कहीं भी बैठ जाते। यमुनाकी बालूमें बैठे-बैठे घंटों उसकी धाराको निहारा करते और गुनगुनाते लगते–

यही एक लालसा हृदयमें,
लोटूँ एक बार विह्वल हो प्यारे तेरे चरण कमलमें।
कालिन्दीका ललित पुलिन हो,
वह तेरा प्रिय वृन्दावन हो
कूद रहे हों कपि डालोंपर देते हों सुन्दर किलकारी।
नाच रहे हों मत्त केकिगण लख जलधर द्युति गुंज तुम्हारी।।
मृगशिशु निडर केलि करते हों,
वन विहंग खग मन हरते हों
गायें सुखसे चरती होवें, मृदु श्यामल तृण पाइ निकटमें।। 1।।
यही लालसा एक हृदयमें,

तुम ही तुम बस रह जाओ मेरे सूने अन्तस्तलमें।।
हो पुलकित गद्‌गद तन सारा,
देख सुहावन वेश तुम्हारा,
अश्रु गिराते भूल देह सुधि गिरूँ चरणपर तेरे।
मुरली अलग डाल झुक जावें पकड़े करको मेरे।।
तेरे युग-कर मुझे उठा लें
और सदाको ही अपना लें
तब फिर गूँजे वंशीकी धुनि मन मोहन त्रिभुवनमें।। 2।।
यही लालसा एक हृदयमें
बीते जीवन सुभग सुहावन उन करील कुंजोंके गृहमें
नित यमुना जल मिले पानको,
कालिन्दी ही अवगाहनको
ब्रजके चिथड़े वस्त्र बनाऊँ मधूकरी टुकड़े भोजनको।
दर्शन पाऊँ संत जननके आते जो तेरे दर्शन को।। 3।।

वृन्दावनकी पावन वीथियोंमें विचरण करनेवाले, प्रेमरसमें छके पागलोंका कहीं अभाव नहीं रहा है। इस प्रेमकी भूमिकी रजमें कुछ ऐसी मादकता है। प्रेमके देव इस रजमें स्वयं नृत्य करते हैं, इधर-उधर दूसरोंकी दृष्टि बचाकर उसे चख भी लेते हैं। आज भी भावुक भक्त नित्य लीलाका दर्शन पाते हैं। एक दिन सुदर्शनजीको किसी ग्वालबालने छेड़ दिया– **बाबरे हम तोय रोटी ना है तो कहा खाइगो**। सुदर्शनजी भी मस्तीमें कह गये– जाको घर है वाकूँ तो खवाननी परैगी। कहनेको तो कह गये किन्तु हृदयमें टीस उठी कि मेरा प्यारा कन्हाई क्या सेवा लेने योग्य है? नहीं-नहीं, वह अति सुकुमार है।

मंत्र-दीक्षा

सुदर्शनजीकी व्रज और उसमें भी वृन्दावनकी दिव्य प्रेमभूमिमें आते-आते तन-मनकी दशा विचित्र हो जाती। कपियोंकी किलकारी, मयूरोंका केकारव, कोयलका कलकंठ, पपीहेकी पुकार, भ्रमरावलीका गुंजन श्रीकृष्ण-मिलनकी लालसाको उद्दीप्त कर देती। वियोगकी दारुण दावाग्नि दग्ध करने लगती। नेत्रोंसे वारिधारा चल पड़ती। परिक्रमा मार्गमें वैष्णव संत मिलते ही रहते थे। जो भी संत सम्पर्कमें आते तथा मिलते, एक ही चर्चा करते– गुरु-दीक्षाके बिना भगवत्प्राप्ति नहीं होगी। शास्त्र-पुराण-संत सभी गुरु-महिमाका प्रतिपादन करते हैं कि बिना गुरुके भव-निवृत्ति कहाँ? गुरु ही गोविन्द तक पहुँचाते हैं।

यह बात भी वर्ष 1935-36 की है। उन दिनों इनका अक्खड़पन भी कम नहीं था। उसी धुनमें कह बैठे– मैं किसीको गुरु नहीं बनाता जिसमें दमखम हो मेरा गुरु बन जाय। बादमें सोचने लगे–वैष्णव संतोंका तथा सभी लोगोंका कहना तो ठीक ही है। अपनी श्रद्धासे गुरु बनाया जाता है। गुरु कोई स्वतः कैसे बन जायगा?

कुटियामें लेटे-लेटे कहने लगे– जिसके कोई नहीं होता, कन्हाई उसका होता है।' यही मेरा बल है। पितृ-कुलमें कोई नहीं, मातृ-कुलमें कोई नहीं, न कोई सगा न सम्बन्धी। किन्हींको अपना करके पकड़ना भी चाहा तो वे झटक कर अलग हो गये? अब कन्हाई क्यों अपना नहीं होगा? एकमात्र वही अपना है। ... सन्तोंकी एवं लोगोंकी बातोंका मनपर पूरा प्रभाव पड़ा। अपने कन्हाईको ही उपालम्भ दिया– यदि गुरु बनाना आवश्यक है तो तुम्हीं उन्हें भेजो, कहाँ मिलेंगे मेरे गुरुदेव.......? तभी... बस, तभी विरहाग्निकी पराकाष्ठापर अकस्मात् आशाकी बिजली कौंध गयी। उठकर बैठ गये– अरे! परमगुरु सिद्ध हुए भगवान् शेष-अनन्त संकर्षण।

ये संकर्षण ही तो श्रीकृष्णाग्रज एककुण्डली हलधर, नीलवसन, स्वर्णगौर दाऊ दादा हैं। ये परमगुरु अपने दादा।

ये नित्य सुप्रसन्न, किसीका भी दोष-अपराध न देखनेवाले, अपने श्रीचरणोंमें उपस्थित प्रत्येक जनको अपना लेनेवाले, अनन्त करुणा-वरुणालय, जीवमात्रके नित्यसखा। ज्ञानघन सनकादि-जैसे नित्य वीतराग ब्रह्मपुत्र एकान्त निष्ठासे इनके श्रीचरणोंकी सेवा करते है। इन्हींका सहारा है—

दीक्षा ही मेरा जीवन है,
नीलाम्बरसे ही आशा है,
दीक्षा मंत्र दिला दे कनुँ मम लगन लगी है संकर्षणसे।
मन मछली तड़पेगी कब तक? । 1 ।
हठी हृदय अब हठ ठाने है,
कैसे भला अरे! माने है,
लो! जीवन अब सह न सकूँगा और प्रतीक्षा होगी कबतक?
बहुत कर चुका हूँ मैं अब तक । ।2 ।।

अरे! वे करुणामय तो कृपा-साध्य हैं, साधन-साध्य होते तो कुछ सोचता भी। अब उनकी कृपाकी प्रतीक्षा ही की जा सकती है।

अपनी धुनके पक्के सुदर्शनजी चल पड़े पैदल ही श्रीगिरिराजकी ओर। पहले तो कुसुमसरोवरके पास कोठीसे सटी छोटी-सी कुटियामें ठहर गये। दूसरे ही दिन उसे भी छोड़ दिया। निर्जल-निराहार परिक्रमा करने लगे श्रीगिरिराजकी। परिक्रमा भी अपने ढंगकी—अत्यधिक रात होनेपर किसी शिला-खण्डपर सो जाते और नींद खुलते ही पुनः चलते रहते।

मेरे दादा! स्नेहमय सौहार्दके मूर्तिमान् स्वरूप दयामय दाऊ दादा हैं। अवश्य कृपा किये बिना रह नहीं सकते।

मुझे विश्वास है नील वसन स्वर्णगौर सर्वाचार्य संकर्षणसे पृथक् तो इनके

नवजलधर सुन्दर वनमाली पीताम्बर-परिधान मयूर-मुकुटी मनमोहन अनुज रह नहीं सकते। दोनों आयेंगे अवश्य पर, कब तक?

तीन दिन-रात परिक्रमा पथपर प्रतीक्षारत आँखें दाऊ दादाको देखनेको तरसती रहतीं तो कभी नेत्रोंसे वारि-धारा बरसती रहती, हाथोंमें सुमिरनी घूमती रहती, अधर नाम-जप करते रहते! चित्त-भूमिपर कभी गौरसुन्दर दाऊदादा और कभी नीलसुन्दर कन्हाई, कभी दोनों भाई क्रीड़ा करते दीखने लगते। कभी आशाओंका उज्ज्वल प्रकाश, कभी, निराशाका घोरतम अंधकार; किन्तु अपने दाऊदादापर अटूट विश्वास डिगनेका नाम नहीं लेता। कहने लगते—मैं तो जन्म-जन्मसे इनका ही हूँ, ये परमोदार स्वतः स्वीकार कर लेंगे। इनके श्रीचरणोंमें तो सबको आश्रय प्राप्त हो जाता है। ये तो किसी शरणागतको अस्वीकार करते ही नहीं। अस्वीकार करें तो आतुर जीव आश्रय कहाँ पायेगा?

मेरा वनमाली कन्हाई अग्रजके समीप ही कुछ सरल-सहज रहता है, उन एक कुण्डलधरका ही संकोच मानता है। वे संकर्षण सन्तुष्ट हों समीप हों तभी श्रीकृष्णके नटखटपनपर प्रतिबन्ध रहता है।

आनन्दातिरेकसे आगेकी बात खो जाती। पग डगमगाने लगते। सुमिरनीपर घूमनेवाली अँगुली रुक जाती, आँखें मुँद जाती और उनसे प्रवाहित आनन्दाश्रुओंकी धारा वक्ष प्रक्षालित करती रहती; कभी दाऊ दादाके अदर्शनका दुःखद वियोग हृदयको विदीर्ण करने लगता।

सहसा श्यामसुन्दर.........श्रीकृष्ण..... कृष्ण/कृष्ण जपनेवाले अधर मुस्करा उठते, परिक्रमापथमें अचल मूर्तिवत् ठिठकके खड़े रह जाते। परिक्रमा करनेवाले लोग देखकर कोई भाग्य सराहता, कोई प्रणाम करता, कोई दूरसे चरण-रज लेता।

कोई-कोई साधु हर्ष-विह्वल हो 'जय हो' की ध्वनि करते, कोई-कोई 'श्रीगिरिराजधरनकी जय' बोलता। हरिनाम कानमें पड़ते ही सचेत हो वे

पूर्ववत् पुनः चल पड़ते। तीन दिन-तीन रात इसी अवस्थामें कब पूरे हो गये पता ही नहीं चला। उन्मादावस्थामें श्रीकृष्णप्रेमके प्रलापमें कितनी परिक्रमा हुई कौन जाने? यह मत पूछिये, चलनेवालेको जगत्का आभास हो तो गिने। वह गिननेके लिये तो परिक्रमा कर नहीं रहा। वह तो प्राणोंके मोल बिक जानेको कदम बढ़ा रहा है देहकी शक्ति क्षण-क्षण घटती जा रही है और घटती जा रही है नन्हीं आशा, किन्तु विश्वास और श्रद्धा ही अटल था। उसीके सहारे पग आगे बढ़ते ही जा रहे थे।

चौथे दिन प्रातःका अँधेरा सुदर्शनजी जतीपुरासे पहले श्रीगिरिराजजीकी पूँछरीकी ओर धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। बाहर चिकनी चट्टानपर श्रमित होकर बैठ गये। देखने लगे—एकटक अपने आनन्दघन गिरिराजकी ओर। अरे! ये गिरिराज तो शालग्राम स्वरूप हैं.....इनको छोड़कर किसी औरकी शरण लेना अच्छा नहीं........यही मेरे आध्यात्मिक जीवनके जन्मदाता गुरु-दाऊ दादासे अवश्य मिला देंगे।

सहसा देखा-चाँदनी रात वनमें अनेक रंगोंकी सुन्दर गायें चर रही हैं। सब उछलती, कूदती, हर्षसे हम्बारव करती दौड़ती चली आ रही हैं। उनके गलेकी घंटियाँ बज रही हैं। इतनी रातमें...... गायें हैं तो, तो इनमें चरवाहे भी होंगे — उठकर चल दिये ढूँढ़ने। आँखोंको विश्वास नहीं हो रहा था।

बलात् रुक गये ये महाभाग; जैसे किसीने हाथ थामकर रोक लिया हो। पुनः चौंककर अच्छी तरह आँखें खोलकर जो देखा.......कैसे कहा जाय कि क्या देखा......!

वनका तृण-तृण झूम उठा है। दिव्य गिरिराजकी रत्न-शिलाएँ नाना वर्णका प्रकाश फैला रही हैं। वृक्ष और उनपर लिपटी लताएँ फूलोंसे लदी हैं। दिव्य सौरभ लेकर मन्द गतिसे पवन प्रवाहित है, चारों ओर दूर्वा संकुल भूमि, पुष्प वर्षा-सी करते पादप, गायों-बछड़ोंका अलंकृत अपार समूह, सुसज्जित सखाओंके मध्य वृक्षोंकी एक झुरमुटसे निकला मयूर-मुकुटी व्रजराजकुमार

प्रवाल अधरोंपर भुवनमोहन स्मित लिये अपने कमलदलायत दीर्घ कोमल दृगोंसे इनकी ओर देख रहा है और इनका हाथ खींचते हुए ले चला उसी झुरमुटमें जहाँ इसमें नीलाम्बरधारी, स्वर्ण-गौर, एक कुण्डली अग्रज ढेर सारे सखाओंसे घिरे बैठे हैं साथ ही इनका दाहिना हाथ दादाके कर-पल्लवमें थमाकर कहा—दादा! देख, यह तो अपना ही सखा है न! इसे धुन चढ़ी है तुझसे मंत्र-दीक्षा लेनेकी........ले पकड़ दे दे इसे मंत्र।

आदिगुरु जीवाचार्य शेषावतार श्रीदाऊ दादाने हाथ पकड़ा, स्नेहसे पास बैठाया और बोले—

तुम्हें गुरु ही तो चाहिये अर्थात् बड़ा। मैं तुमसे बड़ा हूँ और कन्हाई छोटा है। मैं तुम्हें मंत्र बता देता हूँ। विधिवत् मंत्र-दीक्षा हुई। मंत्र-श्रवण करते ही सुदर्शनजी आनन्दातिरेकमें अचेत-से हो गये। दाऊ दादाने स्नेहसे दक्षिण कर सिरपर रखा। ऐसी उत्कण्ठा इनके हृदयमें उठ रही थी कि मेरे हृदयधन! दाऊ दादा! मेरे गुरुदेव!! ऐसे ही अपनी सुधा-स्यन्दिनी वाणीमें बोलते ही रहें और मैं ऐसे ही नीरव शान्त निस्पन्द वातावरणमें अनन्त काल तक श्रवण करता रहूँ।

वे आत्मविस्मृत-से हो गये, तभी कन्हाईका मधुर स्वर श्रवणोंमें गूँजा— 'दादा! इसे दूध पिला, नहीं पीवे तो कान पकड़ कर खींच' कहते ही स्वयं इनका हाथ पकड़ कर दौड़ाते हुए कामदा गायके पास ले गये। गोविन्दके स्पर्श करते ही उसके थनोंसे दूध की उज्ज्वल धारा झरने लगी। एक सखाने पलाशके पत्तेका दोना बनाकर हाथमें थमा दिया।

'दादा! दूध व्यर्थ झर रहा है— ले, पी ले और ये दूध पीते चले जा रहे हैं। पूर्ण-तृप्ति होनेपर स्वतः दोना हाथसे छूट गया।

सुदर्शनजी चौंककर ऐसे चारों ओर देखने लगे जैसे तन्द्रासे जगे हों। अभी भी दोना उनके हाथमें लगा था और इसपर दूधका झाग भी लगा था।.... तीन-चार दिनसे बिना अन्न-जलके मेरा पेट पूर्ण तृप्तिका अनुभव

कर रहा है और मुखसे कामदाके दूधका स्वाद आ रहा है। और .....हाँ. ....दाऊ दादाका मेघ गम्भीर स्वर अभी भी कानोंमें गूँज रहा है; उनका दिव्य संस्पर्श, उनकी अंग-गंधकी सुवासित अनुभूति। मन तो उसी क्षणसे दिव्य-मंत्रकी आवृत्ति भी कर रहा है।

अरे.....यह सब न स्वप्न है न तन्द्रा! यह सत्य है; वैसा ही सत्य जैसा यह दृश्य-प्रपञ्च। नहीं-यही तो सनातन सत्य है। श्यामसुन्दरने दादासे सचमुच दीक्षा दिलाकर कृतार्थ कर दिया। रोमांचित कंटकित शरीर लिये सुदर्शनजी आनन्दातिरेकसे जहाँ खड़े थे, वहीं खड़े रहनेमें असमर्थ-से प्रेमकी हिलोरमें पादपकी भाँति पथमें ही प्रणिपात करते हुए गिर पड़े। उनका सर्वांग कम्पित हो रहा था। नेत्रोंसे अश्रुओंकी झड़ी परिक्रमाकी पावन भूमिको आर्द्र कर रही थी। दोनों करोंसे अपने गुरुदेवकी पावन-रज सिरपर धारण करते हुए सुधि बिसराये पड़े रहे।

मध्याह्न बीतनेपर थोड़ा प्रेमावेशका भाव शमित हुआ तो जहाँ लेटे थे वहीं खड़े होकर उसी झुरमुटकी झाँकीका स्मरण कर सिर झुकाकर गुरु-वन्दना की—

नीलाम्बर विसश्वेतं रक्ताक्षमेक कुण्डलम्।
करुणैक विग्रहं वन्दे संकर्षण सनातनम्।।

इसके साथ ही उनमें शिवस्वरूपकी वन्दना भी की—

प्रपञ्च भस्मसाकृत्वा भस्म भूषित विग्रहम्।
धूर्जटि धन्य धीधेयं ज्ञानेन्दु कृत शेखरम्।।

स्तवन करते ही शौच जाना पड़ा। मल न निकल कर दूधकी धार ही निकली।

त्रिलोकीमें प्रसिद्ध है, सारे शास्त्र और संत एक स्वरमें कहते हैं— गुरु

ही गोविन्दसे मिलाते हैं, किन्तु यहाँ तो गोविन्दने ही गुरुसे मिला दिया।

असीम आनन्दमें भरे सुदर्शनजी बोल पड़े— जब गुरु प्रत्यक्ष शिष्यको स्वीकार करते हैं तभी अहंकार नष्ट हो पाता है। तब साधनमें अवलम्ब एवं संरक्षण गुरु अनुकम्पासे ही मिलता है।

संत ग्वारिया बाबासे प्रेम-विनोद

वृन्दावनमें कुटियासे प्रातः तीन बजे उठकर सुदर्शनजी लोटा लेकर शौचके लिये जाते थे। कभी जाते समय और कभी लौटते समय प्रायः नित्य ही सन्त ग्वारिया बाबा मिल जाया करते थे। लम्बा गोरा शरीर, उज्ज्वल केश, सर्वांगमें झुर्रियाँ, किन्तु युवकोंको भी लज्जित होना पड़े ऐसी फुर्ती थी। वे खादीका सफेद चोगा पहिने रहते जो लगभग पाँच सेर वजनका होता, जिसकी लम्बाई पैरकी एड़ी तक थी। पता नहीं कि बाबा अपनी जेबोंमें क्या-क्या भरे रहते—चकई, गेंद रोटीके टुकड़े आदि।

बाबा मौन ही रहते थे सबसे। वे अपने यार (श्यामसुन्दर) -से बोलते या रासबिहारी ठाकुरजीसे। व्रजवासियोंके घरसे केवल आटा माँग लाते और एक मोटा टिक्कर सेंक लेते और उसे जेबमें भर लेते, कहते—यह यारके लिये है। सुदर्शनजी मार्गमें ही शौच-स्नानसे निवृत्त होकर लौटते तो अक्सर जेबसे रोटीका जरा-सा चूरा दे देते। सुदर्शनजी उसे तुरन्त मुखमें डाल लेते, प्रणाम करते और बढ़ जाते। एक दिन बाबाने चूरा दिया खानेको तो सुदर्शनजी पूछ बैठे—बाबा यह क्या है? बाबा बोले— यारका है।

'आप और आपके यार दोनों मतलबी। बढ़िया-बढ़िया माल स्वयं आरोगें और हमको देते हैं चूरा-मूरा'। सुदर्शनजीने हँसकर नकली रोषसे कहा। बाबाने सुदर्शनजीका साथ पकड़ा और खींचकर ले गये वंशीवटपर। संयोगसे गोपाष्टमीका दिन था। वंशीवटपर रासलीलाकी पूरी तैयारी थी। वन-भोजकी लीला प्रारम्भ होनेवाली थी। बाबा सुदर्शनके साथ पीछेकी ओर एक किनारेपर

बैठ गये। वन-भोजनका प्रसंग आया और रासबिहारी ठाकुर अपने सखाओंके मध्यसे पेड़ा-मिठाईसे भरे दो सकोरा दोनों हाथोंमें लिये और एक नन्हीं मटकी कमरसे सटाये चल दिये भीड़के बीचमेंसे। भीड़ रास्ता देती गयी और रासमण्डलीके स्वामी निर्देशकको बड़ा अटपटा लगा, पर मंच परसे बोलने या निर्देश देनेका साहस नहीं कर सके। इधर ठाकुरजी (रासबिहारी)-ने दोनों सकोरेके पेड़े और मटकी सुदर्शनके सामने रख दी। तीनों गोलाकार बैठे थे कि चौथा बीचमें न आ सके। अब ठाकुरजी सुदर्शनके मुखमें पेड़ा अपने हाथसे खिलाने लगे और सुदर्शनजी ठाकुरजीको खिलाने लगे। जब मिठाई आधी रह गयी तो ग्वारिया बाबासे नहीं रहा गया। स्नेह भरे रोषसे बोले– दारीके दोऊ खायें, मोकूँ ना खबावै? अब तीनोंमें कौन किसके मुखमें दे रहा है, कोई निर्णय नहीं रहा। छीना-झपटी भी चली, पात्र खाली हो गये। ठाकुरजी तो मंचपर जाकर सिंहासनपर जा विराजे। सुदर्शनजीको लगा जैसे अभी-अभी किसी तन्द्रा या नींदकी झपकीसे जगे हों और ग्वारिया बाबाने सुदर्शनजीका हाथ पकड़कर खींचा–'यारका कहना है भाग चलो।' कुछ लोग बाबाका चरण छूने भागे, परन्तु बाबाको पा लेना क्या सरल था? कभी सम्भव ही नहीं।

इसी क्रममें एक बार जयपुरसे रानी ग्वारिया बाबाके दर्शनको आयीं, पता लगा वे वृन्दावनमें हैं। लोगोंने बताया–नंदगाँव देखा है। वह नन्दगाँव गयीं। वहाँ पता चला–आये तो थे पर बरसाना चले गये। बरसानामें खोजा तो पता चला कि अभी तो थे, गिरिराजजीकी ओर गये हैं। सात दिन तक भटकती रहीं।

सुदर्शनजीको नित्य ही बाबा मिलते। एक दिन बाबासे कहा भी सुना है रानी दर्शनको घूम रही है, क्यों दर्शन नहीं देते? बाबाने संकेतसे ही कह दिया– छोड़ो सब मैं, तुम और अपना यार खेलेंगे, बस।

सच है, भक्त और भगवंतको उनके अनुग्रहसे ही पाया जा सकता है।

मैया आनन्दीबाईका वात्सल्य

सुदर्शनजी प्रातः यमुना-स्नान, संध्या-पूजासे उठते ही बिहारीजी, राधा-वल्लभजी और आनन्दी माईके मंदिरमें दर्शन करने जाते थे। आनन्दी माई जम्मू-कश्मीरकी थीं, विधवा होनेपर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति लेकर वृन्दावन आ गयी थीं। यहीं मंदिर बनवाकर स्वयं सेवा करतीं। ठाकुरजीके प्रति उनका असीम वात्सल्य भाव था। किशोरीजी उनकी पुत्रवधू थीं, बड़े लाड़-चावसे बेटे-बहूको दुलार करतीं।

सुदर्शनजी जब भी दर्शन करने जाते, बड़े उल्लाससे कहतीं लाला! आ तनिक ठहरियो प्रसाद पाकर जइयो— इन्हें तो माँ कभी पंखा झलते मिलतीं, कभी पालना हिलाते हुए, कभी किसी आभूषणको ठीक कर रही हैं तो कभी पोशाक सहेज-समेट रही हैं। मंदिर तो एक कक्ष था— बेटे-बहूका। अन्य कक्षोंमेसे एकमें वे स्वयं रहतीं जैसे—बहू-बेटे और सेवामें एक सेवकके साथ एक वृद्धा माँ उस घरमें रहती हों।

'यह राधा तो मुझे बिकवा कर रहेगी'—उस दिन सुदर्शनजी गये तो देखा—रोषमें मैया झुँझला रही है। एक रेशमी सुन्दर साड़ी उसके हाथोंमें है—

'मैया! क्या बात है?' सुदर्शनजीने आश्चर्यसे पूछा।

'आ लाला! ठीक समय पे आ गये' कहते हुए उत्साहसे उठी और वृद्धा माँ रेशमी साड़ी सुदर्शनजीको दिखाते हुए बोली—'लाला! तू ही देख यह साड़ी बुरी है क्या? यह बहू तो जो उसके मन न भाये तो पहनेगी ही नहीं। दूसरी साड़ीके पचास रुपया अधिक माँग रहा था दुकानवाला।' मैयाको साड़ीकी कीमत ज्यादा लगी। ठीक है, पैसे बचेंगे तो अन्य सेवामें आ जायँगे। यह सोचकर कम पसन्दवाली साड़ी ले आयी। अब उसकी मानिनी बहू है कि इस साड़ीको पहनती ही नहीं है।

"मैया! सच कहियो, तोय पसन्द तो दूसरी साड़ी आयी थी न! सुदर्शनजीने

पूछा।

'अब लाला! तू ही बता—पैसे बचाये तो इन्हींके लिये न! इनके अतिरिक्त और कौन है मेरा?'

'मैया! तू वही साड़ी ले आ, यह साड़ी तो तेरी बहू नहीं पहनेगी।'

'ठीक है लाला! तेरी बात, तू तनिक बैठियो' और मैया उसी समय वह साड़ी लौटाकर दूसरी साड़ी ले आयी। वह चाहे जितना झुँझलाये अपनी बहूको उदास नहीं देख सकती। साड़ी लेकर जल्दी ही लौटी। डिब्बा रखकर स्नान किया, वस्त्र पहने और नयी साड़ी लेकर मंदिरमें चली गयी। केवल दो मिनटमें प्रसन्नतासे खिली मैया पर्दा हटाकर बोली— देख लाला! कितनी अच्छी लग रही है! मेरे लाते ही खुश होकर अपनेसे ही पहन ली।

सच ही तो है, अन्यथा दो मिनटमें इतने छोटे श्रीविग्रहको इतने ढंगसे साड़ी कैसे पहनायी जा सकती है?

ऐसे ही एक बार किसीने पश्मीनेका कश्मीरी सुन्दर शाल भेंट किया। मैया दूसरे दिन शृंगारमें जब पुत्र (ठाकुरजी)-को शाल धारण कराने लगी तो इनकी लाड़िली बहू किशोरीजी मचलकर बोलीं—

'मैया! यह शाल तो मैं ओढ़ूँगी।'

''नाय मैया! यह तो मैं ही ओढ़ूँगा— ठाकुरजी कहने लगे।'

'नाय मैया! यह तो मैं ही लूँगी—श्रीराधाने कहा।'

'ना मैया! वाय मैं ही ओढ़ूँगो।'

'अरे मेरे लाल! तू तो बड़ो समझदार है। याकूँ तो लाली को ओढ़ लेने दे। बड़े बाप की बेटी है याको मन रह जायगो।' मैया बोली।

'मैया ! कहा, मैं छोटे बाप को बेटा हूँ?' श्यामसुन्दरने मचलकर कहा।

अरे मेरे छोना! मैं तोकूँ और मँगाय दूँगी।

'मैया! तू तो याही को पच्छ ले रही है याकूँ बड़े बाप की बेटी जान के।'

'मेरे लाल! ऐसे मत कहे, तू तो मेरे प्रानन की मूर है, जड़ी है।'

'फिर मैं कहा हूँ? मोय परायी बेटी जानके दुराव करै?'

'अरी! नाय, मेरी लाड़िली! तू तो मेरे लालकी जीवन-बूटी है। तू ही ओढ़ ले.......। तेरे बिना मेरे लाल की, कहा शोभा? भला, यह तो तेरे संग ही नीको लगे।

मैयाने दुलार सहित आँखोंमें आँसू भरकर अपनी लाड़िली बहू श्रीराधाको शाल ओढ़ाते हुए बोली— अब मत कहियो परायी-परायी, तेरे बिना मेरो है ही कौन? मो गरीबनीको एक ही जायो है, तू ही बहू है। तुम दोउनमें को परायो, को अपनो? दोउ एक प्रान हो। कुछ दिनोंमें वैसा ही शाल कोई भेंट कर गया।

वर्ष 1936 की मार्गशीर्षकी अमावस्याको आनन्दीमाईने शरीर छोड़ा। यमुना किनारे जब इनकी देहको चितापर पौढ़ा दिया। तब एक दस वर्षीय साँवला बालक ऊपरसे खुले शरीर, सफेद धोती पहने धोतीके पायचें कमरमें खोंच रखे थे जिससे धोती घुटने तक हो गयी, आधी धोती कन्धेपर डाल रखी थी— आकर सीधे मुखाग्नि देनेका डंडा अपने हाथमें लेकर चिताकी परिक्रमा की और मुखाग्नि देकर देखते-देखते न जाने कहाँ लोप हो गया। सुदर्शनजी यह दृश्य देख रहे थे, उस छविको निरख कर समझ गये, किन्तु लोगोंसे क्या कहें? और क्यों? लोगोंमें तो चर्चा फैल गयी कि कौन था यह बालक? कहाँ गया, किधर गया? ढूँढ़ते रह गये किन्तु वह बालक तो अपनी मैयाकी अन्त्येष्टि करने आया था। जिस मैयाने उसे बेटा बनाकर सारी आयु लाड़-प्यार किया, रूठनेपर मनाया, उसके हाथोंसे चावसे खाया-पिया, अब अन्तिम संस्कारमें अग्नि अन्य कोइ क्यों दे?

विद्यार्थीको शिक्षादान

श्रीधरजीकी कुटियामें रहते हुए सुदर्शनजीने एक पुस्तक लिखी

'त्रिभुवनसुन्दर' कुछ लेख पत्रिकाओंमें भी भेजने प्रारम्भ कर दिये। जब लेखनसे ही जीविका चलानी है तो जो कुछ लिख जाये वह छपना भी चाहिये। यहीं उन्होंने छोटे 'गद्य काव्य' भी लिखे और इनकी एक पुस्तक बनायी जो 'चार-सम्प्रदाय आश्रम' में ही छोड़ दी।

एक दिन'श्रेय' कार्यालयमें बैठे थे। एक विद्यार्थी आया जो 'रामानुज पाठशाला' में पढ़ता था। उसने आकर सुदर्शनजीसे कहा कि 'विदग्ध माधव' नाटक मेरी पाठ्य पुस्तकमें है, किन्तु आचार्यजी उसे पढ़ा नहीं पा रहे हैं? क्या आप उसे पढ़ा देंगे

'किसी जिज्ञासु विद्यार्थीको विद्यादानके लिये मना करना सर्वथा अनुचित है और मैं लगभग एक वर्षसे कन्हाईको भागवत सुना रहा हूँ, तब उसने इतनी संस्कृत तो पढ़ा दी होगी कि मैं एक विद्यार्थीको यह नाटक पढ़ा सकूँ'– सुदर्शनजीने मनमें सोचा और उन्होंने पुस्तक हाथमें लेकर खोली। कहाँ? कुछ भी तो समझमें नहीं आया तो बड़ी खीज आयी–

'अरे कन्नू! मैंने अपने वचनके अनुसार ईमानदारीसे भागवत सुनाकर अपना वचन निभाया है, पर तूने तनिक भी पढ़ाया नहीं मुझे।' इन्होंने पुस्तक लौटाते हुए कहा–मैं नहीं पढ़ा सकूँगा।

'ऐसा न कहें, मेरी परीक्षामें बहुत कम समय रह गया है। असफल हो जाऊँगा। बहुत आशा और विश्वाससे आपके पास आया था।' विद्यार्थीने बड़ी विनयसे अनुरोधपूर्वक कहा। उसकी आँखोंमें आँसू भरे थे। ग्रन्थ अभी सुदर्शनजीके हाथोंमें ही था। विद्यार्थीने अभी लेनेके लिये हाथ नहीं बढ़ाया था।

'तुमसे किसने कहा कि मैं पढ़ा सकता हूँ?' कहते हुए सुदर्शनजीने पुनः पुस्तक खोली; जिस प्रथम श्लोकपर दृष्टि पड़ी , प्रतीत हुआ कि इसका अर्थ तो बहुत सरल है। दूसरे स्थानपर खोलकर श्लोक पढ़ा, वह भी सरल और स्पष्ट लगा। तीसरा, चौथा......पाँचवाँ जिस किसी श्लोकपर दृष्टि

जाती लगा कि 'अर्थ तो स्पष्ट होता जा रहा है और मैं अच्छी तरह पढ़ा सकता हूँ।'

'अरे! मैंने क्या किया? व्यर्थ ही अपने सुकुमार लाड़ले कन्हाईको डाँट दिया; पढ़ा तो दिया है इतना सब।'

विद्यार्थीने कहा—ठीक तो स्मरण नहीं, किन्तु पाठशालाके बाहर मैं उदास मन श्रेयके ऑफिसमें आया था। यहीं जो सज्जन कुर्सीपर बैठे थे, उनसे मैंने समस्या निवेदन की। मुझे उन्हींने बताया कि आपसे निवेदन करूँ तो आप पढ़ा देंगे।

तुमने कैसे जाना कि वह व्यक्ति मैं ही हूँ, जिसके लिये तुम्हें भेजा गया है। यहाँ तो बहुत लोग आते-जाते हैं, फिर मैं तो ऑफिसमें भी नित्य नहीं आता।

'उस व्यक्तिने आपका पहनावा और नाम भी बताया था।'

'क्या नाम बताया था?'

'सुदर्शनजी, सुदर्शन सिंहजी।'

विद्यार्थी संकोचपूर्वक डरते हुए बोला, फिर संयत होकर बोला— मैं बाहर खड़े व्यक्तिसे आपकी उपस्थिति ज्ञात करके ही आया हूँ। बड़ी कृपा होगी. ...। उसने पुनः हाथ जोड़कर सिर झुकाया।

'ठीक है, कलसे समयपर आ जाओ' कहते—हुए सोचने लगे कि मेरा यह चपल कन्नू पता नहीं क्या-क्या कराना चाहता है।

इन्होंने उस विद्यार्थीको पढ़ाया और एक महीनेके पढ़नेपर ही वह अच्छे अंकोंसे उत्तीर्ण हो गया।

संकीर्तनका सम्पादन

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी प्रयागकी परिक्रमाके पश्चात् श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीके साथ ही गीताप्रेस, गोरखपुर चले गये और वहाँ भी एक वर्ष

तकके नामानुष्ठानके समान ही ब्रह्मचारीजीकी अध्यक्षतामें संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। इसके छः महीने पश्चात् ब्रह्मचारीजी तो लौट आये, किन्तु पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजी पूज्य श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार के प्रेमवश वहीं रह गये।

दस महीने पश्चात् सुदर्शनजीको वृन्दावनमें ही प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीका तार मिला। उन्होंने गोरखपुरके नामानुष्ठानमें भाग लेनेको बुलाया था। 1936 ई० में ही इस उत्सवमें 'संकीर्तन' मासिक पत्रके व्यवस्थापक आचार्य दुर्गाप्रसादजी भी आये थे, इन्होंने ब्रह्मचारीजीसे 'संकीर्तन' पत्रिकाके लिये सम्पादक देनेका अनुरोध किया। प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीने उसी समय यह दायित्व सुदर्शनजीको दे दिया। उसी समय दुर्गाप्रसादजी, सुदर्शनजी और प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी प्रयाग आये, प्रयागसे दिल्ली और दिल्लीसे प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी तो कश्मीर चले गये और दुर्गाप्रसादजीके साथ सुदर्शनजी मेरठ आ गये।

सुदर्शनजीने दुर्गाप्रसादजीसे एकान्तमें अपने आवासका प्रबन्ध करनेको कहा। उन्होंने श्रीमनोहरनाथजीके मंदिरमें सूरजकुंडके समीप सुदर्शनजीके रहनेकी व्यवस्था कर दी। इस मंदिरके परिसरमें शिवमंदिर, मनोहरनाथजीका मंदिर और एक काली मंदिर था। मंदिरोंके संचालक गोस्वामियोंमेंसे कोई भी मरता तो मंदिरके घेरेमें ही समाधि दी जाती थी। मंदिरके ठीक सामने चार कमरे बने थे; इनमेंसे तीनकी छत गिर चुकी थी, केवल एक ठीक था; इसके सामने बरामदा भी था। यही कमरा सुदर्शनजीको रहनेको मिला। घेरेमें और भी तीन-चार कुटिया थी जिनमें एकमें एक अघोरी बाबा रहता था।

गोस्वामी लोग प्रातः आते और शामको आरती करके चले जाते। उस समय सूरजकुंड खाली सूखा पड़ा था। उसके एक ओर नगरका श्मशान था और मंदिरके पीछे नगरके छोटे-छोटे बच्चे गाड़े जाते थे। इस निर्जन सुनसानके घेरेमें रातको अकेले रहनेवाले सुदर्शनजी प्रातः 'संकीर्तन' पत्रिकाके कार्यालयमें काम करते। मध्याह्नका भोजन दुर्गाप्रसादजी के घरपर कुछ दिनों

किया। बादमें स्वयं व्यवस्था कर ली। इन्होंने एक नेपाली लड़केको नौकर रख लिया। वह भोजन बनाकर ठाकुरजीको भोग लगाकर घंटी बजा देता।

ये भोजन कर लेते और डेढ़ पाव दूध भी ठाकुरजीको अर्पित करके पी लेते। नेपाली नौकर भी रातको वहीं सो जाता।

मेरठमें रहते हुए सुदर्शनजीने 'संकीर्तन' मासिक-पत्रिकाके पाँच विशेषांक प्रतिवर्षके क्रमसे प्रकाशित किये।

सर्वप्रथम पच्चीस वर्षकी अवस्थामें ही वर्ष 1936 के अंतमें 'संकीर्तन' पत्रिकाका सम्पादन प्रारम्भ किया। उन्होंने स्वयं लिखा है—' श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी प्रधान सम्पादक थे। वे कश्मीर चले गये....उनकी आज्ञाका पालन तो करना ही था। विशेषांकके सम्पादनका भार पड़ा मुझ अनुभवहीन बालकके सिर....। काममें जुट गया कन्हाईके सहारे—मंगलाचरण करके"—

कृष्ण तुम्हारे गुण चरितोंकी, कहाँ कहीं कुछ मिति है।
किन्तु-बुद्धिकी, मनकी, करकी, शक्ति सदा सीमित है।।
नन्हा मत्स्य अनन्त सिंधुकी, सीमा क्या पावेगा।
किन्तु सिन्धुका अंक त्यागकर, भला कहाँ जायेगा।।
मीन रहे मन बुद्धि तुम्हारे, चरित्र गुणोंके रसके।
इनका पार भला क्या पाना, ये वाणीके वशके।।
रस सागर ब्रजराजतनय तुम सदा सदाके जनके।
रहे, रहो प्रिय प्राण प्राणके जन तब तुम निज जनके।।
सानुकूल तुम रहो, शारदा सानुकूल कल्याणी।
सानुकूल गणनाथ सफल हो सांगपूर्ण यह वाणी।।
आओ! स्वयं आवरण तोड़ो चरित-कौमुदी छाये।
शब्द, वाक्य, रस, रूप धरो अन्तर उज्ज्वल हो जाये।।

मेरे श्याम समग्र तुम्हीं तुम क्रीड़ामय अविनाशी।
वाङ्मय मूर्ति तुम्हारी मंगल मेरे घट-घट वासी।।

पाँचवें वर्षका 'श्रीकृष्ण चरितांक के प्रकाशनके पूर्व ही श्रीदुर्गाप्रसादजीका देहान्त हो गया। उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। अतः 'संकीर्तन' पत्रिकाका कार्य एक युवा वकील गंगाप्रसादजीको दे दिया। वे एक भी विशेषांक प्रकाशित नहीं करा सके और 'संकीर्तन' पत्रिकाका प्रकाशन होना बन्द हो गया।

छाया-पुरुषका अनुष्ठान

जब 1938 में संकीर्तन का 'मन्त्रांक' निकला तो वह बहुत ही लोकप्रिय हुआ और शीघ्र ही अलभ्य हो गया। इस विशेषांककी सामग्रीमें 'छाया पुरुषकी साधना' एक लेख था। इससे सुदर्शनजी आकर्षित हुए क्योंकि साधनका मंत्र सात्त्विक था— '**ओम् तत्सत् परमात्मने नमः**' रात्रिके एकान्तमें अपने पीछे दीपक रखकर अपनी छायापर त्राटक करना था। साधनमें नियम भी साधारण थे—

1. एकान्तमें रात्रिको केवल लँगोट लगाकर अपनी छायापर त्राटक करना।
2. जो दीपक पीछे रखा जाय उसे वहाँसे हटाना नहीं।
3. चालीस दिनसे छः महीनेके बीच छाया सजीव हो जायगी। उससे डरना नहीं। जबतक वह स्वयं न बोले।
4. जब वह बोलेगी तो तुमसे कोई प्रतिज्ञा करायेगी अन्यथा प्राणभय है।
5. जब छाया पुरुष सिद्ध हो जायगा तब तुम्हारे द्वारा बताये कार्य कर देगा। छाया पुरुष सिद्ध करनेका सुदर्शनजीका एक ही उद्देश्य था कि छाया पुरुषसे मैं जंगलकी वनस्पतियाँ, औषधियाँ मँगवा लिया करूँगा जिससे लोकहित हो।

साधना प्रारम्भ हो गयी। महीने या चालीस दिनमें नहीं, अपितु पन्द्रह

दिनमें ही छाया मोटाईमें आने लगी। अगले दिनसे कमरेमें इधर-उधर घूमने लगी। उन्नीसवें दिन उसके नेत्र चमकने लगे। अब केवल इतना ही शेष था कि वह स्वयं बोले।

उन्नीसवें दिन रात्रिको जब अनुष्ठान कर रहे थे, उन्हें अचानक झपकी आ गयी और उन्होंने देखा एक हाथसे कन्हाईने मुझे छूकर दूसरे हाथसे दीपककी ओर संकेत किया और बोले— दादा! या तो ये रहेगा या फिर मैं रहूँगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकते। अचकचाकर वे जाग पड़े— यह क्या? 'मैं रहूँगा।' क्षणार्धमें बात समझमें आ गयी। मेरा कन्हाई वचन दे रहा है कि यदि छायापुरुष नहीं रहेगा तो यह तो निश्चित रहेगा।'

बस, सुदर्शनजीको निर्णय करनेमें एक क्षण भी नहीं लगा। उन्होंने तुरन्त त्राटकके लिये जो दीपक स्थापित किया था उसे उठाकर खिड़कीके बाहर फेंक दिया। लोटेका जल गिरा दिया। जैसे ही खिड़की खोलकर दोनों चीजें फेंकीं— वैसी ही पूरे शरीरमें कँपकपी हुई और मूर्च्छित होकर गिर गये। कमरेसे बाहर न निकलनेपर नेपाली लड़केने घंटी बजाई, पुकारा और द्वार खटखटाया। घबड़ाकर कार्यालयसे तीन-चार लोगोंको बुला लाया। पुकारनेपर जब उत्तर नहीं मिला तो बढ़ईको बुलवाकर किवाड़ खुलवाया। इन्हें मूर्च्छित पाकर पलंगपर लिटाया। होश तो शाम तक आ गया, किन्तु ज्वर और कमजोरी सात दिन तक बनी रही, परन्तु मन अपने कन्हाई (श्रीकृष्ण) -के आश्वासनसे परम प्रसन्न था।

कुछ रचनाएँ मेरठमें

'संकीर्तन' कार्यालयमें मेरठके ही एक सज्जन श्रीमदनगोपाल सिंघल नित्य ही प्रातः कार्यालयमें आकर बैठ जाते और आपसकी बातचीतमें उनके मुखसे 'साइक्लोजी' शब्द कई बार उच्चारित होता। सुदर्शनजीने इसका अर्थ पूछा। उन्होंने बताया—'मनोविज्ञान'। उस समय तक हिन्दीमें मनोविज्ञानपर कोई अच्छी पुस्तक नहीं थी।

सुदर्शनजी बोले पड़े—ओह! यह तो जानने योग्य विषय है। अब मैं कलसे एक पुस्तक लिखूँगा, जिससे यह विषय मुझे आ जायगा। इस प्रकार बिना किसी पुस्तक या व्यक्तिकी सहायतासे 'भारतीय मनोविज्ञान' इसलिये लिखा गया कि सुदर्शनजीको जिस 'मनोविज्ञान' के विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं था वह ज्ञान उनको आ जाय। इसका पूवार्ध 'मानस मणि' में क्रमशः निकला और 'भारतीय मनोविज्ञान' का उत्तरार्ध आनन्द कानन प्रेस, वाराणसीसे बहुत बादमें प्रकाशित हुआ।

मेरठमें रहते ही कई अन्य पुस्तकें भी लिखी गयीं— 'आंजनेय', पुराण-विज्ञान', 'पुराण-रहस्य', 'शिव चरित' आदि। 'शिव चरित' बादमें शाहजहाँपुरसे निकलनेवाले 'परमार्थ' पत्रके विशेषांकके रूपमें निकला। मेरठमें ही 'पर्वोत्सव' भी लिखा। इस पुस्तकके भार्गव बुक डिपो, वाराणसीने दो संस्करण प्रकाशित किये।

विशेषांकोंके प्रकाशनके समयको छोड़कर अन्य समयमें मेरठमें कम ही रहते। कभी वृन्दावन चले जाते और कभी प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके यहाँ झूँसी। एक बार गर्मियोंमें पं० शान्तनुविहारीजी द्विवेदीके साथ हरिद्वार गये थे, तब सुदर्शनजीने अपनी बीस कहानियाँ पं० शान्तनुविहारीजी द्विवेदीको दिखायीं। उन्होंने अपने पास रख लीं और गोरखपुर गये तब पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको दे दीं। उन्होंने कल्याणके अंकोंमें क्रमशः प्रकाशित की जिसका पारिश्रमिक प्रत्येक कहानीका पाँच रुपयेके हिसाबसे सौ रुपया गीताप्रेससे वृन्दावन सुदर्शनजीके लिये भेज दिया। सुदर्शनजीने इस प्रथम पारिश्रमिकका आधा अर्थात् पचास रुपये पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजीकी पुत्री कमलाके विवाहमें वाराणसी जाकर ठाकुर झगरूसिंहके माध्यमसे भेज दिया। हिन्दी साहित्यके जाने-माने प्रसिद्ध विद्वान् श्रीपरशुराम चतुर्वेदी बलियामें वकील थे। उन्हींके सुपुत्र धनंजय चतुर्वेदीसे कमलाका विवाह सम्पन्न हुआ था।

अघोरीका मान-मर्दन

श्रीचक्रजी मेरठसे वाराणसी झगरू सिंहसे मिलने मिलने वर्षमें एक बार जाया करते थे। उन्हीं दिनों वाराणसीके चेतगंज म्युनिसिपालिटी ऑफिसके सामने एक बाबा गुलाबचन्द अघोरी रहा करते थे। इनकी सिद्धियाँ बहुत प्रसिद्ध थीं। ये 'आबाज ए खल्क' नामका उर्दू साप्ताहिक पत्र भी निकालते। स्वयं लिखते और स्वयं ही छपाते। अमावस्याको इनके यहाँ सत्संग भी होता। सदुर्शनजी भी वहाँ कभी-कभी चले जाते थे। बाबाके कई चमत्कार प्रसिद्ध थे। एक चमत्कार सुदर्शनजीने भी देखा था। बाबा तम्बाकू भी पीते थे; किन्तु उनके धुएँमें कभी दुर्गन्ध नहीं आती थी, जबकि सुदर्शनजीको तम्बाकूका धुँआ असह्य था।

एक बार अघोरी संत सुदर्शनजीपर बड़े प्रसन्न हो गये और उल्लास-पूर्वक कहा – कुछ माँग ले। सुदर्शनजीने माँगना अस्वीकार कर दिया। कुछ अप्रसन्न होकर अघोरीने दो बार पुनः कहा— अरे, माँग भी ले; अघोरी प्रायः सहज प्रसन्न नहीं हुआ करता।

सुदर्शनजीको उनके तीन बार कहनेपर आवेश आ गया— सोच लीजिये, जो मैं माँगने जा रहा हूँ, वह देंगे आप? 'दूँगा! दूँगा!! दूँगा!!!' अघोरी संतने तीन बार दोहराया।

'ठीक है। दीजिये – संसारमें जितने रोगी मनुष्य हैं वे सब स्वस्थ हो जायँ और कोई जगत्में दरिद्र न रहे।' सुदर्शनजीने दृढ़तापूर्वक ओजपूर्ण स्वरमें कहा।

महात्मा गुलाबचंद अघोरी फूट-फूटकर रो पड़े। उन्होंने सुदर्शनजीके पैर पकड़ लिये— बाबू! तुमने आज अघोरीका अभिमान नष्ट कर दिया।

इन अघोरी बाबाने एक बार एक मरे हुए मुसलमान नौजवानको जीवित कर दिया था जिसे कब्रमें भी गाड़ दिया गया था। बाबाने इस शर्तपर कब्र खुदवायी कि यदि वह जीवित न हो सके तो मुझे दफना देना। कब्र खोदने-पर

लड़का मरा हुआ था परन्तु जीवित कर दिया। तबसे इनकी प्रसिद्धि बढ़ गयी थी। बाबाके मरनेपर वही आश्रम सँभालता था।

ग्रन्थ-कृपा

श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानसको सुदर्शनजी ग्रन्थ नहीं, अपितु भगवान्का वाङ्मय स्वरूप ही मानते। इन ग्रन्थोंका श्रद्धा-पूर्वक वाचन, श्रवण करनेसे ग्रन्थकी भगवत्ता धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगती है। इस प्रकारकी घटना इनके जीवनमें इस प्रकार है–

वाराणसी जिलेमें एक गाँव है 'महुअर'। जब देशका स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, तब उस गाँवके एक क्षत्रिय युवक सत्याग्रह आन्दोलनमें इनके साथी थे। नाम तो उनका जयनाथ सिंह था; किन्तु सब उन्हें जैनू सिंह कहते थे। इनके सगे भाई देवनाथ सिंह, जिन्हें देऊ सिंह कहा जाता था, वे सत्याग्रह आन्दोलनमें तो सम्मिलित नहीं थे, पर जयनाथके भाई होनेके नाते स्नेह मानते थे। ये सीधे-सादे थे पर पढ़े-लिखे नहीं थे।

जब सुदर्शनजी मेरठके संपादन कालमें ही सन् 1938 के अंतमें दो-चार दिनके लिये वाराणसी होकर भेलहटा आये थे, उसी समय देवनाथ सिंह सुदर्शनजीके समीप कुछ देर बैठे रहे। जब मिलनेवाले सब चले गये तब एकान्त पाकर बोले– मेरी इच्छा गीतापाठ करनेकी होती है। इस बड़ी आयुमें गाँवमें किसी आदमीसे पढ़नेकी बात कहनेमें लज्जा आती है। आप कोई उपाय बताइये।

वे अच्छे ज़मींदारों में थे, उन दिनों ग्रामीण सम्पन्न किसान ज़मींदारोंमें अनेक अपने पुत्रोंको पढ़ाना अनावश्यक मानते थे। बात चलनेपर वे कह देते– लड़कोंको पढ़ाकर क्या करना है? उसे नौकरी करनी है क्या?

जयनाथ सिंहने आन्दोलनसे आनेके पश्चात् अक्षर ज्ञान प्राप्त किया। वे धीरे-धीरे पुस्तकें पढ़ने लगे थे, किन्तु देवनाथ सिंह तो निरक्षर थे। यह

सत्य है कि किसी भी आयुमें पढ़ना लज्जाकी बात नहीं, किन्तु पैंतीस वर्षके ग्रामीण युवकको यह तथ्य समझा देना सुदर्शनजीको सरल नहीं लगा; जिसे वर्णमालाका भी ज्ञान नहीं, उसे गीता-पाठ करनेकी भला कौन सी युक्ति बतायें?

सुदर्शनजीने मन-ही-मन सोचा— नन्द बाबाने ही अपने लालाको कौन सा पढ़ाया था, किन्तु यह नन्हा अनपढ़ गोपाल यदि चाहे तो किसीको भी महापण्डित बना सकता है। अतः उस समय हँसकर उन्होंने देवनाथकी अच्छी भावनापर चोट न लगे इसलिये यह समझा दिया—देखो! गीता भगवान्‌की वाणी होनेके कारण भगवान्‌का स्वरूप है, अतः गीताका स्पर्श भी गीतापाठ-जैसा ही है। आप श्रद्धा-पूर्वक गीताके श्लोक पंक्तियोंके ऊपर अँगुली फिरा लिया करें।

देवनाथजी सुदर्शनजीकी बातपर पूर्ण विश्वास करके सन्तुष्ट होकर चले गये। कहींसे गीताप्रेससे छपी गीताके मूल श्लोकोंकी बड़े अक्षरोंकी पुस्तक खरीद लाये और नियमसे प्रतिदिन आरम्भसे अंत तक उसके श्लोकोंकी पंक्तियोंपर अँगुली फिराने लगे।

सुदर्शनजी डेढ़-दो वर्ष पश्चात् 1939 में पुनः मेरठसे वाराणसी होकर दो-चार दिनको भेलहटा पहुँचे। उनके आनेका पता लगते ही देवनाथ सिंह आ गये और फिर एकान्त पाकर नम्रतासे निवेदन किया—मैं गीतापर अँगुली फिराता हूँ तो मेरे मुखसे कुछ निकलता है। मैं क्या बोलने लगता हूँ यह मुझे पता नहीं है। आप थोड़ी देर एकान्तमें ही चलकर इसे देख लीजिये।

सुदर्शनजी उनके साथ कुछ देर एकान्तमें बैठ गये। देवनाथ सिंह अपने साथ लायी गीताकी पुस्तक खोलकर श्लोकोंकी पंक्तिपर अँगुली फिराने लगे। सुदर्शनजी तो आश्चर्यचकित रह गये; जब उन्होंने देखा कि देवनाथ जिन पंक्तियोंपर अँगुली फिराते हैं उन श्लोकोंका शुद्ध उच्चारण उनके मुखसे हो रहा है। सुदर्शनजीने गीताके अनेक पृष्ठोंको पृथक्-पृथक् खोलकर उनसे

अँगुली फिरवाकर देखा, उन सब श्लोकोंका शुद्ध उच्चारण ही उनके मुखसे होता था।

यह तथ्य जब देवनाथ सिंहको बताया—वे विह्वल हो गये, नेत्रोंसे अश्रु बहने लगे। गद्गद कंठसे बोले— आपकी अनुकम्पासे मुझ साधारणसे व्यक्ति—पर भगवान्‌ने इतनी कृपा कर दी।

इसके बाद तो देवनाथ सिंहने अपना जीवन ही परमार्थमें लगा दिया। पैदल ही तीन बार पूरे भारतके तीर्थोंकी यात्रा की। चौथी बार ऐसे ही यात्रा करते द्वारिका पहुँचे और श्रीद्वारिकाधीशका दर्शन करते हुए, गीताके श्लोक मुखसे निकलते हुए मंदिरमें ही उनका शरीर छूट गया।

सुदर्शनजी कहते हैं— ''यह ग्रन्थकृपाका प्रत्यक्ष उदाहरण है।'

उत्तराखण्डकी यात्रा

'अक्षय-तृतीया' (वैशाख शुक्ल तृतीया)-को सामान्य स्थितिमें श्रीबद्रीनाथजीके पट खुल जाया करते हैं। श्रीसुदर्शन सिंह 'अक्षय तृतीया'-को प्रातः श्रीबिहारीजीके श्रीचरण दर्शन करके अपने प्रथम लेखनका पारिश्रमिक लेकर वृन्दावनसे बद्रीनाथजी चल दिये। सामानके नामपर धोती, गमछा, एक लोटा, चादर और पूजाका झोला था। सिरपर रासबिहारी ठाकुरजी-जैसे लम्बे केश, आधी धोती पहने और आधी ओढ़े थे।

तीन-चार दिन ऋषिकेशमें ही रुकते-रुकाते लग गये थे। उन दिनों मोटर बस केवल देवप्रयाग तक जाती थी। आगेका मार्ग पैदल चलते रहे, पाँच-सात मील चले होंगे कि पथमें जो भी भावुक यात्री मिलते वैराग्यवान-युवक संत समझकर प्रणाम करते, पैर छूते, कुछ भेंट-दक्षिणा देनेका प्रयास करते और कोई-कोई खाने-पीनेकी सामग्रीको अर्पित कर स्वीकार करनेका आग्रह करता।

भगवदाश्रित, निवृत्तिपरायण सुदर्शनजीको यह मार्गका व्यवहार अपनी यात्रामें व्यवधान लगा। वे पुनः देवप्रयाग लौटे और एक नाईकी दुकानपर

जाकर केश काटनेको कहा। नाईने कहा— महाराज! आप ऊपर बद्रीनाथजी जा रहे हैं। बहुत ठंडी है। केश क्यों उतरवा रहे हैं।

'ठंडी है, इसीलिये कटवा रहा हूँ।' सुदर्शनजीकी अटपटी बातें नाईकी समझमें नहीं आयीं, किन्तु उसने उनके केश बहुत छोटे-छोटे कर दिये। यहींसे सुदर्शनजी सीधे गाँधी आश्रमकी दुकानपर गये और आधी बाँहोंकी कमीज खरीदकर पहन ली और निश्चिन्त होकर मनमें सोचते हुए चलने लगे—

'अच्छा है, अब कोई मुझे महात्मा तो नहीं समझेगा।'

उस वर्ष हिमालयमें हिमपात अधिक हुआ था। जोशीमठ पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि श्रीबद्रीनाथजीके पट आज ही खुलनेवाले हैं। बद्रीनाथजी पहुँचनेसे पहले ही देखा कि मार्गमें तीन-चार फुट बर्फ जमी है। दुकानदार फावड़ोंसे बर्फ हटाकर अपनी दुकानोंके द्वार खोलनेके प्रयत्नमें हैं। सरकारी कर्मचारी भी सड़ककी बर्फ हटाकर मार्ग प्रशस्त करनेमें लगे हैं।

बद्रीनाथजी पहुँचकर पहले ही दिन अलकनंदा, तप्त कुण्डमें स्नान करके मंदिरमें दर्शन किये। दूसरे दिन 'ब्रह्मकपाली' पर जाकर माता-पिता, भाई, ताऊ, चाचा और बाबाके निमित्त पितरोंका श्राद्ध किया।

तीसरे दिन अपने एक पथिक मित्रके साथ सुदर्शनजी श्रीबद्रीनाथजीसे व्यास गुफा, सहस्रधारा तक चले गये। साथमें एक युवक पर्वतीय ब्राह्मण थे—मार्गदर्शनके लिये। दो-तीन स्थानोंपर इन्होंने अलकनन्दाकी धारा बर्फके नैसर्गिक पुलसे पार की। जब ये दोनों सहस्रधाराके ऊपरकी गुफापर चढ़ने लगे, तब मार्गदर्शकके मना करनेपर भी इनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, तब यह लोग भी नहीं जान सके कि इन्हें भाग्य भरोसे छोड़कर मार्गदर्शक महोदय चुपचाप खिसक गये हैं।

किसी प्रकार ये दोनों ऊपर पहुँचे भी और लौटे भी। लौटते समय ये

लोग रास्ता भूल गये थे तथा जिस हिमनिर्मित पुलसे अलकनन्दा जाते समय पार की थी वह इतनी देरमें टूट चुका था, अतः इन्हें 'माना' गाँवके पास होकर घूमकर आनेको विवश होना पड़ा।

'माना' गाँव सुनसान पड़ा था। घरोंके द्वारोंपर ताले सीलबन्द पड़े थे। यहाँके निवासी सर्दियोंमें जो नीचे चले गये थे, वे लौटे नहीं थे। जीवनमें पहली बार जनशून्य गाँव देखा। अद्‌भुत लगा वह सुनसान। साथके मित्र आगे बढ़ गये थे। सन्ध्या समीप थी, बादल हो आये थे और वर्षा किसी भी क्षण सम्भव थी। इनके पास न छाता था, न बरसाती कोट। अतः स्थान-पर पहुँचनेकी शीघ्रता स्वाभाविक थी।

सहसा, सुदर्शनजीके पैरोंने चलना बन्द कर दिया। कैसी अवस्था हुई? कुछ कह नहीं पा रहे थे। उज्ज्वल हिमाच्छन्न पर्वत और पीछे एक जनहीन गाँव। मित्र कितनी दूर आगे चले गये थे, जाननेका कोई उपाय नहीं था। सहसा सामने दस गज दूर एक महाकाय आकृति आ खड़ी हुई। एक गम्भीर स्वर सुनायी दिया।

कुछ क्षण लगे इन्हें अपनेको सँभालनेमें, सामने जो खड़े थे वे आश्वस्त कर रहे थे कि 'डरो मत'।

सुदर्शनजीने देखा — वे मानव पुरुष थे, किन्तु उनकी वह विशाल देह. ....। सुदर्शनजी उनके घुटनोंसे कुछ ही ऊँचे होंगे। नाभिसे नीचे तक लटकती श्वेत दाढ़ी, लम्बी-लम्बी भुजाएँ और ....सुदर्शनजी चाहने और प्रयत्न करनेपर भी वह तेजोमय दीप्त मुख किसी प्रकार नहीं देख पाये। उनकी ओर देखना सरल नहीं था।

'कौन हो तुम?' शुद्ध संस्कृतमें पूछा उन्होंने।

'मैं संस्कृत समझ लेता हूँ, पर बोल नहीं पाऊँगा' —सुदर्शनजीने कहा और अपने-आपको आश्वस्त करके पृथ्वीपर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया और अपना नाम बताया।

'गोत्र?'

'सावर्णि'

वे महाकाय इतने खुलकर हँसे कि पर्वतमालाएँ काँपती-सी प्रतीत हुईं।

'भगवन्! सुदर्शनजी केवल सम्बोधन करके रह गये। कुछ समझ नहीं पा रहे थे।'

'कोई विशेष बात नहीं है।' वे सौम्य स्वरमें बोले– तुम्हारे कुलपुरुष भगवान् विवस्वान्के आत्मज सावर्णि ही अगले मन्वन्तरमें मनु होंगे। तुम्हारी यह क्षीण काया है। मैं भी उन मार्तण्ड-तनयके सन्मुख इतना ही छोटा अल्प-प्राण लगता हूँ। कहीं तुम अपने उन कुलपुरुषके दर्शन कर सको... ..। किन्तु इस बार वे हँसे नहीं।

'भगवन्! आप.......'– जिज्ञासा की सुदर्शनजीने। 'मेरा जन्म त्रेताके अंतमें हुआ था' उन्होंने सहज भावसे कहा। तब तक तो मानव देह ह्रासको प्राप्त हो चुका था और तुम्हें देखकर तो प्रतीत होता है कि धरापर कलिका कितना व्यापक प्रभाव है।

अब सुदर्शनजीको स्मरण आया कि पुराणोंमें वर्णित 'कलाप ग्राम' यहीं कहीं समीप ही होना चाहिये। मेरे सामने जो दिव्य पुरुष उपस्थित हैं, वहींके निवासी होंगे। इनके मनमें उस धन्य धराके दर्शनकी इच्छा प्रबल होने लगी।

'वत्स! उत्कंठा व्यर्थ है' सुदर्शनजीके प्रार्थना करनेसे पहले ही उन्होंने कहा– 'कलापग्रामकी भूमिपर तुम जा सकते हो। तुम्हारे अनेक साथी आते-जाते हैं; किन्तु वहाँके निवासी जब तक स्वयं न चाहें कोई उन्हें देख नहीं सकता। मैं स्वयं वहाँ क्षमता नहीं रखता।

'वे कृपा कर सकते हैं?' एक बार अनुरोध किया।

'तुम्हारा समाज स्वस्थ नहीं है। हम अब तक अपनेको स्वस्थ इसलिये रखनेमें सक्षम रहे कि अस्वस्थताके संक्रामक प्रभावको अपने तक पहुँचने

नहीं दिया।'

'अस्वस्थ समाज?'

'मनुष्य सदासे दुर्बल रहा है— उन्होंने कहा। उसमें त्रुटि नहीं होगी, यह कैसे सम्भव है? उसके पद वासनासे विचलित नहीं होंगे यह कभी सम्भव नहीं हुआ, किन्तु सत्य जीवनका स्वास्थ्य है। अपने स्खलनको स्वीकार करनेका साहस जब तक मानवमें है, पाप पद जमा नहीं सकता। समाज स्वस्थ बना रहता है।'

पता नहीं कितने क्षण सुदर्शनजी मस्तक झुकाये अपने चिन्तनमें ही लीन रह गये। सोचते रह गये— दिव्य शक्तियाँ स्थूलदर्शी साधारण मानवके लिये दृश्य नहीं बना करतीं। कलापग्राम तो कल्पान्तजीवी तापसोंकी स्थली है। सृष्टिकर्त्ता वहाँ प्रलयके भी पश्चात्के लिये प्राण एवं ज्ञानका, साधनका बीज सुरक्षित रखते हैं, अतः वहाँका जो जितना अंश वहींके कोई तपःसिद्ध दिखलाना चाहें, वही और उतना ही दूसरोंको दीख सकता है।

अब सुदर्शनजीने नेत्र उठाये, सन्मुख कोई नहीं था। वही हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ, वही तीव्रवेगा अलकनन्दा और वही पीछे सुनसान 'माना' गाँव।

सुदर्शनजीके मित्र इन्हें पीछे आता न देखकर लौट पड़े थे और इनका नाम लेकर पुकार रहे थे। बादल भी अधिक घने हो आये थे, सर्दी भी लग रही थी। यों भी इन्हें रोमांच हो रहा था। वहाँसे शीघ्रतापूर्वक अपने निवास स्थानकी ओर लौट आये।

स्मरण आते ही सुदर्शनजीको यह संस्मरण रोमांचित कर देता। कहते भी थे— 'मैंने जो भी देखा, सत्य ही था। सत्य जीवनका स्वास्थ्य है। इसे अस्वीकार कैसे किया जा सकता है?'

दूसरी बारकी एक यात्रामें गंगोत्री-यमुनोत्री जा रहे थे। उत्तरकाशी पहुँचनेसे पहले रात हो गयी। टेहरीके बस-स्टैण्डपर बस खड़ी हो गयी।

इस बसको आगे जाना ही नहीं था। आसपासके एक तख्तपर बैठकर सुदर्शनजी सोचने लगे कि सबेरा कैसे करेंगे? तब तक एक दस-बारह वर्षका बालक गर्म पानीकी भरी बाल्टी और एक कुल्हड़में दूध दे गया।

प्रातः स्नान-पूजन करके निवृत्त हुए ही थे कि पासकी दुकानका दुकानदार अपनी बाल्टी खोजता हुआ आया—'मेरी बाल्टी कहाँ गयी? मेरी बाल्टी कौन ले गया?' बाल्टीकी बात सुनकर सुदर्शनजीने कहा— रातको एक बालक आया था वही पानीकी बाल्टी दे गया। क्या यही बाल्टी है? प्रसन्न होकर दुकानवाला बोला—

बाल्टी तो यही है, पर मेरे पास तो कोई बालक नहीं है। कौन-सा बालक था। सुदर्शनजी मनमें समझ गये— मेरे कन्हाईको छोड़कर कौन हो सकता है भला! तब तक एक बस सड़कपर आकर खड़ी हो गयी। उसका ड्राइवर सीधे बससे उतर कर सुदर्शनजीके पास आया और बोला— जल्दी चलिये, बस जानेवाली है। दोनों साथ-साथ चल दिये। इनका बैग भी ड्राइवरने ले लिया था। ड्राइवरने सुदर्शनजीको बसके आगेकी पहली सीटपर बैठा दिया। तब सुदर्शनजीने पूछा—तुम मुझे कैसे जानते हो? मैं तो तुम्हें नहीं जानता। ड्राइवरने कहा— मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

यात्राके ऐसे अनेक संस्मरण हैं जो श्रीकृष्ण-सान्निध्यका अनुभव करानेवाले हैं। यात्रा सम्पूर्ण होनेपर हरिद्वार लौट आये।

श्रीगुदड़िया बाबासे भेंट

हरिद्वारमें ही ज्ञात हुआ श्रीगुदड़िया बाबाके बारेमें — जो प्रायः हरिद्वारसे हापुड़ या खुर्जा तक घूमते रहते थे। सुदर्शनजी उनके दर्शन करने गये। उस समय गुदड़िया बाबा एक गुदड़ी ओढ़े फुटपाथपर कोहनीके बलपर अधलेटे हो कंकड़ोंसे खेल रहे थे। वे सर्दी, गर्मी, तेज बारिशमें भी किसी मंदिर या

मकानमें नहीं जाते थे। बिना माँगे जो मिल जाय आकाश वृत्तिसे उसीमें अपना निर्वाह करते थे। सड़कके किनारे एक ओर पड़े रहते थे। प्रायः इनको बच्चे घेरे रहते थे। बाबा भी बच्चोंको अंगूर, किशमिश आदि बाँटा करते थे। वे आकाशकी ओर हाथ फैलाकर मुट्ठी बाँधकर नीचे करते तो अंगूरके गुच्छे लटकते नज़र आते। यदि कोई वयस्क व्यक्ति कुछ माँगता या चमत्कार दिखानेकी प्रार्थना करता तो गाली देकर भगा देते। कभी चलते समय स्वेच्छासे अपनी गुदड़ी किसी साथ चलनेवालेको दे देते तो उसकी मनोकामनाएँ पूरी हो जातीं। यदि कोई आग्रह करके माँगता—

बाबा! हमें दे दीजिये, हम उठाकर चलते हैं—कहनेपर सहज तो बाबा देते नहीं थे। कोई विशेष आग्रह करता तो दे देते। तब वह गुदड़ी इतनी भारी हो जाती कि गुदड़ी लेकर आठ-दस पद आगे चलना भी भारी हो जाता, और विवश होकर वह बाबाको गुदड़ी वापस ही कर देता।

सुदर्शनजी बाबाके समीप पहुँच गये और प्रणाम करके बैठ गये। बाबा बिना उनकी ओर देखे कंकड़ोंसे खेलते हुए ही हँसकर बोले— अरे! आ गया तू?

सुदर्शनजीने बिना कुछ कहे हाथ जोड़ दिये।

'कुछ खायेगा?' कहते हुए उन्होंने हाथ उठाया आकाशकी ओर और बँधी मुट्ठी उनकी ओर बढ़ाकर हाथ खोलते हुए कहा—ले, खा ले।

'यह खाने योग्य है भी?' सुदर्शनजीने प्रश्न करते हुए देखा कि बाबाकी मुट्ठीमें कच्चे पिश्ते थे।

बहुत प्रसन्न होकर हँसते हुए बोले—लड़के! आज पहली बार तूने विवेककी बात कही है, अन्यथा तो लोग सहज रूपसे खा जाते हैं। यह बात तो किसीने नहीं कही; परन्तु ये चोरीके नहीं, जंगलके हैं, तू खा सकता है। पिश्ताके बाद उन्होंने किशमिश भी दी जिसमें पत्ते, कूड़ा भी मिला था।

सुदर्शनजीने कहा— बाबा! मैं तो 'संकीर्तन' पत्रिकाके पाठकोंके लिये

आपका संदेश लेने आया हूँ। आप अपने अनुभवकी अथवा साधन सम्बन्धी कोई बात बतला दीजिये।

तनिक गम्भीर होकर बाबा बोले—बेटे! अभी तू बालक है (सुदर्शनजी उस समय छब्बीस-सत्ताईस वर्षके थे) हम तो गये, मैंने तो मोहवश अपना जीवन नष्ट कर दिया, तू मत करना; क्योंकि जब कोई साधक जान-बूझकर एक बार सिद्धिका प्रयोग करता है तो सिद्धि प्रयोगमें जो अहंभाव तथा संकल्प है वह उसे इस जीवनमें मुक्त नहीं होने देता। उस सिद्ध देहका प्रारब्ध तो उसी समय बन जाता है। उसका साधन-भजन उस देहको ही पुष्ट करता है, वह मरकर सिद्ध लोक ही जायगा। उसके बाद कभी मनुष्य योनि पावे, तब साधन करके भले मुक्त हो।

सुदर्शनजीने यह उपदेश 'संकीर्तन' पत्रिकामें तो प्रकाशित कर ही दिया। साथ ही उनके मनमें भी बैठ गया। बादमें वे कहते— 'जब किसी दिवंगत महापुरुषके विषयमें सुनता हूँ कि मृत्युके पश्चात् उन्होंने अपने किसी भक्तको प्रत्यक्ष दर्शन दिया था, प्रत्यक्ष आदेश दिया तो मुझे आश्चर्य नहीं होता। बाबाकी बात स्मरण आ जाती है। अब सिद्ध देहकी आयु तो सिद्ध-लोकमें कल्पान्त तक है और कल्प अर्थात् ब्रह्माका एक दिन मनुष्योंके वर्षसे 4 अरब 32 करोड़ वर्षका होता है। आप चाहें तो इस बातसे सन्तोष कर सकते हैं कि ब्रह्माजीके वर्तमान दिनका आधा भाग व्यतीत हो चुका है क्योंकि ब्रह्माजीके एक दिनमें चारों युग एक सहस्र बार घूम जाते हैं। उसमेंसे सत्ताईस चतुर्युगी बीत चुकी है। अट्ठाईसवीं चतुर्युगीका यह अन्तिम युग कलियुग चल रहा है। लेकिन सिद्धिका प्रयोग करके सिद्ध लोकमें रहना पड़ेगा और ब्रह्माजीकी रात्रि भी उतनी ही बड़ी होती है जितना दिन। अतः ब्रह्माजीके शेषांश दिन-रात्रि व्यतीत होनेपर अगले कल्पमें मनुष्य जन्म होना सम्भव है।'

अब हमको समझमें आया कि तात बाहरसे इतने रूखे क्यों रहते थे? क्यों अपने समीप भीड़ नहीं जुटने देते? क्यों इतने कम बोलते थे? क्यों वे

प्रशंसकोंको उसकी बातके बीचमें रोककर कह देते—'तुम श्रीकृष्ण जन्म-स्थान आये हो तो केशवदेवजीके मंदिरमें चले जाओ। उसे बड़े-बड़े स्तोत्रों द्वारा की गयी अपनी स्तुति सुननेकी आदत है। मुझे तो बड़ी ऊब होती है।'

मथुरामें श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर एक बार उनके श्रीमुखसे गुदड़ियावाले बाबाका प्रसंग सुननेके पश्चात् मैंने पूछा— तात! आपने बाबासे यह क्यों कहा कि 'ये खाने योग्य हैं भी?' तब उन्होंने कहा— बेटी! आज जगत्‌में कोई भी वस्तु अथवा स्थान स्वामित्वशून्य नहीं है। बाबा जो आकाशमें हाथ उठाकर अपनी सिद्धिके बलपर कोई वस्तु मुट्ठीमें बन्द करके लाते हैं, वह कहाँसे आयेगी? आयेगी तो सृष्टिमेंसे ही न! किसी बगीचे, किसी गोदाम अथवा किसी दुकान या घरसे। इन स्थानोंका कोई-न-कोई तो स्वामी होगा न? अब स्वामीके बिना पूछे उसकी वस्तु लेकर किसी औरको दे देना चोरी नहीं है? बाबा मेरी बात समझ गये थे। इसीसे हँसकर सिद्धिका प्रयोग करनेसे मना किया था।

काश! आज मानव यह बात समझ पाता।

प्रयाग-कुम्भमें अग्निकाण्डका टलना

सन् 1939 का द्वितीय विश्व महायुद्ध प्रारम्भ हुआ ही था। श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीका तार पाकर सुदर्शनजी मेरठसे झरिया गये वहाँके संकीर्तन सम्मेलनमें भाग लेने। उनके आश्रमके व्यवस्थापक श्रीजगतप्रकाशजीका देहान्त हो गया था, उनकी षोडशीके उपलक्षमें यह उत्सव भंडारा था।

यहींसे प्रयागके कुंभमें सुदर्शनजीको ब्रह्मचारीजीने बुला लिया। ब्रह्मचारीजीका पण्डाल झूँसीके हंसतीर्थसे सटे पुरानी झूँसीके खेतमें दक्षिणकी ओर था। सुदर्शनजीको पण्डालके कार्यालयमें ठहराकर वहाँकी व्यवस्थाका भार सौंप दिया और अखण्ड संकीर्तन चलने लगा।

एक दिन ब्रह्मचारीजीने शामको चार बजे सुदर्शनजीको बुलाया।

सुदर्शनजीने पहुँचनेपर देखा कि ब्रह्मचारीजीके पास एक श्वेतवसना, तेजस्विनी वृद्धा बैठी है। ब्रह्मचारीजीने उनका परिचय देते हुए कहा— ये बुआजी रिटायर्ड जजसाहब श्रीकृष्ण चन्द्रजीकी बहिन हैं। वर्षोंसे कोठीसे बाहर नहीं निकलीं। पूजा, भजन-लीला तपस्विनी हैं। आज कृपा करके सावधान करने पधारी हैं कि अपने इस पण्डालमें आज रातको आग लगनेवाली है। यह तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। सुदर्शनजी तनिक गम्भीर होकर बोले— अग्निदेवको क्या कोई शीघ्रता है? उन्हें लगना होगा तो पूर्णिमाके पश्चात् लग जायँगे।

बुआजीको सुदर्शनजीकी लापरवाही अच्छी नहीं लगी। उन्होंने फिर चेतावनी दी। इधर ब्रह्मचारीजीने भी जोर देकर सतर्क किया; किन्तु स्वयं ब्रह्मचारीजीने कुछ किया-कराया नहीं। उस पण्डालमें पचासों फूसकी झोंपड़ियाँ थीं, स्वयं माघ मेलेका आफीसर भी परिवार सहित था। कार्यालयमें सुदर्शनजी थे। उनके पूजा-विग्रह ठाकुरजीका चित्रपट था और कई बड़े टीन मिट्टीके तेलके थे। समय कम था और ज्वलनशील पदार्थ और मनुष्य अधिक। ऐसेमें सावधानी रखकर भी क्या किया जा सकता था?

सुदर्शनजीने मन-ही-मन कहा— यहाँ मेरे कन्हाईके रहते अग्निदेव ऐसा दुस्साहस नहीं करेंगे। ऐसा दुस्साहस द्वापरमें दो बार करके वे परिणाम देख चुके हैं। वैसे सुदर्शनजीकी बुआजीपर श्रद्धा भी थी। उनके कथनपर विश्वास भी था; किन्तु वे जानते थे अग्नि जड़ नहीं हैं। वे देवता हैं और अपना कार्यक्रम परिवर्तन भी कर सकते हैं। बुआजीने कहा भी सच था। उसी रात्रिको किसीने एक झोंपड़ीपर जलता हुआ अंगार डाला था। उस समय चौकीदार वहीं लघुशंका करने बैठा था। उसने देखते ही शोर मचाया तो आग लगानेवाला तो भाग गया। चौकीदारने वह अंगार वहीं बुझा दिया। थोड़े तिनके जल गये उस झोपड़ीके, यद्यपि अग्निदेवने अपना कार्यक्रम रद्द नहीं किया था, केवल कुछ दिनोंके लिये स्थगित कर दिया था।

उत्सवकी समाप्ति पूर्णिमाको होनी थी। सुदर्शनजी पूर्णिमासे दो दिन पहले ही भगवानदास सिंघानियाके साथ बम्बई चले गये। वहाँसे होलीपर उन्हें वृन्दावन पहुँचना था।

सुदर्शनजीके जानेके पश्चात् माघ पूर्णिमाको उत्सवका समापन ब्रह्मचारीजीने न करके फाल्गुनके दस दिन और बढ़ा दिया। उन बढ़े हुए दिनोंमें पीछेकी दो रात्रि अर्थात् आठ दिन पश्चात् एक रात्रिमें आग लगी और पूरा शिविर भस्म हो गया। किसी भी झोंपड़ीका कोई सामान नहीं बचा। आग लगनेके बीच एक पागल गीदड़ भी घुस आया। उसने ग्यारह-बारह लोगोंको काट लिया; जिनमेंसें कई मर गये। इस प्रकार बुआजीकी बात सत्य हुई, किन्तु सुदर्शनजीकी आस्थाको बल देकर।

पूजा-विग्रहकी प्राप्ति

प्रायः होलीपर, अक्षय-तृतीयापर प्रति वर्ष वृन्दावन ही रहते। श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी भी वृन्दावन आये हुए थे। इन्हीं दिनों ब्रह्मचारीजीका पूजा चित्र-विग्रह कोई इनका ही साथी चुरा ले गया। ब्रह्मचारीजी तो बहुत दुःखी हुए और उदास चित्तसे सुदर्शनजीसे परिक्रमामें वंशीवटके समीप मिले और चोरी हो जानेकी बात बतायी तथा कहा— मैं तो अन्न-जल छोड़कर साथियों सहित संकीर्तन कर रहा हूँ—**'श्रीकृष्णगोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवाय'** का। आप भी प्रयत्न करिये जिससे मेरे पूजा-विग्रह ठाकुरजी आ जायँ वापस।'

सुदर्शनजीने ब्रह्मचारीजीको समझाना चाहा, पर वे माने नहीं। तब सुदर्शनजी भी अन्न-जल छोड़कर इस संकल्पको लेकर परिक्रमा मार्गमें ही कच्ची कुटियामें श्रीमद्भागवतका पाठ करने लगे। तीन दिनका पाठ हो गया, चौथे दिन प्रातः पौने तीन बजे सुदर्शनजीको स्वप्न हुआ कि उनके श्यामसुन्दर सिरहाने खड़े होकर कह रहे हैं— दादा! तू क्यों भूखा प्यासा पड़ा है?

'ब्रह्मचारीजीके ठाकुरजी खो गये हैं। वे दुःखी होकर अन्न-जल छोड़ बैठे हैं, उनके खाये बिना मैं कैसे खा लूँ?'

'तू तो खा ले दादा! उनको करने दे अनशन-फनशन जो करें। तेरा भूखा रहना मुझसे सहा नहीं जाता।'

'उनके खाये बिना मैं कैसे खा सकता हूँ? भैया मेरे! अब तो वे खायें तभी मैं खाऊँगा।' 'अच्छा! तो मैं परसों आ रहा हूँ, पर पहले कुछ खा-पी ले।'

अच्छा....देखूँगा....। प्रातः नित्यकर्म करके श्रीमद्भागवतका उस दिनका पूरा पाठ करके ब्रह्मचारीजीके समीप गये और स्वप्नकी पूरी बात बता दी। यह भी कह दिया कि मैं आजसे दूध पी रहा हूँ। आप भी पी लीजिये। श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीको स्वप्नकी इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा — सुदर्शनजी क्षुधातुर होनेसे ऐसी बात कह रहे हैं, पर मैं तो नहीं खाऊँगा।

अब ठीक तीसरे दिन प्रातः जब नित्यनियमके अनुसार सुदर्शनजी बाँके-बिहारीजीके दर्शन कर रहे थे, तभी ब्रह्मचारीके एक शिष्यने मंदिरमें जाकर भीड़में उनका हाथ छू कर कहा— पूज्य श्रीब्रह्मचारीजीके श्रीठाकुरजी मिल गये हैं। आपको संदेश देने मुझे भेजा है। मंदिरसे सुदर्शनजी सीधे श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराजके पास गये और देखकर प्रसन्न हो गये— 'अरे! पूजाका चित्रपट गुलाबोंके पुष्पोंसे वैसा ही सुसज्जित है, जैसा इन्हें स्वप्नमें देखा था।' शिष्यमण्डली अभी भी संकीर्तन कर रही थी। सुदर्शनजीके आनेपर सभीने प्रसाद ग्रहण किया। इन्हीं दिनों श्रीनित्यानन्द भट्टके छोटे भाई गोकुलनन्द तैलंग प्रतिदिन भागवतकी कथा सुना रहे थे। सुदर्शनजीने वृन्दावन रहते हुए इनसे कथा श्रवण की।

व्रजयात्राके दिव्य अनुभव

गोरखपुरसे पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीके साथ उनकी माताजी भी वृन्दावन आयी हुईं थीं। माताजीका जीवन भक्तिरससे परिपूर्ण तथा अति सौम्य था। क्षमा, सरलता वात्सल्य, स्नेहकी प्रतिमूर्ति थीं। किसीके प्रति न रोष था, न द्वेष-बुद्धि। सुदर्शनजी पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीके पास ही उड़ियाबाबाके आश्रममें रहते थे। उन्होंने सुदर्शनजीसे आग्रह किया—माताजीको नन्दगाँव, बरसाना, गोकुल एवं गिरिराजजीके दर्शन करा लाओ। तुम्हारे प्रति उनका वात्सल्य होनेसे निःसंकोच जा सकती हैं।' सुदर्शनजीने कहा— मैं सब स्थानोंपर चला जाऊँगा, केवल बरसाना किसी औरको भेज दीजिये। पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजीने कहा — जब नन्दगाँव जायँगे ही, तब बरसाना कितनी दूर है। माँकी प्रसन्नताके लिये आप ही हो आइये न!

अब कुछ कहनेको नहीं रह गया। माँको लेकर मथुरा गये। वहाँसे गोकुल। गोकुलसे दूसरे दिन प्रातः किरायेका ताँगा लिया, वहाँसे गोवर्धन और गोवर्धनसे बरसाना चले। मार्गमें ताँगेके पहियोंमें कुछ खराबी आ गयी। ताँगेवालेने नीचे उतर कर देखा और बोला— ठीक करनेमें थोड़ी देर लगेगी बाबूजी। आप उतर लें।

माँ और सुदर्शनजी दोनों सड़कके किनारे एक छोटे वृक्षके नीचे बैठ गये। ताँगेवाला कभी पेटी खोलता, कभी कुछ सामान निकालता और कभी पहियेके पास उसे ऊँचा-नीचा करता, कभी सिरपर हाथ रोके रखकर कहता— अब क्या होगा? कैसे होगा? देर होती देख सुदर्शनजीने पास जाकर पूछा— क्या टूटा है? मैं सहायता करूँ?

उसने जो कुछ बताया, उससे सुदर्शनजीको लगा—यह तो बढ़ईका काम है, यह कैसे ठीक करेगा ? दूसरे, अधिक विलम्ब होनेसे 'लली' (सुदर्शनजी

किशोरीजीको 'लली' ही सम्बोधित करते थे)-के दर्शन भी नहीं होंगे माँको और फिर बारह बजे पट भी बन्द हो जायँगे। यदि चार बजे खुलनेपर दर्शन करके नन्दगाँव जाऊँगा तो शाम हो जायगी। वहाँसे मथुरा और वृन्दावन लौटना.....। मैं अकेला होता तो कोई बात नहीं थी पर वृद्धा माँको बड़ा कष्ट होगा। दूसरी सवारी भी मिल जाय लेकिन यहाँ कहाँसे सवारी मिल सकेगी। हताश हो पुनः माँके पास आकर बैठ गये। करते भी तो क्या?...

दस-पाँच मिनट ही हुए होंगे कि हाथमें झोला लिये एक व्यक्ति बरसानेकी ओरसे आता दिखायी दिया, उसने समीप आकर पूछा— क्या हुआ है? आप लोग क्यों बैठे हैं।

ताँगेवालेने ही ताँगेकी खराबीकी बात बतायी।

'जा ठहरो! मैं भी प्रयास करके देखता हूँ'— कहते हुए उसने झोलेसे औजार निकाले और जुट गया। कठिनतासे पन्द्रह मिनट लगे होंगे— 'लो, ठीक हो गया'— कहते हुए उसने औजार समेटे और चलनेको तैयार हो गया।

'सुदर्शनजीने कुछ पैसे देने चाहे। उसने हँसने हुए कहा – बाबू। मैं तो आपका ही दिया खाता हूँ। किशोरीजीके घरका बढ़ई हूँ। कैसे ले सकता हूँ? कहते हुए वह तो चल दिया।

माँको लेकर सुदर्शनजी ताँगेमें बैठ गये। ताँगेके चलते ही उन्होंने देखा कि सड़कपर दूर-दूर तक उस आदमीका पता नहीं चला किधर गया? क्या, कुछ भी तो पता नहीं चलता.....तब समझमें आया कि वह कौन हो सकता है उसके सिवाय.......!

माँको बरसानेमें दर्शन कराकर वृन्दावन आनन्दपूर्वक लौट आये। बादमें माँ संन्यासिनी हो गयी थीं और 'ब्रह्ममयी माँ' के नामसे प्रसिद्ध हो गयीं।

अवधकी वीथियोंमें

वाराणसीके समीपके होनेसे सुदर्शनजी कभी पं० शान्तनुविहारीके साथ और कभी अकेले ही अयोध्या जाते रहते थे। वहाँ संतोंके दर्शन, उपदेश, सरयू-स्नान और मंदिरोंमें दर्शन, सत्संग प्राप्त करते ही रहते थे।

इस बार वृन्दावनसे अकेले ही अयोध्याकी ओर चल दिये। पं० शान्तनु-विहारी द्विवेदीने कहा भी– 'ये कुछ रुपये तो आप अवश्य लेते जायँ।'

'चक्रवर्ती सम्राट्के घर जा रहा हूँ, किसी कंगालके घर नहीं'– बड़ा अलमस्त उत्तर दिया उन्होंने। मर्यादा पुरुषोत्तमको अतिथि-सत्कार भी नहीं आता होगा– आप ऐसा समझते हैं क्या? अब पंडित द्विवेदीजी कहते भी तो क्या?

दुबला-पतला शरीर, बड़े-बड़े रूखे-रूखे बाल, छोटी-छोटी दाढ़ी, पासमें एक चद्दर, कम्बल, एक झोला। झोलेमें एक लोटा, पाठकी पुस्तक भागवत, गीता तथा माला, पूजाका चित्रपट बस।

कोई परिचय नहीं, कोई साधन नहीं, वेश भी न साधुका, न गृहस्थका और पासमें कानी कौड़ी भी नहीं।

जब वे अयोध्या स्टेशनपर उतरे, तब प्रातःकालका ही समय था। पैदल जाकर सरयू-स्नान और पूजासे निवृत्त हुए ही थे कि 'आप जलपान कर लें'–पाठकी पुस्तक झोलेमें डाल रहे थे कि एक बाबू साहब हाथमें दोना भर जलेबी लिये सामने नम्रतापूर्वक प्रार्थना कर रहे थे।

मध्याह्न पूर्व ही जब वह दर्शन करने गये, एक बूढ़े जटाधारी भव्यकाय महन्तजीने निकलते ही कहा–आज आप कनकभवन बिहारीजी सरकारका आतिथ्य ग्रहण करेंगे।

'आतिथ्य ग्रहण करनेको ही तो मैं आया हूँ' सुदर्शनजीने मान-भरे मनसे मनमें ही कहा और चल पड़े।

तीसरे दिन एक अत्यन्त वृद्ध वैष्णव संत सरयू-तटपर मिले और स्नेह-पूर्वक समझाने लगे— जब आप किसीसे कुछ माँगते नहीं, पासमें कुछ रखते नहीं और जहाँ कोई कुछ दे सके और भोजन करा सके, ऐसे स्थान-पर ठहरते नहीं। अरे! ऐसे स्थानपर तो रहिये जहाँ श्रीरामजीको कष्ट न हो। खण्डहरोंमें, झाड़ियोंमें और टूटी कब्रोंके बीच आप छिपते फिरते हैं, क्यों? कभी यह भी सोचा है? आपको ढूँढ़नेमें, आतिथ्य करनेमें उन स्थानोंमें परम सुकुमार श्रीरघुनाथजीको कितना कष्ट होता होगा?

फूट-फूटकर रो पड़े सुदर्शनजी। सचमुच वे ऐसे ही स्थानोंमें दो दिनसे छिपते फिरे। उनका आतिथ्य तो वहाँ भी हुआ ही।

उसी दिन वे अयोध्यासे चित्रकूट चले गये।

पं० शान्तनुविहारीजी द्विवेदीके साथ भी सुदर्शनजी अवधमें जाया करते। उनके गाँव महराईके निकट विष्णुपुरा (विसनुपुरा)-के एक ब्राह्मण वैरागी होकर जानकी घाटमें पं० रामवल्लभाशरणजीके आश्रममें निवास करते थे। उनके परिचयसे ही ये दोनों वहाँ जाया करते और ठहरा करते थे। कभी-कभी पं० श्रीरामवल्लभाशरणजीसे ज्ञान-भक्तिकी चर्चा भी होती।

एक बार पं० शान्तनुविहारी द्विवेदी और सुदर्शनजी सरयू-स्नानके लिये जाते समय आपसमें चर्चा करने लगे—श्रीसरयूतट और गंगातटमें क्या अन्तर है?

अन्तर यह है— गंगा तटपर विरक्त अवधूत गण विचरते हैं और सरयू तटपर भजन करनेवाले लोग रहते हैं। गंगा तटपर ज्ञान-ध्यानकी चर्चा है और यहाँ नाम-संकीर्तन, पूजा-पाठकी। चर्चा करते-करते जब स्नान-संध्या करके लौटने लगे तो अयोध्यापुरीके बाहर ही कुछ लोगोंने कहा— इस मार्गसे मत जाओ। इस टूटे मकानमें एक पागल रहता है। वह कभी-कभी ईंट-पत्थर फेंककर मार भी देता है। उस समय दोनों मित्र जवान थे। कुछ

वैराग्य, कुछ भगवदाश्रयका बल। लोगोंकी वर्जनाके पश्चात् भी बलात् वहाँ पहुँच गये।

'पागल' ने हाथसे संकेत देकर उन्हें अपने पास बुलाया। अपनी गुदड़ी बिछा दी। प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा और बोला—तुम्हारे पास कुछ खानेको है? 'नहीं'—दोनोंने कहा।

'तुम्हारे लोटेमें सरयू जल है —वही दे दो'—उसने कहा।

'उसने ओक लगाकर सारा जल पी लिया। जल गिरनेसे मिट्टीका जो अंश भीग गया, उसने वह भी खा लिया। सुदर्शनजीके पास चार-पाँच आने पैसे थे—ये पैसे इन्होंने पागलको दे दिये। पैसे लेकर वह आगे-आगे चला, ये दोनों पीछे-पीछे। उस पागलको देखकर लोग डरके मारे अलग-थलग हो जाते थे। इन दोनोंको पीछे चलते देख वे लोग आश्चर्य करते और मना भी करते। वह नंगा पागल दस-पाँच कुत्तोंसे घिरा आगे बढ़ने लगा। वह हलवाईकी दुकानपर पहुँचा। चार-पाँच आने पैसे दे दिये और उससे जो मिठाई मिली वह कुत्तोंको खिला दी। बड़े प्रेमसे इन दोनोंकी ओर देखता हुआ चला गया। बहुत सोच-समझ कर दोनोंने निश्चय किया—यह तो कोई दत्तात्रेय-जैसा महात्मा है और हम लोगोंके मनकी आशंका मिटानेके लिये ही इतने सद्भावका व्यवहार किया है। सच, यह तो एक आश्चर्य ही है।

अयोध्यामें कई संतोंका सत्संग इन्हें प्राप्त होता रहा। श्रीरामवल्लभाशरणजी, श्रीरघुवरदासजी महाराज, गौवावाले साधु श्रीभगवदाचार्यजी, श्रीगंगेश्वरानन्दजी, श्रीअंजनीनन्दनशरणजी, श्रीकान्तशरणजी, श्रीसीतारामशरणजी आदि।

रामवन

'संकीर्तन' पत्रिका बन्द होते ही सुदर्शनजी लौटकर मेरठ गये ही नहीं। सीधे श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीके पास झूँसी आ गये। वहींसे वर्ष 1941 में

सबसे पहले ब्रह्मचारीजीके साथ ही 'रामवन' सतना गये। यह स्थान मध्य प्रदेशमें सतनासे दस कि०मी० रीवांकी ओर स्थित है। 'रामवन' के संस्थापक श्रीशारदाप्रसादजी थे। इन्होंने भूमि खरीदी थी, जिसमें आधेमें खेती और आधेमें आश्रम बनानेकी योजना थी। सुदर्शनजी जब वहाँ पहुँचे तब फूससे छाया हुआ कार्यालय और ऐसी ही दो झोंपड़ी थी। इसीमेंसे एकमें सुदर्शनजी वहाँ रहने लगे। इन्हें यहाँ बिलकुल एकान्त स्थान और श्रीरामचरितमानसके प्रसारका कार्य प्रिय लगा। अनेक वर्षों तक यहाँ सुदर्शनजी स्थायी रूपसे रहे। रामचरितमानसकी पत्रिका 'मानसमणि' यहाँसे निकलती थी। उसके सम्पादकके नामपर 'श्रीअंजनीशरणजी' का नाम छपता था। लेख अयोध्या जाते, उसे देखकर श्रीरामकुमारदासजी 'रामायणी' मणि-पर्वत, अयोध्या, संशोधन करके लौटा देते।

अब सुदर्शनजी 'मानसमणि' का सम्पादन करने लगे और वहाँसे सुदर्शनजीकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। 'आंजनेय' का दूसरा संस्करण 'हनुमानचरित' के नामसे निकला। 'राक्षसराज' 'प्रभु आवत' भी यहींसे छपी। इसके अतिरिक्त एक दर्जन छोटी पुस्तकें लिखीं और छपीं।

यहाँ रहकर सुदर्शनजीने एक विशाल योजना बनायी—सम्पूर्ण रामचरितमानसपर 'कहानी-भाष्य' लिखनेकी, किन्तु 'मानसमन्दाकिनी नामसे केवल तीन भाग ही छप सके, जिसमें 'मंगलाचरण' एवं 'गुरु–वन्दना' के अंश ही जा सके। अर्थाभावके कारण क्रम आगे नहीं चला। सुदर्शनजीने यहाँ 'श्रीरामचरितमानस पत्र–व्यवहार विद्यालय' प्रारम्भ किया। वह भी पाठ न छपनेके कारण नहीं चला। बादमें जब मथुरा आये, तब 'गीता-रामायण पत्र व्यवहार विद्यालय' के पाठ तीन वर्षोंके लिखे जो छपे भी।

महराईसे कानूनगो साहबसे मिली 'एफ०जे० अलेक्जेण्डरकी पुस्तक 'इन दि आवर आफ मेडीटेशन' का हिन्दी अनुवाद 'ध्यानके समय' के नामसे 'रामवन' से प्रकाशित करायी।

धीरे-धीरे 'रामवन' में और कुटिया भी बनी। जिस कुटियामें सुदर्शनजी रहते थे, वह गिर गयी। दूसरी पक्की कुटिया बन गयी और कार्यालय भी इनकी पक्की कुटियामें आ गया।

विचित्र यायावर

विचित्र यायावर थे ये, कहीं भी तो पैर टिकते नहीं थे। इसी कारण कोई संग्रह नहीं, कहीं ठिकाना नहीं। न जाने किस दक्ष-श्रापके कारण सदा-सर्वदा भ्रमण ही जैसे भाग्य और स्वभाव बन गया था। त्रिलोकीका अधीश्वर इनका अनुज था – क्या कमी रहती इनको यदि एक बार भी इच्छा करते नवनिर्मित भवनकी, किन्तु ऐश्वर्य, संग्रह जैसे काटनेको दौड़ते। सदा अनिकेत, अपरिग्रही, चिरपथिक, बन्धन-मुक्त, सहज स्वतंत्र बने रहे आजीवन।

रामवन भी ये टिकते नहीं। बार-बार झूँसी चले जाते अथवा ब्रह्मचारीजी बुला लेते। अक्षय तृतीयापर वृन्दावन जानेका नियम था ही, बीचमें भी जाते रहते, कभी गोरखपुर, कभी वाराणसी जैसे इन्हें पुकार लिया करती।

सन् 1939 से 1945 तक द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ा। सुदर्शनजी 'मुंबई' गये तो इसलिये कि यदि भारत भी युद्धकी चपेटमें आया तो बमबारी देखनेको मिलेगी। युद्ध तो देखनेको मिला नहीं, पर भगवानदास सिंहानियाके यहाँ बम्बईमें ठहरे थे, उनसे पाँच सौ रुपये उधार लेने पड़े। इन रुपयोंसे इन्होंने गाँवमें बन्धक रखी जमीनको छुड़ाया। उन रुपयोंको चुकानेके लिये सुदर्शनजीने उस व्यक्तिके व्यवसायमें नागपुरके सूत रँगाईके कारखानेकी व्यवस्थामें एक वर्ष सहयोग दिया।

पगली द्वारा रक्षा

'नागपुर' के स्टेशनके पास ही एक पगली स्त्री रहती थी। लोग उसे बड़ी द्वेष-दृष्टिसे देखते थे, किन्तु वह कोई योग-भ्रष्टा सिद्धा थी। अर्ध-विक्षिप्त

अर्धनग्ना-सी इधर-उधर भटकती रहती, जहाँ-तहाँ पड़ी रहती। सुदर्शनजीको देखते ही वह बड़बड़ाती, कपड़े सँभालती भाग खड़ी होती कि– 'एक यही तो मर्द हैं और सब तो यहाँ कीड़े-मकोड़े हैं।'

संयोगसे एक दिन सड़कपर चलते हुए सुदर्शनजी वाहनोंसे भरी सड़क-पर साइकिलकी चपेटमें आ गये कि वह पगली कहींसे दौड़ती हुई आयी और साइकिलका पिछला पहिया कसकर पकड़ लिया– जैसे ब्रेक लगा हो। सहज गतिसे चलते सुदर्शनजीको धक्का लगा और वे भूमिपर गिर पड़े और बड़ा वाहन सड़कपर साइकिलके अगले पहियेको भूमिगत किये था। पगलीने कहा – बाबू! आज तो भोलेने रक्षा कर दी, अन्यथा बहुत बड़े अनर्थका योग था।

'क्या हो जाता, अंग-भंग अथवा देहपात ही तो?'–कपड़े झटका कर खड़े होते सुदर्शनजीने मुस्करा कर कहा। पगली खुलकर हँसी और तुरन्त ही गम्भीर होती हुई बोली– आप ही ऐसा कह सकते हैं। कुछ कारक सिद्ध व्यक्तियोंको सर्वेश्वर भिन्न-भिन्न स्थानोंपर नियुक्त करते हैं—अपने निज-जनोंकी रक्षा-सुरक्षाके लिये, आज आपको कुछ हो जाता तो यह पगली अपने स्वामी 'विश्वनाथ' को कैसे मुख दिखाती?

सुदर्शनजीको स्मरण हो आया। बोले—काशी दशाश्वमेध घाटकी ऊपरी सीढ़ीपर वृक्षके नीचे बँधे उतंग धवल वृषभके समीप रहनेवाले लम्बे-चौड़े काले भुजंग वर्ण साधु– जिनके पास कोई खाद्य सामग्री लाकर रखता तो वे हाथमें लेकर वृषभके सन्मुख रखते—वृषभ उसे सूँघ लेता, तो वे भी पा लेते—कहते 'धर्मने जिसे स्वीकार किया है वह ग्राह्य है।' वृषभ द्वारा उपेक्षा करनेपर वे भी उस वस्तुको फेंक देते। पुनः सुदर्शनजीने बताया—वे भी संत सिद्ध पुरुष हैं—ठीक इसी प्रकार पूर्वाभास हो जानेसे लोगोंकी सहायता करते हैं। उन संतकी बात सुनकर पगलीने कहा – वे तो हम लोगोंमें शाहंशाह हैं और काशीकी ओर मुख करके भूमिपर प्रणिपात किया।

साइकिलवाला तो अपनी कुशल मनाता भाग छूटा था; किन्तु अब क्या हुआ, कैसे हुआ, कहते हुए भीड़ इकट्ठी होने लगी थी जिसे देखकर पगली पागलपनका अभिनय करती हुई एक ओरको भाग गयी।

सुदर्शनजी नागपुरसे मुंबई होते हुए झूँसी और झूँसीसे रामवन आ गये और यहाँ वर्ष भरके सम्पादनका कार्य करने लगे। इस लिखनेके क्रममें सिरकी कोई नस फट गयी। श्रीशारदा प्रसादजीने चिकित्सा करानेमें बहुत सहयोग दिया, किन्तु स्वास्थ्यमें सुधार न होनेसे झूँसी आ गये। वहाँ भी उपचार न हो सका तो लखनऊ आ गये मिट्ठनलालजी अग्रवालके घर। यहाँ कुछ दिनोंकी चिकित्सासे लाभ हुआ, किन्तु ज्वर आता रहा। लखनऊसे ज्वरकी स्थितिमें ही ठाकुर झगरू सिंह कानूनगोके पास बलिया चले गये। ठीक होनेपर रामवन लौट आये।

पं० शान्तनुविहारी द्विवेदीजीका संन्यास

इसी बीच सन् 1941 में पण्डित शान्तनुविहारीजी द्विवेदीने ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगदगुरु शंकराचार्य श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीसे संन्यासदीक्षा ले ली और दण्डी स्वामी होकर मध्य प्रदेशकी ओर चले गये। अब वे स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती हो गये। जबलपुरमें सुदर्शनजी उनसे मिले। संन्यासी वेशमें देखते ही उन्होंने दण्डवत् प्रणिपात करते हुए चरणस्पर्श किया और खड़े होकर, अपने अभिन्न मित्रकी ओर देखते हुए धीरेसे बोले— आप तो पहलेसे ही विद्वद्वरेण्य हैं। असंख्य लोगोंके पूज्य, श्रद्धास्पद एवं गुरु रहे हैं और अभी भी हजारों लोगोंके गुरु एवं मार्गदर्शक हैं।

'विद्वद्-समाजमें आपका श्रेष्ठतम स्थान है। क्या इससे भी अधिक यशकी आवश्यकता थी? आप तो घरसे, जगत्से पहलेसे ही विरक्त हैं, उसे वेश देने, पहिचान देनेकी क्या आवश्यकता थी?'

मित्रकी बात सुनकर स्वामीजीने गम्भीरतापूर्वक बहुत शालीनतासे कहा— तो फिर न्यास कर दूँ?

'नहीं-नहीं, अब नहीं, इसके लिये नहीं कहूँगा। जब ले ही लिया है तो दृढ़तापूर्वक पालन कीजिये।

पुनः श्रद्धासे चरणस्पर्श करके हँस दिये सुदर्शनजी – 'यह सब तो आपको सहना ही होगा।' अब दोनों मित्र एक साथ हँस दिये।

रामवनमें हनुमद्विग्रह

सुदर्शनजीके परामर्शसे मानस-संघ रामवन (सतना) -में शारदा प्रसादजी निरन्तर अध्ययन-पूर्ण खोज करते रहते थे। 'श्रीराम-साहित्य' एवं 'तुलसी साहित्य' का अच्छा संकलन कर लिया। मानसमें अंकित पुष्पों, पत्रों, पक्षियों, ऋषि, मुनि, कोल, किरातोंके नामोंकी सूची बनाते। पेड़-पौधे वनस्पतियोंके नाम-पहचान संकलित करके जहाँ-तहाँसे मँगाकर रामवनकी भूमिमें लगाते।

'सतना' के आसपास गाँवों और वनमें बसनेवाली वन्य जन-जातियाँ कई रूढ़ियों और अन्धविश्वासोंसे ग्रस्त होते ही हैं। इन्हें सबसे बड़ा भय भूत-प्रेतोंका था। सूर्यास्तके पश्चात् घरसे निकलना बड़ा संकट का कार्य था। रामवनमें भोजनवाला व्यक्ति भी भोजन बनाकर, खिलाकर अपने गाँव चला जाता। वह भूतोंके डरसे सूर्यास्तके बाद हिम्मत नहीं जुटा पाता। कोई बीमार पड़ता तो भूतग्रस्त मानकर झाड़-फूँक की जाती। यह सब देख-समझकर सुदर्शनजीने बालरूपमें सौम्य स्वरूप श्रीहनुमानजीकी स्थापना की। यह विग्रह लगभग तीस फुट ऊँचा है।

प्रतिष्ठाकी पूजाके बाद पुष्पान्जलि अर्पित करते समय सुदर्शनजीको आभास हो रहा था कि पवननन्दन मेरे हनुमान् 'दादा' ठीकसे खड़े क्यों नहीं हो पा रहे हैं? बात कुछ समझमें नहीं आ रही थी। दूसरे दिन वे शारदाप्रसादजी एवं मोतीलालजीको लेकर एक परम सिद्ध संतके यहाँ गये

जो रामवनके जंगलमें टीलेके पीछे गुफामें रहते थे। इनके आराध्य श्रीहनुमान्‌जी थे जो समय-समयपर उन्हें निर्देश भी दे देते थे।

इन तीनोंके पहुँचनेपर उन परमसंतने सीधे सुदर्शनजीसे ही प्रश्न किया— क्या तुम रघुवंशी हो?

'हाँ, आज्ञा?' कहकर सुदर्शनजीने प्रणाम किया।

'ठीक है; आ गये; रातको मेरे आराध्य हनुमान्‌जीने कहा है — मैं इस रघुवंशी बालकके कहनेसे यहाँ खड़ा तो हो गया पर उससे कहो कि मेरी बलि कहाँ है? पूजाकी विधिमें 'बलि' का विधान तो हुआ ही नहीं।' तुरन्त सुदर्शनजीको स्मरण आया कि बलिके लिये मँगाये एक सौ आठ नारियल तो बोरेमें रखे ही रह गये। लौटनेपर नारियल मँगाकर श्रीहनुमान्‌जीके श्रीविग्रहके सम्मुख तुरन्त तोड़ने शुरू कर दिये। श्रीहनुमान्‌जीका सुप्रसन्न सौम्य मुख देख आनन्द भरे स्वरमें बोल उठे—

आशा इच्छा और दुराग्रह यह मेरा अज्ञान।
तुमभी हठ रख लेते मेरा इतने कृपानिधान॥

सुदर्शनजीने यह बात प्रचारित कर दी—जिसे भी भूत बाधा हो, वह हनुमान्‌जीको प्रणाम करे। पढ़े-लिखे लोग हनुमानचालीसाका प्रतिदिन पाठ करें और बिना पढ़े लोग भी अपनी भाषा और अपने शब्दोंमें प्रणाम करें। जहाँ तक हनुमान्‌जीका विग्रह दिखायी देता है वहाँ तक तो भूत रह ही नहीं सकते। यदि किसीको भूतने पकड़ लिया हो, तो वह उस परिधिमें आ जाय जहाँसे हनुमान्‌जीके दर्शन होते हैं तो उसे भूत छोड़कर भाग जायगा।

इससे ग्रामीण लोगोंको बड़ा सुख मिला। उनका भय दूर हो गया। वर्तमान और भविष्यके लिये उन्हें मानो जीवनका पथ्य मिला, सम्बल मिला।

श्रीविग्रहके विस्तृत परिसरमें बायीं ओर किष्किन्धाकाण्डके प्रत्येक दोहे और

चौपाईके अनुसार बड़ी भव्य मूर्तियाँ हैं और दाहिनी ओर सुन्दरकाण्डके अनुसार दोहे-चौपाइयोंके सहित सुन्दर मूर्तियाँ स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त समीप ही मानस-सर बनाया गया है। मानसके अनुसार ही चार घाट हैं—

पश्चिम घाट—शिव-पार्वती-संवाद।

उत्तर घाट—भुशुण्डि-गरुड़-संवाद।

दक्षिण घाट—याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद।

पूर्वघाट—तुलसी-संत-समाज।

बहुत सुन्दर एवं रमणीक हैं चारों घाट। अभी भी सतनासे दर्शनको, पर्यटनको लोग आते रहते हैं। रामवनके जंगलमें एक छोटा-सा प्राचीन मंदिर भी है। एक बार सुदर्शनजी, शारदा प्रसादजी तथा मोतीलालजीके साथ उनके दर्शन करने गये। सुदर्शनजीकी दृष्टि श्रीपवनकुमार हनुमान्‌जीकी नासिकापर गयी। उन्हें स्पष्ट रूपसे झलकते हुए श्रम-बिन्दु दिखायी दिये। सुदर्शनजीने अँगुलीसे उन बिन्दुओंको लेकर चखा, तो स्पष्ट हो गया वह जल नहीं पसीना है। किन्तु इस जिज्ञासाका समाधान न पा सके।

सुदर्शनजीने किसी सत्संगमें सुना था, 'जिसका कोई नहीं होता, उसका भगवान् होता है। मृत्यु न समयके एक क्षण पूर्व आती है और न एक क्षण पश्चात्। वह अपने समयपर ही आती है तथा जन्म और मृत्युके बीचमें श्रीहरिकी कृपा-करुणा सदा हमारी सँभाल किया करती है। अतः भय व्यर्थ और निर्मूल है। जीवनमें जो कुछ घटता है वह निश्चित है इसलिये निश्चिन्त होकर भजन करना चाहिये।'

ये बातें कच्ची आयुमें ही सुदर्शनजीके चित्त और बुद्धिमें गहराईसे बैठ गयीं। इनके स्वभावमें निर्भयता, निर्भरता, निश्चिन्तता आ गयी। वे सहज ही चर्चा चलनेपर कह देते — कन्हाई जब मेरा है, तब कोई अन्य अपना हो या न हो, अन्यकी आवश्यकता ही क्या है?

अद्भुत आस्था

सुदर्शनजीकी पक्की अवधारणा थी—कन्हाईके नाते सभी मेरे और सब जगत् अपना ही है। समय-समयपर जो भी करना आवश्यक होगा, वह कन्हाई ही करेगा। उससे सशक्त और बड़ा व्यवस्थापक भला है ही कौन?

यह वाक्य उनके जीवनका आधार-वाक्य था।

वर्ष 1943 में श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने अखिल भारतीय सन्त सम्मेलन करनेका निश्चय किया। वे उत्सव-मूर्ति थे। कोई-न-कोई उत्सव आयोजित करते ही रहते थे, वह भी धूम-धामसे।

भारतके धर्माचार्यों एवं प्रसिद्ध संतोंको एक मंचपर एकत्रित करनेका काम जटिल तो है ही। ब्रह्मचारीजीने सुदर्शनजीको महामण्डलेश्वर श्रीविद्यानन्दजी, श्रीउड़िया बाबाजी एवं श्रीहरिबाबाजी महाराजको आमंत्रित करने भेजा। इनमेंसे कोई नहीं आ सके, फिर भी बहुत-से अच्छे संत एवं साधु पधारे।

यह आयोजन फाल्गुन मासमें किया गया। ब्रह्मचारीजीने लिखा-पढ़ी करके बिजली और पानीकी लाइन, जो सरकार माघ मेलेमें डालती है उसे बाँधके नीचेके मैदानमेंसे हटानेसे रुकवा दिया था। माघ मेला समाप्त होने-पर अनेक पण्डाल तथा झोंपड़ियाँ बिना मूल्य तथा अल्प मूल्यमें मिल गयी थीं। उन्हें उठवा कर उत्सवके स्थानपर लगवा दिया। केवल रसोईघर और गोदाम टीन शेडमें बनाये गये थे।

उत्सवका मुख्य भाग था— 'अखण्ड संकीर्तन'। व्यवस्था ऐसी की गयी कि रात-दिन कीर्तन मण्डपमें एक सौ आठ खोल (मृदंग) अवश्य हो। इतने मृदंग होंगे तो कुछ झाँझवाले भी होंगे। अतः सवा सौ कीर्तन करनेवालोंके चार दल थे। प्रत्येक दलको तीन घन्टे दिनमें एवं तीन घन्टे रात्रिमें कीर्तन करना था। कीर्तन करनेवाले पाँच सौ थे। इनमें अतिरिक्त आगत संत, विद्वान् एवं सेवक शिष्य भी थे।

सुदर्शनजीने संकीर्तन-भवनके पास ही झूँसीमें एक तीन कोनेकी कच्ची कुटी बनवा ली थी। मिट्टीकी दीवालें और खपरैलकी छाया, किन्तु फर्श सीमेन्टका था। ये प्रातः आठ बजे झूँसीसे गंगापार करके आते और कार्यालयमें बैठे रहते। सायंकाल पाँच बजे लौट जाते थे। इन्होंने किसी विशेष सेवाका दायित्व नहीं लिया था।

उत्सवके बीचमें एक दिन झूँसीसे आनेपर प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी सुदर्शनजीसे आकर बोले—गेहूँ किसी भी भाव मिल नहीं रहा है। अपने यहाँ केवल शामके उपयोगका आटा है। मैंने प्रयत्न करके देख लिया है, पर सफलता नहीं मिली।

सुदर्शनजीने विश्वास एवं दृढ़तासे कहा— इतने सत्पुरुष आये हैं, ऐसा भव्य कीर्तन हो रहा है। तो सर्वेश्वर क्या इसे आटेके अभावमें भंग हो जाने देंगे? आटेकी व्यवस्थाकी बात है। बस, अपना व्यवस्थापक तो कन्हाई है।

पता नहीं ब्रह्मचारीजीने क्या समझा? इनके भरोसेपर खजांचीको कहा— इन्हें जितना रुपया चाहिये, दे देना'— कहकर ब्रह्मचारीजी तो चले गये, उत्सवमें अवकाश था ही कहाँ उनके पास।

इधर, कहनेको तो सुदर्शनजी कह गये, किन्तु कहकर भूल भी गये। यदि स्मरण भी रखते तो कर क्या लेते? आटेकी कौन-सी व्यवस्था उनके पास थी? व्यवस्था सुदर्शनजीके पास भले न हो, 'सर्वेश' के पास तो थी ही। वे अपने जनकी बात कैसे व्यर्थ होने देते?

शामको झूँसी जानेको निकले ही थे कार्यालयसे कि एक बड़ी-सी मोटर गाड़ी इनके सामने खड़ी हो गयी। उसमेंसे एक अंग्रेज सैनिक अधिकारी उतरा। उसकी वर्दीपर तीन-चार सितारे लगे थे। उसके पीछे तीन सैनिक और उतरे। वे सब भी अंग्रेज एवं एंग्लोइण्डियन थे। 'यहाँ फोर्टके समीप इतना शोरगुल क्यों हो रहा है? तुम लोगोंको पता नहीं है कि युद्ध कालमें इतनी रोशनी करनेकी मनाही है। 'उस अफसरने अपनी टूटी-फूटी हिन्दीमें बड़ी उत्तेजित आवाज़में कहा। सुदर्शनजीको लगा कि यह सब बन्द

करा देनेके उद्देश्यसे ही सब आये हैं।

सुदर्शनजीने शान्त स्वरमें कहा– यहाँ भारतके सब सन्त आये हैं। वे ईश्वरका नाम पुकारते रहते हैं। 'ओह! ऑल इण्डिया सेण्ट्स हियर।' वह सैनिक अधिकारी गम्भीर हो गया। सिरपर हाथ रखकर दो-चार पद टहलता रहा, फिर बोला–मैं कोई सेवा करना चाहता हूँ।

सहसा सुदर्शनजीको सबेरेवाली आटेकी बात स्मरण हो आयी, इन्होंने उससे पूछा– आप कौन हैं? उसने नाम तो नहीं बताया, किन्तु कहा–इस समय यह फोर्ट मेरे चार्जमें है।

सुदर्शनजीने कहा– हमारे पास इन सन्तोंको खिलानेके लिये आटा नहीं है, यदि आप आटेका प्रबन्ध करवा दें तो रुपया हम दे देंगे।

वह बोला–रुपया नही माँगता। एक ट्रक आटा, बस?

'हाँ, बस।'

'हमारा मिलिट्री ट्रक रातको आठ-नौ बजे आ जायगा। तुम्हारे पास गोदाम है? आटेके बोरे उतरवा लेना।

'गोदाम तो है, किन्तु रातमें हमारे पास मजदूर नहीं रहते।'

'ठीक है, हमारे सोल्जर आयेंगे', अपने चौकीदारको बोलो–गोदाम खोल देगा। वह अपनी गाड़ीमें बैठते-बैठते फिर लौटा– घी माँगता? 'वह तो बाजारसे ले लेंगे।'

'नहीं, टेन टीन घी भी।' फिर कारकी ओर जाकर लौटा – किरासिन ऑयल?

'यहाँ बिजली है'– कहनेपर भी बोला–फाइव टीन किरासिन ऑयल।

वह अपनी कारमें बैठकर चला गया और सुदर्शनजी झूँसी चले गये। सबेरे आठ बजे लौटे तो चौकीदारने डरे स्वरमें कहा–

बाबू! रातमें मिलिट्रीवाले ट्रक लेकर आये थे, जबरदस्ती गोदाम खुलवा

कर उसमें आटेकी बोरियाँ लगा गये हैं।

सुदर्शनजीको अपनी भूल ज्ञात हुई। चौकीदारको बिना कुछ कहे ही झूँसी चले गये थे। उसी समय चौकीदारके जानेके बाद ब्रह्मचारीजी आये और सुदर्शनजी से पूछा – आटे या गेहूँका कुछ प्रबन्ध हुआ?

'चलिये, गोदाम देखें!' दोनोंने आकर आटेकी बोरियाँ देखीं।

'कहाँसे आया?'

'आकाशसे बरसा'—सुदर्शनजी बोले। गिननेपर पता चला— ढाई सौ बोरी आटा, दस टीन घी, पाँच टीन मिट्टीका तेल वे सैनिक रातको रख गये थे। इसके बाद वह या दूसरा कोई सैनिक आया ही नहीं।

कौन जाने, वह अंग्रेज अधिकारी ही था या विश्वनियन्ता 'अनेक रूप रूपाय' बनकर नाटक कर गया!

चित्रकूटके कौतुकी अनुभव

चित्रकूट धाम आनेपर ऐसा कौन है जिसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई? यहाँ प्रभु कृपावरुणालय हैं। यहाँ न वे अयोध्यानरेश हैं, न साकेताधीश्वर। यहाँ तो वे जन-जनके अपने हैं, कोल-किरातोंपर भी उनका समग्र वात्सल्य उमड़ता रहता है। दीनबन्धु, अशरण-शरण, नाम जैसे सार्थक हो उठा है उनका। यहाँ आकर मामा प्रयागदासकी अभिलाषा पूर्ण हुई, महाभाग तुलसीदासजी पूर्णमनोरथ हुए। कोई भी दर्शनकी या अन्य अभिलाषा लिये चित्रकूट पहुँचे—श्रीरघुनाथजी अवश्य ही मिलते हैं। न मिलें यह तो उनके भी वशमें नहीं, किन्तु हम पहचान पावें तब न! पहचान तभी पाते हैं जब वे स्वयं पहचान करायें।

(1) आञ्जनेयका दुलार

चित्रकूट आनेवाले सभी जन हनुमानधारा दर्शन करने जाते हैं। पहले

नावसे मंदाकिनी पार करके जाते थे। एक बार सुदर्शनजी अपने मित्र रामवनके शारदाप्रसादजीके साथ हनुमानधारा दर्शन करने गये। साथमें दो सेर भुने चने स्वच्छ करके बन्दरोंके लिये ले गये थे। संयोगसे वह दिन मंगलवार था। ऊपर सीढ़ियोंसे चढ़ते-चढ़ते कहीं भी बन्दर दिखायी नहीं दिये।

यों भी मंगलवार और शनिवारको सभी बन्दर ऐसे छककर तृप्त हो जाते हैं कि संध्या पूर्व ही वहाँसे जंगल चले जाते हैं। इन्हें तो वैसे भी यात्रामें विलम्ब होनेसे अपराह्न हो गया था।

सुदर्शनजी हनुमानधाराकी पूरी सीढ़ियाँ चढ़ गये, किन्तु श्रीहनुमान्‌जीके समीप न जाकर पाँच-छः सीढ़ी नीचे जहाँ पत्थरकी बैंच आदि बैठनेको बनी है — वहीं बैठ गये और उन्हें निहारते रहे। शारदाप्रसादजीने पूजा-सामग्री लेकर इन्हें आग्रहपूर्वक ऊपर बुलाया भी, तो न जाने क्यों ऊपर नहीं गये और बैठे-बैठे स्नेहाधिकार कहें या प्रेमाभिमानसे मन-ही-मन बड़बड़ाये— इतनी दूरसे चना लेकर आया हूँ, पर मेरा एक भी चना स्वीकार नहीं किया — क्यों भला? उन्होंने उपालम्भभरी दृष्टिसे अपने हनुमानदादाकी ओर देखा और सीढ़ियोंसे उतरने लगे। इस समय तक सूर्यास्त हो चुका था।

मंदाकिनीके समीप पहुँचनेमें केवल पन्द्रह मिनटका रास्ता रह गया था। संध्याके पश्चात् अन्धकारका झुटपुटा भी होता जा रहा था। साथके मित्र शारदाप्रसादजी लघुशंकाके लिये पन्द्रह-बीस कदम पीछे रह गये थे। सहसा एक स्वर्णरोमा, कनककपिश, मानवाकार कपि सामनेके वृक्षसे उतरे और एक हाथसे तो सुदर्शनजीका हाथ पकड़ा और दूसरे हाथसे झोलीसे एक मुट्ठी चने निकालकर मुखमें डाले। सुदर्शनजी प्रेम, श्रद्धा और आदर पूर्वक इन्हें निहारते ही रह गये। जब दो मुट्ठी चने खा चुके तब कहीं सुदर्शनजीने पीछे मुड़कर शारदाप्रसादजीको पुकारनेको इसलिये देखा कि वे भी दर्शन कर लें। उनकी ओरसे दृष्टि हटते ही पवनतनय तो हाथ छोड़कर वहीं-के-वहीं अन्तर्धान हो गये। सुदर्शनजी सब चने समीप ही चट्टानपर डालकर चार

कदम बढ़े होंगे, तब तक तो बन्दरोंका पूरा समूह कूदते हुए आया और चने खानेमें जुट गया।

जीवनमें अनेक बार उनके हनुमानदादाने उनका मन रखनेको ऐसी लीलाएँ की हैं।

(2) प्रत्युत्पन्नमति

भय जिसके समीप न फटकता हो और साथमें कौतूहली भी हों, उसके मस्तिष्कमें कौन-सा कौतूहल जन्म ले लेगा, कैसे कहा जा सकता है? बात तबकी है जब वनवासियों तक शहरी सभ्यता पहुँची नहीं थी।

एक दिन सुदर्शनजी बिना किसी लक्ष्यके चित्रकूटके जंगलमें चल पड़े। घोर जंगलमें लक्ष्यहीन भटकनेवाला पथ भूल जाय, सहज है। सुदर्शनजी भी पथ भूल गये। प्यास लगी थी, किन्तु जल कहीं नज़र नहीं आता था। बढ़ते जानेके अतिरिक्त उपाय भी नहीं था। यकायक सँकरे पहाड़ी मार्गपर कहींसे आकर दो वनवासी कुल्हाड़ी लिये सम्मुख खड़े हो गये। लकड़ी काटनेके अभ्यस्त हाथ थोड़ेसे पैसे और वस्त्रके लोभसे मनुष्य कण्ठको काटनेमें तनिक भी नहीं झिझकते। जंगलोंमें ऐसी हत्याएँ अक्सर होती ही रहती हैं। प्रमाणोंके अभावमें पुलिस भी विवश हो जाती है। स्वच्छ वस्त्र और हाथमें झोला लिये सुदर्शनजीको देखकर वनवासी कैसे अनुमान करते कि उनके पास द्रव्य नहीं है? पीछे मुड़कर भागना व्यर्थ, क्योंकि वनवासियोंकी अपेक्षा अधिक वेगकी आवश्यकता होगी। दोनों ओर सघन कटीली झाड़ियाँ थीं। सम्मुख तो उन बर्बरोंके समीपसे — उनसे सटकर ही उस सँकरे मार्गपर आगे बढ़ा जा सकता है।

सुदर्शनजी न डरे, न भागे, वे अपनी सहज गतिसे चलते गये। सन्मुख खड़े यमदूतोंको जैसे उन्होंने देखा ही नहीं। जब चार-छः पद दूर रह गये तब झोलेमेंसे हाथ डालकर टार्च निकाली और बन्दूककी तरह उनकी ओर

सीधी तानकर बटन दबा दिया। रोशनी होते ही वे घबड़ा कर भाग खड़े हुए। उन लोगोंने कहाँ कभी टार्चके दर्शन किये होंगे? समझा होगा— कोई चमत्कारी पलीता है। जला देगा हमें।

वे तो वनवासी थे, किन्तु चित्रकूटके वनमें बाघ और तेंदुएँ भी तो थे। उनमेंसे कोई मिल गया होता.....?

कोई भी मिले, सुदर्शनजीके दिमागमें तो एक ही बात थी—कन्हाई ही आता है, रूप चाहे कोई सा भी बना ले। उसको भगाना हो तो अगुँली कड़ी करके हिलाना ही पर्याप्त है। कोई नाराज होकर ऐसे कौतूहलोंसे बचनेको कहता तो उत्तर देते— मेरा क्या बिगड़ जायगा? मेरा बनना और बिगड़ना दोनों ही कन्हाईके हाथमें सुरक्षित है। वह नटखट है, मुझे चौंकाने, हँसाने-खेलनेको तरह-तरहके रूप बनाकर सम्मुख आता है। आपकी क्या है? आप पहचान नहीं पाते और वह किसी रूपमें आये—मैं उसे पहचान लेता हूँ और उसी रूपके अनुसार व्यवहार भी करता हूँ।

(3) शेर-शेरनीकी माँदमें

जीवनमें निर्भयता ऐसी कि शेरोंकी माँदमें घुसकर शेर-शेरनीके बीच निश्चिन्त सोकर रात बिता दी। चित्रकूटसे रामवन लौट आये थे। वहीं मनमें बात उठी शेरको समीपसे देखने-छूनेकी और साथ रहनेकी। साधारण व्यक्ति ऐसा सोच भी नहीं सकता, क्यों सोचे? भला, किसे वरदान प्राप्त है कि एकके बाद दूसरा सिर उसके सिरपर उगता चला जायगा अथवा क्षत-विक्षत होकर भी देह पुनः स्वस्थ हो जायगी? यदि ऐसा हो भी तो वह वनमें सुखसे रहते प्राणियोंके समीप जानेमें बदले वह मनुष्योंपर ही अपना प्रभाव दिखाना चाहेगा।

जो श्रीहरिके हो गये उन्हें भला किसीसे क्या भय अथवा वैर कि

छोटी-छोटी जिज्ञासाके लिये किसीको जानकारी देनेका कष्ट दें या स्वयं बैठकर सोचनेका कष्ट करें। उनके हो जानेपर सम्पूर्ण विश्व ही नहीं, अपितु ब्रह्माण्ड ही अपना घर है और चराचर उसके स्वजन। वह तो जहाँ चाहे, निर्बाध विचरणको स्वतंत्र है।

सुदर्शनजी बिना किसीसे कुछ कहे अकेले ही अभयारण्यकी ओर चल दिये; जहाँ वन्य-जीवोंका संरक्षण, संवर्धन और सुरक्षा होती है।

वन-विभागके गेस्ट हाउसके नीचे बाहर खड़े गश्त लगानेवाले गार्डसे शेर कहाँ रहते हैं, किस ओर हैं, कितनी दूर हैं? आदिकी जानकारी ली और उस ओरकी चढ़ाई चढ़नेको प्रस्तुत हुए तो गार्डने मना किया — बाबू! ऊपर मत जाइये, सरकारकी ओरसे प्रवेश निषेध है और फिर शेर कोई गायका बछड़ा नहीं है, बहुत खूंखार है, चीर-फाड़ कर धर देगा। इतने पर भी सुदर्शनजी चलते ही रहे तो गार्डने आश्चर्यसे उन्हें देखा — कौन है यह व्यक्ति, जिसे मृत्युका भय स्पर्श नहीं कर रहा ? दौड़कर इनके समीप चला गया। नहीं, जिन्दगीसे ऊबा हुआ आदमी भी नहीं लगता। यदि हो भी तो लोग आत्महत्याके आसान तरीके ही ढूँढ़ते हैं, जिससे मृत्युमें कम कष्ट हो। यह तो प्रसन्न और सहज मन दिखायी देता है। उसने झुँझलाकर फिर कहा— आप अपनेपर भले दया न करें, मुझ गरीबकी ओर तो देखिये, मेरे साहब मुझपर बहुत नाराज होंगे। वे मुझे नौकरीसे ही निकाल देंगे।

हाथके संकेतसे आश्वासन देते हुए सुदर्शनजी हँसते हुए आगे बढ़ते चले गये। बढ़ते-चढ़ते सूर्यास्त समीप जान संध्या सम्पन्न की, अर्घ्य दिया अपने कुलपुरुष भुवन-भास्करको। सामने ही पहली गुफा थी, जिसमें शेरोंका एक जोड़ा रहता था। गार्डने ऐसी सात गुफाएँ इस पहाड़के अगल-बगल और ऊपर बतायी थी। जब एक गुफा मिल गयी है तो अँधेरेमें अन्य गुफाओंको ढूँढ़ते फिरना व्यर्थ है—सोचकर गुफामें प्रवेश करने लगे तो दाहिनी ओरसे वनराजकी गुर्राहट सुनायी दी। लगा कि समीप ही है। अपने अधिकार क्षेत्रमें

अन्यके प्रवेशको देख चेतावनी दी, जैसे उसे यह अनधिकार चेष्टा असह्य है।

गुफामें प्रवेश करते हुए सुदर्शनजीके चरण रुक गये। विधाताकी वह अप्रतिम कृति उनसे दो गज दूर आ खड़ी हुई। सम्भवतः वह पूर्णिमा अथवा शुक्ल पक्षकी कोई चन्द्रिकाधौत रात्रि थी। बाघकी चिकनी खालपर काली-पीली धारियाँ चमक रही थीं और चमक रही थीं उसकी दोनों आँखें प्रज्वलित अंगारोंकी तरह। सुदर्शनजी मुग्धसे उसका रूप देखते रह गये। जन्तु-आलयमें कभी-कभी उन्होंने इस वनपशुको कुछ अन्तरसे देखा होगा; किन्तु आजकी यह छटा गहन अरण्यके मानव-विरहित प्रदेशमें एकाकी, रात्रिके प्रथम पहरमें शायद संसारके सबसे हिंसक पशुके इतने समीप खड़े होकर निश्चिन्त निहारनेका अवसर आज ही मिला है।

उन्हें सचेत करनेको ही मानो सिंह पुनः गुर्राया।

'गोविन्द! मुझे डाँट रहा है?' वे धीरेसे हँस दिये।'

'मैं नहीं पहचानूँगा तुझे? कैसा भी रूप बना ले, कुछ भी कर ले, मैं पहचान ही लूँगा तुझे। देख, मुझे नींद आ रही है, अब सोऊँगा।' वे दो-चार पद आगे बढ़कर शेरके पास चले गये। जैसे सदा गायों एवं गो-वत्सोंको सहलाते थे, गलेके नीचे वैसे ही उस क्रूरको सहलाने लगे, आश्चर्य वह भी पूँछ हिलाते हुए नेत्र बन्द करके 'गुर्र-गुर्र' करने लगा, जैसा सहलानेपर पालतू बिल्लियाँ करती हैं।

'आ, भीतर आज मैं तेरे संग ही सोऊगाँ' कहते हुए वे गुफामें प्रवेश कर गये। गुफा बहुत गहरी नहीं थी– सिंह दम्पतिका वर्षा और धूपसे बचाव हो जाता, बस। यह तो उन्होंने प्रातः देखा कि उनके शावकोंके लिये उसी गुफामें एक ओर गड्ढे-जैसी कोई गुफा है। भीतर आकर उन्होंने हाथसे जगह साफ की और निश्चिन्त लेट गये। आधा घंटा बीता होगा कि गुफाके बाहरसे

गुर्राहटकी ध्वनि आयी। सम्भवतः नर-तनकी गन्ध पाकर शेरनी गुर्रायी थी, साथ ही गुफाके बाहर आकर खड़ी हो गयी। जलती हुई आँखोंसे सुदर्शनजीको देखकर उन्हें दबोचनेके लिये उसने नीचे बैठकर अपनेको समेटकर घात लगायी। अधिक दूरी न होनेपर भी वह शायद कूदकर उन्हें दबोच लेना चाहती थी। सुदर्शनजी चुपचाप लेटे हुए उत्सुकतापूर्वक यह सब देख रहे थे। शेरनीके आने और घात लगानेमें केवल दो-चार क्षण लगे, वह उछले इससे पूर्व ही शेर थोड़ा उछलकर सुदर्शनजीको लाँघकर शेरनीके सम्मुख आ खड़ा हुआ और शीघ्रतासे अपने पैरका पंजा शेरनीके जबड़ेपर रखकर घुरघुराते हुए अपनी भाषामें न जाने क्या कहा कि शेरनी भी आकर उनके एक ओर बैठ गयी, दूसरी ओर शेर बैठा।

'देखो, तुम दोनों भी अब सो जाओ।'

सुदर्शनजीने दोनों हाथोंसे दोनोंका स्पर्श कर सहलाते हुए कहा और स्वयं आँखें मूँद लीं।

पाँच मिनट बाद दोनों उठे और सुदर्शनजीके पैरोंकी ओर सिर करके और उनकी ओर पीठ करके अपने दोनों ही पाँव फैलाकर सो गये। उन दोनोंकी पीठ सुदर्शनजीके शरीरसे सटी हुई थी, इससे इन्हें ठंड भी नहीं लगी और पैरोंकी ओर मुख होनेसे दुर्गन्ध भी कम आयी।

सुदर्शनजी नित्य रात नौ बजेसे प्रातः पौने तीन बजे तक सोते थे। नींद खुलनेपर ये उठकर बैठ गये। इनके उठते ही वे दोनों भी पालतू पिल्लोंकी भाँति अगले पैर फैलाकर सम्मुख बैठ गये। सुदर्शनजीने प्रातः नित्य नियमका स्तवन किया और हाथ बढ़ाकर स्नेहापूर्वक उन्हें सहलाया — गोविन्द, 'श्री कृष्ण'! कहकर हल्केसे थपथपाया — 'बस' अब मैं चलूँगा। नित्यकर्म शौच आदिसे निवृत होते-होते अँधेरा छँटने लगा था। नीचे उतरनेको तत्पर हुए तो शेर-शेरनी कूं-कूं करते सम्मुख पैरोंके समीप लोटने लगे, जैसे कहते हों — न जाओ। पुनः हाथ फेरकर सहलाते हुए कहा— बहुत सुख पहुँचाया

तुमने .....। दोनों आस-पास खड़े होकर सुदर्शनजीको उतरते हुए तब तक देखते रहे– जब तक वे आँखोंसे ओझल न हो गये।

जब वन-विभागका बँगला केवल एक किलोमीटर रह गया तब सुदर्शनजीने देखा – दो ऑफीसर दो गार्डोंके साथ सशस्त्र ऊपर चढ़ते आ रहे हैं। सुदर्शनजीको देखते ही सब ठिठक कर खड़े हो गये, उनके मुख आश्चर्यसे खुल गये, फिर सँभल कर बोले– आप जीवित लौट आये? कुछ भी न बताते हुए इन्होंने केवल इतना ही कहा– चलिये, लौट चलें! इन्हें मारना मत। वनके निरपराध प्राणी हैं ये। बेचारे अफसर कुछ भी नहीं समझ पाये कि यह व्यक्ति रात कहाँ रहा? ऊपर तो चारों ओर हिंसक पशुओंकी गुफाएँ हैं। यह बिना भयभीत हुए कैसा निश्चिन्त चला जा रहा है। वे आश्चर्य विमूढ़-से जाते हुए सुदर्शनजीको देखते रहे, पुनः न आनेकी चेतावनी भी न दे सके।

(4) वनयात्रामें पहुनाई

घटना रामवन निवास-कालकी है। रामवनसे लगभग चार मील दूर 'सरमन डोंगरी' नामक पहाड़ी है। रामवनसे सुदर्शनजी दो-एक साथीको लेकर प्रातः ही इस पहाड़ीपर चले जाते। दोपहरका भोजन पहाड़ीपर ही बनता। पहाड़ीपर एक झरना था रामवनकी ओर। ये लोग दोपहर भर वहीं रुकते और शाम तक लौट आते थे।

एक बार ऐसी ही यात्रा इन्होंने वर्षा ऋतुमेंकी। झरने तक पहुँचनेसे पूर्व ही साथवाले सज्जन जिन्हें भोजन बनाना था, बोले – मैं और सब तो लाया किन्तु आलू लाना तो भूल ही गया।

दाल नहीं बनेगी—यह बात पहलेसे ही निश्चित थी। सुदर्शनजीने कहा— चलो, ठिकानेपर चलकर कोई साग ढूँढ़ेंगे।

झरनेके समीप कोई साग तो नहीं मिला; किन्तु खट्टे पत्ते और डण्ठलवाली एक लता मिल गयी। चीनी डालकर उसके पत्तोंकी खट्टी-मिट्ठी चटनी बनी

और पराठे बनाये गये। वन-भोजन तो पत्तोंपर ही स्वादिष्ट लगता है।

सबके सम्मुख पत्ते रखकर उसपर सामग्री परोस दी गयी। इसी समय लाल मुखका खूब मोटा-सा बन्दर एक हाथमें शहदका छत्ता लेकर आया और इन सबके पास आकर बैठ गया।

'ये भोजनके समय आये हैं तो इन्हें भी दो पराठे दे दो।' सुदर्शनजीने कहा।

रसोई बनानेवाले सज्जनने दो पराठे हाथमें लेकर आगे बढ़ाये तो बन्दरने भी हाथ बढ़ाकर उन्हें ले लिया। अब पराठें भूमिपर रखकर दोनों हाथोंसे शहदका छत्ता मोड़कर उसने दो टुकड़े किये, करीब-करीब बराबर-बराबर। एक टुकड़ा सुदर्शनजीकी पत्तलपर डाला और दूसरा टुकड़ा और पराठे लेकर चला गया। अभी किसीने भोजन आरम्भ नहीं किया था। साथके सज्जन बोले— हनुमानूजी ही शहद देने आये थे।

शहदका छत्ता निचोड़नेपर सवा पाँव शहद निकला। सबने शहद-पराठे खाये। ये लोग भोजन करके जहाँ बैठे थे वहाँसे जिस मार्गसे लौटना था उस मार्गपर थोड़ी दूर वृक्षोंपर लाल मुँहके बन्दरोंका समूह उछल-कूद कर रहा था, किन्तु उस ओर किसीने ध्यान नहीं दिया।

साथके सज्जनने कहा— यह वनयात्रा पूरी तरह सफल नहीं हुई, कोई वन फल चखनेको नहीं मिला। उस वनमें फलके नामपर गूलर, बेल, चार और तेंदू होते हैं। अभी वर्षा-ऋतु है। बेल आषाढ़में ही खाने योग्य नहीं रहते। वर्षामें गूलरके फलोंमें ही कीड़े हो जाते हैं। चार और तेंदूका मौसम बीते एक महीनेसे अधिक बीत चुका था। तेंदूके वृक्षोंपर हरे नये फल आ गये थे।

लौटते समय बीच मार्गमें खड़े एक तेंदूके वृक्षपर सुदर्शनजीकी दृष्टि पड़ी। वह मार्गमें न होता तो उस ओर कोई देखता ही नहीं। उसे देखकर अन्य वृक्षोंकी ओर देखा तो कई वृक्ष पके फलोंसे लदे हैं। इसी स्थानपर

तो थोड़ी देर पहले बन्दर उछल-कूद कर रहे थे। उन्होंने फल क्यों नहीं खाये या गिराये? यह प्रश्न तो अनुत्तरित ही रह गया। साथके दो व्यक्ति पेड़ोंपर चढ़कर उन्हें हिलाने लगे। सबने जी भरकर तेंदूके फल खाये। सबका कहना था– इतने मीठे तेंदू तो कभी नहीं खाये।

एक झोला पके तेंदू रामवन भी लाये। इस मौसममें पके तेंदू मिलनेपर सबको आश्चर्य हुआ; किन्तु खानेपर लगा कि वनसे रामवन तक आते-आते वे फल स्वादमें उतर कर बिलकुल फीके हो गये हैं। वह तो हनुमान दादाने वनमें इनकी पहुनाई की थी। फल झोला भरकर ले आना तो अतिरिक्त लोभ ही था।

(5) शरभंग-मार्गकी भयावहता

अब तो चित्रकूटके अत्रि आश्रम (अनसूयाजी) -में नाथपंथी आश्रम बन गया है। किन्तु बात तबकी है जब वहाँ कोई आश्रम नहीं था और न वहाँ तक पक्की सड़क थी। सघन वनमें कच्चे रास्तेपर चलकर वहाँ जा सकते थे। कौतुकी सुदर्शनजीके मनमें आया—श्रीरघुनाथजी अत्रि आश्रमसे जिस मार्ग द्वारा दक्षिण गये हैं, उसी मार्गको शरभंग आश्रममें पकड़ा जाय और उसीपर चलकर अत्रि आश्रममें रात्रि व्यतीत की जाय। सहायक मिले— अयोध्या मणिपर्वतके वेदान्तभूषण पण्डित रामकुमारदासजी 'रामायणी'। वे रामवन आये हुए थे। वहाँसे निकलनेवाली पत्रिका 'मानसमणि' का सम्पादन करते थे। श्रीरामायणीजीने कहा कि 'मार्ग मेरा देखा हुआ है और भोजन भी मैं बना दूँगा यदि पानी लाने और बर्तन साफ करनेका काम कोई दूसरा कर लें।'

उस समय पथमें न गाँव पड़ते थे, न वनवासियोंके झोंपड़े। कम-से-कम दो-तीन रात्रियाँ मार्गमें ही व्यतीत होनी थीं। सुदर्शनजीको न मार्ग ज्ञात था और न भोजन बनाना आता था, अतः यदि रामायणीजी नहीं मिलते तो यह यात्रा वे कर ही नहीं पाते।

'रामवन' के 'मानस-संघ' के कार्यालयसे बर्तन, आटा, दाल आदि सामग्री और उसे ढोनेके लिये एक मजदूर 'बड़का' कोलको साथ ले लिया। इस प्रकार श्रीरामायणीजी, सुदर्शनजी और बड़का ये तीन यात्री रामवनसे चले। रामवनसे बस द्वारा सतना स्टेशन, वहाँसे रेल द्वारा जैतवारा पहुँचे। जैतवारासे पैदल चलकर वीरसिंहपुरमें एक धर्मशालामें रात व्यतीत की। प्रातः वहाँसे पैदल वनमार्ग पकड़ा। दूसरे दिन दोपहरके लगभग ये 'शरभंगा' (शरभंग आश्रम) पहुँच गये। शरभंग आश्रम घोर वनमें था। ऊँचे परकोटेसे घिरा श्रीराम-लक्ष्मण-जानकीका मंदिर था। मंदिरके द्वारके पास ही एक पक्का कुंड था जिसमें सदा जल भरा रहता था। मंदिरमें उस समय केवल दो साधु रहते थे।

होलीके बादका समय था। गर्मी बढ़ चुकी थी। श्रीरामायणीजी एवं सुदर्शनजी शामको पासकी पहाड़ीपर यह देखनेको गये थे कि कोई समतल स्थान मिले तो रात्रि-शयन करें; किन्तु कोई उपयुक्त स्थान मिला नहीं।

शामका झुटपुटा होते ही दोनों साधुओंने आग्रह किया कि ये तीनों भी रात्रिमें फाटकके भीतर ही रहें। यहाँ कुंडपर रात्रिको शेर पानी पीने आता है। साधुओंकी बात इन्होंने स्वीकार नहीं की। फाटकके बाहर दोनों ओर भूमिसे ऊँचा बरामदा था। ये लोग रात्रिमें वहीं बरामदेमें सोये।

रात्रिको कुण्डपर शेर आया था; क्योंकि प्रातः उठनेपर टार्चकी रोशनीमें देखा जलके पास ही गीली मिट्टीमें उसके पद-चिह्न दिखायी दिये। शायद शेरको इन थके यात्रियोंसे परिचयकी उत्सुकता नहीं थी।

शामको ही निश्चय कर लिया था कि प्रातः शीघ्र ही उठकर चल देना है। दैनिक शौचादि कार्य जहाँ भी जल मिलेगा, कर लेंगे। पर्याप्त अंधकार रहते ही इन लोगोंने प्रस्थान कर दिया क्योंकि धूप अधिक तीव्र हो, इसके पूर्व ही टिकरिया ग्राम पहुँच जाना चाहते थे। वैसे टिकरिया ग्राम जैतवारासे पाँचवाँ स्टेशन है, किन्तु इन्हें तो शरभंग आश्रम होते हुए वनमार्गसे जाना था।

चलनेमें लगभग आधा घंटा बाद ही एक नाला मिला, जहाँ मार्ग था वहाँ तो वह सूखा था; किन्तु बायीं ओर गहरा होनेसे उसमें जल था, वहीं ये तीनों निवृत्त होने, दन्त-धावन आदिके लिये अलग-अलग हो गये। निवृत्त होकर सुदर्शनजी पथपर आये तो रामायणजी एवं बड़का भी आ गया। दोनों आगे बढ़ गये।

'यहाँ ऐसी गन्ध आ रही है जैसी चिड़ियाघरोंमें शेरके पिंजड़ेके पास आती है'— सूखे नालेके पास पहुँच कर रामायणीजीने कहा। उनकी बात सुनकर सुदर्शनजी खड़े हो गये। गन्ध उन्हें भी आ रही थी और उसे खोजनेके लिये वे इधर-उधर देखने लगे। अभी अंधकार इतना था कि दो-चार हाथ दूरकी वस्तु भी स्पष्ट दिखायी नहीं देती थी। केवल आभास मात्र होता था।

'यह रहा।' सहसा सुदर्शनजीकी दृष्टि नीचे पैरोंके पासकी ओर गयी तो उन्होंने हाथसे संकेत किया। वहाँ नालेमें कोई बड़ा वृक्ष था। अँधेरेमें उसे पहचानना कठिन था, उस वृक्षकी जड़से सटा हुआ एक तेंदुआ (चीता) लेटा था। जैसे गाय पैर फैलाकर लेटती है, वैसे ही, किन्तु गर्दन उठाये वह इन्हींकी ओर देख रहा था। उसके नेत्र अँधेरेमें चमक रहे थे।

सम्भवतः वह जान लेना चाहता था कि उसके विश्रामके बीच अचानक ये दो पैरोंवाले दो जीव उसके समीप आ खड़े हुए हैं—वे कौन हैं? शत्रु, मित्र या उदासीन— यह ज्ञात होनेपर ही वह अपने व्यवहारका निर्णय करना चाहता हो। जिस समय सुदर्शनजीने हाथसे संकेत किया था उस समय वह अपने पंजेसे लेटे-लेटे ही सहज उनका हाथ पकड़ सकता था। उसके इतने समीप ये लोग खड़े थे; किन्तु शायद उसने हाथ मिलाना पसन्द नहीं किया। जैसेका तैसा लेटा रहा, केवल अपने कान खड़े कर लिये, सिर उठाये देखता रहा।

सुदर्शनजी सामने थे। यदि रामायणीजी स्वयं आगे बढ़ते तो उनके और तेंदुएके बीच कोई आड़ नहीं रहती।

'डरिये मत, यह भोजन करके विश्राम कर रहा है। यदि इसे न छेड़ा जाय तो यह अभी उठेगा नहीं, किन्तु जब तक 'बड़का' आगे न निकल जाय, मुझे यहीं खड़ा रहना चाहिये'—सुदर्शनजीने रामायणीजीसे कहा।

सुदर्शनजीका दिमाग तेजीसे दौड़ने लगा। उन्हें लगा कि यदि बड़काने इसे देख लिया तो डर जायगा और उसके सिरका सामान गट्ठर गिर पड़ेगा तब यह हिंसक पशु चौंककर आक्रमण कर सकता है।

इन्होंने पीछे सिर घुमाकर देखा कि बड़का है कहाँ? उसके आनेकी झलक मिली तो पुकार कर कहा— बड़का इधरसे मत आ। थोड़ा ऊपरसे नाला पार कर।

'बाबूजी रास्ता तो यही है'—। बड़काने भी पुकार कर कहा।

'नालायक! मैं कहता हूँ, इधरसे मत आ'—सुदर्शनजीने जोरसे डाँटा।

बेचारा कोल डरकर ऊपरकी ओर बढ़ गया। उसे देखकर सुदर्शनजी भी आगे बढ़े। अब तक रामायणीजी चुप थे। वे भी दो-चार पद साथ चलकर आगे हो गये।

नाला पारकर लगभग दसेक गज जाकर रुके तो बड़का पास आ गया। सुदर्शनजीने उससे कहा— बहस कर रहा था। देख, वहाँ कौन लेटा है? देखते ही 'बड़का' के सिरकी गठरी खिसक पड़ी; जिससे उसकी पगड़ी खुल गयी। उसे सहारा देकर ठीक किया। तेंदुआ अभी तक गर्दन घुमाकर उनकी ओर ही देख रहा था। अब सब उसकी ओर पीठ करके चल पड़े।

अरुणोदय हुआ, सूर्यनारायणका लाल बिम्ब उदित हुआ। इसी बीच पीछेसे तनिक तेज चलकर 'बड़का' समीप आकर फुसफुसाया—

'बाबूजी! कंरौछा।'

इन्होंने देखा, दाहिनी ओर करीब अठारह-बीस गज दूर खुलेमें एक सुन्दर सुपुष्ट काला चीता इनकी ओर पीठ करके स्थिर खड़ा सूर्यकी ओर देख रहा था। काली बिल्ली-जैसा काला चमकता शरीर बहुत सुन्दर लग

रहा था। सुदर्शनजी खड़े होकर देखने लगे– सूर्योदयके प्रकाशमें इतना भव्य दृश्य दोबारा कहाँ देखनेको मिलेगा।

'यह वनका सबसे धूर्त प्राणी है। जल्दी चलिये, बड़का कोल है वनवासी जातिका' —उसे इन प्राणियोंकी अधिक जानकारी थी। उसकी चेतावनी मानकर ये आगे बढ़ गये, किन्तु वह चीता वैसे ही सूर्योपासनामें लीन खड़ा था। उसने न सिर उठाकर देखा, न कान इधरकी आहट लेनेको घुमाये। इनकी उपस्थितिसे अनजान-सा वह जैसे खड़ा था– वैसे ही खड़ा रहा। ऐसा नहीं हो सकता कि इनके आनेका ज्ञान चीतेको न हुआ हो, वह वनप्रदेशका सबसे चौकन्ना जीव है, वह क्यों इनसे अनभिज्ञ-सा इनकी उपेक्षा करता रहा— विश्वनियन्ता ही इसका उत्तर जानते होंगे।

कुछ फर्लांग और आगे बढ़े तो एक बेरकी जड़से सटी कोई काली छोटी-सी वस्तु हिली। वह भी इनकी दाहिनी ओरको चौदह-पन्द्रह गज दूर होगी। इस बार रामायणीजी बोले– 'रीछका बच्चा'। इसे हम पकड़ सकते हैं। 'आपको मदारी तो नहीं बनना है न!' सुदर्शनजी बोले– वह बेचारा डरकर वृक्षकी जड़से चिपका है। इतना छोटा बच्चा अकेला नहीं हो सकता। रीछनी वहीं कहीं पासमें होगी। यह यदि चीख पड़े तो वह क्रोधमें भरी दौड़ पड़ेगी। यह बच्चा अब तक मिलनेवालोंमें सबसे भयानक है। शीघ्र चलिये। जंगली रीछ साधु और गृहस्थका भेद नहीं समझते। सीधे-सीधे चीर देते हैं। वहाँसे आगे बढ़े। धीरे-धीरे वनकी सघनता कम होती गयी। तभी उस समयका सबसे भव्य दृश्य सामने आया—एक अकेला हिरन बायीं ओरसे चौकड़ी भरते आया। मार्गपर ठीक सामने आकर रुका और ऊपर उछला। ऐसे सीधे ऊपर उछलते मृगको पहली बार ही देखा था। भूमिपर पैर रखते ही वह घूमा और चौकड़ी भरता जिधरसे आया था उधर ही लौट गया।

ये सीधे टेकरिया गाँव पहुँच गये थे। कुशल थी कि गाँवसे मीलभर पहले

सरोवरमें स्नान कर आये थे। दिनके लगभग ग्यारह बजे थे। गर्मी तेज थी। ग्राम प्रधानके घर गये। उसने अपनी गोशालामें बैठने भी नहीं दिया। कह दिया— हनुमानजीके मण्डपमें जाइये।

सम्भवतः हनुमानजीको भी इन लोगोंका प्रधानके यहाँ जाना रुचिकर न लगा, या कहिये कि उनके करुणामय हृदयकी करुणा इन्हें भूखे-प्यासे देखकर पिघल गयी। आधे घंटे बाद उसी गाँवके एक सज्जन आये और आग्रह करके अपने घर ले गये। वे गरीब थे। कच्चा मकान; किन्तु हृदयके धनी थे। उन्होंने तो आटा-दाल भी देना चाहा पर इन्होंने उनसे केवल उपले ही लिये। रस्सी-बाल्टी लेकर सुदर्शनजी पानी लेने गये। कुँआ गाँवसे आधा मील दूर था। उसमें पानी गहरा कि बाल्टी ऊपर तक आते-आते आधी रह गयी। पानी सुदर्शनजी लाते, भोजन रामायणी बनाते, बर्तन मलने एवं सामान उठाने-धरनेका काम बड़का करता। उस दिन आधी बाल्टी जलसे ही काम चलाया गया। दुबारा पानी लाना किसीके वशकी बात नहीं थी।

(6) भटकनेपर पथदर्शन

वही मकान मालिक एक चरवाहा ले आये जो दो रुपये लेकर विराधकुण्ड तक पहुँचानेको तैयार हुआ। विराधकुण्ड एक बड़ा और बहुत टेढ़ा-मेढ़ा गड्ढा है। खैरके कँटीले वनमें वह स्थान उस चरवाहेको भी ढूँढ़ना पड़ा। उसे इन्होंने वहाँ पहुँच कर लौटा दिया।

विराधकुण्डसे आगे बढ़े तो पथरीला, मीलोंमें फैला पठारी पत्थरपर भला उस पगडण्डीका चिह्न कहाँ? पठारसे एक पतला रास्ता उतरता था, अन्यथा मीलों तक खड़ा पर्वत। वहाँ मार्ग ढूँढ़ना पड़े तो दो-तीन दिन तक भटकना पड़े। इन्हें एक साधु दिखायी पड़े। हाथमें जलसे भरा लोटा, कानपर जनेऊ चढ़ाये थे, जैसे शौच होने ऊपर आये हों, पर यह केवल एक बहाना था।

इन्होंने मार्ग पूछा तो बोले— आइये, मैं चलता हूँ। पतली पगडण्डीसे आगे उतरे साथ-साथ और न जाने कहाँ रह गये? इन लोगोंको पगडण्डीसे उतरते मार्गमें नीचे आकर एक गुफा मिली। वहाँ जलका छोटा झरना भी था। एक साधु वहाँ पहलेसे बैठे भी थे। उन साधुने इन लोगोंसे बहुत आग्रह किया कि ये लोग यहीं रात्रि विश्राम करें; किन्तु इन लोगोंको तो अत्रि आश्रममें ही विश्राम करनेकी धुन थी और वह उस स्थानसे ढाई मील दूर ही था। अतः साधुको समझा-बुझाकर आगे बढ़ गये।

उस गुफासे उतरते समय ही सूर्यास्त हो गया। नीचे वनमें वृक्षोंकी कटाई हुई थी। मार्गमें कटे वृक्ष दूर-दूर तक पड़े थे। तनिक घूमकर जानेके लिये मार्ग छोड़ना पड़ा। मार्गको छोड़ते ही ये लोग भटक गये। एक सूखा नाला पड़ा, खूब चौड़ा। रामायणीजीको भ्रम हो गया कि आगे कहीं उसीके आस-पास मन्दाकिनीका उद्‌गम है और लगता है कि हम अत्रि-आश्रमके समीप ही हैं, अतः उस नालेमें ऊपरकी ओर बढ़ने लगे।

नालेके दोनों किनारोंपर ऊँचा घना काँस खड़ा था। अन्धकार घना होता जा रहा था। अचानक किसीने पीछेसे पुकारा—तुम लोग कौन हो? उधर कहाँ जा रहे हो?.... शेरके आनेका समय हो रहा है।

तीनोंने मुड़कर पीछे देखा—दो व्यक्ति थे, किन्तु इतनी दूर कि उस अंधकारमें उनका धुँधला आकार ही दीखता था। सुदर्शनजी और रामायणीजी जोरसे चिल्ला नहीं सकते। सुदर्शनजीके कहनेपर 'बड़का' ने पुकार कर कहा — हमें अनसूया जाना है। रास्ता भूल गये हैं।

उधरसे कहा गया—'पीछे लौटो'। आदेश मानकर दस-पन्द्रह पग लौटे तो फिर पुकार कर कहा — अपने सामने बाँयें देखो, वहाँ जो बड़ा वृक्ष दीख रहा है, ठीक उसके नीचेसे सीधा अनसूयाका मार्ग जाता है।

ये सब पाँच मिनटमें उस वृक्ष तक पहुँच गये। वहाँ पहुँचते ही

रामायणीजीने कहा— ये पुकारनेवाले कौन हैं?

वे लोग इधर अनसूया जानेवाले होते, तो हमें यहीं मिलते और पीछे निकटतम गाँव टेकरिया तीन मील था। उन साधुओंकी गुफा भी एक मील दूर थी। शेरके आने के समयका संकेत दे गये तो ये स्वयं यहाँ क्यों आये हैं? यह प्रश्न स्वाभाविक था। बड़काकी पुकार कि— 'आप कौन हैं?' का कोई उत्तर न मिलना स्वाभाविक था और मिला भी नहीं। ......चित्रकूटमें भटकनेवालोंको मार्ग दिखानेवाले जो सदासे हैं, उन्हें ऐसे पुकारकर या ढूँढ़कर कैसे पाया जा सकता है?

अँधेरा हो गया था। इन्हें भी शीघ्रता थी। अनसूयामें तब सीढ़ियोंसे ऊपर एक धर्मशाला थी, जहाँ अब 'नाथ बाबा' का आश्रम है। ये सब पहुँचे तो धर्मशालाका फाटक बन्द था। रामायणीजीके पुकारनेपर उनका स्वर पहचान कर फाटक खोलनेवाले साधुने कभी रामायणीजीसे अध्ययन किया था — वे बोले—आपलोग शीघ्र अन्दर आ जाइये। शेर अभी-अभी इसी फाटकपर गुर्रा रहा था। वह नीचे पानी पीने गया होगा।

पानी तो इन्हें भी चाहिये था। वहाँ कुछ साधु और ठहरे थे, उनकी धूनी चेत रही थी। पानी सुदर्शनजीको लाना था। फाटक खोलनेवाला साधु साहस करके लालटेन लेकर इनके साथ चला। मंदाकिनीसे जल लेते समय वहाँकी गीली मिट्टीमें शेरके पंजोंके ताजे चिह्न देखे। वे साधु बोले—वह पानी पी रहा होगा, जब आप लोग उसकी पूँछके पाससे ऊपर चढ़े। एक मिनट भी पहले आते तो आपको सीढ़ियोंपर ही मिलता।

'एक मिनट बाद आते तो यहाँसे आगे बढ़ता हुआ मार्गमें हमारा स्वागत करता'— सुदर्शनजीने सस्मित कहा। फाटकके भीतर पहुँचनेपर तो देर तक 'उन पुकारनेवालों' और शेरसे बचनेके 'समय-निर्धारक' की अहैतुकी अनुकम्पापर चर्चा करते रहे।

(7) डाकूको प्रबोध

बात मई 1947 की है। जब चित्रकूटसे रामवन आ गये और रामवनसे बस द्वारा इलाहाबादसे ट्रेनमें बैठना था। उन दिनों सुदर्शनजीका नियम था कि चौबीस घंटेमें केवल एक बार ग्यारहसे बारहके बीचमें भोजन करते। रात्रिको भोजन दूध एवं प्रातःका जलपान आदि सब बन्द कर दिया था। उन दिनों मध्य प्रदेशमें डाकुओंका बड़ा आतंक था। आये दिनों बसोंको लूटनेके समाचार मिलते रहते थे; किन्तु यात्रा तो करनी ही थी।

संयोगसे, सतनासे रामवन होते हुए इलाहाबाद जानेवाली बस जैसे ही सुनसान स्थानसे निकल रही थी कि सड़कपर कटे हुए वृक्ष और पत्थर पड़े हुए दिखायी दिये। बस रोककर अवरोध हटानेके अतिरिक्त आगे बढ़नेका कोई उपाय नहीं था। बस रुकते ही कई शस्त्र-धारियोंने बस घेर ली। उन्होंने यात्रियोंको निर्देश दिया कि सब सामान बसमें छोड़कर सब नीचे उतर आयें अन्यथा वे गोली चला देंगे। यात्री अपना-अपना सामान छोड़कर नीचे उतरने लगे। अंतमें सुदर्शनजी अपना एकमात्र बैग लेकर उतरने लगे तब डाकुओंमेंसे एकने कड़े स्वरमें कहा– बैग वहीं छोड़कर नीचे उतरिये, अन्यथा गोली चल जायगी। भला ऐसा उद्धत व्यवहार और ऐसा कड़ा स्वर उन्हें कहाँ सहन था। सुदर्शनजीने कहनेवालेकी ओर देखा और धमक कर अपनी सीटपर बैठते हुए ओज भरे दृढ़ स्वरमें कहा– मैं निश्चिन्त बैठा हूँ। पहले इस शरीरको समाप्त करो, फिर बैगको हाथ लगाना।

ऐसा कठोर स्वर सुनकर डाकू सरदार मुहरसिंहने उधर ध्यान दिया। सुदर्शनजीके वेशको देखकर उसने विनम्र स्वरमें नाराज होनेका कारण पूछा तो उन्होंने सहज स्वरमें बताया–तुम्हारा साथी मुझे बैग छोड़कर उतरनेको कहता है, इस बैगमें मेरी पूजाके ठाकुरजी एवं पूजा-पाठके ग्रन्थ हैं। इसे तो कोई तभी छू सकता है जब यह शरीर न रहे, अतः मैंने गोली चलानेको कह दिया।

उनकी बातसे डाकू सन्न रह गया—केवल एक तस्वीर और किताबके लिये कोई अपने प्राण देनेको तैयार हो जायगा? यह उसके लिये अनहोनी बात थी। ऐसा कार्य एक भगवद्भक्त साधुके अतिरिक्त कौन कर सकता है? यह सोचकर डाकूने विनय पूर्वक कहा— आपसे कोई कुछ नहीं कहेगा, आप बैगके साथ बसमें ही विराजे रहें। आपको नीचे उतरनेकी आवश्यकता नहीं है।

तब स्वेच्छासे बैग लेकर नीचे उतरते हुए बोले— लो भाई! आजका भोजन तो गया, कलकी बात सर्वेश्वर जानें।

डाकू सरदारने भोजन न करनेका कारण पूछा। उसके साथी बसमें सामान लूटनेमें व्यस्त थे। सुदर्शनजीने कहा — आजकल मैं एक बार ही अन्न-जल ग्रहण करता हूँ—वह भी बारह बजेसे पहले, इस समय दस बजकर तीस मिनट हो चुके हैं। शहर पहुँचनेमें पैंतालीस मिनट और लगेंगे, यहाँकी तुम्हारी खट्पट्में विलम्ब तो होगा ही, यदि बारह बज गये तो मैं भोजन भी नहीं करूँगा।

सहम कर डाकूने सौ रुपयेका नोट उन्हें भोजनके लिये देना चाहा तो सुदर्शनजीने एकदम झिड़कते हुए कहा—तुम्हारा पैसा छूने योग्य भी है? उससे भोजन करना तो बहुत दूरकी बात है।

इस बातका डाकू सरदारपर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने तुरन्त अपने साथियोंको आदेश दिया— सामान जैसाका तैसा छोड़कर जल्दीसे नीचे उतर आओ। यह बस नहीं लूटी जायगी।

सवारियोंको जल्दी ही बसमें बैठनेका आदेश देकर ड्राइवरसे कठोर शब्दोंमें कहा— कैसे भी हो, हर हालतमें बस बारह बजेसे पन्द्रह मिनट पहले ही उस स्थानपर पहुँचनी चाहिये जहाँ ये संतजी भोजन करना चाहें। किसीसे भी गाड़ी लूटनेकी चर्चा मत करना अन्यथा मैं देख लूँगा तुझे भी। मेरे पास सब समाचार तेरे बिना बताये पहुँच जायगा कि तूने क्या-क्या किया और

क्या कहा और कड़कते हुए चेतावनी दी............. बेटे! तुझे तो इसी रास्तेपर नौकरी करनी है। देखूँगा, जल्दी कर कहीं भी एक मिनट खराब नहीं करना समझे? ड्राइवरने सन्तोषकी साँस ली।

यात्रियोंने जान-मालकी सुरक्षा जानकर कृतज्ञतासे मन-ही-मन सुदर्शनजीको सिर झुकाया। उन्होंने यात्रियोंसे कहा – जगत्में सबका जोर देह तक ही तो है–

शासकका, शत्रुका,
डाकूका, देवताका,
भूत प्रेत सबका,
देहका ममत्व त्याग
परम स्वतंत्र हम ईश्वर भी
कुपित हो बिगाड़ेगा, किसका?

निष्ठाका फल

द्वितीय विश्वयुद्ध काममें ही सुदर्शनजी कल्याणके सम्पादन-विभागके सदस्य होकर गीतावाटिका गोरखपुर रहने लगे थे। वहाँसे एक सप्ताहके लिये रामवन, सतना आये थे। रामवन पहुँचते ही वहाँके मंत्री श्रीशारदाप्रसादजीने पूछा– आप चनेकी रोटियाँ खा लेंगे?

'क्यों?' सुदर्शनजीने कहा।

'गेहूँ कहीं मिल नहीं रहा है, हम लोग चनेकी रोटियाँ खा रहे हैं। लगभग डेढ़ सेर गेहूँ किसी विशेष अतिथिके लिये रखवा दिया है।' शारदाप्रसादजीने कहा।

'उस डेढ़ सेरको पीसनेके लिये दे दीजिये। मैं चनेकी रोटियाँ नहीं खाऊँगा।' सुदर्शनजी बोले।

'रामवनके अध्यक्ष तो घोषित रूपसे श्रीमारुतिजी हैं, शारदाप्रसादजी

तो संस्थाके मंत्री हैं। मैं अपने दादाके घर आया हूँ तो चनेकी रोटी क्यों खाऊँ?' इन्होंने मनमें ही कहा।

'ठीक है, आपके लिए छः समय तक गेहूँका आटा चल जायगा'— शारदाप्रसादजीने कहा और गेहूँ निकालकर एक मजदूरनीको देनेका आदेश वहींके एक व्यक्तिको दिया कि वह हाथसे गेहूँ साफ कर हाथकी चक्कीसे पीस देगी।

शारदाप्रसादजीकी बात सुनकर सुदर्शनजीने थोड़े आवेशके स्वरमें कहा— मैं यहाँ तीन दिन नहीं सात दिन रहने आया हूँ और यह हो नहीं सकता कि एक ही पंक्तिमें बैठकर मैं गेहूँकी रोटी खाऊँ और आप सब चनेकी खायें। हम सब गेहूँकी रोटी खायेंगे।

रामवनके चौकेमें उन दिनों पाँच-छः व्यक्ति ही केवल भोजन करते थे। सुदर्शनजीकी बात सुनकर शारदाप्रसादजीने शिथिल स्वरमें कहा— तब यह गेहूँका आटा अभी इसी एक समयको होगा।

'होने दीजिये'—सहजतासे कहा सुदर्शनजीने और मनमें सोचा श्रीमारुतिजीपर विश्वास न करके यह गेहूँ बचा रखनेके अपराधके कारण ही ये लोग चनेकी रोटी खानेको विवश हैं। पूरे ओदशके साथ रक्ताभ तेजोमय मुख हो गया सुदर्शनजीका। वे बोले – शारदा प्रसादजी! अकाल पड़नेसे कहीं अन्न उत्पन्न न हो, और कहीं बाहरसे भी न मिले, देशवासी और देशका प्रधानमंत्री भूखा रह सकता है; किन्तु मेरे लिये आकाशसे गेहूँ बरसाना होगा।

यह बात हो ही रही थी कि पोस्टमैनने आकर कहा – सड़कपर एक ट्रकने एक बोरा आटा गिराया है। उसका ड्राइवर मुझे पुकार कर कह गया— रींवाके पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्टने 'रामवन-मानस संघ' के लिये भिजवाया है। मजदूर भेजकर मँगा लीजिये।

रामवनका पोस्ट ऑफिस वहाँसे आधा मील दूर सज्जनपुर ग्राममें था जो रींवा-सतना पक्की सड़कके पास है। पोस्टमैनको पोस्टमास्टरने ही

भेजा था।

आटेका बोरा लाने दो मजदूर भेज दिये गये। शारदाप्रसादजी देरतक तर्क-वितर्क करते रहे—रींवाके पुलिस-सुपरिन्टेण्डेन्टसे मेरा कोई व्यक्तिगत परिचय तो है नहीं। वे कभी रामवन आये हों तो यह भी मुझे स्मरण नहीं।

आटा तो आ गया और पीसनेको निकाला गेहूँ पुनः रख दिया गया। अब आटा भेजनेवालेका जो नाम ट्रकवालेने बताया वह कोई वास्तविक नाम था या नाम ही नाम, इस उधेड़-बुनमें पड़नेसे क्या लाभ? यह था दादा मारुतिका असीम दुलार, जो उनके लिये असम्भवको भी सम्भव करके प्रसन्न होते हैं।

आत्मीयताके अनुभव

(अ) सन् 1949 में रामवनसे कल्याणके 'हिन्दू-संस्कृति-अंक' विशेषांककी तैयारीमें सहयोग देनेको गोरखपुर गये थे। वहींसे आश्विन कृष्ण पक्षके प्रारम्भमें मातृ-पितृ श्राद्ध करने 'गया' चले गये।

सुदर्शनजीके लिये गया श्राद्धका बहुत महत्त्व था, क्योंकि पितृकुलकी दृष्टिसे भी अन्तिम व्यक्ति थे और मातृकुलकी दृष्टिसे भी अन्तिम थे। दोनों कुलोंको पिण्ड देनेवाले ये ही बचे थे। यह परम्परा समाप्त हो रही थी। अपने दो विद्वान् परिचितों और श्राद्धकी सामग्रीके साथ ग्रन्थ भी लेकर गये। गया श्राद्ध सविधि निर्विघ्न सम्पन्न हुआ; किन्तु गयासे चलते समय स्टेशनपर ही इन्हें ज्वर हो आया।

गयासे लौटते समय दो दिन पूर्व साथके एक विद्वान् अपने अध्यापन स्थानपर चले गये थे। दूसरे इनके साथ ही गोरखपुर तक गये। इन्होंने स्वामी अखण्डानन्दजीके पुत्र श्रीविश्वम्भर नाथ द्विवेदीको समाचार दिया—मैं गया श्राद्धसे लौटकर महराईसे लगभग ढाई मील दूर गंगा किनारे श्रीमद्भागवत सुनूँगा। गंगा किनारे वहाँ एक वटवृक्ष है। उस समय वहाँ एक वैष्णव साधु

भी रहते थे। उनकी कुटियाके अतिरिक्त एक कच्ची कुटिया और थी। उसीमें श्रीमद्भागवतकी व्यवस्था सुदर्शनजीकी इच्छानुसार श्रीविश्वम्भरनाथ द्विवेदीने कर दी।

जब सकलडीहा स्टेशनपर उतरे तब सुदर्शनजीको तीव्र ज्वर था। स्टेशनसे कथा-स्थल लगभग नौ मील दूर था। किसी तरह धानके खेतोंकी मेड़ोंपरसे डेढ़ मील तक चल सके। इस परिश्रमसे ज्वर और बढ़ गया। वहाँ सड़कका तिराहा था और पक्का कुआँ भी था। कुएँके चारों ओर ईंटोंका पक्का चबूतरा था जो स्थान-स्थानसे टूटा हुआ था। इनके साथ जो विद्वान् रामअवधजी थे, उन्हें महराई भेजा कि पं० विश्वम्भरनाथ द्विवेदीसे साइकिल ले आयें। रामअवधजीके जानेके पश्चात् सुदर्शनजी उस टूटे चबूतरेपर लेट गये और ज्वरकी तीव्रताके कारण मूर्च्छित भी हो गये। रामअवधजीने वापस लौटकर इन्हें हिला-डुलाकर सचेत किया। ज्वर इतना तीव्र था कि वे साइकिलसे एक फर्लांग तक चल पाते कि फिर चक्कर आने लगता तो उतर कर कुछ गज साइकिल लेकर पैदल चलते। रामअवधजीको साइकिल चलाना आता नहीं था। पं० रामअवधजीने इन्हें बताया कि जब वे साइकिल लेने जाने लगे तो पीछे मुड़कर मैंने आपकी ओर देखा कि एक मोटा लाल मुखका बन्दर सिरहाने आकर बैठ गया था और मुखपर पड़ती हुई धूप उसने अपने शरीरकी छायासे दूर कर दी थी। रामअवधजीको अन्य लोगोंने बताया कि बन्दर बहुत कटखना है, कई लोगोंको काट चुका है। रामअवधजीने बताया— मैं बहुत डरते-डरते बार-बार पीछे देखता गया पर जब भी देखा वह आपके मुखपर छाया किये बैठा रहा और तब हटा जब मैं साइकिल लेकर लौटा और समीप आ गया तब वहाँसे चला गया।

सुदर्शनजीने उस कपिको नहीं देखा, क्योंकि पहले वे मूर्च्छित थे और जब जगाया तब तक कपि जा चुके थे। उन्होंने रामअवधजीको आगे भेज दिया। किसी प्रकार दो-ढाई घंटेमें गंगा किनारे पहुँचे, उसी दिनसे भागवत

सप्ताह प्रारम्भ होना था। रामअवधजी एवं विश्वम्भर नाथ द्विवेदीजीने भागवतकी सब तैयारी कर ली थी। रामअवधजीने कहा— आपसे संकल्प करा लेते हैं, सब तैयारी हम लोगोंने कर ली है। देवपूजन कर देंगे और आज तो माहात्म्य-पाठ होना है। आप कुटियाके द्वारपर बाहर लेटे-लेटे सुनिये।

(ब) सुदर्शनजीसे संकल्प करा लिया गया और ये कुटियाके बाहर द्वार-पर लेट गये, पर ज्वरकी मूर्च्छामें पाठ कितना सुन सके, कहा नहीं जा सकता। रातको ज्वर उतर गया। प्रातः स्नानादि करके भागवत-सप्ताह श्रवणके लिये आसनपर आ बैठे। पूजन कर लिया। 'मूल-पाठ' ही होना था। श्रोता अकेले थे, अतः हिन्दी अर्थ करना आवश्यक नहीं था।

ज्वर तो चला गया, किन्तु शरीरकी कमजोरी नहीं गयी। थोड़ी ही देरमें लगा कि बैठे रहना सम्भव ही नहीं है। कोठरी इतनी ही बड़ी थी कि पैर फैलाकर लेट सकें; किन्तु उनके पास चौड़ाई कुल डेढ़ हाथ थी। अब पैर किस ओर करें? कोठरीमें सामने आचार्यके आसनकी चौकी और उसके आगे मुख्य कलश स्थापित था। चारों कोनोंपर चार कलश स्थापित थे। इन कलशोंपर दिशाओंके अनुसार दिग्पालोंका आह्वान करके पूजन किया गया था। जिन देवताओंका स्वयं ही आह्वान किया हो उनकी ओर पैर करके लेटना सर्वथा अनुचित था। बैठे रहनेमें असमर्थ थे। अतः बैचेनी बढ़ती जा रही थी।

पिछले दिन जब ये ज्वरसे मूर्च्छित थे, पण्डितजीने इनके बैगसे इनका पूजा-चित्र निकाल लिया था। उसे अपने सामनेके मुख्य कलशके साथ लगे केलेके छोटे पत्तेपर डण्ठलके सहारे स्थापित कर रखा था। सहसा वह चित्र वहाँसे नीचे गिरा।

कलसे आजतक अनेक बार पण्डितजी एवं विश्वम्भरजी इस कोठरीमें

आये-गये। अनेक बार ये केलेका पेड़ हिला, पर ये नहीं गिरे और इस समय जब सब स्थिर बैठे हैं, वायु है नहीं, फिर कैसे इस समय कूद पड़े— आचार्यके आसनपर बैठ श्रीरामअवधजीने कहा और बैठे-बैठे ही चित्रपटको उठाकर नैर्ऋत्य कोणके कलशपर स्थापित कर दिया।

'यह किस देवताका कलश है?' सुदर्शनजीने पूछा—

'नैर्ऋत्य देवताका'— उत्तर मिला।

'तब ठीक है।'—सुदर्शनजीने कहा—अब कन्हाई यहाँ बैठ गया, तब देवता गौण हो गये। मैं इसकी ओर पैर करके लेट सकता हूँ। अतः लेट गये और मध्याह्न तककी कथा लेटे-लेटे ही सुनी, किन्तु मध्यान्तरके पश्चात् जब कथा प्रारम्भ हुई, तब शरीरकी कमजोरी चली गयी थी और फिर कथामें लेटना नहीं पड़ा।

कथा—सप्ताह निर्विघ्न समाप्त हुआ। आठवें दिन हवन हुआ। आचार्यको एवं अन्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। आठवें दिन सुदर्शनजी एवं पण्डित रामअवधजी नौकासे गंगा पार करके चौबेपुर स्टेशन पहुँचे और गोरखपुर आ गये। इस प्रकार यह यात्रा सानन्द पूर्ण हुई; किन्तु सुदर्शनजीके अनजानमें जो कुछ हुआ था, उसका पता तो इन्हें दो-तीन सप्ताह बाद एक विस्तृत पत्रसे लगा। मुख्य घटना तो पत्रमें थी।

(स) जब सुदर्शनजी गंगा किनारे सप्ताह श्रवण कर रहे थे, तब वे लोग, जिन्होंने छोटे भाई सँवरूको अपना बालक दत्तक दिया था, इनके पास आये। वे चाहते थे कि सुदर्शनजी पैतृक भूमि-सम्पत्तिका अपना भाग भी उन्हींके बालकको दे दें। सुदर्शनजीने उनसे स्पष्ट कह दिया— मैं अपना भाग धर्मदेव सिंहको दूँगा। छोटे भाईका भाग इस बालकको मिल ही गया है।

वे लोग चले गये, किन्तु पूरी भू-सम्पत्ति पानेके लोभसे उन लोगोंने सुदर्शनजीकी हत्या कर देनेका निश्चय किया। ये मार दिये जाते तो पूरी

भू-सम्पत्ति उसके बालकको ही मिलती, क्योंकि वह उनके छोटे भाईका दत्तक पुत्र था।

उन लोगोंको यह काम बहुत सरल लगा, क्योंकि जहाँ ये कथा सुन रहे थे, उसके पास ही गंगाजी थीं, जिनमें बाढ़ आई थी, आश्विन कृष्ण मास था और लगभग आधे मील तक कोई गाँव या घर नहीं था। केवल एक वैष्णव संत थे जो अपनी झोपड़ीमें रहते और सुदर्शनजी रातको कुटियाके बाहर ही सोते थे। वहाँ आस-पास बाजरेके खेत भरपूर थे।

जिस दिन भागवत-सप्ताह पूरा हुआ, उसके दूसरे दिन हवन हुआ। ब्राह्मणोंको भोजन कराया। सायंकाल पं० रामअवधजी भी श्रीविश्वम्भर नाथ द्विवेदीके साथ महराई चले गये। सुदर्शनजी रातको वहीं रहेंगे, यह पता भी उन लोगोंने लगा लिया था।

उन्होंने पाँच सौ रुपया देकर किसीको हत्यामें साथ देनेको तैयार किया; किन्तु वह भी तब तैयार हुआ जब ये लोग (ये दो भाई थे) साथ रहें।

वहाँ छोटा-सा ढाकका वन था। ढाकका वन वैसे भी घना नहीं होता। वह तो बहुत कम वृक्षवाला था। उसमें दो नाले थे जो गंगामें मिलते थे। वे भी आधे मील लम्बे नहीं थे। उनमें वर्षा न हो, तो जल नहीं रहता था। उन्हींमेंसे एक नालेमें किसी ऊँचे वृक्षके नीचे रातमें दोनों दलोंने मिलना तय किया। वे मिलकर सुदर्शनजीके पास आते और एक निद्रित एकाकी व्यक्तिको गला घोंटकर गंगामें फेंक देनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं लगती थी तो इसमें आश्चर्य ही क्या था!

रात्रिमें उनमेंसे एक दल निश्चित स्थानपर आया; किन्तु वहाँ पहुँचते ही उनमेंसे एकको बिच्छूने डंक मार दिया। रातमें बिच्छू ढूँढ़ा नहीं जा सकता था। अतः वह दल उस स्थानसे कुछ हट गया। दूसरा दल भी आ गया; किन्तु इनके कन्हाईकी लीला.........ये नटखट कब क्या करेंगे, कोई जान पाता है? मनुष्य स्वार्थवश अपने मनोरथोंके महल खड़ा करनेमें उचित-अनुचित

धर्म-अधर्मका भेद ही भुला बैठता है। ऐसेमें यह भी निर्गुण-निराकार बना देखता रहता है; किन्तु जिसने अपने प्राणोंकी डोर इनके चरणोंमें उलझा दी है। जैसे ही उसका अनिष्ट करनेको कोई उतारू होता है तो यह चपल अपने चंचल चरणोंको चलाकर दुष्टोंकी अट्टालिकाको खंडहरोंमें परिवर्तित कर देता है।

पूरी रात दोनों दल जरा-से ढाकके वनमें एक-दूसरेको ढूँढ़ते रहे। भयके कारण न पुकार सके, न माचिस ही जला सके। जब वे परस्पर मिले, तब सवेरा हो चुका था।

एक योजना असफल होनेपर भी वे निराश नहीं हुए। उन्होंने पता लगा लिया कि सुदर्शनजी छोटी नौकासे गंगा पार करेंगे सवेरे ही। छोटी नौकामें इनके साथ पं० रामअवधजी होंगे, यह उन्हें बाधा नहीं लगी। छोटी नौकापर एक मल्लाह रहेगा, वह डराकर भगा दिया जायगा, शेष दोनोंको मारकर नौका डुबा दी जा सकेगी, यह उन्हें आशा थी।

सुदर्शनजीने रातको ही विश्वम्भरनाथ द्विवेदीसे छोटी नौका तय करनेको कह दिया था। सबेरे आठ बजे तक भी नौका नहीं आयी तो सुदर्शनजी खीज उठे कि मैं ट्रेन नहीं पकड़ पाऊँगा। विश्वम्भरनाथ द्विवेदीजीने नौका तो तय कर दी थी। नौका आयी; किन्तु थोड़ी देरसे आयी और वह छोटी न होकर बहुत बड़ी थी। ऐसी नौका, जिसमें मील भर पूर्व नरौलीके मल्लाह कलकत्ते तक सामान लादकर व्यापारिक यात्रा करते थे। वह छप्परवाली नौका थी। उसपर तीन मल्लाह थे।

सुदर्शनजीको बताया गया कि धानापुर बाजारके पुलिस थानेके दीवानजीका स्थानान्तरण हो गया है। वे अपने सामानके साथ जा रहे हैं। यह नौका उन्होंने ही मँगायी है। अतः छोटी नौका नहीं नहीं आयी। ये भी उसीसे गंगा पार कर जायँ। नौकापर दीवानजी, बन्दूक लिये एक सिपाही और गाँवका एक चौकीदार भी था। सुदर्शनजी नौकापर छप्परके भीतर गये तो दीवानजीका

बिस्तर बिछा था। दीवानजीने उन्हें लेटनेके लिये कह दिया। पं० रामअवधजी और दूसरे लोग बाहर बैठे। पुलिस सिपाही भी बन्दूक लिये बाहर ही था। उसकी बन्दूक खाली थी; किन्तु जो दूरसे पीछा कर रहे थे उन्हें तो भरी ही लगती थी। इस नौकापर आक्रमण करनेका वे साहस नहीं कर सके।

इतनेपर भी वे हताश नहीं हुए। उन्होंने सोचा कि गंगातटसे स्टेशन करीब ढाई-तीन मील है। मार्गमें बाजरेके खेत हैं दोनों ओर, सुदर्शनजी कहीं तो अकेले मिल ही सकते हैं।

उनकी यह आशा भी पूरी नहीं हुई। नौकासे उतरते ही सुदर्शनजी तो एकाकी चल पड़े, तो दीवानजीने कहा— तनिक रुकिये, मैं भी चल रहा हूँ।

'हमें पहले ही देर हो गयी है। ट्रेन मिलनेकी सम्भावना कम ही है'— कहकर सुदर्शनजी चलते रहे। पं० रामअवधजी भी साथ-साथ चल पड़े।

पता नहीं कि दीवानजीको क्या सूझी। उन्होंने सिपाही और चौकीदारसे सामान ले आनेको कहा और स्वयं बन्दूक लेकर इनके पीछे चल पड़े। अब एक पुलिस दीवान बन्दूक लिये किसीके साथ चलेगा तो उसपर आक्रमणका साहस कोई कर सकेगा?

बहुत भले थे दीवानजी। सुदर्शनजीने तो उनका नाम, परिचय कुछ नहीं पूछा। इधर ट्रेन भी कुछ लेट हो गयी। सुदर्शनजी जब ट्रेनमें बैठ गये, तब वे पूछने आये— आप ठीकसे बैठ गये?

बात यहीं समाप्त हो जाती तब भी सुदर्शनजीको कुछ पता नहीं लगता; किन्तु हत्याके लिये रुपया लेनेवालोंने रुपया लौटाया नहीं। कह दिया कि रुपया हम नहीं देंगे। हत्या किसीकी करा लो तो कर देंगे, यदि साथ रहो। उन लोगोंने सुदर्शनजीके ममेरे भाई धर्मदेव सिंह (जिनको सुदर्शनजी अपनी

भू-सम्पत्ति देनेवाले थे) -की हत्या कर दी। पुलिसने पकड़ लिया तो उन्होंने थानेमें अपने बयानमें सब कुछ बता दिया जो पत्रमें लिखकर सुदर्शनजीके पास आया था।

यह दूसरी बात है कि उन लोगोंने आगे अपने बयान बदल दिये और सन्देहके लाभमें न्यायालयने उन्हें छोड़ दिया। वैसे उनके हाथ भी केवल हत्या ही लगी। जिस बालकको उन्होंने सँवरू सिंहको दत्तक दिया था वह भी चेचकमें तब मरा जब उसका विवाह होने जा रहा था।

सुदर्शनजीको पूरे विवरण सहित पत्र मिला; जो उनके किसी हितैषीने लिखा था। इतना ही नहीं उन लोगोंने भू-सम्पत्तिके लोभसे सुदर्शनजीको मृतक घोषित करके तहसीलमें मृतक प्रमाणपत्र पेश कर दिया था। हितैषीने ही तहसीलमें सुदर्शनजीको बुलवाकर स्पष्टीकरण किया। सुदर्शनजी जब-जब उस पत्रको देखते अथवा उसका स्मरण करते हैं तब-तब श्रीमद्भागवतका श्लोक भी साथ-साथ स्मरण आता है—

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥

(श्रीमद्भागवत 5। 5। 18)

समुपेत मृत्युसे केवल छुड़ाना ही नहीं, उसके आतंककी छाया, उसके समाचार तकको उसके पास न पहुँचने देनेकी व्यवस्था तो मेरा कन्हाई ही कर सकता है। जब भी यह श्लोक स्मरण आता है— अनेक बार आता है, तो कन्हाईकी आत्मीयता उनके हृदयको विभोर कर देती है।

वे अपनेको कन्हाईका इच्छा-यंत्र मानते हुए कह उठते हैं—

हे प्यारे तेरा ही यह तन!
तेरी इच्छाका यह यंत्र तुझे समर्पित मेरे मोहन।

चाहे जैसे इसे चलाओ,
चाहे जो कुछ कार्य कराओ,
चाहे जैसा इसे बनाओ,
जो इच्छा हो।
चाहे रखो और मिटा दो यह तो है तेरा ही जीवन।। 1।।
धर्म कर्म जप तप ये सारे,
पाप पुण्य दुःख-सुख सब मेरे,
हैं होने–इच्छासे तेरे,
मैं ही तेरा।
भला मुझे इनसे क्या मतलब तुम जानो लो पर अपना मन।। 2।।
स्वर्ग नरकका भय हो, क्योंकर?
किसके लिये तुम्हारा होकर,
चाहे जहाँ फेंक दो जाकर,
वहीं रहूँगा।
देखा करना तुम सम्हालना वहीं वहीं अपना प्यारे धन।। 3।।
मत सम्हालना चिन्ता क्या है?
मेरा क्या यह तो तेरा है,
हाँ इतना कहना मेरा है,
दया करो अब।
लो, यह अपना तुम अपनाओ और छुड़ा दो यह अपनापन।। 4।।
पर इतना कर दो ओ प्यारे,
यही लालसा हृदय हमारे,
यह इच्छाका यन्त्र तुम्हारे
माँग रहा है।
दे दो इसको, हाँ प्रिय दे दो अपनी दुर्लभ पद रज पावन।। 5।।

रामवन छोड़नेकी विवशता

जुलाई सन् 1951 में रामवनमें दस दिन तक वर्षाकी अनवरत झड़ी लगी रही। इससे इतने पशु आस-पास गाँवोंके मरे कि न तो उन्हें उठानेकी व्यवस्था थी और न उन्हे खाकर समाप्त करनेवाले गिद्धोंकी पर्याप्त संख्या थी। सम्पूर्ण वातावरणमें दुर्गन्ध व्याप्त हो गया था।

मच्छरोंके उत्पात और दुर्गन्धके कारण ग्रामीण लोग मलेरिया आदि बीमारियोंसे ग्रस्त हो गये।

सुदर्शनजीने नाड़ी देखना, कुछ सामान्य दवाएँ एवं उपचार बचपनमें ही सीख लिया था। अतः वनमें तथा ग्रामीण क्षेत्रोंमें जो औषधियाँ सरलतासे उपलब्ध हो सकी थीं, उन औषधियों द्वारा अपने पास आये हुए बीमारोंकी चिकित्सा करने लगे, किन्तु पैसेके अभावमें अधिक काम आगे बढ़ा नहीं। गरीब ग्रामीणोंसे ये दवाके पैसे माँगते नहीं थे और जो देनेमें समर्थ थे, वे स्वेच्छासे पैसे देते भी नहीं थे। माँगना स्वभावमें नहीं था।

सुदर्शनजीने आयुर्वेदके साथ-साथ होम्योपैथीका भी गम्भीर अध्ययन किया था, अतः ये होम्योपैथी दवाएँ मँगाकर बाँटने लगे। होम्योपैथी दवाएँ सस्ती एवं प्रभावी सिद्ध हुईं। आस-पासके लोग इन्हें 'मीठी गोलीवाले बाबूजी' के नामसे जानने-मानने लगे। पैसेका अभाव होनेसे दवाएँ बाँटनेके लिये मँगा नहीं सके, अतः सेवा करनेमें अपनेको विवश जानकर वृन्दावनकी ओर चल दिये।

एक बात और—किसी भी स्थानपर रहनेका यह अर्थ नहीं कि वर्षभर या इससे अधिक एक ही स्थानपर रहते हों। वे अधिक-से-अधिक कामके समयतक एक स्थानपर रहते थे अन्यथा जन्मसे, स्वभावसे ही यायावर परिव्राजक रहे। कोई स्थान अधिक समयतक इन्हें बाँधकर रखनेमें समर्थ नहीं हो सका। अनेक स्नेहीजन, नेत्रोंमें जलभर, करबद्ध, प्राणोंमें अभीप्सा

लिये सर्व सुख-सुविधाके साथ स्थायी निवासका आग्रह करते; किन्तु हँसकर आश्वासन-सा दे देते और निःस्पृहकी भाँति झोला उठाकर चलनेमें तनिक भी नहीं ठिठकते, जैसे नदीका जल हो अथवा सतत प्रवाहित मलय मारुत हो।

वृन्दावनकी ओर

रसमयी वृन्दावनकी पावन धराके चुम्बकीय आकर्षणसे खिंचकर सुदर्शनजी वर्षमें बार-बार जाते रहते थे। निश्छल प्रीतिसे पगे हृदयमें **'करारविन्देन पदारविन्दं...'** की बाल छविकी संमोहिनी झाँकी भाव-विभोर बना रही थी—

प्रेम प्रलय अब वह प्रियतम हो,
प्रेम पयोधि! उमड़ पड़ो अब, प्रेम मग्न सारा त्रिभुवन हो।
सांवर्तक घनश्याम गगनमें,
पीताम्बर स्थिर चपला संगमें
मधुर मुरलिका-ध्वनि गर्जनमें
होवे दयावृष्टि वह जिससे त्रिभुवन आप्लावित हो।। 1।।
प्रेम प्रेम ही बस रह जावे
कुछ न पता कोई रह जावे
यह सब पाप ताप मिट जावे
तुम्हीं रहो हम रहें न कोई, सब तुममें ही लय हो।। 2।।
दया दृष्टि तब हो मुझ वटपर
अन्तस्तलके शुभ पत्तेपर
चिर शिशु हँस तू और शयन कर
उसपर तेरी विश्व विमोहन नित्य सुखद क्रीड़ा हो ।। 3।।

प्रीतिके प्रवाहमें डूबते-उतराते वृन्दावनमें श्रीउड़िया बाबाके आश्रम पहुँच

गये। उन दिनों स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी वहीं विराजमान थे। उन्होंने सुदर्शनजीसे कहा—श्रीहरिबाबाजी महाराज एक वर्ष तक मुझसे श्रीमद्भागवत सुनना चाहते हैं, चाहो तो यहीं रहकर तुम भी भागवत श्रवण कर लो।

कथा प्रारम्भ होनेमें करीब पच्चीस दिनोंकी देर थी, अतः इसी बीचमें सुदर्शनजी झूँसी जाकर अपने जाड़ोंके वस्त्र ले आये और नियमपूर्वक एक वर्षकी कथा वृन्दावन रहकर सुनने लगे। कथा उड़िया बाबाजीके आश्रममें हो रही थी। उसी परिसरमें सुदर्शनजी 'मातृमण्डल' में प्रवेश करते ही दाहिनी ओरकी कोठरीमें रहने लगे, जिसमें बादमें श्रीनाहर सिंहजी रहते थे।

यह कथा सन् 1951 के कार्तिक शुक्ल एकादशीको प्रारम्भ हुई थी और 1952 ई० की आश्विन शुक्ल दशमीको पूर्ण हुई थी। बहुत पवित्र था यह श्रीभागवत-कथाका सम्पूर्ण वर्ष। कथाका समय पहले तो सायंकाल रखा गया था और प्रातः रासलीला। पीछेके दो महीनोंमें दोनों समय कथा होती थी। अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती वक्ता थे और श्रीहरिबाबाजी महाराज प्रधान श्रोता। इसमें आनन्दमयी माँ, कई बड़े-बड़े महात्मा, आचार्य एवं कथाके वक्ता भी सुनने आते थे। सभी लोगोंने कथा-श्रवणके दिनोंमें रहन-सहन, खान-पानमें विशेष संयम स्वीकार किये थे। अनेक साधकोंके जीवनमेंयह समय स्मरणीय बन गया। उसमें श्रीमद्भागवतका सम्यक् अध्ययन तो हुआ ही, अध्यात्मके क्षेत्रमें बहुत अधिक प्रकाश मिला।

सुदर्शनजी उन दिनों प्रातःकाल यमुना-स्नान तथा शीतके दिनोंको छोड़कर सायंकाल भी स्नान करके वहीं बैठे रहते यमुना किनारे। अकस्मात् व्रजराज कुमारने कृपा की। उनकी एक झाँकी मनमें आयी और लौटकर उसे लिपिबद्ध कर लिया। मनमें आया, ऐसी झाँकियोंकी एक माला पूरी हो जाती तो कितना अच्छा होता। मैया यशोदाका लाड़ला तो सदासे उनका स्वजन पक्षपाती रहा

है। उसने झाँकियाँ देना प्रारम्भ कर दिया।

कभी तो एक-दो-तीन लगातार साथ ही प्राप्त हो जातीं हैं। ये सब इनके द्वारा लिपिबद्ध होती रहीं। एक सौ आठ झाँकियाँ पूरी होते ही झाँकियाँ दिखनी बन्द हो गयीं वे जैसे स्वतः प्रकट हुईं वैसे ही स्वतः तिरोहित हो गयीं।

वर्ष 1952 में विजयादशमीको कथा पूर्ण हुई। श्रीहरिबाबाजी महाराज एवं स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती अपने-अपने कार्यक्रमके अनुसार दूसरे स्थानोंपर चले गये और सुदर्शनजी 'बालकांक' के सम्पादनमें सहयोग देने गोरखपुर आ गये।

सुदर्शनजीने यह लिपिबद्ध झाँकियाँ गीतावाटिका, गोरखपुर पहुँचकर भाई श्रीशिवनाथजी दुबेको दिखायीं और उन्होंने ही इनको परम पूज्य राधा बाबा (अनन्त श्रीस्वामी चक्रधरजी महाराजको) दिखलायीं। बाबाको ये इतनी प्रिय लगीं कि उन्होंने ही श्रीशिवनाथ दुबेजीसे इन्हें टाइप करा लिया। टाइपकी चार प्रतियाँ हुईं। मूल पाण्डुलिपि वापस कर दीं, शेष अपने प्रियजनोंमें वितरित कर दीं। एक प्रति पूज्य भाईजीको, एक श्रीचिम्मनलाल गोस्वामीको, एक श्रीशिवनाथ दुबेजीको और एक स्वयं अपने पास रखीं।

पूज्य बाबाने सुदर्शनजीको आदेश दिया था कि इन झाँकियोंको प्रकाशित न कराया जाय। जब यह 'कल्याण' में प्रकाशित होने लगीं, तब उन्हें उपालम्भ दिया— तुमने मेरा आदेश नहीं माना। सुदर्शनजीने हँसकर निवेदन किया — आप स्वयं ही अपने आदेशको भंग करें तो मैं क्या कर सकता था? आपने झाँकियोंकी प्रति पूज्य भाईजीको दे दीं। यह तनिक भी नहीं सोचा और चाहे जो कुछ हो, वे 'कल्याण' के सम्पादक हैं और एक सम्पादक अपने पत्रके लिये कोई ऐसी रचना प्राप्त कर ले जो उसे रुचती हो तो उसे पत्रमें देनेसे अपनेको रोक नहीं सकता। भाईजीने मुझसे पूछा नहीं था। मुझसे पूछनेकी आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि वे स्वयं ही कहते थे — 'आपकी रचनाएँ

मैं अपनी ही मानता हूँ' बाबाने भी यह सुनकर सन्तोष कर लिया था।

एक बार इन झाँकियोंको श्रीगजानन्दजी सरावगीने पुस्तकाकार प्रकाशित करना चाहा। सुदर्शनजीने श्रीभाईजीसे पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया— इन्हें गीताप्रेस ही प्रकाशित करेगा। लेकिन ऐसा अवसर नहीं आ सका। श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा संस्थानसे बादमें 'राम श्यामकी झाँकी' के नामसे भाग-1, भाग-2 प्रकाशित हुईं, जो एक वर्षके अन्दर ही बिक गयीं। दूसरा संस्करण छापना पड़ा।

सर्पसे मैत्री

वृन्दावनमें उड़िया बाबा आश्रममें मातृमण्डलके दाहिनी ओरके कक्षमें निवास कालकी ही बात है। सायंकाल उड़िया बाबा आश्रममें कथा होती थी। प्रातःकाल जे०के० मन्दिरमें अपने कक्षमें स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज वेदान्तपर कठोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्पर प्रवचन करते थे। सुदर्शनजी सुनकर कुछ नोट कर लेते बादमें कमरेमें आकर उन्हें लिपिबद्ध कर लेते थे। गर्मीके दिन थे। रात्रिके समय प्रकाश नहीं करते, अतः कमरेमें अँधेरा तो था ही, पानी पीनेके लिये सुराहीकी ओर हाथ बढ़ाया तो किसी चिकनी ठंडी वस्तुका स्पर्श हुआ। ध्यानसे देखा—गर्मीसे बेहाल साँप ठंडकके लिये सुराहीसे लिपटा हुआ है। जो श्मशानमें भी आनन्दसे सो जाता है उसे जीवनमें भयको स्थान कहाँ? उन्होंने हाथसे ताली बजायी और बोले—श्यामसुन्दर! जल पीना है भाई!

कुछ मिनटे रुके कि साँप सुराही छोड़कर अलग हो गया। उसके अलग होते ही गिलासमें जल पीते और औंधाकर गिलाससे सुराहीका मुँह ढँक देते। जल पीकर फिर कह देते— अब आना हो तो आ जाओ और साँप फिरसे सुराहीसे लिपट जाता। यह नित्यका क्रम बन गया था। रातको साँप इन्हींके साथ कमरेमें रहता। एक महीनेसे भी अधिक समय ऐसे ही बीत गया।

एक दिन आश्रमका ही एक कर्मचारी भागता हुआ सुदर्शनजीके पास आया। वे स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजसे प्रातःकालका प्रवचन सुन रहे थे; केवल बाहरसे कुण्डी लगाकर चले आये थे।

जैसे ही कर्मचारी अन्दर घुसा तो अँधेरेके कारण कुछ दिखायी तो दिया नहीं, पर सर्पकी फुफकार सुनायी दी– 'फुस्स'। आँख अँधेरेकी अभ्यस्त हुई तो ध्यानसे फिर देखा कि पूजा-चित्रके सन्मुख कुण्डली मारे फन उठाये काला विषधर भुजंग फुफकार रहा है। उसके पैरों तलेसे तो जमीन ही सरक गयी। वह भयभीत होकर नंगे पैरों कमरा खुला ही छोड़कर शुभचिंतकके रूपमें सूचना देने दौड़ा आया।

जब स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजको ज्ञात हुआ कि सर्प एक महीनेसे भी अधिक समयसे सुदर्शनजीके कमरेमें रह रहा है तो आग्रह करके उन्होंने सुदर्शनजीको अपने समीपके कमरेमें रहनेको विवश कर दिया।

उपनाम 'चक्र'

ग्वालियरसे पहले 'करह' स्थान सिद्ध पीठ है, परम्परासे सिद्ध महापुरुषोंकी तपस्थली है। वहाँके महन्त 'करह' वाले बाबा पूज्य श्रीरामदासजी महाराज वृन्दावन पधारे थे। वे उत्सवमूर्ति और श्रीसीतारामके अनन्य भक्त थे एवं वही उनके प्राणसर्वस्व थे। सुदर्शनजी उनके दर्शन करने वंशीवटपर प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीके यहाँ आश्रमपर गये। कथा, संकीर्तन, पद-गायन हुआ। उसीके पश्चात् काव्यचर्चा चल पड़ी। आनन्द-मूर्ति बाबा रामदासजी महाराजने विनोदपूर्वक एक अर्धाली बोलकर कहा – समस्यापूर्तिकी तरह 'करुण रस' में चार पंक्तियाँ लिखनी हैं, जिसमेंसे आधी पंक्ति यह अर्धाली होगी। कल इसी समय यहाँ आकर हमें दिखाइये। सात-आठ व्यक्तियोंने इसे स्वीकार कर लिया। उनमें सुदर्शनजी भी एक थे।

दूसरे दिन, ठीक समयपर सभी श्रीब्रह्मचारीजीके आश्रमपर बाबाके पास

पहुँच गये और अपनी-अपनी पद्य रचना बाबाके सन्मुख प्रस्तुत कर दी।

श्रीरामदास (बाबा) एक-एक करके देखने लगे। साथ-साथ उनकी अशुद्धियाँ भी ठीक करते जाते। अंतमें सबसे नीचे सुदर्शनजीका लेखन था। प्रथम दो पंक्ति पढ़ते-पढ़ते बाबाका मुखकमल खिल उठा।

सबने तो अर्धालीका प्रयोग केवल 'करुण-रस' में ही किया था, किन्तु सुदर्शनजीने नवरसोंमें प्रयोग कर दिया था। प्रत्येक रसकी चार पंक्तियाँ थीं। वाह, वाह, श्रीसीताराम... श्रीसीताराम... बहुत सुन्दर... अति सुन्दर... कहते हुए उस कागजपर नाम देखा—सुदर्शन सिंह। 'कौन महानुभाव हैं भाई ये सुदर्शन सिंह?' बाबा खिली मुस्कान बिखरते आह्लादपूर्वक बोले।

सुदर्शनजीने आगे बढ़कर प्रणिपात सहित चरण वन्दन किया।

'श्रीसीताराम... श्रीसीताराम... तुमने बहुत आनन्द दिया भाई। लो अपना पारितोषिक'—कहते हुए बाबाने सुदर्शनजी द्वारा लिखा गया कागज उनकी ओर आगे कर दिया।

'पारितोषिक' शब्द सुनकर सुदर्शनजी थोड़ा चौंके—उन्हें अच्छा नहीं लगा और मनमें ही कहा— किसी पुरस्कारके लोभसे मैंने तो कभी कुछ किया नहीं। यह सब तो विनोद और स्वान्तः सुखाय ही हुआ था। उन्होंने लेनेको हाथ ही नहीं बढ़ाया।

सबको आश्चर्य और जिज्ञासा थी—भाव रससिक्त बाबा आज किसपर अनुग्रहकी वर्षा करना चाहते हैं।

'लो भाई! मैं तो तुम्हारा ही लिखा कागज दे रहा हूँ।' पुनः बाबा सहज उल्लासपूर्वक हँसे।

इस बार सुदर्शनजीने कागज ले लिया और उसे ध्यानसे देखने लगे कि इसमें पारितोषिक कहाँ है? अन्य लोग भी उनकी ओर उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। बाबाके तेजोमय दीप्त मुखमण्डलपर बच्चों-जैसा कौतुक था।

देखते-देखते सुदर्शनजीकी दृष्टि अपने नामपर पड़ी। उनके धीर-गम्भीर

मुखपर मुस्कराहट खिल गयी। उन्होंने देखा– अपने नाम सुदर्शन सिंहके आगे 'चक्र' लिखा हुआ है। उन्होंने उठकर पुनः बाबाके श्रीचरणोंमें मस्तक रखते हुए कहा—बाबा! इसे आप 'पारितोषिक' से आशीर्वादमें बदल दीजिये और बाबाने भी वात्सल्य बिखेरते हुए स्नेहपूर्वक इनके सिरपर हाथ रख दिया। उसी दिनसे सुदर्शनजी 'श्रीचक्रजी' हो गये। इन्होंने अपने लेखोंमें 'सुदर्शन सिंह' लिखना ही छोड़ दिया और परम संत द्वारा प्रदत्त उपनामको ही अपनी पहचान बना लिया।

निरपेक्षता

वर्ष 1953 में 'संत-वाणी अंक' का सम्पादन करने गये तो वहाँ तीर्थांकके लिये उत्तराखण्डके तीर्थोंकी प्रामाणिक जानकारी हेतु किसीको अमरनाथ कश्मीरके साथ-साथ 'कैलास मानसरोवर' की यात्रापर भेजनेकी बात उठी और इस कार्यके लिये पूज्य श्रीभाईजी द्वारा सुदर्शनजीको जानेका आदेश प्राप्त हुआ। सन् 1950 ई० की मईमें सुदर्शनजी श्रीभाईजीसे आज्ञा और आवश्यक सामान लेकर गोरखपुर स्टेशनपर पहुँच गये। तभी अचानक उत्तर प्रदेशके मुख्यमंत्री बाबू सम्पूर्णानन्दजी 'गीता-वाटिका' पहुँचे। इनका पूज्य श्रीभाईजीसे सन् 1917 ई० के असहयोग आन्दोलनसे ही परिचय था। सम्पूर्णानन्दजीको सुदर्शनजीसे मिलनेकी उत्सुकता जगी। उन्होंने पूज्य भाईजीसे कहा—आपकी गीतावाटिकामें कल्याणके सम्पादन-विभागमें मेरे एक साथी सुदर्शन सिंह हैं। वे सत्याग्रह आन्दोलनमें मेरे साथ रहे हैं। कांग्रेसके सत्याग्रह आन्दोलन में मेरे साथ रहे हैं। कांग्रेसके सत्याग्रह आन्दोलनमें वाराणसीके सेंट्रल कारागारमें मैं और सुदर्शनजी एक साथ थे, किन्तु कम आयुके कारण सुदर्शनजी लड़कोंके वार्डमें थे और देशके दीवानोंमें उत्पातके कारण अधिक प्रसिद्ध हो गये थे। क्या गीतावाटिकामें उनसे मिलना हो पायेगा?

चर्चा हो ही रही थी कि पूज्य भाईजीने उनसे कहा– अभी थोड़ी देर पहले ही चक्रजी गीतावाटिकासे कैलास-मानसरोवरकी यात्राएँ हेतु नैनीताल

जानेके लिये प्रस्थान कर चुके हैं। अभी स्टेशन ही पहुँचे होंगे।

बात उत्तर प्रदेशके मुख्यमंत्रीकी थी—अतः श्रीचक्रजीको स्टेशनपर ही फोनपर बुलाया गया। उन्होंने फोनपर ही श्रीसम्पूर्णानन्दजीसे बात की। सम्पूर्णानन्दकी आवाज पहचानते हुए चक्रजीने सहजतासे फोनपर नमस्कार करते हुए कहा—बाबूजी! आपके स्मरणके लिये आभार; किन्तु मेरे और आपके हितमें है कि वर्तमान पदपर रहते हुए आप इस परिचयको विस्मृत ही बने रहने दें। 'क्यों?'—सम्पूर्णानन्दजीने चौंककर कहा। तब श्रीचक्रजी बोले— लोगोंको पता चलेगा कि आपसे मेरा परिचय है तो वे उचित-अनुचित सिफारिशोंको आपतक पहुँचानेके लिये मुझपर दबाव डालेंगे। मैं यह कार्य न करूँ तो व्यर्थमें बहुतोंको अपना विरोधी बना लूँगा और करता रहूँ तो स्वयं कर्तव्य-च्युत हो जाऊँगा। इससे आपका भी सिरदर्द ही तो बढ़ेगा।

'तुम तो अभी भी पहले-जैसे ही अक्खड़ हो'— कहकर बाबूजीने खुला हास्य किया। वे अत्यन्त प्रभावित हुए चक्रजीकी निःस्पृहतासे। चक्रजीने बादमें भी उनसे मिलनेका प्रयत्न नहीं किया। लोग तो केवल कुछ मिनटके परिचय अथवा अपने परिचितोंके परिचयको भी स्वार्थवश भुनाने पहुँच जाते हैं। यहाँ स्वयं मुख्यमंत्रीने अपनी ओरसे बात करनी चाही, पर सुदर्शनजीने उसे अपने पथमें बाधक मानकर महत्त्व नहीं दिया।

कैलास-मानसरोवर यात्रा

इस यात्रासे पूर्व एक वर्ष पहले चक्रजी निजी रूपसे अमरनाथकी यात्रा कर चुके थे, इसलिये हिम प्रदेशकी यात्राका एक साधारण अनुभव इन्हें हो चुका था।

गीता सत्संगके नैनीतालके स्वामी विद्यानन्दजी प्रायः प्रतिवर्ष यात्रियोंको लेकर 'कैलाश-यात्रा' पर जाते थे। चक्रजीने उनसे पत्र-व्यवहार किया और उनके कार्यालयकी सूचनाके अनुसार नैनीताल पहुँच गये।

स्वामी विद्यानन्द तो अभी नैनीताल पहुँचे नहीं थे। उनके सेक्रेटरी यात्री

दल लेकर जानेवाले थे। संयोगवश इनके अतिरिक्त केवल एक बंगाली युवक ही आये थे यात्राके लिये। दो व्यक्तियोंको लेकर यात्रा करनेसे संस्थाका खर्च नहीं निकल सकता था। अतः सेक्रेटरीने इन्हें कुछ दिन ठहरनेको कहा; लेकिन इन दोनों यात्रियोंने सलाह करके यात्रापर चल देनेका निश्चत कर लिया। स्वामीजीके कार्यालयसे इन्हें जो भी सहायता सम्भव थी, दी गयी। तम्बू-बर्तन बिना किरायेके दिये। नक्शेके साथमें रसोइया और मार्गदर्शकका प्रबन्ध भी किया। इस प्रकार नैनीतालसे निश्चित तिथि 29 मई सन् 1954 ई० को निकल पड़े।

सुदर्शनजीको कल्याणके विशेषांकके लिये यात्रा करनी थी, अतः कैलास-मानसरोवर जानेके जितने भी मार्ग हैं, ये उनमेंसे तीर्थयात्रियोंके लिये सुगम तीनों मार्गोंका विवरण लेना चाहते थे। एक मार्गसे जाकर दूसरे मार्गसे लौटनेकी बात तो थी ही। साथके बंगाली युवक लौटते समय बद्रीनाथजीके दर्शन करना चाहते थे; अतः निश्चित किया गया कि सब लोग गर्व्यांग तकलाकोटके मार्गसे जायँगे और लौटते समय चक्रजी मिलमकी ओरसे आयेंगे तथा बंगाली सज्जन नीतिघाटीसे होकर जोशीमठ होकर बद्रीनाथ। इस प्रकार तीनों मार्ग देख लिये जायँगे।

रेलवे स्टेशनसे टनकपुर और मोटर बससे पिथौरागढ़, क्योंकि उस समय पक्की सड़क पिथौरागढ़ तक थी। मार्ग कठिन ही नहीं, कहीं-कहीं भयंकर था। धारचूला होते हुए गर्व्यांग तक जो भारतीय सीमाका अन्तिम कस्बा मिला, वहाँ तक कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। केवल एक दिन छोड़कर प्रायः सभी रात्रियाँ किसी-न-किसी चट्टीपर व्यतीत कीं, जहाँ खाने-पीनेका सामान मिलता रहा।

गर्व्यांग पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि वहाँ गुजराती युवकोंका एक यात्री दल तथा प्रयागके एक दम्पति कई दिनसे रुके हुए हैं। मार्ग अभी घोड़ोंके जाने योग्य नहीं हुआ है।

इन्होंने गर्ब्यांग रुकनेके बदले पैदल जाना ठीक समझा। पहलेसे रुके लोग भी सहमत हो गये। थोड़े खच्चर केवल घाटी तक पहुँचनेके लिये तय किये। आगेके लिये बोझा ढोनेवाले कुली ले लिये। आगे न कोई सामान मिलता था और न ठहरनेका स्थान था। यहींसे बीस-बाईस दिनके लिये आटा, आलू आदि राशनका सामान साथ ले लिया। ये तो नैनीतालसे ही तम्बू साथ लाये थे। दूसरोंने भी कुछ नमदे (भारी कम्बल) ले लिये। गर्ब्यांगसे चलकर एक रात विश्राम किया और दूसरे दिन तीसरे पहरमें घाटीके नीचे तक पहुँच गये थे।

पूरी घाटी हिमाच्छादित थी। इधर-उधर चट्टानोंपर तम्बू लग गये थे। दूसरे दिन प्रातः तीन बजे रात रहते ही चल देना था, जिससे घाटीकी तरफ दिनमें नरम हो उससे पहले ही उसे पार कर लिया जाय। बर्फ जब नरम हो जाती है तब उसमें कहीं-कहीं कमर तक धँस जानेका भय रहता है।

वहाँ कितनी सर्दी थी, इसका अनुमान हम घर बैठकर नहीं लगा सकते। उसी भयंकर शीतमें तीन बजे उठकर चलना पड़ा। किसी प्रकार उबलता पानी नित्य कर्म सम्पन्न करनेको डाला तो स्नान तो हुआ। मूँछोंपर बर्फके कण जम गये। कटिवस्त्र समेटा नहीं जा सका। बर्फसे जकड़ गया। तम्बू समेटे गये और भगवान्‌का नाम लेकर चढ़ाई प्रारम्भ की। दो-दो जोड़ी गरम मोजे और भारी बूटोंके भीतर पैर ठंडसे कटे जा रहे थे। चढ़नेके श्रमके कारण कुछ गर्मी आ जाती थी। सभीने ऊनी कोटके ऊपर बरसाती कोट भी पहन लिये थे और सिर भली प्रकार ढक लिया था।

चक्रजी यात्राके पूर्व ही गोरखपुरसे चित्रकार जगन्नाथजीका पैंट माँगकर ले आये थे। यात्रामें कहीं नाला या तलैया पार करनी पड़ती तो ये दो बड़ी पॉलीथिन थैली दोनों पैरोंमें डालकर कमर तक बाँध लेते जिससे पानी अन्दर न घुस जाय। जब पार कर लेते तो दूसरे किनारेपर जाकर पॉलीथिन उतारकर झड़क देते। इस प्रकार स्वयंको सूखा रखकर यात्रा करते; इन्होंने इन्हीं

दस-पन्द्रह दिनों जीवनमें यही पैंट पहनी, बस।

शिखरपर पहुँचते-पहुँचते हिमपात प्रारम्भ हो गया। जैसे नारियलकी गिरी कद्दू-कससे कसी हो, पतले कागजके समान आधे इंचके टुकड़े बरसाये जा रहे हों। हिमके छोटे हलके टुकड़े ऐसे सघन गिर रहे थे कि हाथ भी फैलानेपर नहीं दीखता। अपने पैर भी स्पष्ट नहीं दिखते। अपनी ही श्वासकी नमी मूँछोंपर जम जाती थी। सब लोग आगे-पीछे हो गये थे। केवल मार्गदर्शक दिलीप सिंह सबसे आगे चल रहा था और उसके पीछे चक्रजी घाटीके शिखरपर समुद्र-तलसे बाईस हजार फुट ऊँचे पहुँच, घूमकर चक्रजीने भारतभूमिको प्रणाम किया। यही भारतकी सीमा थी। अब चीन द्वारा अधिकृत तिब्बती सीमामें प्रवेश करना था।

'मैं यहाँसे फिसलता हूँ'—चक्रजीने दिलीप सिंहसे कहा—क्योंकि मैं कश्मीरमें सोनमार्गमें बर्फपर फिसलनेका अभ्यास कर चुका हूँ। झटपट नीचे पहुँच जाऊँगा।

'भूलकर भी ऐसा मत कीजिये। बहुत धीरे और सावधानीसे मेरे पद-चिन्होंपर पैर रखते हुए चलिये। नीचे भयंकर हिम-दलदलका भारी खड्ड है'— दिलीप सिंहने चेतावनी दी।

तब तक तो 'चक्रजी' अपनी बरसातीको आधार बनाकर शिखरके दूसरी ओर फिसलने लगे। हिमपात इतने वेगसे था कि कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। दिलीप सिंह किधर गया, कुछ दिखायी नहीं दिया। उसके पद-चिह्न तो गिरते हिमने मिटा दिये। अचानक स्मरण आया कि दिलीप सिंहने ऐसा करनेसे रोका है। किसी तरह नरम हिममें हाथकी छड़ी गड़ाकर उठ खड़े होनेमें सफल हो गये, किन्तु तब तक तो दो फर्लांग नीचे फिसल ही चुके थे।

सहसा जोरसे गम्भीर स्वरमें दाहिनी ओरसे किसीने कहा—तिष्ठ। सहसा, चक्रजीके पैर जहाँ-के-तहाँ रुक गये। उस सफेद अंधकारमें कुछ देख नहीं सकते थे, केवल इतना लगा कि दाहिनी ओर कोई छाया लगभग दस हाथ

दूर आकर खड़ी हो गयी है।

अकल्पनीय ऊँची छाया—पता नहीं वह आकार कितना ऊँचा था। छायाने जो कुछ कहा— सरल संस्कृतमें और चक्रजी हिन्दी बोलते रहे।

पुनः छायासे शब्द आया — **लगुड़ेन पुरतो पश्य** अर्थात् अपने डण्डेसे सामने देखो।

इन्होंने अपनी छड़ी हाथसे कुछ आगे करके धँसाई तो वह मूठ तक धँसती चली गयी। कोमल आइसक्रीम-जैसी हिमसे ढँके किसी बहुत गहरे खड्डके कगार तक पहुँच गये थे। यदि एक पग और उठा होता तो हिमके दलदलमें कितने सौ फुट नीचे शरीर चला जाता और हिम-समाधिका पता लगानेका कोई उपाय भी किसीके पास नहीं होता।

एक बार शरीर रोमांचित हो गया। क्षणभर लगा स्वस्थ होनेमें!। मुखसे निकला—हे भगवान्! आप कौन?

'तुम्हें इस परिचयकी कोई आवश्यकता नहीं'—उत्तर मिला।

'मुझे तुम्हारे पास आकर तुम्हें हिममें डूब जानेसे बचानेका आदेश मिला और कुछ बता देनेका भी।' चक्रजी आश्चर्यचकित रह गये। प्राण रक्षकका परिचय पानेमें सफल न हो सके।

हिमपातमें केवल आकृति ही दिखती थी— हल्की छायाका आभास मात्र। सोचने लगे— मेरे नश्वर शरीर रक्षाके लिये यहाँ हिमालयके निर्जन प्रदेशमें, इस हिमपातमें किसे इतनी चिन्ता है? चक्रजीने पुनः पूछा — किसका आदेश? 'महाप्रबुद्ध परम गुरुका' उत्तर आया— 'बस यही बताना भी है मुझे।

'परम गुरु कौन?' चक्रजीका आश्चर्य कौतूहल और बढ़ गया। तिब्बतमें दिव्य योगियोंके होनेकी बात पढ़ी-सुनी हुई थी। 'परम गुरु सौ, दो सौ या दो-चार नहीं हुआ करते।' बहुत गम्भीर स्थिर वाणी थी। उस स्वरका स्मरण बादमें भी इन्हें रोमांचित कर देता था।

'परमात्माने ही अपनी प्राप्तिके इच्छुकोंके लिये अपना गुरु रूप भावित

किया है। उसी गुरु तत्त्वको हम बुद्ध 'अर्हत' कहते हैं। तुम शिव, शेष कहते हो; दूसरे राधा, सीता, लक्ष्मी आदि नामोंसे जानते हैं। वह परम वात्सल्यमय तत्त्व एक ही है। परमार्थके साधकका वही संरक्षक, पोषक एवं मार्गदर्शक है।'

'सम्प्रदायोंके प्रवर्तक आचार्य और साधनोंके अपने-अपने गुरु?' इन्होंने प्रश्न किया।

'बच्चे! बहुत ही स्नेह भरा सम्बोधन आया। मंदिरोंमें कितनी मूर्तियाँ हैं? कितने भिन्न-भिन्न नाम हैं और पृथक्-पृथक् रूप हैं उन मूर्तियोंके। तुम्हें सन्देह है कि वे सब एक ही परमात्माकी मूर्तियाँ, नाम, रूप नहीं हैं?'

'वे हैं तो एक ही परमात्मा की मूर्तियाँ' — चक्रजीने स्वीकार किया।

साधकके सन्मुख जो गुरु है— वह तो मूर्ति है। उसमें जो ज्ञान, स्नेह संरक्षण तथा प्रकाश है— वह परमगुरुका है। गुरुके रूपमें साधक परमगुरुकी अर्चा-सेवा करता है। उस नित्य चिन्मय गुरुतत्त्वके ये पीठ हैं। इनमें उसीकी अभिव्यक्ति है। गुरु मरता नहीं और वह मनुष्य या व्यक्ति नहीं होता।' 'भगवन्!' दो क्षण चुप रहकर सुदर्शनजी बोले। इन्हें रोक दिया गया। छायाने कहा— बस, तुम यहाँसे बायीं ओर मुड़ो और सीधे जाओ। जहाँ पर्वत आगे झुकनेसे बिना हिमके शिला मिलेगी, उसपर खड़े रहकर अपने साथियोंकी प्रतीक्षा करो। इतना कहकर छाया अदृश्य हो गयी। लगा—जो आये थे, चले गये। पुकारनेपर उत्तर नहीं मिला। अब चक्रजीको छड़ीसे टटोलते हुए आगे एक फर्लांगके लगभग जानेपर वैसी शिला मिल गयी। उसपर खड़े हुए ही थे कि हिमपात बन्द हो गया। धूप निकल आयी और साथी ऊपरसे उतरते सामने दिखे।

मार्गदर्शक दिलीप सिंह चौंक गया, जब इन्होंने बताया कि वे किधर भटक गये थे। उसे उतरते समय आभास हुआ था कि ये उसके पीछे नहीं आ रहे हैं तो वह रुका, कुछ ऊपरकी ओर लौटा भी। वह वहीं चक्रजीकी

खोज करना चाह रहा था, किन्तु इनके बंगाली साथीके आग्रहके कारण उन्हें लेकर उसे आना पड़ा। 'आपके लिये मुझे चिन्ता हो रही थी'—दिलीप सिंह कह रहा था— भगवान्‌ने बचा लिया, नहीं तो आप दलदलवाले खड्डके मुखपर ही जा पहुँचे थे।

बचाया तो भगवान्‌ने ही था, किन्तु जिनको उस कन्हाईने अपने परम गुरु रूपसे प्रेरणा देकर भेजा था, वे कौन थे? यह जाननेकी लालसा तो पूरी नहीं हो पायी।

उमा-महेश्वरका वात्सल्य

मानसरोवर पहुँचकर तम्बू लगाये गये। एक छोटे तम्बूमें चक्रजी और वे बंगाली सज्जन सोते थे, क्योंकि उनके पास तम्बू नहीं था। दूसरे तम्बूमें मार्गदर्शक दिलीप सिंह और रसोइया सोते थे। आयुमें छोटे होनेके कारण सहयात्री बंगाली सज्जन चक्रजीको 'दादा' कहने लगे थे। रातको देरतक बंगाली सज्जन तम्बूके बाहर ही रहे। चक्रजीने दो बार पुकारकर उनसे अन्दर आनेको कहा; किन्तु अब तीसरी बार पुकारनेपर भी तम्बूमें नहीं आये तो वे सो गये। प्रातः उठते ही बड़े उल्लास भरे स्वरमें बंगाली सज्जनने चक्रजीके पैर छूते हुए कहा—दादा! दादा! मेरा मनोरथ सफल हो गया।

'क्या हुआ? कैसा मनोरथ?'— इन्होंने पूछा। उन बंगाली सज्जनने जो कुछ कहा वह श्रीचक्रजीके ही शब्दोंमें—'घरपर उनको कभी कोई महात्मा मिले होंगे। संतने कहा— यदि तुम मानसरोवरकी यात्रा करो और वहाँ सूर्यास्तसे सूर्योदय पर्यन्त खुले आकाशके नीचे व्रत करके रहो तो रात्रिमें तुम्हें उमा-महेश्वरके दर्शन होंगे। पहले दिन उन्होंने दोनों समय भोजन नहीं किया। पूछनेपर कोई ठीक कारण न बताकर कह दिया कि इच्छा नहीं है।

मानसरोवरके किनारे दिन भर घूमते रहे थे। 'मुझे दर्शन हो गये' उन्होंने बताया और आगे कहा— उमा-महेश्वरने संकेतसे मुझे तम्बूके भीतर बुलाया

और आप करवटसे सो रहे थे, वहीं आपके पृष्ठ भागका सहारा लेकर दोनों विराज गये थे।

मैंने दो-तीन बार आपको जगानेका प्रयास किया; किन्तु माँने रोक दिया यह कहकर कि बच्चा सो रहा है। जगा मत।

स्पष्ट कर दूँ कि मैंने कुछ देखा नहीं या अनुमान नहीं किया था। मैं उसकी ही बात कह रहा हूँ। उन्होंने सच ही कहा होगा ऐसा विश्वास है। 'तुमको कुछ वरदान मिला'—मैंने पूछा। उन सज्जनने एक हस्तलिखित कागज निकाला। उसमें केवल बहुतसे नामोंकी सूची थी। उन्होंने बताया—यह मेरे पूर्वजोंकी नामावली है, जो मैं पूछताछ कर बना सका। मैंने प्रभुसे वरदान माँगा– इन लोगोंको नरकसे निकाल दें। प्रभुने संकेतसे ही सूची पढ़नेको कहा। मैं एक-एक नाम पढ़ता जाता था और वे हाथसे निकालनेका हल्का संकेत करते जाते थे।

'हाय रे भाग्य!' मेरे मुखसे निकल पड़ा– कल्पवृक्षके नीचे पहुँचकर भी तुम कंगाल ही रहे।

'आप यदि नींदमें न होते तो क्या माँगते?' उन्होंने पूछा।

'मैं क्यों माँगता?' मैंने कहा– मुझे तो माँगना था वह तो नींदमें होनेपर भी मिल गया।

'क्या मिला था आपको?' —बहुत जोरसे चौंक पड़े थे वे।

'जगज्जननीने बच्चा कहा था न मुझे?' मैंने पूछा।

'कहा तो था। मैंने दो-तीन बार जगानेका प्रयत्न किया और प्रत्येक बार माँने मना कर दिया। प्रत्येक बार 'बच्चा' कहा। पिछली बार तो उनके स्वरमें रोष भरी झिड़की थी। उस बार पीठपर हाथ भी फेरा था आपके।'

'जगानेपर भी मैं और क्या माँगनेवाला था? मुझे कहना यह था कि अपने श्रीमुखसे एक बार पुत्र कहकर सम्बोधन करो।'

'प्रभु यदि माँगनेको कहते'– उन्होंने बात बिना समझे पूछा – क्या

माँगते आप?

'तुम जानते हो कि पुत्रको अपने माता-पितासे लड़ने-झगड़नेका भी अधिकार है और मेरा स्वभाव झगड़ा मोल लेनेवाला है।'

'आप प्रभुसे झगड़ा करते?' वे आश्चर्यसे देखते रह गये।

'मैं कहता—आप पिता हैं, बच्चेपर प्रसन्न हैं तो जो प्रसन्नता हो दे दें किन्तु मैं भिखारी हूँ, ऐसा आप क्यों समझते हैं? माता-पिताका जो कुछ है वह पुत्रका स्वत्व है। उसके बाहर कुछ बचता है क्या?''

उन सज्जनको बड़ा पश्चात्ताप हुआ अपनेपर। वे अपने लिये और सूचीमें लिखे नामोंके लिये मोक्ष भी माँग सकते थे। किन्तु अभीष्टका, कामनाका पात्र होता ही बहुत छोटा है। उसे लेकर जानेवालेके हाथ उतना ही तो आयेगा जितना बड़ा उसका पात्र है। शंकर परम कल्याण प्रदाता प्रभु हैं; अनंग-मोचन होकर। वस्तुतः जीवको बन्धनग्रस्त किया है कामनाओंने, उसके छोटे-बड़े अभीष्टोंने। इस कामना समूहका ध्वस्त होना और काम-नाश होता है तब; जब कामारिको अपने चिन्तनका विषय बनाया जाता है। आप मेरे साथ शिव-स्मरण करें। अभीष्ट पूर्ति चाहिये तो और कामनाओंसे मुक्त होकर करणीय तो सदा शिवकी स्मृति है—

महादेव शिवशंकर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे।
मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन उमाकान्त हर त्रिपुरारे।।
हर शिव शंकर गौरीशं वंदे गंगाधरमीशम्।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरिनाथम्।।
शिव शम्भो शिव शम्भो हर गौरीशंकर जय शम्भो।।

पूर्वाभाससे रक्षा

लौटते समय इसी दलके दो हिस्से हो गये। श्रीचक्रजीको मिलम होकर

लौटना था और इनके बंगाली साथीको नीति घाटीकी ओरसे बद्रीनाथ जाना था। आगे चलकर दोनोंको पुनः एक हो जाना था।

'मिलम' भारतीय सीमाका अन्तिम गाँव है। इस मार्गमें तिब्बती सीमामें कोई गाँव नहीं था। इन्हें रुककर पाँच-छः दिन प्रतीक्षा करनी पड़ी, क्योंकि तबतक वह मार्ग खुला नहीं था। चले भी तो यह दल उस ऋतुका प्रथम चलनेवाला दल था। इनमें सुदर्शनजी, मार्गदर्शक दिलीप सिंह भोटिया, तीन भेड़वाले और उनकी भेड़ें थीं। इन्हींमेंसे तीन-चार भेड़ोंपर सामान एवं तम्बू लदा था।

उस क्षेत्रमें सबेरे ही नदी-नाले सूखे रहते थे, किन्तु सूर्य निकलनेपर समीपके पर्वतकी बर्फ पिघलनेसे उसमें जल आ जाता था। दस-ग्यारह बजते-बजते वे बाढ़से भरकर अगम्य हो जाते थे, लेकिन इनके इस मार्गमें ऐसा कोई नाला नहीं था, फिर भी ये लोग सबेरे ही चल पड़ते थे।

एक दिन सब एक पर्वतके नीचे बैठकर जलपान कर रहे थे। चक्रजीको तो अपने झोलेसे निकाल कर सूखे मेवे खा लेने थे। अतः इनका जलपान पूरा हो गया था, किन्तु तिब्बती गड़रिये अपनी चाय बनानेके लिये अभी आग भी नहीं जला पाये थे। दिलीप सिंह भी उन्हीं लोगोंके साथ चाय पीनेवाला था। सहसा चक्रजीका चित्त उद्विग्न हो उठा। उन्हें एक क्षण भी रुके रहना असह्य हो गया। यह सर्वेश्वरकी प्रेरणासे था अथवा पूर्वाभास।

'दिलीप सिंह! झटपट उठो, कहीं आगे चाय पी लेना'— चक्रजीने खड़े होकर मार्गदर्शकसे कहा।

'बाबूजी! पाँच मिनटको बैठिये, हम अभी चाय पीकर चलते हैं, आगे पानी दूर है।' दिलीप सिंहने नम्रतापूर्वक कहा।

पानीकी धारा आगे कुछ दूरीपर दीख तो रही थी, किन्तु चक्रजी जानते थे कि पीछे पर्वत हो तो बहुत समीप दिखायी देनेवाली पानीकी धारा जो

कुछ दूर लगती है, वह दो-चार मील दूर भी हो सकती है। अतः दिलीप सिंहका अनुरोध भी उचित था और ऐसी दशामें जब चक्रजी स्वयं जलपान कर चुके थे।

'नहीं, अभी इसी क्षण सब उठो।' इन्होंने डाँटकर कुछ अप्रसन्न होकर कहा—यहाँ अब किसीको भी बिलकुल नहीं रुकना है। चक्रजी अकेले उठकर चल भी देते तो भी यह लोग बैठे रह सकते थे। ये आगे चलते हुए इन लोगोंको दूरतक दिखायी देते रहते। अतः ये चिन्ता नहीं करते, किन्तु चक्रजी तो नाराज होकर उन सबको उठकर चल देनेको आदेश दे रहे थे। दिलीप सिंहने गड़रियोंको तिब्बती भाषामें समझाया और बिना इच्छासे उठे। दिलीप सिंह भी अप्रसन्न हो गया; किन्तु किसीको कुछ कहनेका साहस ही कहाँ था और न अवकाश ही मिला।

कठिनाईसे सब लोग पच्चीस-तीस पद चले होंगे कि जिस पर्वतके नीचे बैठे थे, उसके शिखरके पास भारी गड़गड़ाहट हुई। पीछे घूमकर देखनेका साहस भी तब हुआ जब दौड़ते हुए कुछ आगे बढ़ गये। पर्वतसे दो भारी चट्टानें गिरीं जहाँ चक्रजी और दिलीप सिंह बैठे थे और दूसरी बड़ीवाली चट्टान वहाँ गिरी जहाँ गड़रिये और उनकी भेड़ें थीं। दो क्षण सब स्तब्ध अवाक् रह गये—उन चट्टानोंकी अवस्थिति घूरते हुए। इसके बाद दिलीप सिंह और तीनों गड़रियोंने दौड़ कर चक्रजीके पैरोंपर सिर रख दिया। तिब्बती गड़रियोंकी भाषा तो चक्रजी नहीं समझते थे, किन्तु वे जो कुछ कह रहे थे, उसका एक शब्द जो चक्रजीके सम्बोधनमें उन्होंने कहा—बड़ा लामा (बड़े संत) वैसे तो इस यात्राके प्रारम्भमें ही मिलनेवाले तिब्बती गड़रियोंमें ये 'बड़े लामा' के नामसे प्रसिद्ध हो गये थे, क्योंकि प्रतिदिन स्नानके नामपर ये दो-चार लोटे गरम जलके शरीरपर डाल लेते भले ही वह पैर तक पहुँचनेके पूर्व ही जम जाता था। कभी गरम पानीके झरनेके पास पहुँचते तो मुँह,

हाथ-पैर धो लेते। ऐसे दो झरने मिले रास्तेमें। पहला तीर्थपुरी जहाँ एक बौद्ध गुफा थी और दूसरा 'खिंग-लुंग' में।

नानाजीकी गोदमें

चक्रजीका जन्म वाराणसी जिलेमें हुआ। इससे इन्हें दृढ़ताके साथ लगता था— मैं तो बाबा विश्वनाथके घरका ही बालक हूँ। आप इसे दोष नहीं कह सकते। ये तो सदा अन्य व्यक्तियोंको भी कहते— आप भी कोई सम्बन्ध बना लें भोले बाबासे। वे तो भोले ही ठहरे, अस्वीकार करना कहाँ आता है इन्हें?

'आज अन्धड़ आयेगा, पत्थर गिरेंगे। अब सायंकालीन यात्रा आज नहीं होगी'— मार्गदर्शक एवं साथियोंने कहा।

'नहीं, यात्रा नहीं रुकेगी। रात्रिमें अगली चट्टीपर रुकेंगे'— चक्रजीने साथियोंसे और दिलीप सिंहसे कहा और छड़ी उठाकर चल पड़े। मनमें एक खुराफात आ गयी थी— ये नगाधिराज पार्वती-पिता अपने नानाजी ही तो हैं। इनको सोते हुए कई दिनोंसे देख रहा हूँ। आज देखना चाहता हूँ कि इनका जाग्रत् रूप कैसा होता है।

दिलीप सिंह जानता था कि हिमालयमें जब आँधी आती है, अनेक स्थानों-पर पहाड़की नन्हीं-नन्हीं कंकड़ियोंसे लेकर मनों भारी पत्थर लुढ़कते हैं। वे तोपके छूटे गोलोंके समान गिरते हैं। चीड़के पेड़ भी टूटकर या जड़से उखड़ कर गिरते हैं। सहयात्री भी अनुभवी था, अतः भेड़वाले और दिलीप सिंहने सामान तो बाँध लिया, पर चले नहीं, वहीं रुक गये।

मील, सवा मील चलनेपर आँधी आयी। धूल और कंकड़ियोंकी बौछार बार-बार नेत्र बन्द करनेको बाध्य करती थी और तब इन्हें खड़े हो जाना पड़ता। पर्वतमें हवा इधर टकराती है—वायुवेग सामनेसे आता तो नेत्र बन्द करके खड़े रहनेके अतिरिक्त कुछ उपाय नहीं था और वेग दूसरी ओर होता तो चलने लगते, पर लगता कि पीछेसे कोई धक्का दे रहा है। आँधीके

वेगसे छोटे-बड़े पत्थर लुढ़कने लगे। दिलीप सिंह और सहयात्री मित्र बुरी तरह डर गये थे। संयोगवश एक बाहर निकली शिला मिल गयी, तो तनिक देरको उसके नीचे सब बैठ गये।

'आहा! नानाजी जाग गये'—चक्रजी अपनी ही धुनमें थे, आयु भी ऐसी थी, जिसमें उत्साह छलका पड़ता था। कोई विपत्ति दहला नहीं पाती और देह थकना नहीं चाहती। तनिक-सा विश्राम सारी थकान हर लेता।

पुनः पैर चलते रहे। छोटे-छोटे पत्थर-चट्टानें धड़ाधड़ गिरने लगीं। वृक्ष भी उखड़ कर गिरे; किन्तु क्या नानाजीकी गोदमें बैठे दौहित्रको कभी भय होता है?

वे शिवका रौद्र रूप पुकारने लगे —

धगद्, धगद् धगत्काल
जाह्नवी जलार्द्र जाल
धूम्र-धूसर व्योमकेश धूर्जटि प्रभु
मुण्डमाल जागो!
जागो हे प्रलयंकर!
कराल कालिका संग
भस्मीकृत अनंग
भूति भूषितांग
ताण्डव करो त्रिपुरारि
खोलो तृतीय नेत्र
मिटा दो, सृष्टिका कदर्थ सत्र!
त्रिशूल विदीर्ण ब्रह्माण्ड
पशुपति, प्रकट करो पौरुष प्रकाण्ड
कर दो प्रपंच भस्म
भूतनाथ जागो।

उस दिन अनुभव हो गया कि युद्धस्थलमें जहाँ तोपोंसे गोले बरसते होंगे, पत्रकार और सैनिकोंका चलना-फिरना कैसे होता होगा? अवश्य यह अन्तर था कि ये भाग-दौड़ नहीं रहे थे। ये सब चल रहे थे और वायुके आनेपर नेत्र बन्द करके खड़े हो जाते।

भय-विहीन, असीम साहसी अपने दुलारे दौहित्रको सम्हालनेका दायित्व अब सचमुच ही नानाजीको ही सँभालना पड़ा और वे तो अन्तरके आनन्दकी विभोरतामें डूबते-उतराते चलते रहे। उनके ओंठ गुनगुना उठे—

शिशुकी सहजता धृष्टता विश्वनाथसे है।
अभय दिये रहती है, प्रमोद हुलसाती है।

आनन्दपूर्वक 'कैलास-मानसरोवर' यात्रा कर गोरखपुर लौट आये।

श्रीभाईजी द्वारा अनुगतकी रक्षा

सन् 1955 ई० की बात है। चक्रजी 'कैलाश-मानसरोवर' की यात्रा करके लौटे ही थे। थकावटके स्थानपर मनमे उत्साह था। चाहते थे कि लगे हाथ 'मुक्तिनाथ दामोदर कुण्ड' की भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डके प्रायः सब तीर्थोंकी यात्रा पूरी हो जायगी। इन्होंने श्रीभाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबर तककी यात्रा होनी थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो चुकी थी। सोचा कि गोरखपुरसे ऐसे बस पकड़ेंगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय। भैरहवामें रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दें।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। अब चक्रजी श्रीभाईजीको प्रणाम करने उनके कमरेमें गये। श्रीभाईजी गीता वाटिकाके सम्पादन कार्यालयवाले कमरेमें चटाईपर बैठे थे। कागज देख रहे थे। चक्रजीने जाकर प्रणाम किया। वे बोले—आप जा रहे हैं?

अचानक भाईजीने मुँह लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास

हो गया। वे बोले— जाइये। कल्याणके विशेषांक (सत्कथांक) के लिये अभी चित्र निश्चित नहीं हुए, चित्रकारोंको निर्देश नहीं दिये गये। मैं खटूँगा-करूँगा ही किसी प्रकार।

सर्वथा अकल्पित बात थी। चक्रजीने बहुत पहले ही इस यात्राके सम्बन्धमें उनसे पूछ लिया था। उन्होंने प्रसन्न होकर अनुमति दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र मँगानेमें सहायता की थी। चित्रोंका चुनाव, उनके संबंधमें चित्रकारोंको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा करते थे। ये तो अल्प सहायता ही इसमें कभी-कभी करते थे।

सबसे विशेष बात यही थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते हुए सुननेका यह अवसर चक्रजीके लिये प्रथम था। आगे भी कभी उन्हें इस स्वरमें बोलते हुए इन्होंने नहीं सुना। चक्रजीको उनका यह स्वर असह्य था, अतः चक्रजीने कह दिया— आप ऐसे क्यों बोलते हैं? मना करना है तो सीधे-सीधे मना कर दीजिये।

इतना सुनते ही उल्लासभरे स्वरमें पूरे जोरसे श्रीभाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यवस्थापक श्रीदुलीचन्दजी दुजारीको पुकार कर कहा— भाया रिक्शा लौटा दे, सुदर्शनजी नहीं जा रहे हैं।

अब चक्रजीको कुछ कहनेको नहीं रह गया था। चुपचाप उठकर आ गये। रिक्शा लौट गया, बिस्तर खोल दिया गया। मनमें कुछ दुःख भी हुआ।

दूसरे दिन, सुदर्शनजी अपने नित्य कर्मसे निवृत हुए ही थे कि श्रीभाईजी कुटियाके द्वारपर आ खड़े हुए और बोले— सुदर्शनजी! बड़ी दुर्घटना हो गयी।

चक्रजीने पूछा — क्या हुआ?

उन्होंने बताया — अभी जिलाधीशका फोन आया था। उन्होंने पूछा था कि आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नहीं। मैंने कह दिया कि नहीं गये। उन्होंने बताया—कल जानेवाला हवाई जहाज

दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसमें सब यात्री मर गये।

पीछे समाचार पत्रोंमें छपा कि आँधी-तूफान और भयानक ओला-वृष्टिसे हवाई जहाज तो नष्ट हुआ ही, वह मोटर मार्गकी सड़क भी कई मील तक टूट गयी। पन्द्रह-बीस दिनसे पहले मार्गके खुलनेकी कोई सम्भावना नहीं रही थी। चक्रजी इसी हवाई जहाजसे जानेवाले थे। इन्होंने कहा और लिखा भी — "श्रीभाईजीने मेरी वह यात्रा ही नहीं — महायात्रा रोक दी थी।

गीताप्रेसकी तीर्थ-यात्रा ट्रेन

'मुक्तिनाथ' की यात्राके पश्चात् सन् 1956 ई० 26 जनवरीको गीताप्रेसकी ट्रेन वाराणसीसे रवाना हुई। अनिच्छा होते हुए भी सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके कथनको आदर देनेके लिये इस ट्रेनमें श्रीभाईजी सपरिवार चले।

तीन धामकी यात्रा थी, अतः तीन महीनेसे भी अधिक समय लगनेवाला था। अतएव यात्राके बीच जो यात्री बीमार हो जाय, उसकी चिकित्साके लिये श्रीभाईजीने डॉ० घनश्याम दासजी तोलानीको नासिकसे बुलवा लिया था। उत्तराखण्डके सभी तीर्थोंका विवरण सुदर्शनजीने यात्रा करके तैयार कर दिया था। अब द्वारिका, रामेश्वम्, जगन्नाथपुरीकी यात्रा हो रही थी।

सुदर्शनजी भी इस यात्रामें साथ थे। उनका काम था— तीर्थस्थानों, विग्रहोंकी फोटोग्राफी, स्थान, पथ तथा मंदिरोंका विवरण और महत्त्व अंकित करना।

कालभैरवकी फोटोग्राफी

वाराणसीके सभी स्थानों, मंदिरोंके विवरण तैयार करते समय ये 'कालभैरव' जो कि काशीके कोतवालके रूपमें भैरवनाथ गलीमें अवस्थित हैं—पहुँचे और उनका चित्र लेना चाहा। पुजारियोंमेंसे एक वृद्ध व्यक्तिने

कहा— बाबू इनकर फोटवा नाहिन लियल जाइ, ये बड़ा तेज उग्र देवता होइला, तुम्हार कैमरा बिगड़ जाइला। अर्थात् भैरवनाथका चित्र कैमरामें या तो आता ही नहीं है या कैमरा ही खराब हो जाता है। श्री चक्रजोन उनकी बात सुनकर पुजारीजीसे तो कुछ कहा नहीं, पर उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। भला चित्र ले लेनेसे कालभैरवजीका क्या बिगड़ जाता है? ठीक है, मैं कल फिर आऊँगा''—इन्होंने मनमें सोचा।

दूसरे दिन गंगास्नान, नित्यनियमादि सम्पन्न करके बाबा श्रीविश्वनाथजी, माता श्रीअन्नपूर्णाजीके दर्शन करके कालभैरवके मंदिर पहुँचे। एक दुकानसे माला एवं चार लड्डू लेकर कालभैरवके सम्मुख रख दिये और नन्हें बालककी-सी बालसुलभ सरलतासे उनके चरण छूनेके बदले पेटपर हाथ फेरते हुए बोले— आप पहले लड्डू खा लीजिये। देखो! चित्र बढ़िया आना चाहिये, आपने मेरा कैमरा खराब किया या फोटो स्पष्ट नहीं आया तो मैं अपने बाबा विश्वनाथके पास नहीं जाऊँगा। वे तो अपने आराध्यके चिन्तनमें छके रहते हैं। किसीके कुछ भी माँगनेपर तुरन्त 'हाँ' कर देते हैं। उन्हें पूरी बात सुननेका समय कहाँ? मैं तो सीधे जाऊँगा अपनी कल्याण-वात्सल्यसिक्ता अम्बा अन्नपूर्णाके पास और जाकर शिकायत करूँगा कि — अम्ब! देखिये न! कोतवाल साहब तो अपने घरके बच्चेको भी नहीं पहचानते— ये अच्छे नहीं हैं, दूसरे बदल दीजिये।

आप जानते हैं— वात्सल्यमयी अम्बाको अपने शिशु ही दिखायी देते हैं। बालक अंकमें हो, तो वे सृष्टि और उसके नियम भूल जाती हैं। आप अपनी बात सोच लीजिये। वैसे चित्र खिंचवानेमें आपकी कोई हानि होती हो अथवा आपके कोतवालपनकी प्रतिष्ठामें कुछ न्यूनता आती हो, ऐसा मुझे नहीं लगता। आप बड़े हैं— बड़ोंको बालकोंका मन रख लेना चाहिये। शिशुकी चपलता ही मान लीजिये इसे—

भयानक भूत प्रेत लिये, भुजगभूषण महा भैरव जागो।
भूत प्रेत नायक प्रभु! महा भैरव जय हो।।

उचित स्थानसे पाँच मिनट पश्चात् चित्र खींचा गया इनका और बड़ा भव्य चित्र आया। वहाँ खड़े सभी लोगोंको विशेषकर पुजारियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ—'ऐसा तो कभी नहीं हुआ। आजतक तो जिसने भी ऐसा प्रयत्न किया, या तो फ्लेश नहीं चला या फिर लेंस टूट गया अथवा कोई गड़बड़ी हो गयी'—आपसमें चर्चा करते हुए उसी वृद्ध पुजारीने आदर-विनयपूर्वक प्रार्थना की— बाबू! हमें चित्रकी एक प्रति अथवा निगेटिव देनेकी कृपा कीजियेगा तो हम लोग भी उससे खा-कमा लेंगे। अपना काम हो जानेपर बादमें चक्रजीने उन्हें निगेटिव दे दिया। आज भी उसीकी प्रतियाँ चित्र रूपमें बिकती हैं।

व्रजभूमिकी दिव्यता

ट्रेन मथुरा पहुँची। रससिद्ध बाबूजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, प्रेममूर्ति राधा बाबा और सभी परिकर मथुरा-वृन्दावनके बीचमें बिड़ला मंदिरकी धर्मशालामें ठहरे। चक्रजी अपना दायित्व निभानेमें लग गये। किन्तु वृन्दावनमें प्रवेश करते ही चक्रजीकी भाव दशा प्रेम-वैचित्र्यमें बदल जाती। उन्हें अपने 'कनूं' की मुस्कान, उसके अधरोंकी थिरकन, उसकी प्रेमभरी चितवन, उसके करकमलोंका स्पर्श, उसकी मीठी-मीठी बातें प्रत्यक्ष-सी दिखतीं। वे वृन्दावनमें श्रीबिहारीजीके दर्शन करने जा रहे थे। वहीं रेलवे क्रॉसिंग लाइनके समीप एक नीच-जातिकी स्त्री टोकरियाँ बेच रही थी। पासमें उसका डेढ़-दो सालका साँवला-दिगम्बर बालक भी खड़ा था। अचानक उस बालकको न जाने क्या हुआ— वह दौड़कर सड़क पार करते हुए दोनों हाथ उठाकर 'दादा' 'दादा' कहता उन्हींकी ओर भागता आ रहा था। चक्रजी उसे देख नहीं पाये थे, परन्तु उसके द्वारा सड़क पार कर लेनेके पश्चात् उसके स्वरकी मधुरताने उनका ध्यान उधर खींचा तो देखा बालक तो उन्हींको सम्बोधन करता हुआ दोनों हाथ उठाये दौड़ा आ रहा है। एक क्षणमें दृश्य ही बदल गया। उन्हें लगा—नन्द पौरीपर खड़ी यशोदा मैयाका आँचल पकड़े खड़ा कन्हाई दादाको

देखते ही हाथ उठाकर 'दादा' 'दादा' पुकार कर दौड़ पड़ा और मैया भी 'अरे लाल तनिक ठहर जा, तेरो दादा यहीं आइ रह्यो है, तू गिर जाइगो, दौड़ मत' कहती हुई शीघ्रतापूर्वक पीछे-पीछे चल दी हैं। तब तक चक्रजीने बालकको आतुरता सहित छातीसे लगा लिया। कुछ क्षण तक परमानन्दमें डूब गये। बालक अपना कोमल कर-कमल उनके गलेमें डाले था, दूसरा नन्हा कर उनके मुख, नासिका और कपोलोंपर फेर रहा था।

'दादा' स्वरकी मधुरताने ध्यान भंग किया तो झोलेमें हाथ डालकर थोड़ा प्रसाद और सूखा मेवा अपने करोंसे खिलाने लगे।

'बाबूजी! क्षमा करियो, यह लाला बड़ो नटखट है। कैसो गन्दो शरीर लैके गोदमें चढ़ि गयो है। आपके कपड़े गन्दे कर देगो, याकूँ मोय दे देउ। बाबूजी! माफ करियो, याने आपकूँ बहुत कष्ट दियो, आपकूँ स्नान करनो परेगो। ये लाला! उतर जा। तोकूँ कछू दीखे नाय... उतर... इनके वस्त्र... ।

तब बालकने चौंककर जैसे ही इनका मुख देखा, उसे लगा कि वह किसी अनजाने व्यक्तिकी गोदमें आ गया है। तुरन्त मचल कर गोदसे उतरा और माँकी ओर दौड़ गया। चक्रजीने मनमें ही कहा-वह तो चला गया किन्तु मनमें उसकी बाँकी-झाँकीकी छबीली-छटा ज्यों-की-त्यों है।

दूसरे दिन ही वृन्दावनमें बिहारीजीके दर्शन करने जा रहे थे कि एक टाटधारी बाबा सामने मिल गये। चक्रजीने बाबाको प्रणाम करनेके अनन्तर कहा— बाबा! यदि आपको त्याग-तपस्या ही करनी है तो चित्रकूट चले जाइये। गंगोत्री भी अच्छा स्थान है और फिर बद्रीनाथ तो नारायणकी तपस्थली ही है।

'क्यों?—बाबा तनिक चौंके और रूखे स्वरमें बोले—क्यों चले जायँ वहाँ? वृन्दावनमें मेरे प्राण बसते हैं तुम जानेकी बात कहते हो?

'मेरा कन्हाई बहुत चपल और भोला है बाबा!' अब चक्रजीने उत्तर दिया। आप त्यागी महात्मा हैं– यह देखकर वह आपके चरणस्पर्श करे या उछल कर गोदमें आ बैठे तो आपके ये बिवाई फटे चरण छूकर उसके किसलय कोमल करोंको कितनी पीड़ा होगी? और गोदमें बैठनेपर यह टाट... ?

'बस'! 'बस'!! 'बस'!!! रुको, रुको, बाबा भावुक तो थे ही, रुँधे कंठसे अधिक नहीं बोल पाये। उनके नेत्र बरसने लगे थे मानो चक्रजीके वाक्यकी अगली बात उनके लिये असह्य है, वे फूट-फूट कर रो पड़े। सच... सच... कहते हो तुम, हाय! कुलिश कठोर हृदयका मैं अधम... उनकी हिचकी बँध गयी। रोते हुए वे एक ओरको चल दिये... ।

बादमें कभी-कभी एकान्त स्थान... झुरमुटमें... कुंजोंमें... वृन्दावनमें वे प्रायः मिल जाते थे, पर अब वे नीले रंगका शनीलका लम्बा पैरों तक पहुँचनेवाला चोगा पहने रहते। उनका एकान्तका आनन्द भंग न हो इसलिये चक्रजी भी प्रणाम करके हट जाते थे।

बरसानेमें 'कीर्ति-लली' से सत्कृत

वृषभानुनन्दिनीके रसमय बरसानेकी दिव्यातिदिव्य मधुर झाँकी निहारना चर्मचक्षुओंका विषय है ही कहाँ? यह नित्य लीला-विहारस्थली है। नित नया उल्लास-विलास, श्रीराधामाधवकी ललित लीलामाधुरीका नित्य प्रवाह अबाध गतिसे चलता रहता है, जो सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत है, विलक्षण है। उनके कृपा-कटाक्षके सहारे उन्हींके स्वजन-परिकर 'बिन मोल बिककर' कभी-कभी किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त कर रससिन्धुमें छके रहते हैं।

इसी यात्रा-क्रममें एक दिन कुछ लोगोंके साथ पूज्य श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार और श्रीचक्रजी बरसानेकी ओर चले। जब-जब किसीने चक्रजीसे बरसाने जानेका आग्रह किया, वे सदा टालते रहे, बिना

कारण बताये मना कर देते। उन्हें लगता था— ऐश्वर्य-माधुर्यकी अधिष्ठात्री रास-रासेश्वरी श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा उनकी 'लली' ही हैं। उन्हें संकोचमें डालना ठीक नहीं है, किन्तु इस यात्रामें जब बरसाने जानेसे मना कर दिया—

'आप सब जाइये, मैं नहीं जा सकूँगा।'

'क्यों?' का कोई उत्तर नहीं दिया तो पूज्य भाईजीने आग्रह किया।

उनकी बात न टाल सकनेके कारण गाड़ीमें बैठ गये, बोले— ठीक है मैं मंदिरमें नहीं जाऊँगा, नीचे कारमें ही बैठा रहूँगा। श्रीभाईजीने हँसकर बात टाल दी, किन्तु बरसाने पहुँच कर अपने अन्तर भावकी रक्षा करते हुए कारमें ही बैठे रहे, ऊपर नहीं गये।

सबके जानेके बाद इनकी भावभरी आँखें ऊपर मंदिरकी ओर उठीं और अनवरत निहारते रहे—प्रेमकी साकार प्रतिमा महाभावरूपा अपनी 'लली' की ओर; जिनका परम उज्ज्वल प्रेम आनन्द रस-सागर रसराज प्रेमैकप्राण श्रीकृष्णको विगलित कर प्रेमपरवश बना देता है। सहसा ज्योर्तिमय प्रकाश हुआ और झरोखेसे झाँकती आह्लादिनी श्रीराधाका आविर्भाव। अतिशय संकोचमें पगी प्रेमप्रतिमा 'कीर्तिलली' ने नमितनयन होकर, करबद्ध होकर मस्तक झुकाया, इधर अनायास ही इनका दाहिना कर आशीर्वादकी मुद्रामें ऊपर उठ गया और जिह्वा आशीर्वादके स्वरमें मुखर हो उठी—

जिसकी कल्पित चरण छाँह भी छूकर,
लगे मुक्ति भी बाधा।
सुखी रहे यह कीर्तिकुमारी
शीलमयी श्रीराधा।।
निखिलेश्वरी निखिल गुणधामा।
संकोचमयी अति भोली।

कृष्ण-अभिन्ना रहे प्रसन्न
रसमग्ना रस घोली।।
श्रुतिके सब 'स्वस्त्ययन' इसीको
सब गीर्वाणी वाणी।
रहे सदा ही मोद-निमग्ना
कीर्ति-लली कल्याणी।।

'बाबूजी! प्रसाद।' कौशेय धोती-कुर्त्ता-तिलकधारी एक गोस्वामीकी आवाजने उनका ध्यान भंग किया। उनके हाथमें कपड़ेसे ढँका प्रसादसे भरा चाँदीका थाल था।

अचकचाकर चक्रजीने इधर-उधर देखा— किसमें लें इतना सारा प्रसाद? कहीं कोई पात्र या वस्त्र न पाकर सीटके आगे-पीछे देखनेसे पाकेटमें अखबार मिल गया। उसीपर थालका प्रसाद उलट दिया और उसीमेंसे प्रसादका एक लड्डू खाने लगे। गोस्वामीजीने अपनी जेबसे छोटी-सी इत्रकी शीशी निकाली और हथेलीपर ही इत्र उलट कर शीशी तो जेबमें रख ली और दोनों हथेलियाँ मिलाकर रगड़ते हुए चक्रजीकी ओर बढ़ाया— यह प्रिया-प्रियतमका प्रसाद है— कहते हुए इनके केशोंमें अच्छी तरहसे इत्र मल दिया। माला भी पहनायी और प्रसादी पान दिया।

गोस्वामीजी लौट गये। बादमें श्रीभाईजी साथियों सहित लौटे तो हाथमें प्रसादका एक-एक दोना था। उनकी ओर बढ़ाते हुए श्रीभाईजीने कहा— लीजिये यह आपका प्रसाद।

'प्रसाद'? चक्रजीने आश्चर्यसे कहा।

'हाँ, जब मंदिरमें हमें प्रसाद मिला, तब हमारे साथीने एक दोना अधिक आपके लिये ले लिया कि हमारे एक साथी कारमें बैठे हैं। 'किन्तु मैंने तो प्रसाद ले लिया है।'

'कहाँसे, कैसे?' भाईजीने पूछा।

'आपने ही तो ऊपरसे थाल भेजा था' कहकर सारी बात सुना दी!

'वह प्रसाद है कहाँ?'

चक्रजीने सीटसे वह प्रसाद उठाकर दिखा दिया और इतना सारा इत्र तो मेरे सिरमें मल गया वह। सस्मित भाईजीने देखा कि ये माला भी पहने बैठे हैं और सुगन्धित भी हो रहे हैं। तब श्रीभाईजीने कहा–मेरी उदारमना किशोरीजीने जेठजीकी पहुनाई की है।

बहुत प्रसन्न मनसे गाड़ीमें बैठ गये आगेकी यात्राके लिये।

इस यात्रामें उत्तर भारतसे दक्षिण भारतके सभी प्रमुख तीर्थोंके दर्शन और उनके तत्कालीन आचार्यों, संत-महात्माओंका सत्संग-लाभ हुआ। चार महीने तक भ्रमण करनेके पश्चात् यह दल वैशाख कृष्ण प्रतिपदाको गोरखपुर लौट आया। यात्राजनित थकान एवं अस्वस्थताके कारण पूज्य भाईजीका शरीर बहुत कमजोर हो गया। कुछ दिनों पश्चात् स्वास्थ-लाभके उद्देश्यसे वे स्वर्गाश्रम चले गये और चक्रजी 'अक्षय-तृतीया' समीप होनेसे वृन्दावन चले आये। इसके पश्चात् 'राम वन' होते हुए 'तीर्थांक की तैयारीके लिये गीतावाटिका, गोरखपुर ही वर्षके अंत तक रहे।

वर्ष 1957 ई० के प्रारम्भमें राम वन आकर 'मानसमणि' का सम्पादन करने लगे। श्रीशारदा प्रसादजी द्वारा निर्मित कार्योंमें निर्देशन देते रहते थे। कुम्भके अवसरपर श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजीके यहाँ प्रतिवर्ष झूँसी जाते। होलीसे 'अक्षय-तृतीया' पर्यन्त वृन्दावन रहते। पुनः रामवन चले गये। जन्माष्टमीपर पुनः वृन्दावन और इसके पश्चात् गोरखपुर। इस प्रकार पूरे वर्ष भ्रमण करते ही रहते। कहीं दो-तीन महीनेसे अधिक टिकते नहीं।

पक्षाघातसे आक्रान्त

एक तो भ्रमणशीलताका परिश्रम, दूसरे खान-पानकी उपेक्षा और

अक्खड़पनका स्वभाव। शरीरके प्रति उदासीनता और देखभालके अभावसे देहकी रोगोंसे प्रतिरोधात्मक शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही थी। किन्तु चक्रजीका ध्यान उस ओर जाता ही नहीं था। बहुधा वे अपने प्रबल मनोयोग और अपनी होम्योपैथी दवाएँ एवं छोटी-मोटी देशी-दवाओंके उपचारसे ठीक हो जाते थे। ये बहुत बार कहा करते— प्रारब्धवश रोग जैसे बलात् आता है वैसे ही प्रारब्ध समाप्त होनेपर चला भी जाता है। बात तो ठीक है, किन्तु इस प्रकार रोग आने और जानेके बीच देहको विश्राम, पथ्य, खुराक और देखभालकी आवश्यकता होती है। उसके अभावमें देहमें एक स्थायी कमजोरी आ जाती है, जो युवावस्थाके कारण मनुष्यको अनुभव नहीं होती है। होती भी है तो इतनी नहीं कि ध्यान देना आवश्यक माना जाय। यही कमजोरी आयु ढलनेपर सारी उपेक्षाओंका बदला लेने लगती है। श्रीचक्रजीके सम्बन्धमें सदा ही ये बातें रहीं।

वर्ष 1958 ई० के प्रारम्भमें प्रयाग कुम्भसे लौटकर चक्रजी रामवन आये और सम्पादन-कार्यमें लग गये। फिर वृन्दावन गये और वहाँसे गर्मीके दिनोंमें झूँसी चले गये। वहाँ न जाने कैसे अनायास सिरकी कोई छोटी नस फट गयी और बायीं ओरसे पूरे चेहरेपर कानों तकके हिस्सेमें पक्षाघात हो गया। ज्वर बना ही रहता था और सिरमें असह्य पीड़ा होती थी तनिक भी हिलने-डुलनेमें। स्वयं उठने-बैठनेमें असमर्थ हो गये।

उन दिनों 'संकीर्तन भवन' झूँसीके संकीर्तन पण्डालके सामने था। वह एक चारदीवारीसे घिरी आमोंकी बगीचीमें था। उसके अगले भागमें एक छोटा मंदिर और दो कमरे थे। अब तो वह सब संकीर्तन-भवनके विस्तारमें लुप्त हो गया है। चक्रजी उन्हीं दो कमरोंमेंसे एकमें ठहरे थे। गर्मीके दिन थे। रातमें इनकी चारपाई खुले आकाशके नीचे थी। दो संस्कृतके विद्यार्थी जो संकीर्तन भवनमें रहते थे, इनकी देखभाल भी करते थे।

एक दिन अचानक इनके ऊपर दो-चार बूँदें पड़ी थीं। कुछ सोचें, तब

तक एक विद्यार्थी दौड़कर आया और इनकी चारपाई खींचकर इन्हें अन्दर कक्षमें पहुँचाया। वह सामने संकीर्तन-पण्डालमें सोया करता था।

श्रीचक्रजीने उसकी तत्परता देखकर स्नेहपूर्वक पूछा— तुम सोये नहीं थे? अब तो रातके एक बजे होंगे।

'मैं तो कबका सोया था, किन्तु खपरैलपर बूँद पड़नेका शब्द होनेसे जाग गया। आप खुलेमें हैं, अतः आपको उठाने दौड़ा आया। संकीर्तन पण्डाल खूब ऊँचा है। खपरैलोंसे छाया है। उसपर कठिनाईसे चार-छः बूँदें पड़ी होंगी, किन्तु उस छात्रको कितनी सतर्क सावधान नींद आयी होगी। चक्रजीने सोचा— इस बालककी नींद उस प्रथम बूँदोंसे टूट गयी। उसकी कर्त्तव्य-परायणतापर बहुत प्रसन्न हुए।

उपचारसे लाभ न होता देख ये लखनऊमें मिट्ठनलालजीके घर चले गये, वहाँ इनका इलाज अच्छी तरह चलने लगा। धीरे-धीरे धीमी गतिसे लाभ होने लगा। दैनिक पूजा-पाठका क्रम और सत्संग चलता ही रहता।

हक मारनेका कुफल

एक दिन चक्रजीने प्रारब्धकी चर्चा चलनेपर मिट्ठनलालजीसे कहा— अनेक बार भले और समझदार लोग भी भूलें करते हैं। उन्हें अपनी भूल ही नहीं लगती। मैंने आयुर्वेदके 'निघण्टु' से ग्रामीण वनस्पतियोंका थोड़ा अध्ययन किया। आस-पासके ग्रामीण लोग आते थे तो उन्हें औषधि बता देता था। एक दिन गाँवके संभ्रान्त परिवारके ठाकुर साहब आये। उन्हें शौचके मार्गसे रक्त आता था। बहुत अधिक जलन होती थी। उन्होंने बताया कि मैंने आस-पासके वैद्यों और काशीके श्रीसत्यनारायण शास्त्रीकी भी औषधि ली, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

मैंने मनमें कहा—जब इतने बड़े चिकित्सक कुछ नहीं कर सके तो मैं कौन-सा तीर मार सकता हूँ?

स्वभावतः मैं बहुत गम्भीर हो गया।

सोचने लगा—अन्ततः इनमें रोगका ऐसा क्या कारण है? उस तक चिकित्सकोंकी दृष्टि क्यों नहीं जा रही?

कुछ क्षण सोचकर मैंने उनसे पूछा — क्या आपने किसीका हक छीना या दबा लिया है? और इससे उसे बहुत कष्ट है? आपकी ओरसे किसीके चित्तमें जलन है? द्वेषवश वह जलन होनी चाहिये।

'मैं किसीका हक क्यों छीनूँगा? मुझे भगवान्‌ने सब कुछ दिया है'—उन्होंने तुरन्त प्रतिवाद किया। 'तनिक गम्भीर होकर विचार करें।'

मैंने उनसे अनुरोध किया— इसका आपके रोगसे सम्बन्ध है।

समीप बैठे लोग कह रहे थे कि ये तो बड़े भले और ईमानदार व्यक्ति हैं; किन्तु सोचकर वही सज्जन बोले—मेरी एक विधवा भाभी हैं। वे अपने मायकेमें रहती हैं। मुझसे केवल वही जलती हैं— लगता है कि उन्होंने ही कोई मंत्र या टोटका कराया है।

'आपने उनका हक दे दिया है?' मैंने सीधे-सीधे पूछ लिया।

'वे हमारे यहाँ रहें तो मैं उन्हें कोई कष्ट नहीं होने दूँगा'— वे बोलते रहे —'किन्तु वे मायकेमें रहेगीं तो उन्हें जो कुछ दिया जायगा उसे वे अपने भाई-भतीजोंको दे देंगी।

मैंने उनकी आर्थिक स्थिति पूछताछ कर उनसे कहा— आपको स्वस्थ होना हो तो अपनी भाभीको सौ रुपया मनीऑर्डरसे भेजा करें। उनका जी जलता रहेगा तो आपका रक्त और जलन दूर नहीं होगी। समझानेपर वे मान गये। दो-तीन महीने पीछे फिर आये और बोले— अब दवा दे दीजिये। मेरा रोग रुपयेमें चार आना शेष बचा है।

मैंने पूछा—आप अपनी भाभीको क्या भेजते हैं?

'पच्चीस रुपया महीना। अकेली स्त्रीके लिये इतना बहुत है'—उन्होंने मुझे समझाना चाहा।

'आपकी दवा ही यह है कि कमसे कम इतना ही और भेजा कीजिये।'

मेरे ये कहनेपर वे चले गये और फिर कभी लौटकर नहीं आये। अन्य लोगोंसे ज्ञात हो गया कि वे ठीक हो गये हैं।

यह घटना इस बातका प्रमाण है कि आपके लोक-व्यवहारके धर्माधर्मका आपके स्थूल शरीरपर भी प्रभाव पड़ता है। तब आप कैसे आशा करते हैं कि उसका आपके चित्तपर प्रभाव नहीं पड़ेगा? आपके लोक-निर्वाहमें यह दृष्टि आवश्यक है कि जानबूझकर या प्रमादवश आपके व्यवहारसे किसी दूसरेको पीड़ा न हो, विशेषतः कोई साधनहीन दुर्बल आपके द्वारा पीड़ित या उद्विग्न न हो।

भगवान्‌को आप अनाथनाथ, अशरण-शरण, दीनबन्धु कहते हो। उसके ऐसे बन्धुओंको आपसे कष्ट होगा तो क्या वह आपसे प्रसन्न हो सकेगा?

कन्हाईकी चापल्य-लीला

अभी इन्हीं श्रीमिट्ठन लालजीके यहाँ ही रह रहे थे। व्रज, अवध अथवा चित्रकूट आदि धामोंको छोड़कर अन्यत्र एक महीना भी रहना इन्हें बोझ-सा भारी लगने लगता था (गोरखपुर तथा रामवनको छोड़कर) एक दिन–रातको सोनेसे पहले सोच रहे थे कि यह दर्द थोड़ा ठीक हो तो वृन्दावन चला जाऊँ। वृन्दावनका स्मरण इनके रोम-रोमको पुलकित कर देता। व्रजका वियोग हृदयको झकझोर देता। अपने घर पहुँचनेकी त्वरामें गुनगुनाने लगे—

चल सखे! तू वहाँ, प्रेम के लिये

चल सखे! तू वहाँ, स्थान तेरा जहाँ,
सूर्यजा तीरपर, नीपके मूलमें—
बाँसुरी कर लिये, त्रिभंगी छटा।
श्यामसुन्दर खड़ा, बाट है जोहता।।
वह पिच्छसे केश हैं सजा,
तिलक भालपर, बंकिमा भौंहकी।

कम्बु कण्ठमें कौस्तुभ छटा,
उर विशालपर भासती भृगुलता।।
श्री स्वयं कौस्तुभी स्वर्ण रोमावली,
नाभि-हृद मोहिनी उदर रेखा त्रयी।
सिंह कटिपर कसा पीत पट देख ले,
चरण पंकज अहो शम्भुका मन बसे।।
गूँजता वेणुरव झूमती हैं दिशा,
बोलती बाँसुरी–तू भटक क्यों रहा?
विश्वके भोग सब जल रहे तापसे,
स्नेहसम्बन्ध सब, स्वार्थके पापसे।।
ग्रस्त हैं, यदि इन्हें पा सके पूर्ण भी–
अंकमें अहि उठा, शान्ति कैसी भला?
प्रज्वलित भोग सब तापसे शापसे,
तू भटकता यहाँ बस यही पाप है।।
गूँजती बाँसुरी, झर रही है सुधा,
तू भटक मत सखे! भोग-भ्रममें मुधा।
चल सखे! तू वहाँ भ्रान्तिका त्याग कर,
चल सखे! तू वहाँ यह भटकना मिटे।।
पद्‌मजाक्ष स्वयं स्नेह-दृगमें भरे,
चल सखे! देख ले बाट है जोहता
चल सखे! तू वहाँ प्रीतिको मानके,
चल सखे! तू वहाँ शान्तिके लिये।।

तभी उन्हें कन्हाईकी ललित लीलाएँ भी स्मरण आने लगीं। कटिमें नन्हें घुँघरुओंवाली मंजुल मेखला, चरणोंमें नूपुर, करोंमें पतले कंकण, कंठमें मुक्ताकी

छोटी-सी माला, भालपर कज्जल बिन्दु। दिगम्बर दो शिशु ब्रजराजके आंगनमें एक दूसरेके सामने भूमिपर बैठ गये हैं। एक इन्दीवर सुन्दर और दूसरा गौरसुन्दर। दोनों अपनी क्रीड़ामें तल्लीन। मैया कबसे खड़ी-खड़ी इन्हें देख रही है। इन्हें इसका तनिक भी पता नहीं। उल्लासको न रोककर वह हँस पड़ी, तब श्यामसुन्दरने मुख घुमाकर उसकी ओर देखा और झपट कर बड़े भाईके कण्ठमें दोनों हाथ डालकर हँसता हुआ लिपट गया है संकोचसे।

'अब बस भैया! सो जाने दे। अभी इतनी देर हो गयी तो सबेरे समय–पर जाग नहीं पाऊँगा'— चक्रजीने मन-ही-मन अनुजसे मनुहार की और सोनेका प्रयास करने लगे। अलसाई आँखोंमें नींद तो भरी ही थी, सो गये। प्रातः तीन बजे नित्यकर्मसे निवृत हो स्नान करने लगे तो लगा—देहपर महीन बालू चिपकी है। इस ओर अधिक ध्यान न देकर स्नान किया। पाठ करके भुवनभास्करको अर्घ्य देकर कमरेमें आये। पलंगपर बैठने ही जा रहे थे; तब तक श्रीमिट्ठनलालजी आ गये। उनकी दृष्टि बिस्तरकी चादर ठीक करनेके लिये पलंगपर गयी तो अस्त-व्यस्त बिछी चादरपर फैली बालूकी ओर गयी—यहाँ बालू........बालू कैसे आ गयी? उनके मुखसे निकला।

ठीक इसी समय चक्रजी भी पलंगपर बैठे और अनायास उनका हाथ भी बिस्तरपर टिका। श्रीमिट्ठन लालजीके मुखसे 'बालू' शब्द सुनकर ही उनका ध्यान उधर गया था। देखा—सचमुच चादरपर बहुत-सी बालू फैली पड़ी है।

'यह बालू कहाँसे आ गयी?' अब मिट्ठनलालजीने पुनः प्रश्न किया।

श्रीचक्रजीने बालू समेटते हुए मुट्ठीमें भरकर मिट्ठनलालजीको देते हुए पूछा— जरा देखिये, यह बालू गोमतीकी है क्या?

'ठहरिये, अभी पता लग जायगा'— कहते हुए कक्षसे बाहर निकले।

उन्होंने अपने घरके ही एक व्यक्तिको भेजकर गोमतीकी बालू मँगवायी और उसे लेकर पुनः कक्षमें आये।

चक्रजीके सामने दोनों हाथोंकी मुट्ठियाँ खोलते हुए उन्होंने कहा—नहीं– यह बालू गोमतीकी नहीं है। आप स्वयं मिलान करके देख लीजिये।

एक नज़र उनके हाथोंपर डालते हुए चक्रजी बोले— हाँ, यह गोमतीकी नहीं, यमुनाकी बालू है।

'यमुना की... यमुनाकी बालू लखनऊमें कैसे आ गयी? आश्चर्य और जिज्ञासा भरी दृष्टिसे मिट्ठन लालजीने चक्रजीकी ओर देखा। अब उन्हें बताना ही पड़ा। चक्रजीने कहा— भाई! रातको पहले तो सो नहीं सका, सोया भी तो स्वप्न देखने लगा— व्रजके नन्द गाँवके छोटे-छोटे शिशु कालिन्दी-पुलिन-पर खेलने आ गये हैं। तनिक प्रभातका समय है। श्यामसुन्दरकी अलकें लहरा रही हैं। वह अपने छोटे हाथोंकी नन्हीं अञ्जलीमें कोमल बालुका भरकर दाऊपर डालता जा रहा है। कभी सखाओंपर उछाल कर हँस रहा है। इसे यमुनाके पानीमें छप-छप करनेकी धुन चढ़ी है। पानीमें छप-छप करते एक-दूसरेका हाथ पकड़े नाचते, क्रीड़ा करते, जल उछालते, दौड़ते, गिरते-पड़ते इधर-उधर जलमें दौड़ रहे हैं। घुटनोंसे ऊपर तक इनके चरण भीग गये हैं। मैंने भी कन्हाईपर छपाछप दोनों हाथोंसे जल उछाला। बड़ा आनन्द आया सबको। इतनेमें नन्हीं-नन्हीं फुहियाँ बरसने लगीं। कन्हाईकी अलकोंमें जलके ये बरसते सीकर हीरककणों-से उलझते जा रहे हैं। वह मुझे नन्हें करोंसे पकड़ कर जलमें आगे ले जाने लगा, तब मैं तटकी ओर भागा; जिससे कनूँ अधिक जलमें न जाये। जैसे ही तटपर बालूमें मैंने पैर बढ़ाये कि कन्हाईने पीछे कमरमें दोनों बाँहें डालकर खींच लिया और मेरा भीगा शरीर बालूपर गिर पड़ा। बस, उसी समय मेरी आँख खुल गयी। अभी स्नान करते समय भी शरीरपर बालू चिपकी थी। बालू इस नटखटने प्रत्यक्ष कर दी— हँसते हुए चक्रजीने कहा।

श्रीमिट्ठनलालजी इनकी सरलता, सहजता और वृन्दावनी भावमें

प्रीति-रीतिकी विलक्षणता देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने भरे नेत्रोंसे चक्रजीकी ओर देखा और झुककर उनके चरणोंपर अपना सिर रख दिया। कण्ठ अवरुद्ध हो जानेसे कुछ बोल नहीं पाये।

चक्रजी ठीक होनेपर वृन्दावन आ गये। वहाँसे 'मानवता-अंक' के सम्पादनके लिये गोरखपुर चले गये।

कुम्भ : अष्टग्रही-भयका निवारण

वर्ष 1962 ई० में पं० नेहरुके प्रधानमंत्रित्व कालमें जनवरी मासके प्रारम्भमें ही माघके कुम्भ मेलेमें प्रयाग आ गये। उस वर्ष ज्योतिषियोंकी गणनाके अनुसार अष्टग्रहीका योग था। लोगोंमें इससे भय, आतंक और निराशाका वातावरण था। स्थान-स्थानपर अष्टग्रह शान्तिके लिये हवन-अनुष्ठान चल रहे थे। सरकारकी ओरसे कुम्भ मेलेमें घोषणाएँ हो रही थीं कि सब कुछ सामान्य है। सभी सहज रूपसे स्नान करें और व्यवस्थामें सहयोग दें, फिर भी लोगोंकी भ्रान्तियोंका निवारण नहीं हो पा रहा था।

कुम्भमें गीताप्रेसके शिविरमें श्रीचक्रजी ठहरे थे। कुम्भके सरकारी संचालककी ओरसे सन्देश आया कि बात कुछ भी नहीं है, पर अष्टग्रहीको लेकर लोगोंमें भय छाया है कि कोई अमंगल-विप्लव आदि न हो जाय। कृपया आप अपने किसी व्यक्तिको हमारे माइकपर बोलनेको भेज दीजिये; जो जन-साधारणकी भ्रान्तिको भय-मुक्त कर सके। इस कार्यके लिये श्रीचक्रजीको भेजा गया।

श्रीचक्रजीने कहना प्रारम्भ किया — जीवनका ठीक सदुपयोग भगवान्‌के स्मरणमें है। यदि आप व्रजराजकुमारको अपना मानते हैं अथवा उस चिर-चपलको अपना बनाना चाहते हैं तो निद्रा और जागरणकी सन्धिके इस अल्प समयको ही श्रीकृष्ण स्मरणमें लगानेका अभ्यास कीजिये। इस नगण्य समयमें श्रीकृष्णके सान्निध्यकी समृति मनमें जगाइये।

आपका स्वरूप यह कि आप कन्हाईके हैं और कन्हाई आपका। जब दृढ़ता, निष्ठापूर्वक श्रीकृष्ण आपका हो गया तो यह भी उसी दृढ़तासे स्वीकार करता है, अपनाकर छोड़ता नहीं। अब कन्हाईके इस स्वरूपकी बात तो छोड़िये— इसके सम्बन्धोंको ही एक बार सोच लीजिये।

"जिनसे त्रिभुवनके प्राणी सदा डरते रहते हैं—वे यमराज श्रीकृष्णके सगे साले हैं या नहीं? यह तो हुई मृत्युकी बात और ग्रह–अरिष्टों सबसे बलवान् सशक्त शनिदेव भी तो उनके श्यालक (साले) ही तो हैं। शनिके पिता सूर्यदेव हैं। इनकी पुत्री यमुना भी चतुर्थ पटरानी हैं— श्रीकृष्णकी। रमाके नाते चन्द्रमा भी साले हैं और बुध हुए श्यालक-पुत्र। रुक्मिणी (रमा)-के साथ सत्यभामाजी भी तो पटरानी हैं तो भौम (मंगल) इनका पुत्र है। शुक्र और बृहस्पति तो सौम्य ग्रह हैं।

अब रहे राहु-केतु, यह दोनों तो श्रीकृष्णके चक्रके स्मरणसे ही सदा भयभीत रहनेवाले हैं। इनका चक्र कहीं खो तो नहीं गया है? ऐसी कौन सी विपत्ति है जो चक्रके तेजको सह सके। अतः आप कन्हाईके अपनत्वको जाग्रत् कीजिये और अरिष्ट एवं कालके अनिष्टसे सदा-सदाको अभय हो जाइये।

आप कन्हाईके हैं, जब आपको यह निश्चय हो जायगा, तब दो-तीन बातें तो जीवनमें अवश्य ही आ जायँगी— आप सहज निर्भय हो जायँगे। आपकी चिन्ता एवं दैन्य दूर हो जायँगे और आपके लिये श्रीकृष्णकी स्मृति स्वाभाविक हो जायगी। मुझे तो नित्य सत्य कभी भी विस्मृत नहीं होता कि कन्हाई मेरा है और मैं कन्हाईका हूँ।

इस दिव्य संदेशसे सभीको असीम आनन्द, आश्वासन एवं धैर्य मिला। दूसरे दिन सरकारी कुम्भ-मेला संचालक महोदय सराहना करते हुए निवेदन करने आये पुनः बोलनेके लिये। चक्रजीने सहजतासे कह दिया— भैया, मैंने तो अपने संचालकका आदेश पालन किया है। मैं कोई वक्ता अथवा प्रवचनकर्ता

नहीं हूँ। मैं तो सदा श्रोता ही बना रहना चाहता हूँ। वे सदा कहते— व्याख्यान और भाषणसे मेरा दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं है।

सहज-निरपेक्षता

कुम्भ मेलेमें इसी प्रवचनको सुनकर लखनऊसे आया एक व्यक्ति चक्रजीके समीप आया और बोला — मैं आपसे कुछ बात करना चाहता हूँ।

चक्रजी उसे लेकर अपने शिविरमें आ गये। यथा स्थान बैठ जानेपर उसने बताया—पिछले जूनमें मैं बद्रीनाथ गया था। इतनेमें वहाँके स्थायी निवासियोंको चर्चा करते सुना— हमारे अहोभाग्य कि आज नारायण स्वामीके दर्शन होंगे। सब समूह बनाकर पुष्पादि सामग्री लेकर प्रणामके लिये दूर पहाड़ीपर ऊपरकी ओर देखने लगे।

मुझे भी जिज्ञासा हुई। लोगोंने पूछा कि क्या बात है? उन लोगोंने बताया कि बहुत वर्षोंसे एक दिव्य तेजोमय महात्मा नारायण पर्वतकी गुफामें रहते हैं। वे क्या खाते-पीते, पहनते हैं, किसीको ज्ञात नहीं है। वर्ष, दो वर्षमें या कई वर्ष बाद जब भी उनकी इच्छा हो— वे गुफासे निकलकर श्रीबद्रीनाथजीके दर्शन करने आते हैं। वे किसीसे कुछ स्वीकार नहीं करते, सब दूरसे प्रणाम करते हैं। घंटे, दो घंटे बाद लौट जाते हैं।

जब श्रीनारायण स्वामी नीचे आकर तप्त कुण्डमें स्नान करके पासकी शिलापर विराजे तो मैं भी उन्हें प्रणाम कर थोड़ी दूर खड़ा हो गया। उनके शरीरकी त्वचा हाथीके चमड़े-जैसी हो गयी थी और वे दिगम्बर थे। संकेतसे उन्होंने मुझे बुलाया। मैं समझ नहीं सका। इधर-उधर देखा। किसे अपना अनुग्रह-भाजन बनाकर बुला रहे हैं? जब पुनः संकेत किया तो मैं सहमते हुए हाथ जोड़कर समीप गया। तनिक मुस्कराते हुए उन्होंने कहा— तुम लखनऊसे आ रहे हो? मैंने स्वीकृतिमें सिर हिला दिया।

'तुम कुम्भमें जाओगे इस वर्ष?' 'महाराज! मैं तो नहीं जा सकूँगा'—

मैंने कहा। 'नहीं, ना मत कहो—तुम अवश्य जाओगे'— उन्होंने कहा— सुनो! एक बात कहनी है तुमसे। कुम्भमें गीताप्रेसके शिविरमें एक व्यक्ति है, जो सफेद धोती पहनता है, आधी ओढ़ लेता है। आपकी आकृति बताकर नाम बताया— सुदर्शन सिंह, उनसे मिलकर कहना—मैंने बहुत स्नेहपूर्वक उनका स्मरण किया है।

मैंने निवेदन किया—इतने बड़े जन-समूहमें मैं उन्हें कैसे ढूँढ़ पाऊँगा? वे बोले— तुम ढूँढ़ लोगे उन्हें, चिन्ता मत करो। सहज ही मिल जायँगे वे।

सब कुछ सुनकर चक्रजीने कहा—ठीक है, तुमने अपनी बात कह दी और उनका सन्देश दे दिया। अब घर जाओ, श्रीकृष्णका स्मरण ही जीवनका सार है।

बादमें यह चर्चा चलनेपर किसीने पूछा—बाबा! क्या आप नारायण स्वामीसे मिले?

'मैं क्यों मिलता। उन्होंने ही तो मुझसे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की थी। मुझे तो अपने कन्हाईके अतिरिक्त न किसीसे बात करनेकी, न सोचनेका अवकाश है, न किसीसे मिलनेकी इच्छा।' इसी चर्चाके साथ उन्होंने एक संस्मरण सुनाया—एक बार परमेश्वर लाल गोयन्दकाने मुझसे बड़ी विनम्रतासे निवेदन किया— आपको कभी किसी वस्तुकी आवश्यकता हो, तो एक कार्ड मुझे डाल देनेकी कृपा करें।

'आपके स्नेह और उदारताका आभार' मैंने कह दिया।

'मैं तो सच्चे हृदयसे प्रार्थना कर रहा हूँ।' उन्होंने फिर आग्रह किया।

'इसीलिये तो मैं आपके प्रति आभार प्रकट कर रहा हूँ। अन्यथा मैं कहा करता हूँ कि यदि आपको मुझपर उपकार करना है तो उसे अपनी जेबमें ही रहने दीजिये। आपको उसकी भी आवश्यकता पड़ सकती है।'

'आप तो अन्यथा मान गये' वे खिन्न हो गये, तब मैंने उनसे पूछा— क्या आप यह समझते हैं कि कन्हाई कंगाल हो गया? लक्ष्मीने उसे तलाक

दे दिया? अथवा उसकी सर्वज्ञता नष्ट हो गयी? या फिर इस समय वह अनुदार और असमर्थ हो गया है?

'इनमेंसे एक भी बात सोचना मैं अपराध मानता हूँ।' उन्होंने अपने कानोंपर हाथ रख लिये।

'जब कन्हाई सर्वज्ञ है, परमोदार है और समर्थ भी है, तब मुझे किसीको कार्ड लिखना पड़े किसी आवश्यकताके लिये, ऐसा अवसर वह क्या आने देगा?' इस बातका भला उनके पास क्या उत्तर हो सकता था?

लेकिन मुझे एक परिचितने निरुत्तर कर दिया। वे कुछ उपहार लाये थे। मैंने कह दिया— मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। वे बोले—आपको तो कभी भी आवश्यकता नहीं होगी। आपको आवश्यकता हो, तब मुझे अवसर मिले, तब तो मिल चुका मुझे अवसर जीवनमें, अर्थात् कभी नहीं मिल सकेगा मुझे।

'आवश्यकता तो मुझे है, मैं अपनी प्रसन्नता और कृतार्थताके लिये यह कर रहा हूँ। अब यह तो आपकी कृपा और अनुकम्पापर निर्भर है कि मेरी कृतार्थताके लिये आवश्यकता न होनेपर भी आप इसे स्वीकार कर लें। उनके प्रेमपरवश हो, मुझे स्वीकार करना ही पड़ा।

पं० रामदत्तजीसे भगवच्चर्चा

श्रीचक्रजी सन् 1961 ई० में जन्माष्टमीपर वृन्दावन उड़िया बाबाके आश्रममें ही थे। इन्हीं दिनों एटासे पं० रामदत्तजी वैद्य वृन्दावन स्वामी अखण्डानन्दजीके यहाँ आये हुए थे। श्यामसुन्दरकी लीलास्थलीके प्रति उनका आकर्षण बार-बार वृन्दावन खींच लाता था। ये सद्गृहस्थ एवं संस्कृतके विद्वान् थे और भारतके प्रसिद्ध विद्वान् एवं संत श्रीअच्युत मुनिजी महाराजके शिष्य थे। बुलन्दशहर जिलेके अनूपशहर और कर्णवासके बीच भेरिया (भृगुक्षेत्र) नामक स्थानपर पहले बड़े अच्छे-अच्छे महात्मा निवास करते थे।

श्रीअच्युतमुनिजी वहीं नौकापर रहा करते और सब शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। कभी-कभी श्रीउग्रानन्दजी, बंगालीबाबा, श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज एवं श्रीहरिबाबाजी महाराज इनके यहाँ आया करते और ये वेदान्त सम्बन्धी गूढ़ प्रश्नोंका समाधान करते थे।

वृन्दावनमें उड़िया बाबा आश्रममें जे०जे० मंदिरके प्रांगणमें एक ओर बने कमरोंमें स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज रहा करते और प्रातः 8 बजेसे अपने कक्षमें माण्डूक्योपनिषद् तथा ईशावास्योपनिषद्पर क्रमशः प्रवचन करते थे। उस कक्षमें प्रातः गिने-चुने व्यक्ति ही सत्संगमें रहते। श्रीचक्रजी उन दिनों स्वामीजीके प्रवचनोंके आधारपर उन्हींके नामसे पुस्तकें लिखते, अतः प्रवचनके समय वहाँ बैठकर कुछ नोट्स, संकेत-वाक्य लिख लिया करते थे।

पं० रामदत्तजी एवं श्रीचक्रजी नित्य ही एक-दूसरेको देखकर हाथ जोड़कर किंचित् स्मितके साथ सिर झुका लिया करते प्रवचनके आरम्भमें और प्रवचनके अंतमें। श्रीचक्रजी मातृमण्डलमें प्रवेश करते ही दाहिनी ओर बने नाहर सिंहजी वाले छोटे कमरेमें रहते थे और पण्डितजी वहीं पत्नी-पुत्री सहित नवनिर्मित छः कमरोंमेंसे एकमें ठहरे हुए थे।

एक दिन प्रवचनसे उठनेके बाद जब श्रीपण्डितजीने श्रीचक्रजीको सिर झुकाया तो चक्रजीने हाथ जोड़ते हुए नम्रतापूर्वक कहा— सम्भवतः आपको ज्ञात नहीं है कि यह शरीर क्षत्रिय कुलोद्भव है। आप ब्राह्मण पण्डितवर्य हैं। अतः मेरा ही प्रणाम करना उचित है। चक्रजीने अपने शरीरको इंगित करते हुए कहा।

पण्डितजीने साथ चलते हुए सविनय कहा— ज्ञानका एक स्तर ऐसा भी होता है, जहाँ पहुँचकर देह गौण हो जाती है। वैसे भी मैं आपको महाराजश्री (स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज) -से अभिन्न मानता हूँ।

दोनों ही महाराजश्रीके कक्षसे निकलकर शंकरजीके मंदिरमें आ गये

थे। प्रणाम करके खड़े होते ही पण्डितजीने कहा— मैं कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। उपयुक्त समय बतानेकी कृपा करें, मैं समयपर उपस्थित हो जाऊँगा।

'अभी पूछ लीजिये। जितना समझता हूँ, वह निवेदन कर दूँगा।'

'मैं चित्तवृत्तिको निर्विशेष अद्वय ब्रह्ममें ही सुस्थिर रखना चाहता हूँ, पर यह अटक जाती है सगुण स्वरूपके मन्दस्मित भरे मुखारविन्दपर। क्यों?'

'यह तो अच्छा लक्षण है'—चक्रजीने कहा। 'कैसे?' श्रीपण्डितजीने मुखसे कुछ नहीं कहा, केवल दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा। उनके नेत्रोंमें प्रश्न था।

'तत्त्व एक ही है, यह तो आप जानते-समझते हैं। यह भी जानते हैं कि मूल तत्त्व ही निर्गुण-सगुण उभय है।'

पण्डितजीने सिर हिलाकर स्वीकृति दी, किन्तु उनका समाधान अभी भी नहीं हुआ था। यह उनके चेहरेसे स्पष्ट परिलक्षित होता था। **'श्रीमद्भागवत- का... परमहंसानां मुनीनां अमलात्मनाम'** यह श्लोक स्मरण कीजिये, तनिक। आप विद्वान् ही नहीं, योगी भी हैं। मैं समझता हूँ कि आपको कुछ समझानेकी आवश्यकता नहीं है; केवल संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि ज्ञानाग्निमें जिनके पाप-पुण्य भस्म हो चुके हैं, जिनकी चित्तवृति समाधि और तुरीयावस्थासे ऊपर उठकर अपने स्वरूपमें स्थित हो चुकी है, उन्हीं अमलात्मा मुनिगणोंके हृदयको यह सगुण-साकार त्रिभुवन-सुन्दर अपनी भुवन-मोहिनी मुस्कान द्वारा बलात् आकर्षित करके उसपर अपना अधिकार जमा लेता है'—श्रीचक्रजीने हँसकर कहा—अब आपका हृदय-सिंहासन उसे पसन्द आ गया तो फिर किसका क्या वश है?

श्रीपण्डितजीकी देह यकायक पुलकित हुई और उन्होंने श्रीचक्रजीको प्रणाम करनेको सिर झुकाया।

'अब आप यह क्या अनर्थ करते हैं'—श्रीचक्रजी हँसते हुए उठ खड़े हुए—'मैंने तो केवल शास्त्र-वाक्यकी ओर संकेत किया है कि रघुनाथजीने अब स्वयं आपको अपना लिया है।' श्रीचक्रजी अपने कक्षकी ओर चल दिये। उन्हें ज्ञात था कि अभी पण्डितजीको सँभलनेमें कुछ मिनट लगेंगे। वर्ष 1962 व 1963 की होली एवं श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपर पुनः दोनों मिलते रहे और समय-समयपर सत्संग-चर्चा चलती रहती। इसी वर्षके आश्विन माहमें पण्डित श्रीरामदत्तजी वृन्दावनसे काशीवासके लिये अपनी पत्नी एवं पुत्री सहित वाराणसी आनन्द काननमें चले गये। वहीं फाल्गुन कृष्ण एकादशी सन् 1965 में उनका शरीर पूरा हो गया।

समाधि-उत्सुकता

वृन्दावनसे चलकर चक्रजी रामवन आये। मानसमणिका सम्पादन करने लगे, किन्तु एक बात चित्तमें उठकर चंचल कर देती थी कि वृन्दावनमें माण्डूक्योपनिषद् एवं ईशावास्योपनिषद्पर प्रवचन करते समय स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती अनेक बार 'समाधि' की चर्चा करते थे। उसके परमानन्द निर्विशेष तत्त्वमें परिनिष्ठित रहनेके आनन्दका प्रतिपादन करते। उस समय कई लोग चक्रजीके पास आये कि आप हमें इस मार्गपर चलनेका निर्देश प्रदान करें। उन्होंने स्पष्ट कह दिया— यह सब मैं नहीं जानता। तुम्हें किसी तत्त्वदर्शी योगीका शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिये जो योगकी सभी भूमिकाओंको क्रमशः प्राप्त करके समाधि तक पहुँचे हों इस सम्बन्धमें वे ज्ञाननिष्ठ श्रीगणेशानन्दजी अवधूतका नाम लिया करते थे। समाधिमें समस्त वृत्तियाँ शान्त होकर अचिन्त्यके अस्तित्वमें विलीन हो जाती हैं। तब त्रिगुणातीत ब्रह्मात्मैक्यबोध स्वरूप चिद्घन आनन्द ही रह जाता है।

इस समाधिकी बात बार-बार मनमें उठ रही थी और उठ रही थी इसके साथ ही उसे प्राप्त करनेकी—उसके अनुभव करनेकी उत्सुकता भी।

इसी धुनमें रामवनसे चित्रकूट चले आये और पैदल यात्रासे कोटितीर्थ पहुँचे। वहीं झरनेपर स्नान-पूजनसे निवृत्त होकर देवांगना होते हुए शिखरपर ऊपर-ही-ऊपर होकर पहुँचे उस विशाल वट-वृक्षके नीचे जहाँ एक-दो फूसकी कच्ची कुटियाएँ थीं, जिनमें विरक्त जटाधारी साधु रहते थे। शान्त एकान्त सुरम्य वातावरणमें मन पुलकित हो उठा। वट-वृक्षसे सटी अर्ध आच्छादित शून्य कुटियामें आसन जमाया। अपने कनूँके समक्ष बालभोगको सूखे मेवे रख दिये और अपने दुलारे अनुजसे बोले — कनूँ! तेरी समाधिकी बड़ी महिमा सुनी है और पढ़ी है। कैसी होती वह? दिखा दे न! आग्रह कर बैठे वह। दूसरे दिन नित्यकी पूजाके पश्चात् अपने अनुजको लाड़ प्यार-भरे सजल नयनोंसे निहारते रहे... निहारते रहे एक टक... बाह्य चेतना कब लुप्त हो गयी, कौन जाने? नेत्र आनन्दातिरेकसे बन्द हुए जा रहे थे बार-बार। सप्तम् भूमिका देखते-देखते पार हो गयी। निर्विशेष अद्वय ब्रह्म तत्त्व और समाधिमें अवस्थिति हो गयी। प्रहर, समय, दिन, रात कब आये और कब चले गये, कुछ भान नहीं। आनन्द-ही-आनन्द... स्वतः धीरे-धीरे बाह्य ज्ञान हुआ तो उठनेका प्रयास किया। पैरोंकी पालथी खोलने लगे—लगा कि पैर जकड़ गये हैं। हाथोंसे थोड़ी-सी मालिश की—लगा कि पैर देर तक बैठा रह गया। आनन्दका पारावार नहीं था। मंत्र-मुग्धसे दुलारते रहे कनूँको। अब चलना चाहिये। उठ खड़े हुए। उतरनेमें सीता-रसोई, हनुमान-धारा होते हुए चित्रकूट गये।

रामवन आकर बातचीतमें शारदा प्रसादजीसे ज्ञात हुआ कि वे पाँच दिन पश्चात् लौटे हैं। इन्हें आश्चर्य हुआ — एक दिन वहाँ रातको रहा। मध्याह्नको वहाँसे चल दिया। बीचके तीन दिन-रात कैसे और कहाँ गायब हो गये। चिन्ताहरण जंत्रीमें तिथि देखी। बात पक्की हो गयी। बार-बार इन्हें प्रातः पूजाके अवसरपर उसी आनन्दकी अनुभूति होती रहती और स्मृतिमें डूब जाते। दो-तीन दिन बाद स्मरण आया कि पैर उठते समय क्यों जकड़

गये थे? इतनी जकड़न तो नित्य नियम करते कभी नहीं होती थी। अचानक हँस पड़े— अरे........यह तो कन्हाईने समाधि लगवा दी थी। मैं तो वहाँ गया ही इस उद्देश्यसे था। आग्रह भी तो मैंने ही किया था अपने कनूँसे। तब इसने बता ही दिया— ले देख, ऐसी होती है समाधि ।

है तो अच्छी चीज, आनन्द भी बहुत आया, पर अपने कन्हाईसे अच्छा कुछ भी नहीं है। बस, इसे निहारते रहो......दुलारते रहो अपने प्राणधन नीलमणिको—

नित्य नूतन नन्दनन्दन!
अन्तरको हो जाने दो—
नव-नव भव्य भाव-भास्वर
निर्मल उज्ज्वल, त्वन्मय।
आविराविर्भव चिन्मय-यशोदातनय!!
प्राणमें, जीवनमें-मनमें
जगतमें, जनमें, मनमें भी
मेरे तुम रहो एकमात्र!
लोचन रहें—
तव छवि-सुधा पान-पात्र !!

श्रीहरिबाबाके साथ संकीर्तनमें सहयोग

सन् 1963 के प्रारम्भमें ही पंजाब चले गये। श्रीहरिबाबाजीके साथ संकीर्तनमें सहयोग करने लगे। संकीर्तनावतार हरिबाबाजीके संकीर्तनमें जैसे प्राण बसते थे। कीर्तनमें मण्डलाकार घूमते कि सभी आनन्द-विभोर हो जाते। एक-एक मीलसे घंटा-नाद एवं 'हरिबोल' की ध्वनि सुनायी पड़ती। भगवन्नामके प्रचारका यह पवित्र कार्य चक्रजीको अच्छा लगता था। हरिबाबाजी महाराज

ब्रह्मनिष्ठ थे— सातों भूमिकाएँ पार चुके थे, पर लोककल्याण और भक्तिका प्रसार करनेको संकीर्तन करते थे। जीवन-मुक्त महापुरुषोंकी रहनी थी। समयकी मर्यादा, गुरु-निष्ठा, पौरुषका प्रकाश, निन्दा सुनना ही नहीं, केवल गुण-दर्शन, दृढ़-संकल्प, नियम-पालनमें कठोर, अद्वैतनिष्ठाके साथ हृदयमें निरन्तर भक्तिकी उल्लसित रसधाराके मूर्तिमान् विग्रह थे। उत्तर भारतका विरला ही नगर होगा, जहाँ उन्होंने पावन नामके उद्घोषसे वातावरणको पवित्र न बनाया हो।

अमृतसरमें चक्रजी हरिचन्द डालडावालोंके यहाँ ठहरते थे। यहाँ चक्रजीसे श्रीचिम्मनलालजी शर्मा मिले। इन्होंने एक बहुत सुन्दर 'तुलसी मंदिर' बनवाया था। इस मन्दिरके सामने ही हरिनाम चबूतरा बनवाया, जिसमें करोड़ों भगवन्नाम सुरक्षित रखे हुए हैं। नित्य ही लोग इसकी परिक्रमा करते हैं। 'तुलसी मंदिर' में विशाल हाल भी है, जहाँ नित्य सत्संग होता है। ये जीविकाके लिये तेल एवं साबुनकी दलाली करते थे। बहुत सादा वेष, गर्मियोंमें धोती-कुर्ता, सर्दियोंमें ऊनी पाजामा-कुर्ता और सिरपर काली टोपी लगाते। कथा-सत्संग तथा संत-सेवासे इन्हें विशेष प्रेम था। स्वयं भी कथा करते। लोग इन्हें अपने घर बुलवाकर कथा करवाते, किन्तु लेते कुछ नहीं थे। कोई कथापर कुछ चढ़ाता तो वहीं छोड़ देते। प्रसादके दोनेमेंसे 'किनका' मुखमें डालते, शेष बाँट देते। दैन्यकी साक्षात् मूर्ति थे। अतिथि-सेवाका बड़ा चाव था। कोई समीप आकर बैठता तो तुरन्त हरिचर्चा प्रारम्भ कर देते, चाहे वह व्यक्ति कितनी भी देर बैठे, इनके मुखसे संसारी चर्चा निकलती ही नहीं थी। कोई दूसरी चर्चा करता भी तो यह घुमा-फिराकर बातको पुनः भगवत्-चर्चापर ले आते। जीवनचर्या ऐसी थी कि हरि-चर्चा करते अथवा मौन रहते। इनके तीन पुत्र थे। तीनों अपना-अपना स्वतंत्र कार्य करते। ये पति-पत्नी अलग रहते।

श्रीरामनवमीको बड़ी धूमधामसे मनाते थे। इसका प्रसाद दूर-दूर तक

लोगोंके हाथों तथा डाकसे प्रभु-प्रेमियोंके यहाँ भेजते थे। अमृतसरकी बहिन प्रमिला दीदी—जो वर्षोंसे वृन्दावन वास कर रही हैं, इन्होंने बताया—श्रीराम नवमीके महोत्सवमें हमने अपनी आँखोंसे केसरकी वर्षा होते देखी है। इन्होंने जीवनपर्यन्त सत्संग, उत्सव, संकीर्तन करते हुए हरिधामको प्रयाण किया। इनकी शवयात्रामें हजारों लोग सम्मिलित हुए थे अमृतसरके। मंदिरोंसे इनके लिये प्रसादी माला और चन्दन आया था।

लोगोंने स्थान-स्थानपर शवयात्रा रोककर आरती उतारी थी। श्मशान पहुँचनेमें पाँच घंटेका समय लगा। सभीके मुखसे **'मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी'**, का गान निकल रहा था। कारण कि जीवनभर ये इसी चौपाईका सम्पुट लगाकर रामायणका पारायण करते और स्वयं **'मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।।'** का गान करते ही रहते। इनका उपनाम ही 'मंगल भवन' पड़ गया। अमृतसरकी गलियोंमें जिधर भी निकल जाते एक ही ध्वनि सुनायी पड़ती। 'मंगल-भवन' आ गये। सभी इन्हें अपने घर पधारनेको आतुर-उत्सुक रहते। ये प्रायः वृन्दावन आते ही रहते। प्रतिदिन श्रीचक्रजीके समीप आकर अन्तरंग सत्संग-चर्चाका आनन्द लेते। कलाधारी बगीची आदि आश्रमोंमें भंडारेके अवसरपर सेवा करने भी जाते। श्री चक्रजीके पंजाब-प्रवासमें इनके द्वारा सत्संग कार्यक्रम होता था। चाकुलिया (बिहार) -में सम्पन्न हुए चैतन्य महाप्रभुकी पंचशती समारोहके लिये संग्रह किये गये नाम-लेखन कार्यमें सबसे प्रथम स्थान भारतमें पंजाबका रहा और यह चिम्मनलालजीके सहयोगसे ही सम्भव हुआ, जिसके प्रेरक श्रीचक्रजी ही थे।

श्रीचक्रजी पंजाबमें ही पूज्य हरिबाबाके साथ भगवन्नाम-प्रचारका कार्य कर रहे थे। उन्हीं दिनों पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका तार मिला तो गोरखपुर आ गये 'भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना अंक' के लिये सम्पादन-कार्यमें सहयोग देनेके लिये।

पृष्ठभूमि कन्हाईके भागवत-श्रवणकी

सन् 1965 में अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके कर-कमलों द्वारा शुकतीर्थमें वट-वृक्षके समीप शुकदेवजीके मंदिरमें श्रीकृष्णके श्रीविग्रहकी स्थापना हुई। श्रीचक्रजी इसी वर्ष ग्रीष्म-ऋतुमें शुकतीर्थ गये और शुकदेवजी एवं वट-वृक्षका दर्शन कर शिला-पट्टपर स्थापनाकी बात भी पढ़ी। तभी इनके मनमें आया कि जब ये यहाँ विराजमान हो गये हैं तो इन्हें भागवत भी सुनानी चाहिये और उसी समय स्वयं सप्ताह क्रमसे प्रतिदिन मंदिरपर श्रीमद्भागवतजीका पारायण किया। श्रावण मासमें शुकतीर्थसे वृन्दावन गये। वहाँ पूज्य श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीसे शुकतीर्थमें भागवत सुनानेका अनुरोध किया। उस समय तो महाराजजी टाल गये। बादमें भी एक-दो बार आग्रह किया, तब महाराजश्रीने सहजतासे कहा—कथामें बहुत व्यय होगा। इतना द्रव्य क्या श्रीजयदयालजी डालमिया देंगे?

श्रीचक्रजीको यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा कि जयदयालजीसे मेरा परिचय ही कितना है और अधिक हो भी, तब भी वे क्यों देंगे?

एक बार और कहनेपर कहा—कथामें पचास हजारसे अधिक खर्च हो जायँगे। 'आप कथा तो सुनाइये चाहे पचासपर दो-चार शून्य और बढ़ा दीजिये' चक्रजीने कहा—कन्हाई मेरा एकमात्र स्वजन, वही कथा सुनेगा और यजमान भी रहेगा, तो चिन्ता-जैसी तो कोई बात ही नहीं है। यह यजमान दरिद्र तो है नहीं।

श्रीचक्रजीके इन भावभरे शब्दोंपर भी जब विशेष ध्यान नहीं दिया, जब चक्रजीने इनके लिये पुस्तकें लिखनी बन्द कर दीं। यह अपने मित्रके प्रति इनका स्नेहपूर्ण रोष था।

दैवी सम्पद्-मण्डल द्वारा तीर्थयात्रा-ट्रेनके निर्देशक

सन् 1967 ई० में दैवी सम्पद्-मण्डल, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेशकी ओरसे तीर्थयात्रा ट्रेन निकली। इस यात्राके घोषित अध्यक्ष अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती थे और ट्रेनके संचालन और व्यवस्थाका दायित्व श्रीस्वामी सदानन्दजी सरस्वती (अध्यक्ष– परमार्थ निकेतन, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश) तथा परमार्थ आश्रम, हरिद्वारके अध्यक्ष श्रीस्वामी धर्मानन्दजी सरस्वतीपर था। इस यात्रामें आचार्य श्रीभागवतानन्दजी भी थे, जिन्होंने उस समय तक संन्यास नहीं लिया था, श्वेत वस्त्रोंमें थे। ये स्वामी अखण्डानन्दजीके शिष्य हैं। इन्हें डॉक्टरके स्थानपर यात्रामें प्राथमिक चिकित्साके लिये साथ लिया गया था।

इस ट्रेनके संचालकोंने प्रथम श्रेणीकी एक पूरी बर्थ चक्रजीको देकर उन्हें साथ ले लिया। यात्रामें किस तीर्थमें जाना है, आगे तुरन्त कौन-सा तीर्थ आनेवाला है, उसका क्या महत्त्व है? तीर्थोंका माहात्म्य वहाँ पहुँचनेपर एवं वहाँके दर्शनीय स्थलोंका परिचय श्रीचक्रजी प्रातःकालकी प्रार्थना सभामें दे देते थे। जब यह ट्रेन दिल्लीसे चली, तब चक्रजी अपनी बर्थसे स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके पास आ बैठे। वहाँ हरीशजी (शिष्य-स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती) -ने कहा—महाराजश्रीकी पुस्तकें नहीं लिखी जा रही हैं। कृपया आप लिखिये न!

बीचमें ही अनन्तश्रीमहाराजजीने कहा—चक्रजी तो शर्त लगाते हैं।

चक्रजीने कहा—मेरी शर्त तो पक्की ही है। उस समय तो बात वहीं रह गयी, किन्तु ट्रेन जब हरिद्वार पहुँची तब 'परमार्थ आश्रम' में बैठते ही महाराजश्रीने उस आश्रमके अध्यक्ष स्वामी धर्मानन्दजीसे कहा— पंचांग लाइये। चक्रजी श्रीमद्भागवत सुनेंगे।

वहीं उसी समय निश्चित हो गया कि तीर्थयात्रा ट्रेनके वृन्दावन पहुँचनेके समयसे ही कथा प्रारम्भ होगी। यह भी अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी

सरस्वतीने सोच लिया कि वे ट्रेनको मदुराईमें ही छोड़कर बम्बई होते हुए वृन्दावन लौट आयेंगे और कथासे दस-पन्द्रह दिन पहले विश्राम कर लेंगे। इन्होंने चक्रजीसे कहा— शुकतीर्थमें कथाका आग्रह छोड़ दीजिये। वहाँ प्रबन्ध करना कठिन होगा। कथा आप वृन्दावनमें सुनिये, वहाँ सब व्यवस्था है। चक्रजीने सहर्ष यह बात स्वीकार कर ली। कई वर्ष पश्चात् महाराजश्रीने दो बार पन्द्रह-पन्द्रह दिनकी श्रीमद्भागवत–कथा शुकतीर्थमें दण्डी आश्रममें की थी।

ट्रेनके लखनऊ पहुँचनेपर श्रीचक्रजी प्रयाग-चित्रकूटकी यात्रा छोड़कर सीधे वाराणसी पहुँचे और कथाके सम्बन्धमें श्रीविश्वम्भरनाथ द्विवेदीको आवश्यक निर्देश देने लगे। इनका कहना है—कन्हाई दायित्व लेता है; किन्तु कब? जब आप जो कर सकते हों, वह सब कर चुके हों। अपनी पूरी शक्ति और सम्पत्ति लगा दें। इसके बाद कन्हाईसे आशा करें तो वह कृपणता नहीं करेगा। यह बात मैं दृढ़तापूर्वक कह रहा हूँ।

चक्रजीके पास लेखन-पारिश्रमिकके नौ हजार रुपये एकत्र हो गये थे; किन्तु एक मित्रने उधार माँग लिये थे, वे अपनी कोठी बना रहे थे। अभी कोठी बन ही रही थी, ऐसेमें उनसे रुपये माँगना इन्हें लगा कि उनके साथ अन्याय होगा।

चक्रजीकी पैतृक भू-सम्पत्तिसे इन्हें पाँच हजार रुपये मिले थे। वे इन्होंने विश्वम्भरनाथ द्विवेदीजीको दे दिये थे रखनेके लिये। वाराणसी पहुँचकर इन्होंने विश्वम्भरजीको कथाका सिंहासन बनवानेको कहा तथा आवश्यक वस्त्रादि सामानकी सूची दे दी। उनसे कहा—कथाके आरम्भसे पहले तुम्हें यह सब लेकर वृन्दावन पहुँच जाना है। घरसे कौन-कौन जायँगे? मुझे सहायकोंकी आवश्यकता होगी। श्रीरामानुजजी (विश्वम्भरजीके परिवारके सम्बन्धसे चाचा थे) भी सेवाके लिये जायँगे। जो रुपये मेरे शेष बचें, उन्हें वृन्दावनमें 'दादाजी' (प्रेमानन्दजी) -को दे देना।

विश्वम्भरजीने कहा — आप आज्ञा दीजिये तो घरमें ताला डालकर सब जायँगे; किन्तु चाचाजीका इकलौता पुत्र अभी सात-आठ दिन पहले ही मरा है, उनसे कुछ मत कहिये। चक्रजीने उन्हें बता दिया कि कौन-कौन घरपर रहेंगे और कौन-कौन वृन्दावन जायँगे। इन्हें लगा— रामानुजके विषयमें विश्वम्भरजीका निर्णय ठीक नहीं है। रामानुजजी भी उस समय गाँवसे वाराणसी आनन्द-काननमें आये हुए थे। उनसे मिलते ही चक्रजीने बिना कुछ पूछे कथाका समाचार देकर कहा— तुम्हें इस कथामें सेवा करने वृन्दावन जाना है। रामानुजने भी इन्हें बिना कोई समाचार दिये हाथ जोड़कर कहा— मैं आज्ञाका पालन करूँगा भैयाजी और चक्रजी पुनः ट्रेन-यात्रामें वाराणसीसे साथ हो लिये।

अर्चा-विग्रहके अनुभव

अर्चा विग्रहको पत्थर, धातु, काष्ठादि मानना भगवदापराध है। अर्चावतार माना जाता है आराध्यका श्रीविग्रह। जिस श्रीमूर्तिमें जिन भक्त महापुरुषोंकी श्रद्धा होती है, उस श्रीविग्रहमें उतनी ही अधिक दिव्य शक्तिका आविर्भाव होता है। इस दृष्टिसे दक्षिण भारतका तिरुपति मंदिर बहुत श्रेष्ठ है। वर्षमें लाखों श्रद्धालु उनका दर्शन करके अपनेको कृतार्थ मानते हैं। तिरुपतिके श्रीवेंकटेशजीके श्रीविग्रहके ऐसे ही दो अनुभव चक्रजीको हुए।

जब तीर्थयात्रा ट्रेन मद्रास पहुँची, तो वहाँके शिवकर्ण पोद्दार, जो स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके शिष्य हैं, स्वामीजी, उनके साथके ब्रह्मचारी, दादाजी (प्रेमानन्दजी), स्वामी प्रबुद्धानन्दजी और श्रीचक्रजीको अपने घर ले गये। ट्रेनको मद्रासमें तीन दिन रुकना था। यहीं बड़ी लाइनसे छोटी लाइनकी ट्रेन बदलनी थी। ये सब लोग पोद्दारजीके यहाँ ही ठहरे रहे। अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीको आगे मदुराईसे ट्रेन छोड़कर बम्बई होते हुए वृन्दावन लौट आना था— चक्रजीके 'कन्हाई' को श्रीमद्भागवत सुनानेके

लिये। ट्रेनको तिरुपति तो कन्याकुमारीकी यात्रा करके लौटतेमें जाना था। अतः महाराजश्रीने मद्राससे मोटर कारसे जाकर तिरुपति-दर्शनका निर्णय किया।

श्रीशिवकर्ण पोद्दार अपनी कारसे श्रीस्वामीजीके साथ ब्रह्मचारी प्रेमानन्द 'दादाजी', स्वामी प्रबुद्धानन्दजी तथा चक्रजीको लेकर चल पड़े। ये सब दोपहरसे पहले ही तिरुपति पहुँच गये; किन्तु वहाँ पहुँचकर सबका उत्साह समाप्त हो गया। तिरुपतिका वर्षका सबसे बड़ा मेला चल रहा था और उसका भी वह अन्तिम दिन था। चारों ओर अपार भीड़ उमड़ी पड़ रही थी।

श्रीशिवकर्ण पोद्दारकी सलाहसे उस भारी भीड़के धक्केमें घुसकर सभी मंदिरेके गरुड़-स्तम्भ तक पहुँचे। वहाँ एक ओर मंदिर-मैनेजरका कार्यालय है। उसमें पहुँचकर एक ओर जहाँ भीड़ नहीं थी, बैठ गये। मैनेजरसे बात तो शिवकर्णजीको ही करनी थी। वही 'तमिल' तथा 'अंग्रेजी' बोल सकते थे। बात करनेपर वे श्रीवेंकटेश्वरकी विशेष अर्चा—सबसे बड़ी अर्चा, जिसकी दक्षिणा पाँच सहस्र रुपये है, वह भी करनेको प्रस्तुत हो गये; किन्तु मैनेजरने कह दिया— उत्सवके दिनोंमें सब विशेष अर्चा बन्द रहती है आज कोई अर्चा कराना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

मैनेजर स्वयं स्थिति देखने चले गये। वे सहानुभूतिसे विचार कर रहे थे; किन्तु स्थितिसे विवश थे। तिरुपतिके मंदिरमें दर्शकोंको पंक्तिमें जानेके लिये फर्शमें गड्ढे, लोहेके खम्भों और उनमें लगाये सरियोंसे सर्वथा बन्द घूमते जानेकी पक्की व्यवस्था है। उसमें बीचसे किसी प्रकार भी निकला नहीं जा सकता। खम्भोंपर श्रीमूर्तिसे या मंदिरके निज द्वारसे दूरी अंकित है। इसमें तभी प्रवेश सम्भव है कि दर्शनार्थियोंकी पंक्ति कितनी लम्बी है।

मैनेजरने लौटकर बताया—मंदिरमें बनी एक मील चार फर्लांगकी पंक्ति पूरी भरी है और अभी लगभग चार-पाँच हजार व्यक्ति लगनेकी प्रतीक्षामें

हैं। मैं केवल इतना कर सकता हूँ कि आप लोगोंको इस पंक्तिके अंतमें खड़ा करा दूँ। आठ बजे रात्रि तक आपको दर्शन हो पायेंगे। आज तो कुछ और करते ही भीड़ उग्र होकर हिंसक हो जायगी।

उसी दिन रात्रि आठ बजे इनकी ट्रेन–यात्रा मद्राससे चल देनेवाली थी। अतः पंक्तिमें खड़े होनेको प्रस्तुत, हो जायँ कई घण्टे तक, यह भी अवसर नहीं था।

जहाँ सब लोग बैठे थे, वहीं एक छोटा डेस्क था, श्रीस्वामीजी महाराजने उसे अपने सामने खींच लिया था। उन्होंने उसपर दोनों कुहनी टिकाकर दोनों हथेलियोंपर सिर रखकर झुका लिया। महाराजश्रीकी यह उदासी चक्रजीको बहुत अखरी। उनके मनमें तुरन्त आया— यात्रासे लौटते ही वे मेरे कन्हाईको भागवत सुनानेवाले हैं; तब उनकी यह नन्हीं इच्छा क्यों नहीं पूरी होनी चाहिये।

धीरेसे चक्रजीने महाराजश्रीसे कहा— निराश होनेकी कोई बात नहीं है। कोई लड़का अभी दर्शन करा देगा।

दूसरे किसीने भी चक्रजीकी बातपर ध्यान नहीं दिया। केवल श्रीस्वामीजीने नेत्र उठाकर निराशाकी दृष्टिसे चक्रजीकी ओर देख लिया, जैसे वे चक्रजीको उलाहना ही देते हों।

कुछ मिनट बीते थे कि वहाँ एक लड़का आया। सत्रह-अठारह वर्षका, मोटा-तगड़ा, गौर वर्ण, लम्बा मुख, केवल श्वेत धोती पहने, मस्तकपर रामानुजी तिलक लगाये कोई ब्राह्मणकुमार लगता था। कन्धेपर उज्ज्वल जनेऊ था। उसने किसीसे भी एक शब्द हिन्दीमें नहीं कहा। तमिलमें शिवकर्ण पोद्दारसे पूछा— स्वामी उदास क्यों बैठे हैं? बतलानेपर सीधे मैनेजरसे जाकर बोला— मैं इन स्वामीको दर्शन करा लाऊँ?

मैनेजरने खीजकर ही कहा था—करा सको तो करा दो।

उसने संकेत किया और ये सभी उठकर उसके साथ चल पड़े। वह सबको परिक्रमामें ले जाकर हुण्डीके पास होता हुआ मंदिरके निज कक्षके

चौखट तक ले गया। इस मार्गसे केवल पुजारी ही भीतर जाते हैं। अब चौखटसे श्रीमूर्तिके सामने तक तो एक ही मार्ग था। उसने दर्शनोंकी पंक्तिमें बायीं भुजा सीधी डालकर पंक्तिको रुकनेका संकेत किया तो ये सभी लोग खड़े हो गये। कोई एक शब्द भी नहीं बोला। उसके संकेतके अनुसार श्रीस्वामीजी और उनके पीछे चक्रजी तथा साथके अन्य सभी लोग पंक्तिमें लग गये, अब इन लोगोंसे पहले केवल आठ-दस लोग थे, जो धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। वह बालक हमारे बराबर पंक्तिसे पृथक् चलता आया और जब सभी लोग श्रीमूर्तिके सम्मुखकी चौड़ाईमें खड़े हो गये, उसने तमिलमें पुजारीसे अष्टोत्तरशत अर्चन करनेको कहा।

उस दिन मद्रासके उच्च-अधिकारी, उनके घरोंकी महिलाएँ तथा प्रभावशाली लोग स्वयंसेवक बने दर्शनार्थियोंकी पंक्तिके पास खड़े थे। किसीको कहीं रुकने नहीं दिया जाना था। श्रीमूर्तिके सामने भी चलते-चलते सिर झुकाना था।

लेकिन ये सभी लोग खड़े रहे। पुजारीने श्रीवेंकटेश्वर भगवान्‌पर मन्त्रोच्चारण पूर्वक 108 तुलसीदल चढ़ाया। कर्पूरकी आरती की, फिर स्वामीजी और सबके मस्तकसे मुकुटका स्पर्श कराया। यह करके दोनों हाथ उठाकर उसने श्रीस्वामीजीसे पूछा—दर्शन अच्छा?

सभीने स्वीकार कर लिया कि दर्शन भली प्रकार हो गया। अब उस बालकके संकेतसे सभी निज कक्षके द्वारकी ओर बढ़े। द्वारसे निकलकर परिक्रमाकी ओर मुड़ते ही श्रीस्वामीजीने पीछे देखकर पूछा— वे कहाँ हैं? श्रीशिवकर्ण पोद्दारने कुछ क्षण ढूँढ़नेका भी प्रयत्न किया; किन्तु अब वह वहाँ कहीं होते, तब तो दिखलायी पड़ते।

सभी लोग मंदिरसे बाहर निकले। सायंकालसे पर्याप्त पूर्व मद्रास आ गये। मार्गमें श्रीस्वामीजीने सजल नेत्रोंसे प्रेमपूर्वक चक्रजीसे कहा—तुम्हारा यह लड़का बहुरुपिया तो है ही; किन्तु बहुत जबरदस्त है।

इसी यात्रामें ट्रेन कन्याकुमारी होकर लौटी, श्रीकाल हस्तीश्वरके दर्शन करके सभी लोग तिरुपति आये। तिरुपति स्टेशनसे ही सब बसोंमें चलकर प्रातः कुछ रात्रि रहते ही ऊपर आ गये। श्रीस्वामीजी महाराज तो ट्रेन छोड़कर पहले ही वृन्दावन लौट गये थे।

ऊपर आकर चक्रजीने मंदिरके पास आकर सरोवरमें स्नान किया और सरोवरके दूसरे तटपर भगवान् वाराहके मंदिरमें दर्शन कर लौट आये। श्रीवेंकटेश्वर भगवान् (बालाजी) -के मंदिरमें चक्रजी पहुँचे तो प्रातः शयनोत्थानकी तैयारी थी। वहाँके स्तोत्रकर्त्ता ब्राह्मण पंक्तिबद्ध मंगल गान कर रहे थे।

चक्रजी स्नानके समय और पीछे भी कुछ स्तुति-पाठ किया करते थे। उस दिनका स्तुति-पाठ तो हो गया था; किन्तु मंदिर खुला तो चक्रजी भी तनिक उच्च स्वरसे ही श्रीमद्‌भागवतमें श्रीशुकदेवजी द्वारा की गयी स्तुति **'नमः परस्मै पुरुषाय...'** बोलते हुए दर्शन करने भीतर चले गये। मन्दिरके निज-कक्षके चौखटपर पैर रखते ही चौंक गये। श्रीवेंकटेश्वर भगवान्‌को सदा ऐसा तिलक लगता है कि श्रीविग्रहके दोनों नेत्र तिलककी श्वेत रेखाओंसे ढँके रहते हैं। चक्रजीको उस दिन वे रेखाएँ नहीं दिखीं। दोनों बड़े-बड़े कमल-लोचन-जैसे सजीव हो गये थे और इनकी ओर सुप्रसन्न देख रहे थे। इनकी दृष्टि उन नेत्रोंपर टिक गयी। इन्होंने पलकें भी झपका कर देखा, श्रीमूर्तिके सामने भी गये और दर्शन करके उलटे पैरों चौखटतक लौटे भी और स्तुति भी कर रहे थे। नेत्र भगवान्‌के नेत्रोंपर लगे थे, पैर चलते गये और प्रभु नेत्र खोलकर सस्नेह इन्हें देख रहे थे। मंदिरसे लौटनेपर चक्रजीने साथके कई यात्रियोंसे पूछा, तो उन्होंने बतलाया कि उन्हें तो भगवान्‌के नेत्र तिलककी रेखाओंसे ढँके ही दर्शन हुए थे।

समुद्री-लहरोंकी चपेटमें

कन्याकुमारी पहुँचे तो सभी लोग चक्रजीसे पर्याप्त दूरीपर पीछे-पीछे

दशनार्थ आ रहे थे। स्वामी प्रबुद्धानन्दजी तथा साथके एक सज्जन भी पीछे काफी दूरीपर थे, जो आपसमें समुद्र-स्नानकी बात कर रहे थे। चक्रजीने मनमें सोचा कि यह दोनों पर्याप्त दूरीपर हैं, तब तक दर्शन करके लौट आऊँगा और इन्हें सावधान कर दूँगा कि तटपर बैठकर ही स्नान करें, सागरमें न उतरें।

संयोगकी बात, जब तक चक्रजी कन्याकुमारी मंदिरसे निकले, तब तक प्रबुद्धानन्दजी और उनके साथी अरब सागर और हिन्द महासागरके संगमपर एक उभरी हुई शिला चट्टानपर बैठकर समुद्रकी अपार जलराशिकी शोभा देखने लगे। चक्रजीने पुकार कर उन्हें रोका, तब तक तो एक बड़ी-सी लहर आयी और उन दोनोंको अपने साथ बहा ले गयी। प्रबुद्धानन्दजी तैरना जानते थे। अतः वे तैरकर किनारेकी ओर बढ़े और वहाँ भी चट्टानोंको पकड़नेको हाथ रखा तो खारे जलसे खुरदरी चट्टानोंने हाथोंमें जैसे चाकूसे काटे हुएके समान चीरे लगा दिया और उनसे रक्त निकलने लगा, किन्तु उपाय भी क्या था? दोनों हाथोंकी कोहनियाँ, छाती और पैरोंके बल वे उस चट्टानपर किसी प्रकार चढ़ गये। सभी लोगोंने हाथ बढ़ाकर खींच भी लिया, किन्तु जलके घात-प्रतिघातसे घायल हो गये।

जब इन्हें समुद्रकी लहरें बहा ले गयीं, तब तटपर खड़े सब लोग घबराये हुए असहाय-से देखते रह गये थे। जलकी पछाड़से प्रबुद्धानन्दजीको पर्याप्त चोटें लगी थीं। जब-जब किसी शिलापर पछाड़े गये तब-तब जैसे किसी शस्त्र द्वारा चीरे लगा दिये गये हों। देहसे निकलनेवाले रक्तसे किनारेका जल लाल-सा होने लगा था। प्रभुका अनुग्रह कि सागरने अधिक समय तक इनसे अठखेलियाँ नहीं कीं। शीघ्र तरंगके साथ तटतक पहुँचा दिया। क्षत-विक्षत घायल प्रबुद्धानन्दजीको प्राथमिक चिकित्साके लिये चक्रजीने तुरन्त श्रीभागवतानन्दजी महाराजको सौंप दिया और उन्होंने भी बड़ी कार्यकुशलता एवं तत्परतासे अविलम्ब लहूलुहान शरीरपर औषधि लगाकर रुईके बड़े-बड़े

पैकेट खोलकर इन्हें लपेट दिया। प्रतिदिन औषधियोंका लेप आदि होता रहा। कई दिन लगे इन्हें ठीक होनेमें।

सम्पूर्ण दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा करके जब ट्रेन जयपुर पहुँची, तब चक्रजीने भी ट्रेन छोड़ दी। उन्हें वृन्दावन पहुँचना था और ट्रेनको वृन्दावन लौटनेमें तीन-चार दिन लगने थे।

कन्हाईने भागवत सुनी

जयपुरसे दूसरी ट्रेन द्वारा चक्रजी भरतपुर पहुँचे। अधिक वर्षाके कारण भरतपुर-मथुराका सड़क मार्ग कट गया था। इनके लौटने तक मार्गकी मरम्मत भी हो रही थी। अतः बस द्वारा मथुरा और वहाँसे बरसते हुए पानीमें ही भीगते हुए रात आठ बजे रिक्शेसे वृन्दावन पहुँचे। इधर अनन्त श्रीस्वामीअखण्डानन्दजी महाराज शिव मंदिरके द्वारपर खड़े चक्रजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने देखते ही प्रसन्न होकर चक्रजीको बुलाकर सूचना दी— तुमने मेरी चिन्ता दूर कर दी। अब भोजन करके सो जाओ। तुम्हारे लिये कमरेमें बिस्तर लगवा दिया है। कल प्रातः पूजनके पश्चात् कथा प्रारम्भ होगी अपने निश्चित समयपर। पण्डितोंने षोडश मात्रिकाएँ, सर्वतोभद्र, नवग्रह मण्डल आदि सब बनाकर पूजाकी पूरी तैयारी कर ली है।

महाराजश्रीने यह भी बताया— घी चन्दौसीसे आ गया है, चीनी आदि सब एकत्र है; किन्तु गेहूँ नहीं मिल रहा है।

चक्रजीने कहा— गेहूँ पंजाबसे चलकर पूरे भारतकी तीर्थयात्रा करते हुए आ रहा है। ट्रेन परसों सम्भवतः वृन्दावन आ जायगी और आपको गेहूँ आग्रह करके पंजाबके भावसे दे जायँगे।

सरकारने तीर्थयात्रा ट्रेनको अमृतसरमें गेहूँ खरीद लेनेका परमिट दे दिया था। पता नहीं कि ट्रेनके संचालकोंसे क्या भूल हुई कि उनका दाल-चावल आदि तो ठीक पूरा हुआ, किन्तु गेहूँ बीस बोरा बचा है। वृन्दावन-मथुरासे

ट्रेन दिल्ली जाकर अपनी यात्रा पूरी करनेवाली थी। वहाँ यह गेहूँ सरकार जब्त कर लेती। अतः उसे तो यहाँ वृन्दावनमें आश्रमको दे ही देना था।

कथा दूसरे दिन ठीक समयपर आरम्भ हुई। चक्रजीके अनुज कन्हाई ही मुख्य श्रोता थे। श्रीचक्रजीके नामसे छपे आमन्त्रण-पत्रसे यह बात स्पष्ट कर दी गयी थी कि कथाके यजमान श्रीचक्रानुज श्रीकृष्ण ही हैं। आमन्त्रण-पत्र डाक द्वारा भेजे जा चुके थे।

श्रीउड़ियाबाबाके आश्रममें ही कथामण्डप बना था एवं चक्रजीके निवासका जो कमरा था उसमें पूजा और मूलपाठ होना था। संकल्प कन्हाईके नामसे। चक्रजी तो उनके प्रतिनिधि रूपमें पूजा करते। 'वृष्णि गोत्रीय श्रीकृष्णचन्द्र' तत्प्रतिनिधि रूपमें अपना नाम-गोत्र उच्चारण करते। षोडश मात्रिकाओं, नवग्रह, सर्वतोभद्र आदिका पूजन करके ये मंचपर आते और ग्रन्थकी पूजा करते। व्यासजीका पूजन होता अपने कन्हाईके करोंसे संस्पर्श कराकर कथा-व्यास अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजीको माल्यार्पण करते। इसके पश्चात् कथा-मंडपमें विराजमान सभी संत-वृन्दोंका चरण स्पर्श करके वन्दन करते। इसी क्रममें जब पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराजको प्रणाम किया तो उनके शिष्य हरेकृष्णजीने हरिबाबाजीके गलेसे माला प्रसादी उतार कर चक्रजीको दे दी। चक्रजीने श्रद्धासहित हाथोंमें थाम ली तो हरि बाबा बड़े संकोचमें पड़ गये और अपने शिष्य लम्बे नारायण (हरेकृष्णजी) -से नाराज होकर बोले— आगेसे मत करना, मैं तो पहले ही संकुचित हो रहा था। चक्रजी भाववश होकर पता नहीं क्या करेंगे? बाबाके शिष्योंसे जब पूज्य हरिबाबाके संकोचकी बात चक्रजीको ज्ञात हुई तो दूसरे दिन चरणवन्दन करके उल्लसित स्वरमें कहा— बाबा! एकमात्र कन्हाई ही मेरा स्वजन, परमनिधि' प्राणों-का-प्राण है। उसे तो संतोंका दुलार भरा आशीर्वाद ही चाहिये। उसका परम मंगल हो, चिरजीवी रहे, संतोंकी प्रसादी माला पाकर तो थिरक-थिरक कर नाच उठता है आप तनिक भी संकोच न करें।

बाबा तो रसविभोर हो गये। उनके मुख-मण्डलपर अलौकिक मुस्कान छा गयी।

यहाँ समस्त ऐश्वर्यको विसारकर रसिक-शिरोमणि रसराज नन्दनन्दन प्रेम-पुजारी बना नन्हा-सा श्रोता है। वह मंत्रमुग्ध-सा नन्हें सिंहासनपर वक्तासे नीचे विराज कर अपनी ही कथा विस्मय-भावसे श्रवण कर रहा है। अपने इन्हीं पूजाविग्रहके समीप चक्रजी भी विराजमान हैं और अनुराग भरे नयनोंसे अपने जीवन-धनको निहार लेते हैं। वक्ताके रूपमें विराजे अनन्तश्री महाराजजीने कथासे पूर्व ही चक्रजीसे स्नेहानुरोधपूर्वक कह दिया— पता नहीं कि तुम्हारा चंचल-चपल कन्हाई कब क्या करेगा? कौन जाने? तुम समीप ही बैठे रहना अद्वैत-निष्ठा, वेदान्त, ब्रह्मैक भावमें परिनिष्ठित महाराजश्री जब वृन्दावनी भावमें प्रसन्न-मुद्रा, मुख मण्डलसे प्रेमभरी रसमयी वाणीसे कथा कहते; तब ऐसा आनन्द उमड़ता जिसे देखकर सारे वातावरणमें उल्लास-आनन्द, प्रेमकी तरंगें परिव्याप्त हो जाती थीं। भगवत् लीलाओंकी ललित माधुर्यमयी कथाका, प्रीति भरी उक्तियोंसे ऐसा प्रतिपादन करते; प्रेमका प्रवाह उमड़ पड़ता, रसमय वृन्दावन प्रकट हो जाता। श्रोता पुलकित विमुग्ध भावसे अनवरत सुनते रहते। आत्म विस्मृति-सी हो जाती— जैसे सभी लोग लोकातीत धरातलपर प्रतिष्ठित हो गये हों। अनन्तश्री महाराजजीको आठ-आठ घंटेकी कथामें कोई श्रम-थकावट नहीं, व्यग्रता-व्यस्तता नहीं, नित्य-निरन्तर अजस्र प्रेमका, निश्छल प्रीतिका प्रवाह उमड़ता-घुमड़ता रहता। प्रेममत्तता घनीभूत हो उठी थी।

इस कथाका प्रतिक्षण वर्धनशील आह्लाद शत गुणित हो उठा था। वैसे भी वृन्दावनके जड़-चेतन, स्थावर-जंगम साधारण थोड़े ही हैं। सब-के-सब दिव्य हैं, चिन्मय हैं। उसमें भी संतोंका अद्भुत संगम, जहाँ एक ओर परम वत्सला श्रीआनन्दमयी माँ तो दूसरी ओर संकीर्तनावतार श्रीहरिबाबाजी महाराज

पूरी कथामें विराजे रहते। भगवत् रसिक श्रोताओंकी इतनी भीड़ कि उड़िया बाबाजी महाराजका पूरा कथा मण्डप, सामनेका पूरा चौक भर जानेपर बहुत-से श्रोता सड़कपर बाहर बैठकर और खड़े-खड़े सुनते थे। ट्रेनसे दिल्ली पहुँचनेपर हरिद्वारसे स्वामी धर्मानन्दजी महाराज और परमार्थ निकेतनसे स्वामी सदानन्दजी महाराज भी वृन्दावन आ गये और पूरी कथा सुनते रहे। वृन्दावनके राधारमणजी मंदिरके गोस्वामीजी श्रीपुरुषोत्तमजी महाराज, जो किसी कथा-प्रवचनमें नहीं जाते; किन्तु वे भी आये, भले ही कुछ दिन बाद आये और जब आये, तब अंत तक कथा-श्रवण करते रहे।

सच है, जहाँ संत निवास करते हैं, वहाँ उनकी उपस्थितिसे ऐसी सुवास परिव्याप्त हो जाती है, जो तन-मनको अनिर्वचनीय सुख और अलौकिक शीतलता प्रदान करती है। कथा सानन्द उल्लासपूर्वक सम्पन्न हुई। इस कथाके कुछ चमत्कार भी हैं। उनकी चर्चाके बिना बात अधूरी ही रहेगी।

(1) चक्रजीको बताया गया कि स्वामी अखण्डानन्दजीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और डॉक्टरोंने उन्हें कथा न करनेकी राय दी है।

चक्रजीने कहा— चिन्ता मत करो, कथाके समय और कुछ तो दूर, उन्हें सर्दी-जुकाम भी नहीं होगा। उनके स्वास्थ्यका दायित्व कन्हाईका है।

कथाके मध्य महाराजश्रीने सभी औषधियाँ लेनी बन्द कर दी थीं। चक्रजीके साथ वे भी दिनमें फलाहार और रात्रिमें भोजन करते थे। उनमें शक्ति और उत्साहकी कमी नहीं देखी गयी। एक बारकी कथामें तीन घंटे तो बोलते ही, कभी-कभी कथा आठ बजे रात्रिको विश्राम लेती। कभी स्वामीजी अपने परिकरके साथ दस-ग्यारह बजे तक रातको सत्संग चर्चा करते। जहाँ पहले उन्हें नींद ठीकसे नहीं आती, वहाँ इन्हें खूब अच्छी निद्रा आती थी।

(2) कथाके प्रारम्भमें ही आश्रमके व्यवस्थापक श्रीओंकारानन्दजीको महाराजश्रीने आदेश दे दिया था कि कथाके बीचमें मुझसे या चक्रजीसे रुपयेकी

चर्चा मत करना ऐसी अवस्थामें एक दिन चक्रजीसे किसीने शिकायत की मना करनेपर भी ओंकारानन्दजी भोजनकी पंगतमें अधिकाधिक परोस देते हैं, उन्हें मना कर दीजिये कि ऐसे न करें। बहुत अधिक झूठा छूटता है। चक्रजीने ओंकारानन्दजीसे चर्चा की तो वे हँसकर बोले— कथामें बाहरसे बहुतसे श्रोता आये हैं। वे आनन्द वृन्दावनमें उड़िया बाबा आश्रममें और कानपुरवाले मंदिरके पासकी धर्मशालामें ठहरे हैं। इन तीनों स्थानोंपर भोजनालय रखा गया है। श्रोताओंको कह दिया आप दोपहर या शामको भोजनके समय इनमेंसे जहाँ भी हों, वहीं पंगतमें बैठ जायँ। जहाँ ठहरे हैं, वहाँ जाना आवश्यक नहीं है। चक्रजीको लगा— इससे कहीं भोजन बहुत बच जाता होगा और कहीं तत्काल बनाना पड़ता होगा। स्वामी ओकारानन्दजीने पूछा तो उन्होंने बताया— हमारा यजमान त्रिभुवनकी व्यवस्था सँभालता है, यह तो बहुत छोटी व्यवस्था है। कहीं भी तत्काल भोजन बनाना नहीं पड़ता। तीनों स्थानोंपर केवल तीन-चार खुराक ही भंगीके खानेको बचती है।

श्रीरामानुजजी (श्रीविश्वम्भरनाथ द्विवेदीके परिवार-संबंधी चाचाजी) चक्रजीके आदेशपर कथासे पूर्व ही आ गये थे, जिनका इकलौता बेटा सात दिन पहले ही मरा था। ये चक्रजीका बहुत सम्मान करते और 'भैयाजी' कहकर पुकारते। इन्हें कथामें आगत लोगोंको जलपान कराने और भोजन परोसनेका काम सौंपा गया था। वे प्रातःसे रात्रि-पर्यन्त सेवामें लगे रहते। कथाके बीचमें एक दिन चक्रजीने पूछ लिया— रामानुज! तुम्हें बहुत काम करना पड़ रहा है। मनका क्या हाल है? कथा-श्रवण करनेका उन्हें अवसर ही नहीं मिलता था। वे भरे गलेसे बोले—भैयाजी! जीवनमें मुझे इतना आनन्द कभी नहीं मिला, जो इन दिनों मिल रहा है। मैं तो अपना पुत्र-शोक भी भूल गया।

(3) कथाके बीचमें चक्रजीको खूब जोरका सर्दी-जुकाम हो गया तो पूज्य श्रीहरि बाबाजी महाराजने कुछ औषधियोंका काढ़ा पीनेके लिये भेजा। पहले

दिन तो चक्रजीने पी लिया। जब दूसरे दिन श्रीहरिबाबाजीने काढ़ा पीनेको भेजा और पुछवाया— जुकाम कैसा है?

तब चक्रजीने हँसकर कहलवा दिया— मैं तो बिना काढ़ा पीये ही ठीक हो जाऊँगा। ऐसा कड़वा काढ़ा मैं तो नहीं पीयूँगा। मेरे बदले आप ही पी लीजिये।

सचमुच पूज्य श्रीहरि बाबाजी महाराज चक्रजीके आरोग्य-लाभका संकल्प करके काढ़ा पी गये।

तीसरे दिन चक्रजी स्वस्थ हो चुके थे। उन्हें जब ज्ञात हुआ कि मेरे बदले बाबा काढ़ा पी रहे हैं, तो स्वयं जाकर बोले—बाबा अब आपको काढ़ा पीनेकी आवश्यकता नहीं है। देखिये न। मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ।

(4) इस कथाकी जब स्वामीजी (अनन्तश्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती) -से चर्चा की तब उन्होंने कहा था— पचास हजार खर्च होगा। कथा समाप्त होने-पर कुछ समय पश्चात् चक्रजीने प्रेमानन्दजी दादासे पूछा— कथामें कितना व्यय हुआ?

पहले वे टालते रहे; परन्तु आग्रह करनेपर बताया — पचास हजार, पर आप चिन्ता न करें। भेंट इतनी अधिक आयी है कि दूसरी कथामें कभी नहीं आयी और न आनेकी आशा है।

श्रीस्वामीजी महाराज कथापर चढ़ावा नहीं करने देते। चक्रजीने मनमें सोचा—भेंट कितनी भी आयी हो, ऐसा उदार कहाँ मिलेगा कि कथा भी सुनायें और व्ययकी व्यवस्था भी करें। भेंट तो पीछे ही आनेवाली ठहरी।

(5) सबसे बड़ी घटना वृन्दावनके कर्मकाण्डके विद्वान् ब्राह्मण जो कि पूजन कराते और मूल पाठ करते, उनसे श्रीचक्रजीने कथाके पश्चात् पूछा— ओंकारानन्दजीने आपको ठीक दक्षिणा दी है?

वे सजल नेत्रोंसे भरे हृदयसे बोले— ओंकारनन्दजीसे मुझे दक्षिणा मिल चुकी है। किन्तु मुझे तो अपने यजमानसे दक्षिणा चाहिये।

'मैं उसका प्रतिनिधित्व कर रहा हूँ पूरे अनुष्ठानमें। अतः मुझे बता दीजिये कि उससे आपको क्या दक्षिणा चाहिये और वह आपको मिलेगी। चक्रजीने पूछा। पण्डितजी धैर्यपूर्वक बोले— मुझे वे आवागमनसे सदाको मुक्त कर दें। इस मनोवांछित दक्षिणाके विषयमें क्या कहा जाय? जब कुछ महीने पश्चात् चक्रजी रामवनसे लौटे तो समाचार मिला— केवल दो दिन ज्वर आया और उन युवक पण्डितने तीसरे दिन 'जय श्रीराधे' कहकर देह त्याग दी।

पीछे महाराजश्रीने सस्नेह उपालम्भ दिया — हमारा विद्वान् पण्डित चला गया। बहुत दिनों तक वृन्दावनके श्रोताओंके मन-मस्तिष्कपर इस कथाकी दिव्य अनुभूतियोंका आनन्द छाया रहा। सभी अपने सौभाग्यकी सराहना कर रहे थे कि ऐसी कथाएँ कहाँ मिलेंगी?

जयपुरमें

'कल्याण' की कहानियोंसे प्रभावित जयपुरके डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी गर्ग श्रीचक्रजीके सम्पर्कमें वर्ष 1950 से ही आ गये थे। पिताकी मृत्युके पश्चात् इनके पुत्र सुरेन्द्र प्रसाद गर्ग (जो पहले जागीर कमिश्नर थे, बादमें डिप्टी सेक्रेटरी रेवेन्यू तथा गोल्ड कन्ट्रोलर ऑफिसर हो गये) -के अनुरोधपर श्रीचक्रजी कई बार इनके घर जयपुर भी गये। इनके यहाँ एक सप्ताहके सान्निध्य कालमें पूरा परिवार सत्संगसे लाभान्वित हुआ।

एक दिन सत्संग-चर्चामें श्रीचक्रजीने कहा— भगवान् सम्बन्धी भावना भवरोग निवारिका, परमानन्द-दायिका, परमौषधि है। आप अपने मनसे कन्हाईकी चपल क्रीड़ाओंकी भावना कीजिये। भावना करते रहनेका मनका स्वभाव बना लीजिये।

सुरेन्द्र प्रसादजीने पूछा— ऐसा ध्यान कैसे किया जाय?

तब पुनः श्रीचक्रजी बोले— मनसे एक कटोरीमें थोड़ी किशमिश स्वच्छ करके रख लीजिये और सामने बैठे कन्हाईके मुखमें एक-एक करके हाथसे

दीजिये। मनसे ही उसके हिलते मुखको देखिये।

दूसरे दिन उन्होंने तो नहीं, किन्तु उनकी पुत्री सरलाने कहा— आपका गोपाल तो मुख ही नहीं खोलता, वह हाथ फैलाता है इसपर भी दो झपट्टा और मारता है।

श्रीचक्रजीने सरलाकी रुचि श्रीकृष्णके बाल रूपमें देखकर उसीके भावकी पुष्टि करते हुए आराधनाकी विधि समझायी और उसके पितासे कहा— सीधा मार्ग तो यह है— आप कन्हाईको अपना कोई आत्मीय बना लो, आपको जो भी प्रिय लगे.... कन्हाईका चिन्तन स्वतः चित्तको अपनी ओर खींच लेगा।

श्री चक्रजीके वृन्दावन रहनेपर यह पूरा परिवार यदा-कदा आता रहता था। कन्हाईने भागवत सुनी उस पूरी कथामें सुरेन्द्र प्रसाद गर्ग पत्नी सहित पुत्री सरला एवं पुत्र शिवेन्द्रके साथ रहे और अपना अनुभव कहते थे— इस कथामें जैसा आनन्द और मनको मार्गदर्शन मिला, वह जीवनमें नहीं मिला।

कुल्लूकी यात्रा

एक बार श्रीचक्रजी ग्रीष्मकालमें 'कुल्लू-मनाली' गये थे। उस समय यह परिवार भी एक महीनेको पहुँच गया। श्रीचक्रजी तो एक बगीचेमें बने दो फ्लैटमेंसे एक खाली फ्लैटमें एक कमरा किरायेपर लेकर रहे। दूसरे फ्लैटमें एक डॉक्टर सपरिवार रहते। उसीमें सपरिवार सुरेन्द्र प्रसादजी भी रहे। शामको चार बजे एक घंटेके लिये दोनों ही परिवार सत्संगके लिये चक्रजीके समीप आ जाते। श्रीचक्रजी एक दिन पूछ बैठे— जब आप अकेले होते हो, आप चिन्तन क्या करते हो? यही कसौटी है जो बतलाती है कि आपके चित्तका वास्तविक स्वरूप क्या है, आपका आकर्षण किधर है। जैसे लोभीकी चर्चा और चिन्तनका केन्द्र धन होता है, उसी प्रकार राम और श्याम प्रिय लगने

चाहिये अर्थात् मनका मुख्यालय भगवान् होने चाहिये।

इन्हीं दिनों श्रीचक्रजी संध्याको पाँच बजे अकेले घूमने एकान्तमें निकल जाते थे। एक बार नैसर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य निहारते हुए एक शिलाखण्ड-पर बैठ गये। चिन्तन चलने लगा— मेरे बाबाकी क्रीड़ास्थली यही है न! सहसा नेत्र आकाशपर उठे और देखा—

गंगाधर शंशाकशेखर त्रिलोचन प्रकट हो गये हैं। उनके श्रीविग्रहसे आह्लादकारी राशि-राशि ज्योत्स्ना झर रही है। प्रकृतिका कण-कण नाच रहा है उस कल्याण-धारामें। वामांकमें वात्सल्यमयी जगज्जननी अम्बा अपने इस शिशुको अनवच्छिन्न स्नेह-धारासे स्नान करा रही हैं। कुछ ही क्षण लगे कि माता-पिता भवानी-शंकरका श्रद्धा-विश्वास समन्वित अर्धनारीश्वर स्वरूप प्रकट हो गया। इन्हें प्रणति सहित वन्दनको सिर झुकाया ही था कि यह भव्य रूप अन्तर्धान हो गया।

बाह्य-ज्ञान होने तक पर्याप्त रात्रि हो चुकी थी। अपने स्थानपर लौटकर बिना कुछ खाये-पीये सो गये। दूसरे दिन मध्याह्नके भोजनके समय सुरेन्द्र प्रसादजी द्वारा अति विलम्बका कारण पूछे जानेपर उपर्युक्त संस्मरण सुनाते हुए श्रीचक्रजी बोले— दादा गणपतिके समान अपने बल-पौरुषको त्यागकर श्रद्धा-विश्वास रूप भवानी-शंकरको दाहिने कर श्रीचरणोंकी शरण ग्रहण करना ही कल्याणकारी है।

परमार्थ-आश्रम, हरिद्वारमें

परमार्थ आश्रम, हरिद्वारके अध्यक्ष स्वामी धर्मानन्दजी सरस्वतीसे इनका पुराना परिचय था। हरिद्वार, ऋषिकेश तथा कनखलकी यात्रा प्रायः करते ही रहते थे, किसी-न-किसी प्रकार मिलना हो ही जाता था। सन् 1965 ई० में परमार्थ आश्रमसे स्वामी श्रीधर्मानन्दजी सरस्वती गीताप्रेस, गोरखपुर आये हुए थे। वहीं इन्होंने श्रीचक्रजीसे मासिक पत्रिका प्रकाशनका प्रस्ताव

रखा। किन्तु ये हरिद्वार तब गये, जब परमार्थ आश्रममें राधाकृष्ण मंदिरका प्रतिष्ठा-महोत्सव हुआ। गोरखपुरमें परलोक और 'पुनर्जन्म-अंक' का सम्पादन करके अगले दस अंकोंके लिये 'श्यामका स्वभाव' शीर्षकसे दस लेखोंकी व्यवस्था करके चक्रजी हरिद्वार आ गये। वर्ष 1969 के 14 नवम्बरको श्रीचक्रजी 58 वर्षके हो गये। अतः इन्होंने लेखों और पत्रिकाओंसे पारिश्रमिक लेना बन्द कर दिया। सम्पादन तो फिर भी अवैतनिक करते रहे। वर्ष 1972 के अन्तमें इन्होंने सम्पादन-कार्य बन्द कर दिया— मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार ही सेवा करता है और मैंने यह सेवा अपनी सीमामें ईमानदारीसे की है। सभीकी शक्ति क्षीण होती है। सभीके कार्य निवृत्त होनेका अवसर आता है। स्वेच्छासे यह अवसर मैंने चुना है। (विवेकरश्मि वर्ष 6 - रश्मि 12 कवर 3)

श्रीचक्रजीका बाल्यकालसे ही विरक्त जीवन बितानेका क्रम बना हुआ था। उनके मनमें कई बार तीव्र इच्छा हुई कि वे इस दुनियादारीके परिवेशको त्याग कर एकान्त जीवन किसी पर्वतीय गुफाओंमें बिताते हुए परमात्म तत्त्वका चिन्तन करें; किन्तु अब तक यह अवसर नहीं मिला था। 'विवेक रश्मि' और 'मानसमणि' पत्रिकाके सम्पादन कार्यसे मुक्त इसी उद्देश्यसे हुए।

हरिद्वारमें रहते हुए अपने एकान्तप्रिय स्वभावके कारण किसीसे मिलना-जुलना नहीं पसन्द करते। उनकी अपनी दिनचर्या ही व्यस्त रखनेको पर्याप्त थी। परमार्थ आश्रममें प्रातःकी दैनिक प्रार्थना-गोष्ठीमें सम्मिलित होना सभी आश्रमवासियोंके लिये अनिवार्य था; किन्तु समूहमें बैठना ही इन्हें रुचिकर नहीं था। अतः श्रीचक्रजी ब्राह्ममुहूर्तमें नित्य कर्मसे निवृत्त होकर आश्रमकी प्रार्थनासे पूर्व ही गंगा किनारे बाँधपर टहलने निकल जाते। टहलनेके पश्चात् और सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके उगते सूर्यको अर्घ्य देते। उगते सूर्यको अर्घ्य देनेका नियम तो जीवनपर्यन्त चला था। गंगाजलसे लोटा भरकर चलते-चलते 'गजेन्द्रमोक्ष', भीष्मकृत स्तुति करते हुए कक्षमें लौटते। अपने श्यामसुन्दरको

स्नान कराकर श्रीमद्भागवत एवं भगवद्गीताका नित्य पाठ करते। 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ, जप, संध्या, पूजन करके प्रातः आठ बजे तक निवृत्त होते। कक्षमें ही वहाँके व्यवस्थापक श्रीदिवाकर तिवारी, जो वाराणसीके ही थे; जलपान पहुँचा देते। जलपान करके सम्पादन-कार्य आदि देखकर मध्याह्नमें भोजन करके घड़ीसे एक घंटा विश्राम करते। शामको पत्रिका एवं समाचार-पत्र पढ़ते तथा आये हुए पत्रोंके उत्तर देते। कभी-कभी सत्संग-भवनके बाहर बैंचपर बैठकर कथा-श्रवण करते। संध्या समय अपने अनुजको आशीर्वादसे आह्लादित करके भागीरथीके तटपर बैठकर चिन्तनमें डूब जाते। कभी-कभी विशेष सम्पर्कके व्यक्ति डॉ० कावरा अथवा डॉक्टर स्वामी चक्रजीके कक्षमें अपराह्णके समय आ जाते तो उनसे पारमार्थिक चर्चा, साधन-साध्य चर्चा तथा भगवच्चर्चा ही करते।

कभी-कभी चण्डीदेवीवाली पहाड़ीपर चले जाते। एक दिन वहाँसे लौटनेमें विलम्ब हो गया। अँधेरेमें पथ दिखायी नहीं पड़ा। अतः मंदिरमें वहीं जगदम्बासे कहने लगे—

जगदम्बे ग्रह काल कर्मकी ऐसी-तैसी।
सिंहवाहिनी! भीति तुम्हारे शिशुको कैसी?
गोद तुम्हारी स्वत्व, कहाँ तब आना-जाना।
माँ! तुमको कह दिया, रहा फिर भी कुछ पाना।।

वहीं द्वारसे सटकर लेट गये और सोचने लगे—अष्टभुजा हो या दशभुजा, किसी भी रूपमें क्यों न हो—है तो मेरे कन्हाईकी अनुजा ही, पर मेरी तो अम्बा ही है। क्या वह अपने गोदके शिशुको नहीं पहचानेगी? सुना है, यहाँ रात्रिको शेर आता है। वह अपने वाहनके आहारके रूपमें मुझे स्वीकार करे, तब भी ठीक है— जैसी उसकी इच्छा हो। निश्चिन्त होकर सो गये। प्रातः उठकर चलने लगे तो गीली मिट्टीमें शेरके पंजोंके निशान स्पष्ट दिखायी दिये।

उन्हें तो अपनी अष्टभुजाकी करुणा और कृपा सदा ही प्राप्त होती रही थी। उन्हें जब कभी भी उनकी स्मृति आती तो वे सदा प्रसन्न वन्दना अष्टभुजा वरदहस्ता स्नेहमयी दृष्टिसे निहारती आकाश मण्डलमें प्रत्यक्ष दर्शन देती।

मेरे पिता हिम्मत सिंहजीको श्रीकृष्ण जन्मभूमिपर उन्होंने बातचीतके बीचमें यह संस्मरण सुनाया था।

अष्टभुजाका वात्सल्य

श्रीचक्रजीके ही शब्दोंमें— मेरे पिता नैष्ठिक दुर्गोपासक थे। भगवती अष्टभुजाके परमोपासक। उनका दुर्गापाठ, नवदुर्गोंमें यज्ञ, अनुष्ठान जीवन-पर्यन्त चलता रहा। मुझे भी बचपनमें दुर्गाकवच रटा दिया था। अतः परम्परासे मैं सिंहवाहिनी अष्टभुजाको अम्बा माँ कहता हूँ। पिताजीको एक दिन दुर्गाष्टमीपर देवीका आवेश आया। माँने मुझे चरणोंपर डाल दिया। दैवीके आवेशमें ही पिताने कहा— यह मेरी आराधना नहीं करेगा; किन्तु सदा मैं इसके अनुकूल रहूँगी। जब स्मरण करेगा। मैं रक्षा करूँगी। देवीके शब्द ज्यों-के-त्यों मेरे मानस पटलपर अंकित हो गये थे। यदि सच्चाईसे जगदम्बासे सम्बन्ध सँभाल लिया जाय तो श्रीगिरिराजनन्दिनी उसे अपना माननेमें न संकोच करेंगी, न कभी विस्मृत करेंगी।

ऐसे ही ग्रीष्मऋतुमें कुल्लू-मनाली गया था। एकान्तमें चलते-चलते पर्वत—पर एक शिला अच्छी लगी तो बैठ गया। शिला बड़ी थी। सामने नीचे नेत्र किये जायँ, तब बड़ा मैदान था। चीड़के वृक्ष पीछे थे। सन्मुखके पर्वत-शिखर नीचेवाले मैदानके उस पार दूर थे। मुझे माँका स्मरण हो आया।

वहींपर बैठकर दृष्टि आकाशकी ओर उठाकर सहज भावसे पुकार उठा 'माँ'। क्यों पुकार उठा? पता नहीं। आर्त्त स्वरमें पुनः पुकारा—माँ!

निर्मल नील गगन स्वच्छ था। सहसा एक ज्योति प्रकट हो गयी उसमें। अद्‌भुत ज्योति थी वह। उसे न सूर्यके समान प्रखर ज्योति कह सकते हैं और न चन्द्रमाके समान कोमल ज्योति।

ज्योतिमें एक आकृति उभरी। विशालकाय सिंह था। इतना बड़ा सिंह संसारमें कभी नहीं हुआ होगा। बड़े-से-बड़ा हाथी भी उसके सामने बच्चा लगेगा। सिंहके पीले केश, गर्दनकी केशर— सबसे प्रकाश झर रहा था। सिंहके नख और दाँत जैसे चन्द्रमाके टुकड़े करके बनाये गये हों। उसकी लाल जीभ कितनी कोमल थी। मनमें आया कि सिंह समीप होता तो उसे पुचकारता, थपथपाता।

अचानक पीठपर एक और मूर्ति प्रकट हो गयी। अष्टभुजा, रक्ताम्बर दिव्याभूषणभूषिता वह त्रिपुरसुन्दरी मूर्ति वर्णनसे बाहर है। पूर्णिमाका चन्द्रमा फीका लगेगा— उनके पद-नखकी कान्तिके सन्मुख। उनका अरुण चरण कितना मृदुल, कितना अरुण था; इसके लिये कोई उपमा नहीं है।

चरण-दर्शन करके मुखकी ओर दृष्टि गयी—तो वहीं रह गयी। मन्द स्मित था— उन निखिलेश्वरीके श्रीमुखपर और उनकी दृष्टिमें स्नेहका, वात्सल्यका समुद्र हिलोरें ले रहा था।

माँ! मैंने पुकारा नहीं, हृदयने पुकारा होगा, क्योंकि यही सचमुच माँ हैं— यह हृदय पुकार उठा था। वह मूर्ति समीप आने लगी थी। सिंह चल नहीं रहा था। बीचकी दूरी स्वयं घट रही थी। मूर्ति समीप आती गयी और मैं खोता चला गया। मैं कब खड़ा हो गया— यह मुझे पता ही नहीं।

मूर्ति समीप आ गयी। सिंह मेरे बैठनेकी शिलासे सटकर खड़ा हो गया। मेरे सामने केवल चरण था— उस सिंहवाहिनीका मणिके आभूषणसे भूषित मृदुल अरुण ज्योतिर्मय चरण। माँ मैंने वह चरण अपने दोनों हाथोंमें धीरेसे लिया और उनपर मस्तक रख दिया। धीरेसे ही मेरे नेत्र बन्द हो गये थे।

पुत्र!... कोई अमृत हो—तो वह स्वर उसे भी जीवन देनेवाला था। एक करका अतर्कित आनन्दपूर्ण स्पर्श सिरपर हुआ और मैं खो गया सुध

बुध...। सचेत होनेपर अधर माँके स्तवनमें मुखर हो गये –

खड्गकी चमक और ज्वाला कर-खप्परकी,
चण्डतम त्रिशूल, त्रय-शूल ही हरेगा माँ!
खेट शर अंकुश रक्ताक्त हैं–होने दो,
नागपाश शिशुका भव-पाश ही हरेगा माँ।
उग्रदंष्ट्रा, वज्रनख चण्ड नेत्र केशरी यह
रोककर दहाड़ चाट मल ही रहेगा माँ
होगी प्रलयंकरी भयंकरी तू और कहीं
पूतको देख तो, पयोधर झरेगो माँ!

नियम-पालनपर दृढ़ता

श्रीचक्रजीकी धारणा थी कि समय ही भगवान् है। उसका निष्ठासे आदर करना चाहिये। कोई छोटा नियम भी समयपर श्रद्धा सहित पालन किया जाय तो वह भगवत् प्राप्ति करानेमें सहायक है। श्रीचक्रजी मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) आये हुए थे। यहाँ 'सत्संग-भवन' शिव चौकमें ठहरे हुए थे। इन दिनों सत्संग भवनमें श्रीपरमेश्वर दयालजी द्वारा श्रीमद्भागवत-कथाका आयोजन चल रहा था। श्रीचक्रजी दोनों सत्रमें नियमपूर्वक कथा–श्रवण करते थे।

कथाके विश्रामपर एक दिन एक प्रौढ़ा स्त्रीने चक्रजीके चरण स्पर्श किये। वे शान्त भावसे नेत्र बन्द किये, आनन्दसे छके हुए बैठे थे। चित्तवृत्ति बाह्य-जगत्को छोड़ चुकी थी। लीला-चिन्तनमें खोये हुए थे। सहसा, उनके चरण छूनेसे बाह्य ज्ञान हुआ तो संकेतसे पूछा– क्या बात है?

प्रौढ़ा स्त्रीने अनुरोध और आग्रहपूर्वक निवेदन किया – मुझे भगवान्के दर्शन करा दीजिये... कैसे होंगे उनके दर्शन? स्थिर चित्त होकर चक्रजीने

सहजतासे कहा— अरे! उससे प्रेम कर अपनत्व जगा... 'प्रेम बिना रीझत नहीं, नटवर नन्दकिशोर' यह सीधी-सच्ची बात उस महिलाके गले उतरी नहीं। उसने पुनः दुराग्रह किया— मुझे उनके दर्शन करा दीजिये... आप करानेमें समर्थ हैं, ऐसा मैंने सुना है। उसके बार-बार आग्रह—पर चक्रजीको आवेश आ गया— जा! एक वर्ष तक उस वृक्षके नीचे चबूतरेपर झाड़ू लगाया कर। वे मिल जायँगे। प्रतीक्षा करती रहना।

उसने उनकी बात मान ली और नित्य नियमसे झाड़ू भी लगाने लगी। श्रीचक्रजी वृन्दावन चले गये।

दो वर्ष पश्चात् पुनः श्रीचक्रजी सत्संग-भवनमें मुजफ्फरनगर आये और संयोगसे उसी महिलाने पुनः चरण स्पर्श किया।

पहचानकर बोले— क्या हुआ? दर्शन नहीं हुए? उसे अनमनी देखा तो समझ गये थे।

सुनते ही वह फफक-फफक कर रो पड़ी और अस्वीकृतिमें मस्तक हिला दिया।

'क्या तुमने नियमपूर्वक झाड़ू लगानेकी सेवा की थी?'

'वर्ष पूरा होनेमें केवल चार दिन शेष रहे थे। मुझे अत्यधिक तीव्र ज्वर आ गया कि उठ न सकी और मूसलाधार पानी बरसने लगा था। केवल उस दिन नहीं लगा सकी।'

श्रीचक्रजीने गम्भीर होकर कहा— जैसी सर्वेश्वरकी इच्छा! उसके विधानमें कौन हस्तक्षेप कर सकता है? अरे! वही दिन तो था तेरी निष्ठा और परीक्षाका और तुझे दर्शन देकर कृतार्थ करनेका मैंने कभी असत्य भाषण नहीं किया जीवनमें। जब नियम ही टूट गया तो मैं क्या करूँ? समय और नियम भी उनका स्वरूप है।

शुकतीर्थका भावराज्य

20 सितम्बर 1971 से 4 अक्टूबर 1971 में भागवतकी पाक्षिक कथा भागवतश्री-प्रादुर्भाव-स्थली शुकतीर्थके दण्डी आश्रममें पूज्य दण्डी स्वामी श्रीविष्णु आश्रम महाराजके तत्त्वावधानमें हुई। पूरे भारतसे मूर्धन्य संत पधारे थे। अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज कथाके प्रवक्ता थे। इनकी कथामें तो ज्ञान-भक्ति-आनन्दकी ऐसी त्रिवेणी उमड़ती कि उसमें अवगाहनको दूर-दूरसे श्रोता आये थे। कथा क्या थी, आनन्दका उमड़ता हुआ सागर था। आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे आनन्द-ही-आनन्द हृदयमें लहराता था। इस कथाके व्यवस्थापक-संयोजक मुजफ्फरनगरके भाई श्रीपरमेश्वर दयालजी (भगतजी) एवं भाई हरीशजी थे। ये दोनों ही स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके शिष्य हैं।

गंगातटका सुरम्य रमणीय तीर्थस्थान एवं अरण्यका सात्त्विक वातावरण श्रीचक्रजीका मन मोह लेता। कथाका समय प्रातः 8 से 11 बजे तक तथा सायंकाल 3 से 6 बजे तक था। श्रीचक्रजी दण्डी आश्रममें महाराजश्रीके सान्निध्यमें ही रहकर कथा-श्रवण करते रहे। कथाकी समाप्तिपर सबके चले जानेके पश्चात् भी कार्तिक मासपर्यन्त दण्डी आश्रममें ही रहे। प्रातः शुकतीर्थपर वह वृक्षके नीचे मंदिरमें चले जाते और सप्ताह-क्रमसे वहाँ पाठ करने लगे। वन-प्रदेश और गंगातटका शान्त एकान्त स्थल उन्हें निवासके लिये बार-बार खींच लाता था। बड़ी तल्लीनतासे नीरव वन प्रान्तमें बैठकर अपनी भीगी पलकोंसे अपने कन्हाईकी मनुहार करते—मेरे लाल! मेरा नन्हा हृदय आकुलतासे उछल रहा है। मेरे भावोंका संसार तमस्तोममें डूबा जा रहा है। मेरे भोले प्राण तड़प रहे हैं। तुम्हारे दिव्य रूपकी झाँकी करनेको। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ हृदयेश! तुम्हारा पथ देखता हुआ यहीं पड़ा हूँ, जब तक स्वयं आकर मुझे हृदयसे नहीं लगा लेते। मुझे विश्वास है— अपने अनन्त ऐश्वर्यको

छोड़कर एक दिन अवश्य आओगे। तुम आओ, जीवन डूबने दो या पार कर दो। भला, रूठने-झगड़नेमें कौन-सी तृप्तिका अनुभव करते हो? किस आधारपर है उपेक्षाकी यह उल्लसित उमंग— कभी-कभी यहींसे अवधूतकी तरह गंगाके पार जानेकी सोचते रहते; पर सर्वेश्वरको क्या करना था, वही जाने। पुनः दिसम्बरमें हरिद्वार लौट आये और सम्पादन-कार्य सँभालने लगे।

प्रभुदयालजी झुनझुनवालापर कृपा

इस चिर पथिकसे जो भी मिला, प्रभावित हुआ। इनके लेखनको जिसने भी पढ़ा, दीवाना हुआ, किन्तु सन् 1970 ई० के पश्चात् कुछ ऐसे लोग सम्पर्कमें आये, जिन्होंने इनकी कृपा वारि-धारामें स्नान करनेका सौभाग्य पाया। इनके वात्सल्य-भाजन बने, इनके निज-जन कहलानेका गौरव पाया। जो जगत्‌में कहीं टिकता नहीं था, ऐसे इनके विरागी मनने भी जिसे स्नेह भरी नजरसे देखा, उनपर अपनी कृपाके सम्बन्धकी मुहर लगायी। उन्हीं धन्य-कृतार्थ चार-पाँच जनोंमें सर्वप्रथम सम्पर्कमें आये प्रभुदयालजी झुनझुनवाला।

प्रभुदयालजी झुनझुनवाला तीर्थाटन करते हुए सन् 1970 ई० में रामवन, सतना (म०प्र०) पहुँचे। यहाँके संस्थापक श्रीशारदाप्रसादजीका इनपर असीम स्नेह था। 'मानस-मणि' के ग्राहक थे और इसके सम्पादक श्रीचक्रजीके दर्शनकी इन्हें तीव्र लालसा थी।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'कल्याण' की मासिक पत्रिकामें श्रीचक्रजी द्वारा लिखित कहानियाँ ये बचपनसे ही पढ़ते आये थे। 'कल्याण'के आते ही सबसे पहले इनकी कहानी पढ़ते और अगले अंकके लिए एक महीना-पर्यन्त आतुरतासे प्रतीक्षा किया करते। सर्वप्रथम 1970 में रामवनमें श्रीशारदाप्रसादजीने प्रभुदयालजीको अपने साथ ले जाकर दर्शन कराया।

श्रीचक्रजी उस समय एक अति साधारण-सी कुटियामें अपने आसन-पर बैठे थे। प्रभुदयालजी इनका चरण-वन्दन करके बैठ गये और कुछ पूछनेकी आज्ञा चाही।

श्रीचक्रजी सहजतासे इन्हें लेकर उसी कुटियामें बने तहखानेमें चले गये, जहाँ वे नित्य ध्यान-साधना किया करते थे। स्वयं अपने आसनपर बैठकर एक आसन प्रभुदयालको बैठनेको दिया और उनके बैठ जानेपर बोले– क्या पूछना चाहते हो? 'व्यक्तिको कैसे ज्ञात हो कि साधन पथपर उसकी प्रगति हो रही है, अर्थात् उसके अन्तःकरणको प्रभुने अपना आसन स्वीकार कर लिया है।' प्रभुदयालने हाथ जोड़कर विनम्र स्वरमें पूछा।

'यदि कभी तुम्हें कोई भयावह स्वप्न दिखायी दे और उस भयप्रद स्थितिमें ऐसा लगे कि प्रभु मुझे उबारनेके लिये आये हैं, आयेंगे अथवा उस समय लगे कि भयकी क्या बात है? प्रभु हैं न! वे मुझे अवश्य बचा लेंगे। ऐसा विचार कर तुम उन्हें पुकारने लगो या उनका स्मरण करने लगो तो समझो कि प्रभु तुम्हारे हृदय-सिंहासनपर आसीन हैं।'

प्रभुदयालजीको इस समाधानसे सन्तोष हुआ। उन्होंने दीक्षाके लिये करबद्ध प्रार्थना की, किन्तु चक्रजीने बात हँसकर टाल दी।

बादमें एक बार चाकुलिया पधारनेकी पुनः प्रार्थना की, किन्तु फिर बात टल गयी। सन् 1977 ई० में कुम्भके अवसरपर प्रयागमें मंत्रदीक्षा देकर श्रीचक्रजीने इनका मनोरथ सफल किया।

रामवन, सतनामें श्रीचक्रजीके दर्शनके पश्चात् प्रभुदयालजीका इनके साथ पत्र-व्यवहार अनवरत चलने लगा। प्रभुदयालजीके प्रश्नोंका कितने सरल शब्दोंमें पत्रों द्वारा समाधान कर दिया करते थे, इसका उदाहरण इस प्रकार है – अध्यात्म-पथमें बढ़नेकी तुम्हारी अभीप्सा स्वयंमें मंगलमय है। यह इच्छा प्राणीके मनमें जन्मके पुण्योदयसे जागती है। भगवान् तो अनन्त कृपा-

धाम हैं, जो उनकी ओर जाना चाहता है, उसे वे प्रगतिका अवसर देते हैं।

चक्रजी सन् 1972 ई० की जनवरीके प्रथम सप्ताहमें प्रभुदयालजीके अतिशय आग्रहपर चाकुलिया गये। शीतकालमें चाकुलियाका प्रवास सुखकर लगा। वहाँ ठंड कम रहती। प्रभुदयालजी इन्हें अपने बगीचेके शान्त वातावरणमें ठहराते। वहाँ चारों ओर हरियाली एवं एकान्त था। सत्संगका वातावरण स्वतः बन जाता। प्रातःका जलपान लेकर प्रभुदयालजी नगरके बाहर बगीचेमें पहुँच जाते। अधिकसे अधिक सान्निध्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करते और इनके मनकी सारी जिज्ञासाएँ सान्निध्य मात्रसे शान्त और स्वतः समाधान प्राप्त कर लेतीं। मध्याह्नको वहीं भोजन कराते और संध्या चार बजे अनुरोध करके अपने घर ले आते, जहाँ परिवारके सभी सदस्य तथा आस-पासके 35-40 लोग एकत्रित हो जाते और सत्संगमें भगवत्-चर्चा, साधन-साध्य-चर्चा, परमार्थिक-चर्चा होती रहती। आनन्दके प्रवाहमें समयका पता ही नहीं रहता।

योगभ्रष्ट बालक

सत्संगमें एक दिन योगभ्रष्टकी चर्चा चली तो चक्रजीने सत्संगमें सुनाया— दक्षिण भारतमें एक बार एक परिवारमें मैं गया था। एक दिन तो सत्संग हरि-चर्चामें बीत गया। दूसरे दिन उस गृहकी स्वामिनी अपने आठ वर्षके बालकको लेकर आयी और प्रणाम कराते हुए बोली— भगवन्! यह बालक बचपनसे ही खाने-पीने, खेलने-कूदनेमें तनिक भी रुचि नहीं रखता। किसीसे बोलता भी नहीं, गुमसुम अकेला बैठा रहता है। कुछ करता तो नहीं, पर कहीं बाहर जा रहा हो या किसी बातको मना करनेपर मान लेता है। जिद्द नही करता। बहरा भी नहीं लगता। साथके बच्चे पीट देते हैं, तो चुपचाप मार खा लेता है। प्रतिकार नहीं करता। इसे पढ़ानेका हर प्रयत्न निष्फल हुआ। कभी-कभी उसको भान ही नहीं रहता, इसके मुखसे लार गिरने लगती है। पुकारनेपर पुकारनेवालेकी ओर देख भर लेता है, बोलता नहीं। डॉक्टरोंको

दिखाया, किन्तु उनकी समझमें कुछ भी नहीं आया। परीक्षण करके कहा— यह तो सामान्य है।

श्रीचक्रजीने उस महिलासे तो कुछ नहीं कहा, किन्तु पूरे दिन उस बालककी चेष्टाएँ एवं मनोभाव देखते रहे। सायंकाल प्रणाम करने आये सभी लोगोंके साथ वह बालक भी आया। जब कक्षसे जाने लगा, तब उन्होंने पुकारा— प्रद्युम्न! मेरी बात सुनो। प्रद्युम्न कहते ही उसने घूमकर इनकी ओर देखा— समझ गये कि यह बहरा नहीं है, तो गूँगा भी नहीं होना चाहिये।

श्रीचक्रजीके शब्दोंमें — मैंने उस बालकको अपने पास रोक लिया और एकान्तमें बहुत प्यार और स्नेहसे उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा— बोलो, जय गोविन्द! बिना कुछ बोले वह मेरी ओर देखकर मुस्करा दिया।

मैंने तनिक आवेशसे कहा— 'तुम मेरे जय गोविन्द' का उत्तर नहीं दोगे? क्या इतनी-सी बात भी कन्हाईसे पूछनी पड़ेगी? अब अन्तिम बार आदेश देता हूँ। बोलो—जय गोविन्द!

बालक मेरे स्वरसे सहम गया, फिर सहज स्वरमें बोल पड़ा — बम भोले! बम शंकर! बोलते ही तुरन्त चारों ओर ऐसे देखने लगा कि किसीने देख-सुन तो नहीं लिया। वह आश्वस्त होकर मेरे पैरोंपर सिर रखकर विनय करने लगा— किसीको न बतायें कि मैं बोल सकता हूँ।

'नहीं— मैं किसीको नहीं बताऊँगा। तुम शिव-मंत्रमें दीक्षित होकर अपने पथपर आगे बढ़ो। यह कामना करता हूँ।' कहकर उसका सिर सूँघकर आशीर्वाद दिया।

प्रद्युम्नके माता-पिताको बुलाकर मैंने कहा— इस बालकके लिये तुम चिन्ता मत करो। यह योगी है। योगभष्ट्र होनेके कारण तुम्हारे यहा जन्म लिया है। तुम पुत्र-स्नेहवश इसके मार्गमें बाधक मत बनना। आगे क्या होगा, यह चिन्ता छोड़ो। आदिगुरु जीवाचार्य बाबा विश्वनाथ स्वयं इसका मार्ग प्रशस्त

कर इसे सँभाल लेंगे।

चक्रजीका स्वभाव था, जहाँ कहीं भी जाते, वहाँ उसके हित-साधनका ही प्रयास करते थे।

रातको भोजन कराकर प्रभुदयालजी पुनः बगीचेमें पहुँचा देते।

सत्संगमें नाम-जपपर पूरा बल देते— तुम नाम-जपमें लगे रहो, पूरी शक्तिसे। नाम भगवान् स्वयं कृपा करेंगे, तो भगवान् मिलेंगे, मार्ग मिलेगा, फिर प्रार्थनाको जीवनमें नियमित बनाओ। प्रभुसे प्रार्थना करो कि तुम्हें अपनी ओर आनेका अवसर दें। वर्ष 1973 ई० के जनवरीमें पुनः चाकुलिया गये। वहाँसे 21 जनवरीको रामवन पहुँचे। रामवनसे प्रभुदयालजीको पत्र लिखा— प्रवासमें असुविधा सबको होती है। निवास-कालमें तो आवश्यकतासे अधिक सुविधा थी। क्षमा माँगनेकी औपचारिकता अनावश्यक है। मैं 22 मार्चको हरिद्वार पहुँचूँगा और 15 अप्रैल तक हरिद्वार। गर्मियोंमें पहाड़-पर जाऊँगा। किस पहाड़पर, यह हरिद्वार जानेपर तय होगा।

सँभालको सचेष्ट

'भगवान्के आश्रयसे सब कुछ सम्भव है। उनके-जैसा सुहृद् कोई है नहीं'— चक्रजी अपने अनुभवके आधारपर कहते थे— उनपर निर्भर होने-वालेका कोई काम अटकता नहीं। जैसी साज-सँभाल पग-पगपर कन्हाई करता रहता है, वैसा भला कौन कर सकता है। उनकी स्मृति सारे अमंगलोंको विनष्ट कर देती है। इस बार उत्तरकाशीसे स्वामी शरणानन्दजीके ममेरे भाई एवं उनकी बहिन सत्यमूर्ति भी यमुनोत्रीकी यात्रामें साथ हो लिये थे। संस्मरण उन्हींके शब्दोंमें — यमुनोत्रीकी पर्वतीय चढ़ाई पूरी कर चुके तो असमंजसमें पड़ गये, आगे कोई मार्ग दीखता नहीं था। सब ओर चीड़के गिरे पत्ते बिछे थे। तभी समीप दीखते दो घरोंकी ओरसे एक आठ-नौ वर्षका बालक हमारे पास आया। मैंने पूछा— यमुना-किनारेकी चट्टीपर जानेका रास्ता तुम्हें मालूम

है? बालकने उत्साहसे कहा– हाँ, चलो पहुँचा आता हूँ। वह बालक साथ हो गया। उसका व्यवहार ऐसा हो गया कि देवी सत्यमूर्ति तथा उसके ममेरे भाईको भी लगा कि उसमें कन्हाईका आवेश है। तनिक भी ऊँचाई आती तो वह मेरी कमरपर हाथ लगाकर सहायता करनेका प्रयत्न करता। देवी सत्यमूर्ति हँसकर कह देती – दादाको सँभाले ले चलो।

उसने हमारे साथ जलपान किया; किन्तु लगभग मील-सवा मील चलकर जब यमुना किनारेकी चट्टी दीखने लगी, तो वह खड़ा होकर रोने लगा। पूछनेपर उसने कहा – घर कैसे जाऊँगा? मुझे मार्ग तो पता ही नहीं है।

हमारे सामने समस्या खड़ी हो गयी कि इस बालकको इसके घर कैसे भेजा जाय। सवा मील पीछे हममेंसे कौन लौटे? तभी सामनेसे पुलिसके दो सिपाही आते दीखे। वे उधर ही जा रहे थे, जिधरसे हम आये थे। उनसे मैंने बालकको उसके घर छोड़नेको कहा। उन्होंने उससे थोड़ी पूछ-ताछ की और उसे साथ ले गये।

उत्तरकाशी लौटकर अकेले श्रीचक्रजी मई 1973 को बद्रीनाथजीकी यात्रा करके जोशीमठमें बद्रिकाश्रमके जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीशान्तानन्दजी महाराजके यहाँ आ गये। एक रात किसी नारी कंठका रुदन सुनायी पड़ा। पूछनेपर पूज्य शंकराचार्यजी महाराजके कृपापात्र सेवक शिवार्चनजीने बताया कि शंकराचार्यजी महाराजके शिष्य फकीरचन्दजी कासगंजसे अपनी पुत्री मिथिलेशके साथ आये हैं। मिथिलेशके पेटमें तीव्र पीड़ा हो रही है।

शिवार्चनजी चक्रजीको लेकर उनके कमरेमें आये। चक्रजीने कोई होम्योपैथी दवा दी जिससे तत्काल आराम मिला। बादमें ग्वारपाठेके रसमें चीनी मिला बार-बार खिलानेको कहकर कुछ निर्देश देकर चले गये। इस घटनाके पश्चात् फकीरचन्दजी पुत्रीके साथ इनके सत्संग और सान्निध्यका लाभ लेने प्रायः वृन्दावन, मथुरा, शुकतीर्थ आने लगे।

वर्षकी व्यस्तता

यहींसे प्रभुदयालजी झुनझुनवालाको चक्रजीने पत्र लिखा– इसी वर्ष 22 सितम्बर 1973 से 12 अक्टूबर 1973 तक स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती सम्पूर्ण गीतापर परमार्थ आश्रममें प्रवचन करेंगे, अतः उस समय मैं वृन्दावनसे महाराजश्रीके साथ ही आकर हरिद्वार ही रहूँगा।

कथाके सम्पन्न होनेपर अक्टूबरके अंतमें रामवन, वहाँसे 16 नवम्बरको वाराणसी होते हुए 8 दिसम्बरको पुनः रामवन चले आये। 6, 7, 8 दिसम्बरको रघुनन्दन प्रसादजी पत्रकार, आनन्द ग्राम, चाँद मारी रोड, पटनामें रहे।

जनवरी, 74 के प्रारम्भमें प्रभुदयालजीके यहाँ चाकुलिया गये। 15-1-1974 को चाकुलियासे लौटकर डॉ० स्वामीके साथ हरिद्वार आ गये। मार्च, 1974 को अमृतसर और वहाँसे 23 मार्चको शुकतीर्थ आये।

21 अप्रैल 1974 से स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजकी कथा परमार्थ-निकेतन, ऋषिकेशमें सम्पन्न होनी थी। अतः 15 अप्रैलसे वहाँ पहुँच गये। वहाँसे 8 मईको पशुपतिनाथजीके दर्शन करने नेपालके लिये प्रस्थान कर दिया। नेपाल-प्रवास दो महीनेका रहा। जूनके अन्तिम सप्ताहमें योग निकेतन, उत्तरकाशी आ गये। 26 जूनको प्रभुदयालजीको पत्र द्वारा ही लिखा– 'इस प्रवासकालमें 'भगवान् वासुदेव' लिख रहा हूँ। 'द्वारिकाधीश' का लेखन प्रारम्भ हो गया। श्रीकृष्णचरितका तृतीय खण्ड 'पार्थ सारथि' श्रावण-पूर्णिमाको ऋषिकेशमें प्रारम्भ करूँगा। इस लेखनसे मुझे सन्तुष्टि हुई। लगता है अब तक कन्हाईके बारेमें जो लिखा गया– वह पूर्वाभ्यासमात्र था। तुमने मेरा कार्यक्रम भी पूछा है – 5 अगस्तसे 15 अगस्त तक परमार्थ निकेतन, ऋषिकेशमें गुजरातके परम प्रसिद्ध महाभागवत कथाकर पूज्य डोंगरेजी महाराजकी भागवत कथा है। अतः उस समय वहीं रहकर कथा-श्रवण करूँगा।

17 अगस्तको परमार्थ आश्रम, हरिद्वार आ जाऊँगा। डॉ० स्वामीका मन है कि 10-12 दिनके लिये कुचामन (राजस्थान) उनके साथ रहूँ। वहाँसे लौटकर 26 सितम्बरके अन्त तक वृन्दावन रहूँगा। 3 अक्टूबरको वृन्दावनसे चलकर ब्रह्मावर्त (बिठूर-कानपुर), 1 नवम्बरसे 24 नवम्बर तक अयोध्याधाममें। 25 नवम्बरको वाराणसी। कार्तिक पूर्णिमाका ग्रहण-स्नान काशीमें करनेका मन है। दिसम्बरके द्वितीय सप्ताहसे ऐसे स्थानपर रहना चाहता हूँ, जहाँ शीत कम हो। जगन्नाथपुरी या भुवनेश्वरमें कहीं व्यवस्था हुई तो विचार करूँगा।

सर्वसमर्थकी 'बाबा' से प्रार्थना

चक्रजी सन् 1974 के शीतकालमें जगन्नाथपुरीमें चक्रतीर्थके समीप डालमिया सीमेंट कम्पनीके अतिथिगृहमें लगभग एक महीने रुके। वहीं रहते हुए उनके सिरके पिछले भागमें कारबंकल (अदृश्य फोड़ा) फोड़ा हो गया। पुरीसे ये कलकत्ते आये। वहाँ इनका रक्त-परीक्षण हुआ तो रक्तमें चीनी आवश्यकतासे भी कम निकली। हाबड़ासे पटना आते हुए क्या हुआ, यह चक्रजीकी ही वाणीमें सुनिये—

'हाबड़ासे पटनाके लिये मैंने ट्रेनकी प्रथम श्रेणीमें आरक्षण कराया था, किन्तु यात्राके दिन ही भाई रामनिवासजी ढँढारियाने मुझे रोक लिया। उन्होंने कहा— कल मैं आपका आरक्षण करा दूँगा।

दूसरे दिन मैं स्टेशन गया तो मेरा आरक्षण जिस डिब्बेमें हुआ था, वह पहलेका द्वितीय श्रेणीका डिब्बा था। उसमें दो सीटें ऊपर और दो सीटें नीचे थीं और शौचालय भी था। मेरी सीट ऊपर थी; किन्तु मुझे रोगी देखकर एक बंगाली युवकने, जिसकी सीट नीचे थी, अपनी सीट मेरे लिये छोड़ दी।

'कारबंकल' को हिन्दीमें 'अदीठ' कहते हैं। यह पीठकी ओर होता है,

जहाँ रोगीकी दृष्टि नहीं जा पाती। इस फोड़ेमें अनेक सूराख हो जाते हैं। दिनमें तो दर्द कम रहता है; किन्तु रातमें लगता है कि मानो जलता कोयला रखा हो।

गाड़ी चली। मुझे निद्रा काहेको आनी थी; किन्तु ट्रेनकी भित्तिकी ओर मुख करके लेट गया। थोड़ी देर लगभग डेढ़ घंटे बाद ही लगा— कोई मेरी पीठके पास सटकर बैठा है और मन्द स्वरमें प्रार्थना कर रहा है — बस, बाबा! अब इन्हें ठीक कर दो। अधिक दर्द इनसे सहा नहीं जायगा।

स्वर बहुत कोमल था। मुझे लगा कि वे बंगाली युवक ही होंगे; किन्तु स्वरकी मधुरता, मिठास, आत्मीयताभरी स्नेहसिक्त वाणीने मनको मोहित कर लिया। तन-मन अनिर्वचनीय सुख एवं शीतलतामें डूबता जा रहा था। ध्वनि कई बार सुनायी पड़ी— तब मैंने सिर घुमाया; किन्तु वहाँ तो कोई नहीं था। वे बंगाली सज्जन ऊपरकी सीटपर गहरी निद्रामें थे। मैं तो व्यर्थ ही उनकी अतिशय भावुकताकी कल्पना कर रहा था। सामनेकी ऊपर और नीचेकी सीटोंके दोनों यात्री भी खर्राटें ले रहे थे। अब उस डिब्बेमें चौथा यात्री तो मैं ही था। अब किसकी सान्निध्यता असीम सुख दे रही थी? किसीके दिव्य स्पर्शका भास स्पष्ट था। समझनेमें देर नहीं लगी— अरे! यह तो मेरा कन्हाई ही है। निश्चय करनेमें कोई कठिनाई नहीं थी और वह स्वयं कुछ न करके भोले बाबा विश्वनाथजीसे प्रार्थना कर रहा था।

यह कभी सम्भव है कि कन्हाई प्रार्थना करे और भगवान् मृत्युञ्जय उसे न सुनें? मेरे फोड़ेकी पीड़ा इतनी अधिक थी मानो सौ-सौ बिच्छू एक साथ डंक दे रहे हों। परन्तु मेरे फोड़ेकी जलन, पीड़ा तुरन्त शान्त हो गयी। यद्यपि यह फोड़ा दो महीने बाद उत्तर काशी जानेपर अच्छा हुआ, किन्तु मुझे उसने इसके बाद तनिक भी कष्ट नहीं होने दिया। सिरके पिछले भागमें केशोंके नीचे उस कारबंकलके कई गड्ढे अभी भी हैं। उनपर जब हाथ जाता है— अपने कन्हाईकी आत्मीयता सजीव, जाग्रत् हो उठती है मनमें।

जगदीशको पत्र

अगले वर्ष शीतके आरम्भ काल दिसम्बरमें रामवनमें ही था। यहींसे जगन्नाथपुरी जानेका शीताधिक्यसे बचनेके कारण मन हुआ तो मानस-संघके संस्थापक श्रीशारदा प्रसादजीसे चर्चा की। वे बोले— पुरीमें आपका कोई परिचित है? आपके ठहरनेकी व्यवस्थाके लिये उन्हें लिख दिया जाय। चक्रजीने कहा— पुरीमें वैसे तो कई परिचित है; किन्तु सबसे अधिक परिचित तो अपना कन्हाई ही लगता है। 'आप ठीक कहते हैं। पुरीमें वह बिना हाथ-पैरका होकर रहता है अतः इसे पहले तो सूचना दी जानी चाहिये।'

यह घटना उन्होंने अपने परिकरोंको सुनाते हुए कहा— मैंने जगन्नाथजीके नाम एक पोस्टकार्ड डाल दिया। मैंने लिखा था— मेरे लिये एक ऐसे कमरेकी व्यवस्था नगरके बाहर समुद्र तटकी ओर कहीं टोटा गोपीनाथके आस-पास कर दो, जिसमें कभी मछली नहीं बनायी गयी हो। मीठे पानीकी व्यवस्था, शौचालय और बिजली भी हो, यदि समीपमें कहीं पुष्पवाटिका हो तो और अच्छा है। मैं उचित किराया दे दूँगा।

श्री जगन्नाथपुरी पहुँचा तो एक पण्डाजी मिले। उनसे मैंने कह दिया— अभी कहीं ऐसी जगह ले चलिये, जहाँ मैं स्नान कर लूँ। दर्शन तो मैं स्वयं कर लूँगा। आप मेरे लिये किरायेका एक मकान ढूँढ़ देंगे तो आपको उचित दक्षिणा भी दे दूँगा।

पण्डाजी एक वृद्धा माताके यहाँ ले गये। उनके यहाँ मीठे पानीका कुआँ था। मैं स्नान करके पूजा-पाठसे निवृत्त होकर दर्शन कर आया और जगन्नाथजीका प्रसाद भी ले लिया। दूसरे दिन नित्य पूजासे उठा ही था कि पण्डाजी प्रतीक्षा कर रहे थे। बोले— चलकर कमरा देख लीजिये। मैं रिक्शा करके उनके साथ गया। नगरसे बाहर पूर्वी बंगालसे आये विस्थापितोंको सरकारने भूमि दी थी। उसमें एक डॉक्टरने अपने मकानसे लगे दो कमरे बनाये। उनमें एक कमरेमें बाहर प्लास्टर नहीं हुआ था। भीतर हो चुका

था। मीठे पानीका हैण्डपम्प था। छोटी-सी फुलवारी भी थी। डॉक्टरने कहा— मेरा लड़का बिजली-मिस्त्री है। आप यदि कमरा लेते हैं तो आप जब तक सामान लेकर आयेंगे, तब तक मैं इसमें अस्थायी बिजली लगवा दूँगा। कमरेका किराया 15 रु० मासिक बताया। मैंने स्वीकार कर लिया।

मैं उसी रिक्शेसे सामान लेने चला गया तो सोचता रहा — मेरा प्यारा कन्हाई अन्ततः गोप बालककी तरह ही कितना भोला और सरल है। मैंने इसे लिखा नहीं तो इसने भी नहीं सोचा कि मंदिरसे यह स्थान कितनी दूर है। डेढ़ मील तो होगा ही। मैं दर्शन करने तो नित्य जाऊँगा ही, तो मंदिरके समीप मारवाड़ी बासेमें भोजन कर आऊँगा, किन्तु शामके भोजनका क्या होगा? शामको भी भोजनके लिये इतनी दूर आना मुझसे सम्भव है नहीं और मुझे बनाना आता नहीं।

यह सोचते हुए सामान लेकर लौटा तो मेरे कमरेके बाहर एक पंजाबी सज्जन मेरी प्रतीक्षा करते खड़े मिले। मकान मालिकने मेरा परिचय दे दिया था। उन्होंने मुझसे कहा— पड़ोसमें जो नगरपालिकाकी पानीकी टंकी बन रही है, उसके बनवानेवाली कम्पनीमें मैं इन्जीनियर हूँ। यह टंकी बनवानेके लिये मुझे कम्पनीने पन्द्रह दिन पहले ही भेजा है। सपरिवार मैं आपके कमरेसे सटे दूसरे कमरेमें ठहरा हूँ। उड़ीसाके परम संत पूज्य श्रीअमितभद्रदासजीका मैं शिष्य हूँ। आपकी कहानियाँ मैंने 'कल्याण' पत्रिकामें पढ़ी हैं। मेरी बड़ी अभिलाषा थी आपसे मिलनेकी। डॉक्टर बाबूने आपका परिचय दिया तो सब काम छोड़कर आपका दर्शन करने आया हूँ। आपसे मेरी एक प्रार्थना है।

'कहिये'— मैंने पूछ लिया।

वे बोले— यहाँ आसपास कहीं भोजनकी व्यवस्था नहीं है। यहाँके लोग रोटी बनाना भी नहीं जानते। आप अकेले हैं। कृपया भोजन हमारे यहाँ करनेकी अनुकम्पा कीजिये।

मैं चौंक गया। तो क्या कन्हाईने यह व्यवस्था भी पन्द्रह दिन पहले कर

रखी थी? मैं मुफ्तमें भोजन नहीं करता चाहता था; किन्तु मेरे आग्रहपर उन्होंने स्वीकार कर लिया कि मैं दर्शन करने जाऊँगा तो वहींसे प्रतिदिन सब्जी ला दिया करूँगा।

क्या अब भी आप कहेंगे कि मंदिरकी मूर्ति तो मूर्ति है? उसे पत्र लिखनेसे क्या कोई लाभ नहीं?

जो जगन्नाथ जगत्के लिये ही **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** का ठेका लिये हैं तो अपने स्वजनोंके लिये कब, कहाँ देरी करते हैं?

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर

भारतके प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीयुत जयदयालजी डालमियाकी पूज्य भाईजी श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रति असीम श्रद्धा थी। 'गीतावाटिका' गोरखपुरके उत्सवोंमें प्रायः जाते ही रहते थे। गीतावाटिकाकी संतचरण सन्निधानकी सुरभिसे सुवासित रसमय पावन भूमि तीर्थराजके समान परम वन्दनीय-सेवनीय है। ये श्रद्धेय भाईजी एवं पूज्य श्रीराधा बाबाकी अभिन्नताके पारखी थे। इन युगल विभूतिके स्नेहभरे प्यारमें पला-पगा इनका पूरा परिवार ही है। वहींसे इनका श्रीचक्रजीसे परिचय हुआ और श्रीचक्रजीकी कहानियोंसे वे बहुत पहलेसे प्रभावित थे।

हरिद्वारमें अप्रैल, वर्ष 1975 में श्रीजयदयालजी डालमिया आये हुए थे। श्रीचक्रजी भी वहीं थे। इस संदर्भमें श्रीजयदयालजी डालमियाने लिखा है – 'हरिद्वार ठहरनेके दिनोंमें हमलोग भी हरिद्वार जाकर कानपुरके प्रसिद्ध जे०के० (श्रीजुग्गीलाल कमलापतजी) परिवारके बँगलेमें रहा करते थे। तब श्रीचक्रजीके साथ सायंकालका सत्संग हुआ करता था।' पहलेसे ही श्रीडालमियाके मनमें ललक थी कि चक्रजीसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर रहनेके लिये प्रार्थना करें तथा 'श्रीकृष्ण-सन्देश' पत्रिकाका सम्पादन-कार्य सँभालनेका अनुरोध भी। इसी आशासे वे करीब पन्द्रह दिन हरिद्वारमें रहे। प्रतिदिन

मिलते रहे और अनुनय-विनय करते रहे कि आपके द्वारा लिखा श्रीकृष्णचरित 'श्रीकृष्ण सन्देश' पत्रिकाके माध्यमसे प्रकाशित कराना चाहते हैं। इनके स्नेहमय बन्धनने चक्रजीको बाँध लिया। प्रभुदयाल झुनझुनवालाजीको पत्र द्वारा चक्रजीने सूचना दी—'कल शामको ही समाचार मिला कि स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज अस्वस्थ हो गये हैं। अतः 25 अप्रैलको मैं उन्हें दिल्ली देखनेके लिये दो दिनको जाऊँगा, वहींसे श्रीजयदयालजी डालमिया मुझे श्रीकृष्णजन्मस्थान, मथुरा ले जायँगे और मैंने मई 1975 से 'श्रीकृष्ण-संदेश' पत्रिकाका 'सम्पादक' होना उनके असीम स्नेह, श्रद्धाभरी विनयके कारण स्वीकार कर लिया है। अवैतनिक कार्यका संकल्प तो मैं 'विवेक-रश्मि' पत्रिकाके चलते ही कर चुका हूँ।

वृन्दावनसे अक्षय तृतीयाको दर्शन करके मईके तृतीय सप्ताहमें हरिद्वार आ जाऊँगा। 22 मईको हरिद्वारसे उत्तरकाशी और जुलाईके अंत तक उत्तरकाशीसे हरिद्वार होते हुए श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर सम्पादन-कार्य सँभालने लौट आऊँगा।"

जुलाई 1975 के अंतमें हरिद्वारसे मथुरा आते समय अपने कार्यमें सहयोगके लिये स्वामी धर्मानन्दजी सरस्वतीसे परमार्थ आश्रम, हरिद्वारसे दो वर्षके लिये श्रीदिवाकर तिवारी, जो वाराणसीके निवासी हैं और परमार्थ आश्रममें व्यवस्थापकके पदपर कार्यरत हैं। इनके पिता वृन्दावनमें स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके यहाँ पूजा-पाठ-अनुष्ठान आदि करनेकी सेवामें थे। अतः दिवाकरजीको भी अच्छा लगा कि पिताका सान्निध्य प्राप्त होनेका बारम्बार अवसर मिलेगा। इधर चक्रजीका भी दिवाकर तिवारीपर असीम वात्सल्य था और दिवाकर भी इनपर पितृवत् श्रद्धा रखते थे, अतः आदेश मिलते ही पत्नी और नन्हें बच्चेके साथ मथुरा आ गये।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीकेशवदेवजीके मंदिर एवं लीलामंचके बीचके चारों ओरके कमरोंमेंसे प्रथम कक्षमें श्रीचक्रजीका आवास बना। (जिसमें

आजकल श्रीकपिलजी शर्माका कार्यालय है।) जो इनका आवास-कक्ष था; वही सम्पादकीय कार्यालय भी। कक्षमें ही एक ओर सादा तख्त शयनके लिये, सम्पादनके लिये टेबुल-कुर्सी। टेबुलके सामने केवल दो कुर्सी आनेवालोंसे बात करनेको। दाहिनी ओर उनके अनुज श्रीश्यामसुन्दरके लिए पृथक् टेबुल। उसके सामने थोड़ी नीचे एक चौकी पूजाहेतु बैठनेके लिये — बस।

श्रीकृष्णसंदेशका सम्पादन करके दिवाकरको समझा देते, वही प्रेसमें देता-लेता। स्वयं प्रपत्र सँभालनेका कार्य करते। अपने कक्षसे एक कक्ष छोड़कर दो कक्ष दिवाकरको रहनेके लिये दे दिये। (जिसमें आजकल कार्यालय है।) इससे कोई भी निर्देश देनेमें सुविधा रहती, इनकी भोजन-व्यवस्था भी दिवाकरके यहाँ रहती।

श्रीकृष्णजन्म-स्थानपर सभी सुविधाओंके मध्य इनका दैनिक जीवन वीतरागी संतके रूपमें ही रहा। सारा काम स्वयं ही कर लेते। केवल एक चपरासी बच्चूसिंह उनकी सेवामें रहता, जो कमरेकी सफाई और कागज आदि इधर-उधर पहुँचानेका कार्य करता। जीवन-यापनकी सारी सामग्री जिसमें ओढ़ने-बिछानेकी चीजें भी शामिल हैं, एक कपड़ेके बैगमें रहतीं जो वे यात्रामें स्वयं वहन कर सकें, किसीकी अपेक्षा नहीं। शरीर ढँकनेके वस्त्रोंमें दो कौपीन, एक गमछा, एक धोती और एक चादर। धोतीको सायंकाल स्नान करके सुखा देते और गमछा बाँधकर सो जाते। सप्ताहमें नित्यप्रतिके उपयोगके वस्त्रोंको स्वयं ही साबुनसे धोकर सुखा लेते। यह सेवा बच्चूसिंहसे भी नहीं लेते।

एक बात और — जब श्रीचक्रजी अपने कक्षमें आये, तब पहले ही उसमें फोनकी व्यवस्था थी। एक सम्पादकके लिये आवश्यक भी था। किन्तु आते ही सहजतासे फोन हटवाकर कनेक्शन कटा दिया— मुझे किसीको फोन करना नहीं है और किसीका फोन आये तो उससे बात करनेका अवकाश भी मेरे पास नहीं है।

प्रभुदयालजी झुनझुनवालाको पत्र द्वारा बताया— 26 नवम्बरसे 10

दिसम्बर तक स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती अध्यात्मरामायण' की कथा दिल्लीमें सुना रहे हैं। 11 दिसम्बरको वे बम्बई जायँगे। मैं 9 को हवाई जहाजसे उदयपुर, वहाँसे नाथ द्वारा और भीलवाड़ा होते हुए निम्बाहेड़ा जाऊँगा। 15 दिसम्बरको ही हवाई जहाजसे बम्बई पहुँचना है और 16 दिसम्बरसे 31 जनवरी तक स्वामीजीके साथ ही रहना है। अलग-अलग स्थानोंपर। इसी यात्रामें कोयम्बटूरमें 8 जनवरीसे 28 जनवरी तक वाल्मीकि रामायणका प्रवचन सुनना है। महाराजश्रीके द्वारा 15 फरवरी, 76 के पश्चात् ही श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर पहुँचूगा।

अब श्रीरामचरित लिखनेका मन है, अतः अध्यात्मरामायण और वाल्मीकिके रामायणका प्रवचनका श्रवण मेरे लिये सहायक होगा। दक्षिण तीर्थोंका भ्रमण भी सर्दियोंमें लाभदायक है।

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर आकर प्रातः 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' स्वयं लिखते थे और शाम तीन बजेसे 'शिवचरित' मुरलीधरजीको बोलकर लिखाते थे, जिसे वे आशुलिपिमें लिख लिया करते।

जनवरी 1976 में ही प्रभुदयालजी झुनझुनवालाने मनमें चाकुलियामें विशाल स्तरपर मानस-चतुश्शतीका उत्सव मनानेका निश्चय किया। इसके लिये उन्होंने श्रीचक्रजीसे निवेदन किया।

मानस-चतुश्शती-महोत्सव

चाकुलियामें बड़े स्तरपर मानस-चतुश्शतीका उत्सव आयोजित हुआ, जिसके कार्यक्रमकी पूर्व रूपरेखा श्रीचक्रजीके निर्देशनमें बनी। प्रभुदयालजीका कहना है कि इस उत्सवके आयोजक श्रीहनुमन्तलालजी ही थे। कोई संचालन समिति इसके लिये नहीं बनी थी। सारा प्रचार-प्रसार-आमन्त्रण श्रीहनुमन्तलालजीकी ओरसे था। उस समयके लब्ध-प्रतिष्ठित संतों-महात्माओं तथा प्रवचनकर्ताओंको आमंत्रित किया गया था। सभी आदेश, सुझाव श्रीचक्रजीसे आज्ञा लेकर ही किये गये। 15 फरवरी 1976 को पत्र द्वारा

ही चक्रजीने लिखा – तुम्हारी मानस-चतुश्शती-महोत्सवकी योजना बहुत उत्तम है। उत्सव अवश्य होना चाहिये। उत्सवमें पूज्या आनन्दमयी माँको चाकुलिया पधारनेकी बात पक्की कर लो। मैंने 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' लिखी है तो उनकी ओरसे मानस-चतुश्शती-स्मारिका लिख तो सकता हूँ; किन्तु थोड़ी देर लगेगी वैसी मनःस्थिति बननेमें। स्मारिकामें तुमने दो पत्रोंका दायित्व सौंपा है –

(1) श्रीहनुमान्‌जीकी ओरसे (2) श्रीतुलसीदासजीकी ओरसे। वह भेज रहा हूँ। 20 अक्टूबरसे 26 नवम्बर तकके लिये उत्सवमें डॉक्टर स्वामीके साथ मैं पहुँच रहा हूँ।

जनवरी 1976 के प्रारम्भमें ही जब कोयम्बतूरमें स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती द्वारा वाल्मीकि रामायणका प्रवचन हो रहा था, तब श्रीचक्रजीने अनन्तश्री महाराजजीको चाकुलियाके उत्सवके लिये आमन्त्रित किया। चाकुलिया – बिहारमें एक छोटी-सी जगह होनेसे स्वामीजीको इसकी जानकारी नहीं थी। उन्होंने चक्रजीसे पूछा– चाकुलिया है कहाँ? अपने शिथिल स्वास्थ्यके कारण हिचकिचाहट प्रकट की।

उनकी हिचकिचाहट और असमन्जसता देखकर चक्रजी आवेशके स्वरमें बोले–'भारतमें है, जमीनके नीचे गड्ढेमें है या जंगलमें है, पर आपको उसमें चलना अवश्य है। उत्सव मेरे हनुमान दादा कर रहे हैं।

श्रीचक्रजीके स्वरकी दृढ़ता एवं आत्मीयता देखकर मुस्कराकर बोले– ठीक है... ठीक है... मैं अवश्य चलूँगा। जहाँ कहोगे, चला चलूँगा। बात निश्चित हो गयी।

उत्सव प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही चक्रजी चाकुलिया डॉ० स्वामीके साथ अपने निश्चित कार्यक्रमके अनुसार पहुँच गये।

उत्सव 6 नवम्बर 1976 को प्रातःसे प्रारम्भ होनेवाला था। एक दिन पूर्व ही पूरे चाकुलियामें आनन्दकी लहर छा गयी। उत्सवको भव्य बनानेको

सबका उत्साह उमड़ पड़ा था। वन्दनवार, पताका, तोरणसे पूरा नगर सजा दिया गया था। पण्डालका प्रवेश-द्वार मंगल कलश एवं अल्पनाओंसे सुसज्जित किया गया था। कथा-मंच एवं पूजा-मण्डप तकका पथ पुष्पोंसे आच्छादित था और सुगन्धिसे सिंचित था। उत्सव-मंचको केलेके खम्भों एवं पुष्प-मालाओंसे सज्जित किया गया। मंचपर पदार्पणके द्वारोंको मंगल कलश एवं प्रदीपोंसे सजाया गया था।

इधर पूरी रात्रिपर्यन्त पुष्प-सज्जासे मंच सज्जित हो रहा था उधर श्रीचक्रजी प्रातः पौने तीन बजे नित्य नियमकी भाँति निद्रा त्याग कर पालथी मारकर स्तवन कर रहे थे। द्वार बन्द था, किन्तु गवाक्ष खुले थे; जिनपर जाली लगी थी। किसीके अन्दर आनेका प्रश्न ही नहीं। मच्छरदानीके अन्दर ही तख्तपर बैठे थे। स्तवनके बीच ही स्वर्ण-रोमा बालकपि उनकी गोदमें सहसा प्रकट हो गया। उसने अपने आगमनका आभास करानेके लिये चक्रजीका हाथ पकड़ कर मुखसे मंद स्वरमें ओंकारकी ध्वनि की। लिखनेमें समय लगता है, किन्तु सुखद संस्पर्श पाते ही चक्रजीके नेत्र खुले और अपने दादाका बालस्वरूप निहारकर हर्षातिरेकसे रोमाञ्चित हो उठे। क्षण भरमें अपनेको सँभालकर वे अपना दाहिना कर कपीश्वरके श्रीचरणोंपर रख धीरेसे बोले — दादा! आप आ गये, आदेश प्रदान कीजिये।

मन्दस्मित पूर्वक श्रीअञ्जनेयने कहा — मैंने अपना उत्सव सँभाल लिया है। प्रभुसे कह दो निश्चिन्त रहें। कहकर वहीं उन्हें स्नेह-दृष्टिसे देखते हुए अदृश्य हो गये।

स्नानादिसे निवृत्त होकर पूजा-पाठ करके जैसे ही चक्रजी उठे, तब उन्हींके समीपस्थ तख्तपर सोनेवाले डॉक्टर स्वामीने पूछा— आप प्रातः तीन बजे किससे बातें कर रहे थे?

हँसकर चक्रजीने उनसे इस चर्चाको टाल दिया, किन्तु 6 बजे जब

प्रभुदयालजी चरणवन्दना करने पहुँचे, चक्रजी हर्ष भरे स्वरमें कहने लगे— उत्साह-पूर्वक उत्सव आरम्भ करो। मेरे अपने दादाने सारा भार सँभाल लिया है। कहकर प्रातःकालकी घटना सुना दी।

प्रेमाश्रुपूर्ण नयन, पुलकित शरीर प्रभुदयालने विनम्र भावसे भरे हृदयसे निवेदन किया— हृदयमें एक बात बार-बार आती है कि जब सचमुच ही इस उत्सवके आयोजक श्रीहनुमन्तलालजी हैं, तो क्या वे सशरीर पधारकर, उत्सवकी शोभा बढ़ानेकी अनुकम्पा करेंगे?

प्रभुदयालके हृदयकी तीव्र आकांक्षा जानकर गम्भीर तेजस्वी स्वरमें चक्रजी बोले— तुम्हारी भावना सच्ची है तो श्रीहनुमन्तलालजी अवश्य ही पधारेंगे; किन्तु जिसे वे चाहेंगे, वही तो उन्हें पहचान पायेगा?,

'अब कोई पहचाने या न पहचाने, मुझ अकिंचनपर कृपा अवश्य हो।' मन-ही-मन कहते हुए प्रभुदयालजीने अपना मस्तक श्रीगुरुचरणोंपर रख दिया।

उत्सव शंख-ध्वनि, जयघोष एवं मंगलाचरणसे प्रारम्भ हुआ। संतोंका स्वागत, अभिनन्दन एवं मंच-संचालनका दायित्व श्रीहनुमान्जीकी ओरसे चक्रजी सँभाल रहे थे। मंचपर ही एक ओर श्रीहनुमान्जीका मानवाकार सुन्दर-सौम्य श्रीविग्रह करबद्ध विराजमान था। नेत्रोंकी भाव-भंगिमा एवं प्रसन्न मुद्रा ऐसी लग रही थी; मानो आनेवालोंका स्वागत करते हुए कुशल-क्षेम पूछ रहे हों। उत्तरीय धारण किये बड़ा ही भव्य स्वरूप था।

एक ओर पूजा-मण्डप था; मन्त्रोच्चारणसे दिशाएँ गुंजित हो रही थीं, दूसरी ओर विष्णुयज्ञका सुरभित धूम्र उठ रहा था। तीसरी ओर रामचरितमानसके अखण्ड पाठका सस्वर मधुर घोष गगनको गुञ्जित कर रहा था और मुख्य कथा-प्रवचन-मंचपर सन्तोंके समागमका उमड़ता आनन्द जन-जनको भाव-विभोर बना रहा था। मंचपर अनवरत पुष्प-वर्षा करते हुए जन-समाज जयघोष कर रहा था। मंचपर तथा उत्सवमें आये महापुरुषोंमें

अनन्तश्री विभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीस्वामी शान्तानन्दजी महाराज, श्रीसीतारामशरणजी महाराज, लक्ष्मण किलाधीश–अयोध्या, अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती, श्रीस्वामी धर्मानन्दजी सरस्वती, परमार्थ आश्रम-हरिद्वार, स्वामी सदानन्दजी सरस्वती-परमार्थ निकेतन-ऋषिकेश, श्रीबैरागी बाबा पुणे, श्रीस्वामी आत्मानन्दजी, विवेकानंद आश्रम-रायपुर, मानस मर्मज्ञ पं० रामकिंकरजी उपाध्याय, वेदान्तभूषण पं० रामकुमारदासजी रामायणी, मणि पर्वत, अयोध्या, पं० भैरव प्रसादजी द्विवेदी-रामवन, डॉ० रामकुमारजी वर्मा, फादर कामिल बुल्के, सय्यद महफूज हसन रिजवी 'पुण्डरीक', श्रीविष्णुकान्तजी शास्त्री, श्रीकल्याणमलजी लोढ़ा आदि प्रमुख थे।

इस उत्सवके आरम्भमें पूज्या आनन्दमयी माँ भी पधारी थीं और उन्होंने 'ध्यान' का सत्संग किया। अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी उत्सवमें तीन दिन विराजे। इन्होंने प्रभुदयालजीसे पूछा— मुझसे क्या सुनना चाहते हो?

'राधा-प्रेम।' प्रभुदयालजीने उत्तर दिया। उत्तर सुनते ही श्रीचक्रजी तेजस्वी स्वरमें बोले— राधा-प्रेम सुनना तो चाहते हो, पर क्या राधा-प्रेम सुनने योग्य तुम्हारी मनःस्थिति है भी सही?

सकुचते हुए प्रभुदयालजी निरुत्तर हो गये। अनन्तश्री महाराजजीने स्थिति सँभालते हुए कहा— राधा-प्रेम तो विलक्षण है ही, श्रीभरत-प्रेम भी किसी प्रकार कम नहीं है। अतः भरत-प्रेमपर ही स्वामीजीने बड़ा मार्मिक प्रवचन किया।

उत्सवकी प्रतिष्ठाके दिन ही श्रीचक्रजी द्वारा रचित 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' और 'हमारे धर्मग्रन्थ' का विमोचन हुआ। मानस-चतुश्शतीमें 'स्मारिका' प्रकाशित हुई थी, जिसमें मुख्य आयोजक श्रीहनुमंत लालजीकी ओरसे उनके आराध्य श्रीरघुनाथजीको एक पत्र समर्पित किया गया। दूसरा

पत्र गोस्वामी तुलसीदासजीको। यह दोनों पत्र चक्रजीने लिखे थे, जो मानव मात्रके लिये प्रेरणाप्रद हैं। श्रीचक्रजीने इसी उत्सवमें मानस तत्त्वान्वेषी वेदान्तभूषण पं० रामकुमारदासजी रामायणी मणिपर्वत-अयोध्याको शॉल ओढ़ाकर माल्यार्पणसे सत्कार एवं अभिनन्दन किया।

सम्पूर्ण विश्वमें श्रीरामचरितमानसके रचना-कालके चार सौ वर्ष पूर्ण होनेके उपलक्ष्यमें चैत्र शुक्ला नवमी संवत् 2030 से चैत्र शुक्ला नवमी संवत् 2031 तक उल्लाससे उत्सव मनाया गया था। बिहार प्रदेशके अन्तर्गत चाकुलियामें यह समारोह कार्तिक पूर्णिमा शनिवारसे मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी शुक्रवार अर्थात् 6 नवम्बर 1976 से 26 नवम्बर 1976 तक मनाया गया। उत्सवका कार्यक्रम इस प्रकार रहा—

6 नवम्बरको नगर संकीर्तन

6 नवम्बरसे 26 नवम्बर तक भजन, सत्संग एवं मंचपर प्रवचन

13 नवम्बरसे 26 नवम्बर तक रात्रि 8 बजेसे गोपाल राममण्डल द्वारा रामलीला प्रदर्शन।

17 नवम्बरसे 25 नवम्बर तक नवाह्न क्रमसे श्रीरामचरितमानसका पाठ सुदामाकुटीमें। महात्मा श्रीश्यामसुन्दर दासके नेतृत्वमें 50 महात्माओं द्वारा पाठ होता था।

18 नवम्बरसे 26 नवम्बर तक प्रतिदिन विष्णुयज्ञ-वाराणसीके प्रसिद्ध कर्मकाण्डी श्रीजोषणरामजीके आचार्यत्वमें 60 ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित हुआ।

26 नवम्बरको रामलीलामें श्रीराम-जानकी-विवाहका विशेष उत्सव।

27 नवम्बरको प्रातः 8 बजेसे मानस-पाठकी परिसमाप्ति एवं अपराह्न तीन बजेसे मंगल कलश-यात्रा सहित नगर-संकीर्तन बड़े उल्लाससे हुआ।

आञ्जनेय सदेह पधारे

इस उत्सवमें प्रभुदयालजीकी आकांक्षा थी— श्रीहनुमान्‌जी महाराज सदेह दर्शन प्रदान करें, इसीलिये श्रीहनुमानचालीसाके सैकड़ों पाठ सामूहिक और व्यक्तिगत रूपसे किये गये। श्रीचक्रजीके सत्य संकल्प और भाव निष्ठासे श्रीहनुमान्‌जी महाराज इस उत्सवमें पधारे भी और प्रभुदयालजीको दर्शन भी दिये। उन्हींके शब्दोंमें विवरण है—

'जिस पूजा-मण्डपमें श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठ चल रहे थे— चार-चार ब्राह्मण बारी-बारीसे पाठ करते थे। एक व्यक्तिकी तीन-तीन घंटेके हिसाबसे पारी आती थी। पास ही दूसरे मण्डपमें विष्णुयज्ञ चल रहा था। एक दिन प्रातः 9 बजे मैं (प्रभुदयाल) यज्ञमण्डपकी परिक्रमा कर रहा था। एक सौ आठ परिक्रमा करनी थी। परिक्रमाके बीचमें ही मेरी दृष्टि मानस-पाठके मण्डपमें मंचकी ओर गयी। मैंने देखा एक साधु जिसका वेश आञ्जनेयकी आत्मकथामें छपे श्रीहनुमान्‌जीके वेशके समान था, मुख मण्डल वैसा ही मिल रहा था। वे नेत्र निमीलित किए बड़े प्रेमसे कथापाठ श्रवण कर रहे थे। उन्होंने रामनामी चादर ओढ़ रखी थी, जिसमेंसे कण्ठ प्रदेशके नीचेका दाहिने स्कन्धका भाग खुला दिखायी दे रहा था जो, जो घने श्वेत रोमोंसे आच्छादित था। रोमोंमें छिपा होनेपर भी उनके अधरोंकी स्थिति वानराकार-सी स्पष्ट लक्षित होती थी। इतनेपर भी मेरे मनमें उनके श्रीहनुमान्‌जी होनेका नहीं, साधु होनेका भाव आया। ये कई दिनोंसे बैठकर वहाँ पाठ-श्रवण कर रहे थे। ऐसा मुझे स्मरण है, इन्हें प्रतिदिन देख भी लेता था। साथ ही मनमें उठा कि इन्हें भोजन कराया गया है या नहीं? संतके भूखे रहनेकी आशंकासे अपने अपराधका भाव जागा और परिक्रमा करते-करते ही सामने जाते बड़े पुत्र राजाको पुकारा— राजा! इधर आओ। उसके समीप आनेपर मैंने कुछ फल लाकर उन साधुको दिखाते हुए अर्पित

करनेको कहा। पुत्रने चार सेब लाकर उन्हें अर्पित किए और उन्होंने मेरे देखते-देखते दोनों कर-पल्लव इस प्रकार उन फलोंपर रखे, मानो कह रहे हों— मैंने इन्हें स्वीकार कर लिया है। मेरे मनमें आया— पाँच मिनटमें परिक्रमा पूरी होते ही मैं उनसे परिचय पूछूँगा। परिक्रमा पूरी होते ही मैं उन्हें देखता हुआ ही आ रहा था। मंचके समीप तक वे मुझे फलोंपर हाथ धरे दिखते रहे। मानस-पाठके मंचपर कदम रखते ही जैसे प्रणाम करनेको पलक झपकी तो देखा वे फल सहित अदृश्य हो गये। मैं तो उन्हें देखता हुआ ही आ रहा था। पूछनेपर पाठकर्त्ताओंने बताया कि वे तो प्रतिदिन ही विराजे रहे, हम लगातार नित्य ही देख रहे हैं। हमारे किसीके समक्ष तो भोजनको या किसी कृत्यको उठे ही नहीं। अब जो तुरन्त मनमें निश्चय हो गया—कृपा करके अपने असली रूपमें साधुवेश धारण करके करुणावारिसे सिञ्चन करते हुए श्रीपवनतनय ही पधारे। हृदय अभिभूत हो उठा और आकुल-व्याकुल होकर उसी समय उत्सव-स्थलका कोना-कोना छान मारा, पर वे कहीं नहीं मिले। अपने अपराध-बोधसे मन बड़ा खिन्न हो गया। अब 'हारेको हरिनाम' एवं संत जन ही आश्रय हैं। तुरन्त जाकर श्रीचक्रजीसे निवेदन किया। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर यही कहा— वे सशरीर पधारे, पर जब तक स्वयं पहचान न करा दें, साधारण जन कैसे पहचान सकते हैं? **'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।'** तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हुई न। उनकी असीम कृपाका अनुभव करो।

दर्शन देनेकी कृपापर प्रभुदयालके नयन भर आये, मन आत्म-विस्मृत हो गया। मुझ दीन-हीन-तुच्छपर अनुकम्पा की... कितनी कृपा की... किन्तु यह मुझे कृपा प्राप्त हुई अथवा उन्हें कृपा-परवश किया मेरे समर्थ गुरुदेवके संकल्पने। मुझ बालकपर गुरुकी करुणाने, उनकी अहैतुकी वत्सलताने सबकुछ सुलभ बना दिया... मेरा क्या वश... ? उन्होंने श्रीचक्रजीके चरण कमलोंपर मस्तक धर दिया। अभिव्यक्तिके योग्य शब्द नहीं थे।

समारोह सम्पन्न होनेके पश्चात् जब एक दिन श्रीचक्रजी अपने कक्षमें अकेले ही विराज रहे थे... मैं उन्हें प्रणाम करने गया। मनमें एक प्रसन्नता थी उत्सवके सविधि सकुशल पूर्ण हो जानेकी। प्रणाम करके जैसे ही मैंने सिर उठाया तो देखा— उनका मुखमण्डल दिव्य तेजोमय आभासे उद्भासित है, मेरे नेत्र उनके मुखमण्डलपर टिक नहीं पा रहे थे।

'प्रभुदयाल! आज अभी जो चाहो, सो माँग लो।'

उनका दिव्य स्वरूप देख और उदार वाणी सुनकर मैं आनन्दसे विभोर हो गया। मैंने अपना अभिलषित भाव निवेदन किया। (जो कहा— वह बतानेकी बात नहीं है) 'देखो! जो तुम चाहते हो, उसे पानेमें कुछ परेशानी भी हो सकती है। पुनः विचार कर लो।' किन्तु मैं अटल रहा।

उन्होंने प्रसन्न मनसे स्वीकृतिमें सिर हिला दिया।

मैं कृतार्थ हो गया।

केवल प्रभुदयालजीको ही नहीं, कई लोगोंको इस उत्सवमें विलक्षण और अलौकिक अनुभव हुए थे। आज भी लोग इस उत्सवकी चर्चा करते नहीं अघाते। चाकुलिया-जैसे छोटे-से स्थानपर ऐसे विशाल और सुव्यवस्थित उत्सवका होना आश्चर्यजनक ही था, जिसके आयोजक-व्यवस्थापक स्वयं श्रीहनुमन्तलालजी हों; जहाँ श्रीचक्रजी स्वयं खड़े हों वह इतना तो क्या, कितना भी बड़ा आयोजन क्यों न हो, उसकी सफलता तो सदा निःसंशय ही है। इसीसे इस उत्सवके आनन्द प्रवाहका वर्णन कोई नहीं कर पाया। जिन आँखोंने जो भी देखा, वह अनुभवगम्य है।

पर-दुःख निवारण

उत्सवकी आनन्दपूर्वक परिसमाप्तिके पश्चात् मथुरा श्रीकृष्ण जन्म-स्थान-पर आ गये। जनवरी-फरवरी जन्मभूमि-मथुरामें सम्पादनका कार्य निबटा कर 19 मार्च 1977 को अयोध्या-जानकी महलमें आ गये 14.03.77

को प्रभुदयालजीने श्रीचक्रजीके लिये पत्र लिखकर अपने पारिवारिक लौकिक समस्याओंका समाधान चाहा— "मेरे किसी परिचितके यहाँ कई पीढ़ियोंसे पुत्र सन्तान उत्पन्न नहीं हो रही है और कन्याएँ ही जन्म लेती हैं। श्राद्धकर्म आदि कई उपाय किये जा चुके हैं। कोई लाभ अब तक प्रतीत नहीं हुआ। कुछ उपाय बतानेकी कृपा कीजियेगा।'

उन्होंने अयोध्यासे ही इस पत्रका समाधान भरा उत्तर दिया—

तुम्हारे पत्रसे एक नवीन बातपर ध्यान गया है। जब गया-श्राद्धके प्रयत्नमें बार-बार बाधा पड़े, तब माना जाता है कि कुलका कोई व्यक्ति प्रेत-योनिको प्राप्त हुआ है। जीवको अपनी देहसे मोह हो जाता है, यद्यपि देहमें बहुत कष्ट है, किन्तु किसीको उसी प्रेत-देहसे मोह हो जाय और वह उस देहसे छूटना ही न चाहे। सम्भव है कि वंशमें पुत्र न होनेकी यह कड़ी बाधा हो। तुम दो काम करो—

1. एक बार चुनारकी ओर जब भी जाओ, बिना पूर्व कार्यक्रमके वाराणसीमें 'पिशाचमोचन' पर पिण्डदान करवा दो— मुक्तिके लिये। वहाँ विश्वम्भरनाथ द्विवेदी आनन्द काननढुण्ढिराजमें रहते हैं। वे सब नियमपूर्वक प्रबन्ध करा देंगे। किसी अच्छे कर्मकाण्डीके द्वारा श्राद्ध-पिण्डदान शास्त्रानुसार करवा देंगे। गया-श्राद्धकी बात उसके बाद करना।

2. श्रीरामकुमार दासजी महाराज, मणिपर्वत-अयोध्याने कहा है— जैसे ही परिवारमें कोई स्त्री गर्भवती हो, संकल्प कर लो— यदि उसे पुत्र हुआ तो पुत्र हो जानेपर श्रीराम-अर्चा करा दी जायगी— पहले नहीं करानी है।

अब तुम्हारे लिये सन्देश यह है— भगवच्चरणोंमें प्रीति बढ़े, सत्संग और सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय-नामजप प्रतिदिन, नियमित भगवत्प्राप्तिकी प्रभुसे प्रार्थना— यही परमार्थका साधन है। जहाँ भी त्रुटि दिखे, उसे दूर करनेकी सच्चेष्टा होनी चाहिये।

समाधान पानेपर अपने परिचित सज्जन द्वारा उपर्युक्त दोनों उपाय काममें

लिये और एक वर्ष पश्चात् उस कुलमें पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई एवं जहाँ कन्याएँ विवाहिता होकर गयी थीं, उन्हें भी दो वर्षके अन्दर पुत्रोंकी प्राप्ति हुई।

श्रीजयदयालजी डालमिया दिल्लीसे अयोध्या जानकी महल आ गये थे। श्रीचक्रजी उनके साथ चार अप्रैल तक अयोध्या रहकर चित्रकूट गये। वहाँसे 11 अप्रैल तक मथुरा पहुँचे। 15 अप्रैल तक रहकर बिहारीजीके चरण-दर्शन कर 19 अप्रैलसे 3 मई तक परमार्थ-निकेतन, ऋषिकेशमें अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दसे पाक्षिक भागवत श्रवणको चले गये।

अमृतसरमें विजयका मार्गदर्शन

5 मई 1977 को हरिद्वारसे अमृतसर पहुँचे। अमृतसरमें रहनेवाले श्रीचिम्मनलालजीके अनुरोधपर एक-दो वर्षमें एक बार जाते ही रहते थे चिम्मनलालजी द्वारा बनवाये गये सत्संग-भवनमें ठहरने तथा सत्संग प्रतिदिन चलता ही रहता। सन् 1959 से ही इनका श्रीचिम्मनलालजीसे सम्पर्क था।

एक दिन सत्संग-कथाका विश्राम हो चुका था। श्रीचक्रजी अभी मंच-पर ही विराजमान थे। आजके सत्संगका विषय था— सर्वेश्वरसे बढ़कर अपना कोई सुहृद्, हितैषी, शुभचिन्तक नहीं है। आप उससे कोई भी सम्बन्ध स्थापित कर लें, वह उसीको मान लेता है। आप जितनी दृढ़तासे निभायेंगे, कन्हाई भी उतना दृढ़तर बँधता जायगा... । लोग उठ-उठ कर जाने लगे और कई श्रीचक्रजीको प्रणाम करने आ रहे थे। उसी समय एक बालिका अपने पिताकी अंगुली पकड़े उनके सामने खड़ी हो गयी।

'यह बालिका आपसे कुछ पूछना चाहती है।' उसके पिताने प्रणाम करते हुए निवेदन किया। बालिकाने भी प्रणाम करके उनकी ओर देखा, उसकी दृष्टिमें बाल-सुलभ सरलताके साथ जिज्ञासा भी थी।

'पूछो, क्या पूछना है तुम्हें? पर उससे पहले अपना नाम बताओ।'

चक्रजीने कहा।

'विजय लक्ष्मी शर्मा।' बालिकाने उत्तर दिया।

'हाँ! अब पूछो, क्या पूछना है तुम्हें?'

'आपने कथामें कहा— श्यामसुन्दरको अपना जो चाहो बना सकते हो, तो क्या वह मेरा भैया बन सकता है?'

'हाँ.........हाँ......क्यों नहीं, अवश्य बन सकता है।' चक्रजीने स्नेहसे विजयके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा— देखो, वह मेरा भी तो छोटा भाई है।

'सच?' बालिकाने ताली बजाते हुए कहा— मुझे भी तो छोटा भाई चाहिये। वह क्या मेरे साथ खेलेगा?

'हाँ, वह खेलेगा, और खायेगा ही नहीं, झगड़ेगा भी, खिजायेगा भी, चोटी भी खींचेगा और तेरे रूठनेपर मनायेगा भी।'

'मैं उसे क्या कहकर बुलाऊँ?' बालिका भैयासे मिलनेकी लालसामें प्रसन्न थी।

'उसका जो नाम तुम्हें अच्छा लगे, उसके तो बहुत सारे नाम हैं... कृष्ण, गोविन्द, घनश्याम, मुरारी, गोपाल, श्याम... ।'

'बस! बस!! बस!!! मुझे तो 'गोपाल' नाम ही प्यारा लगता है। वह मुझे कैसे और कहाँ मिलेगा?'

'इसका उपाय मैं तुम्हें बतला दूँगा। तुम किसी दिन निश्चिन्त मनसे पिताके साथ ही आओ।'

पिताकी ओर देखा बालिकाने नेत्र उठाकर। उन्होंने भी मुस्करा कर स्वीकृति दे दी। अवश्य ले आऊँगा तुझे, अब चल और प्रणाम करके पिता-पुत्री घर चले गये।

दूसरे दिन ही प्रातः बालिका अपने पिताके साथ ठीक दस बजे आ गयी। आते ही आतुरतासे विजय बोली— आपने कल मुझसे भैयासे मिलनेका उपाय बतलानेको कहा था।

'हाँ! कहा था, अब सुनो— जब भी समय मिले, आँखें बन्द करके बैठ जाओ और मन-ही-मन देखो— बहुत ही सुन्दर साँवला-सलोना, विशाल नेत्रोंवाला चार-पाँच वर्षका तुम्हारा गोपाल भैया तुम्हारे सामने बैठा है। उसने पीले रंगकी रेशमकी कछनी बाँध रखी है। सिरपर घुँघराले काले-काले केश हैं, जिसमें मयूरपिच्छ धोंसा है। पैरमें छोटे-छोटे घुँघरूवाले पायजेब और हाथोंमें सोनेके कंगन हैं। पीत झगुलियाँ पहने है। अपनी बड़ी-बड़ी रसीली आँखोंसे तुम्हारी ओर देखकर मुस्करा रहा है। उसकी हँसी बहुत-बहुत मधुर है और मोतियोंकी लड़ी-जैसे दाँत जैसे हीरेके बने हों। तुम अपने हाथमें किशमिश लेकर प्यारसे एक-एक दाना उसके मुखमें देती जाओ। धीरे-धीरे वह तुम्हारे पास आयेगा, बातें करेगा और खेलेगा भी, पर एकदमसे नहीं। शुरूमें वह झिझकेगा। तुम अपने स्नेहसे उसकी झिझक मिटा देना, फिर क्या कहने?'

'क्या वह आपके साथ भी खाता-खेलता हैं?'

'हाँ-हाँ।'

'वह आपका छोटा भाई है तो आपको वह क्या कहता है?'

'मैं उसका दादा हूँ। वह मुझसे दादा ही कहता है।'

'ऐसे तो आप मेरे भी दादा हुए न! मैं भी दादा कहूँ?'

'हाँ अवश्य। मैं तुम्हारा भी दादा हूँ।' यह घटना 1959 की है। इसके पश्चात्से ही वह श्रीकृष्णको ही नहीं, चक्रजीको भी राखी बाँधने लगी। भाईदूजपर तिलक करती। यदि चक्रजी मथुरा होते तो अमृतसरसे लिफाफेमें भेजती। चक्रजी भी राखीके उपहारमें कुछ राशि अवश्य देते और समझाते—

देख, कन्हाईसे स्नेह चाहे जितना करना, पर उससे कुछ माँगना मत। माँगने-पर तो नुकसानमें रहते हैं। वह बिना माँगे ही बहुत कुछ देता है। जब हम थोड़ा-बहुत माँगने लगते हैं तो वह उतना ही देकर बैठ जाता है।

विजयके बड़ी होनेपर विवाहकी बात चल पड़ी, पर उसने स्पष्ट कह दिया—पुरुष मात्रसे मेरा एक ही सम्बन्ध है भाईका केवल, वही बना रहे। संसारके सभी पुरुष मेरे गोपालके ही तो स्वरूप हैं। इसके उदाहरणमें चक्रजी द्वारा बतायी एक घटना स्मरण आ रही है—

विजयका भयसे जैसे कोई परिचय ही नहीं था। वह चाहे जब, चाहे जहाँ भीषण कठिन समयका हँसते-हँसते सहज सामना कर लेती थी। एक बार रात होती जा रही थी और वह साइकिल लेकर 'घूमने जा रही हूँ' कहकर निकल पड़ी। माता-पिता रोकते रह गये। किशोरावस्थाकी अल्हड़पनमें कह दिया कि अभी-अभी आती हूँ। विग्रह-सज्जाको कुछ सामान दिया था। सोचा— सम्भवतः दुकान खुली हो। रात होती जा रही थी और शहर सुनसान हो गया था। यदा-कदा ही कोई दुकान खुली थी। समाजके अवांछनीय तत्त्व इसी समय सक्रिय होते हैं। विजय दो चौराहोंको क्रास करके अपने घरकी गलीकी ओर मड़ने लगी कि एक ओरसे आकर एक युवकने साइकिलका हैण्डिल पकड़ लिया— 'किस ओर?' बिखरे बाल, गलेमें बँधा रूमाल — इतना ही देख सकी। उसे कुछ उत्तर दे, उससे पूर्व ही एक और गुण्डे-जैसे दिखनेवाले युवकने दूसरी ओरसे आकर हैण्डिल पकड़ लिया। अब साइकिलपर बैठे रहना निरर्थक था। वह उतर पड़ी और सीटपर हाथ धरे साथ चलने लगी। ये दोनों उलटी-सीधी बातें कर यकायक हँस पड़े। तभी दूरसे आवाज़ आयी— 'कौन है?' वे दोनों बोलें, इससे पूर्व ही विजयने जोरसे पुकारकर कहा— दादा! मैं हूँ— विजयको देखिये न! ये जाने कौन दोनों लोग मुझे जाने नहीं दे रहे हैं। दो मिनट पश्चात् ही सामने अँधेरेमेंसे प्रकट हुए एक उन्हीं जैसा

रोबवाला आदमी—

'क्या हुआ री?' तीखे स्वरमें उसने कहा।

'दादा! देखिये इन दोनोंको।' उसने विजयसे कहा— तुम्हें जाना कहाँ है?

विजयने सरलतासे कहा— अब कहीं नहीं... अब तो मैं घर जाऊँगी। साइकिलका हैण्डिल पकड़नेवाले दोनों युवक तीसरे सशक्त व्यक्तिको देखकर डर गये। वह सम्भवतः इनका सरदार था अथवा प्रभु द्वारा प्रेरणा पाकर आनेवाला अथवा वे स्वयं। जो भी हो, उसने उन दोनोंको डाँटकर हट जानेको कहा और स्वयं साइकिलका हैण्डिल पकड़ते हुए पूछा— घर कहाँ है? विजयके संकेत द्वारा बतानेपर आदेशात्मक स्वरमें बोला— यह कोई घूमनेका समय है? पीछे बैठो... मैं छोड़ आता हूँ। माता-पिताने पहले ही मना किया था। न मानना ठीक नहीं। घर आकर दरवाजा खटखटाया। माता-पिता अकुलाये-घबड़ाये प्रांगणमें इधर-उधर घूम रहे थे विजयकी प्रतीक्षामें। दरवाजा खोलनेपर पिताने देखा— गुण्डों-जैसे एक आदमीके साथ विजय है। न जाने कितनी आशंकाएँ उनके ममतातुर हृदयमें उठ गयीं। हाथ जोड़कर उस व्यक्तिने अभिवादन किया और बोला— बहिन तो बावरी है, देर-सबेर घरसे मत निकलने दिया कीजिये। समय अच्छा नहीं है। कहकर विजयसे बोला— चलो, अन्दर जाओ। रातको बाहर नहीं निकलना। कृतज्ञता प्रकट करते हुए माता-पिताने कुछ खाने और चाय पीनेका आग्रह किया, पर वह हाथसे मना करता हुआ चला गया द्वारपरसे ही।

कुछ दिनों बाद चक्रजी पुनः आये हुए थे अमृतसर। विजयने निवेदन किया— दादा! भजन कैसे बढ़े? दृढ़ता कैसे आये जीवनमें।

'जा! शिवजीको जल चढ़ाया कर, सब ठीक हो जायगा। वही भगवत्प्रीति देते हैं।' चक्रजीने कहा। वह महाशिवरात्रिका व्रत एवं श्रावणमें व्रत करते हुए जल चढ़ाने लगी।

एक बार अमृतसरमें ही विजयकी अनुपस्थितिमें माता-पिताने चक्रजीसे निवेदन किया— विजय विवाहके नामसे चौंकती है। प्रयास करते ही रोने लगती है। समझानेपर समझती नहीं। एक बार आप ही समझाकर देखिये। माता-पिताके मनकी आकांक्षा जानकर दूसरे ही दिन माता-पिताके सामने ही विजयके आनेपर उसकी पीठपर स्नेहसे थपकी देते हुए ओजस्वी स्वरमें वे बोले— विजय! मैं तेरे बड़े भाई होनेके नाते तेरा विवाह करना चाहता हूँ। बता, तुझे कैसा घर-परिवार और पति चाहिये? तेरे मनको जो भी अच्छा लगे अथवा जो भी तेरी शर्त हो, वह पूरी होगी, चाहे कितनी भी कठिन बात क्यों न हो।

विजयपर तो मानो पहाड़ टूट पड़ा। वह तो चेतना-शून्य होकर बेहोश हो गयी। जब चेतना लौटी तो आँखोंसे आँसुओंकी धार बह चली। संयत होनेपर बोली— दादा! आप भी ऐसा कह रहे हैं? जरूर मेरेमें कोर-कसर है। दादा आप तो मुझे यही आशीर्वाद दीजिये कि मेरा मन गोपालको छोड़कर अन्यत्र न जाय और ऐसा आशीर्वाद तो आपसे ही पा सकती हूँ।

श्रीचक्रजीने सिरपर हाथ फेरते हुए आश्वासन देते हुए कहा— मैं तो तेरी परीक्षा ले रहा था — मनकी थाह पा रहा था। जब तुझे कोई अन्य पसन्द नहीं है, तब फिर सर्वतोभावेन कन्हाईमें ही मन लगाओ।

श्रीचक्रजी आनन्द वृन्दावनमें स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके आश्रममें ठहरे थे। विजय भी सत्संगके लिये वहाँ आ गयी। उस समय बगीचीमें कदम्ब वृक्षके नीचे सत्संग हो रहा था। सत्संग समाप्त होनेके पश्चात् चार-पाँच लोग ही पीछेसे रह गये थे। अध्यात्म-चर्चा करते हुए श्रीचक्रजी सबको प्रसादमें सेब दे रहे थे। सबके बाद विजयने हाथ पसारे। चक्रजीने मुस्कराकर उसकी अञ्जलीमें एक सेब रख दिया। प्रसाद पाते ही खा लेना चाहिये— सोचकर विजयने सेब मुखकी ओर उठाया तो उसकी दृष्टि सेबपर पड़ी। उसने देखा— जैसे उसपर किसीने पतली सींकसे 'भैया' लिखा हो। तुरन्त ही उसने

प्रेम-विह्वल-सी होकर चक्रजीको दिखाया— दादा! देखिये, यह क्या लिखा है? देखकर चक्रजी भी मुस्करा उठे। विजयको लगा— मेरे गोपालने ही हमारे सम्बन्धको दृढ़ करनेके लिये अपनी ओरसे स्वीकृतिस्वरूप 'भैया' लिखकर भेजा है।

एक बार चक्रजीने विजयके पिता मुरारी शर्मासे कहा— मुजफ्फरनगरके 'सत्संग-भवन' में बहुत सुन्दर कथा हो रही है। तुम परमेश्वर दयालके यहाँ विजयको भेज दो। उन्होंने सहर्ष भेज दिया। दो दिन पश्चात् ही मुरारी शर्माको बुलाकर कहा— तुम वृन्दावन जा ही रहे हो तो विजयको भी लेते जाओ। वहाँ इसका मन स्वाभाविक लगेगा। अभी मैंने तो इसलिये कहा था— तुम मुझे सचमुच विजयका भाई समझते भी हो या नहीं।

एक बार अमृतसरमें ही विजयकी माँने चक्रजीको उलाहना दिया— आप अपनी इस पगली बहिनको तनिक समझाइये तो— यह रातमें उठकर हलुवा बनाती है और बिना खाये रखकर सो जाती है। मैं पूछती हूँ कि जब हलुवा बना ही लिया तो खा लेती, किन्तु यह मेरी बातका कोई उत्तर नहीं देती।

श्रीचक्रजीने विजयसे पूछा— तब उसने बताया— दादा! यह गोपाल बड़ा अद्भुत है। कभी-कभी आधी रातको स्वप्नमें चोटी खींचकर कहता है— मुझे भूख लगी है— तू हलुवा बना। मैंने कहा— अरे चुप रह न! अभी सो जा, सबेरे बना दूँगी।

लेकिन वह तो मानता ही नहीं... अभी खाऊँगा... अभी खाऊँगा... कहकर मचलने लगता है। अब क्या करू? रातको उठकर स्टोव जलाकर हलवा बनाती हूँ खूब सारा। पता नहीं, फिर कह दे कि 'थोड़ा बनाया है। बनाकर कह देती हूँ— अब खा ले, जितना खाना हो' और मैं तो सो जाती हूँ। आप ही कहिये दादा! भला माँको मैं कहूँ कि क्यों बनाया गया।

विजयकी बात सुनकर चक्रजी प्रसन्न हो गये— कुशल समझ कि बनाकर

ही छुट्टी मिल गयी, अन्यथा वह कहता— अब बैठकर मुझे खिला, तब? अपनी पढ़ाई पूरी करके विजय एक कन्या-विद्यालयमें अध्यापिका हो गयी।

अभी पिछली बार पाकिस्तानके युद्धके समय अमृतसरपर बम-वर्षा हो रही थी। भारतीय आकाशमें ही तोपें, गोले चल रहे थे। खतरेका भोंपू बजते ही सब सुरक्षित स्थानोंपर जा छिप जाते थे। लेकिन विजय छतपर जाकर निर्भीकतासे इधर-उधर चलनेवाले लाल-लाल गोलोंको देखकर ताली बजा रही थी, हँस रही थी। माता-पिताने सीढ़ियोंपर जाकर कई बार पुकारा भी, पर वह उल्लासके साथ कह देती— देखिये न पिताजी! मेरा गोपाल पटाखे फोड़ रहा है। देखकर आनन्द आ रहा है। मुरारी शर्माने चक्रजीसे निवेदन किया तो उन्होंने उन्हींको उलटा समझाया— सृष्टि और प्रलय जिसकी क्रीड़ा है तो भाई भी क्रीड़ामें इतना प्रमत्त कभी नहीं हो सकता कि उसकी बहिनको आघात लग जाय।

विजय अपने माता-पिताके साथ सदा वृन्दावन आती-जाती रहती थी। इसके पिताजी कभी गिरिराजजीकी तलहटीमें हैं, कभी किसी वृक्षके नीचे हैं तो कभी रासलीलाका आनन्द ले रहे हैं। इस समय विजयने विद्यालयसे अवकाश प्राप्त कर लिया है।

श्रीडोंगरेजी महाराजकी कथा

श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर — 25 मई 1977 को योग-निकेतन, उत्तरकाशीमें प्रवासके पश्चात् जुलाईमें श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर आ गये। 30 अगस्त 1977 भाद्रपद कृष्ण द्वितीयासे 9 सितम्बर 1977 तक पूज्य श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज द्वारा गुजरातीमें भागवत-कथा श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा-पर हुई। इस कथाके आयोजनकी व्यवस्था श्रीजयदयालजीने की तथा वे ही सपरिवार परिकर सहित इस कथाके मुख्य श्रोता थे। अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती श्रीकृष्ण जन्मस्थानके अध्यक्ष थे। वे कथाके

शुभारम्भमें पधारे और उन्होंने अपने प्रवचनमें कहा– श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर आज परम सिद्ध पूज्य श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज द्वारा भागवत-कथा प्रारम्भ होने जा रही है। श्रीडोंगरेजी महाराजको 'अभिनव शुकदेव' कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनका तपोनिष्ठ जीवन परमोज्ज्वल संतत्वसे भरा है। जिन शास्त्रीय और अध्यात्मपथके पाथेयरूप सिद्धान्तोंका अपने प्रवचनमें निरूपण करते हैं, उनका स्वयं अपने जीवनमें पालन भी करते हैं। जैसे ये सारे सिद्धान्त इनके जीवनमें घुल-मिल गये हैं। उनके पालनके लिये इनके द्वारा कोई प्रयत्न नहीं होता तो वे स्वतः सहज ही हो जाते हैं। इस आचरणके द्वारा इनके व्यक्तित्वमें अचिन्त्य भगवत्-शक्तिकी दिव्यता भर गयी है। सरलता, सहजता एवं सादगी इनकी नित्य शाश्वत-संगिनी है।

इनका भागवत प्रवचन क्या है, मानो प्रेमलक्षणा भक्तिका उमड़ता हुआ अजस्र रससिंधु है। कथामें भी इनकी अन्तर्मुखता बनी रहती है, जिसमें एक अनोखा भावोद्वेलन लिये भगवल्लीलाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। इनका समग्र जीवन आचरणीय और साधकोंके लिये अनुकरणीय है। इधर शील-संकोच और विनयकी प्रतिमूर्ति श्रीडोंगरेजी महाराज मानो भूमिमें गड़े जा रहे हों। वे अत्यन्त विनके साथ भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले – आप तो सब तरहसे हमारे वन्दनीय–प्रणम्य हैं। हमें तो आपके आशीर्वाद और कृपा-वात्सल्यकी ही आवश्यकता है। वे बारम्बार महाराजश्रीकी चरण-वन्दना किये जा रहे थे–मानो असहनीय प्रशंसाके भारसे झुककर प्रार्थना कर रहे हों कि बस... अब और नहीं... ।

श्रीस्वामीजी उनके मनोभावोंका आदर करते हुए, उन्हें अधिक संकोचमें न डालते हुए उनका करकमल थामकर उन्हें व्यासपीठकी ओर ले चले। पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजको व्यासासनपर विराजमान कर माल्यार्पण किया। इन दोनों संतोंके परस्पर श्रद्धा-विनय-संकोचके अद्‌भुत भाव भरे व्यवहारने सबको रसविभोर कर दिया कि कथाके पूर्व ही मानो मूर्तिमान् रससिन्धुमें

डुबकी लगवा दी।

श्रीचक्रजी पूरे समय कथामें मंचपर ही विराजमान रहते। प्रत्येक कार्य उनके परामर्श एवं निर्देशनसे सम्पन्न किये जा रहे थे। मुख्य श्रोता श्रीजयदयालजी डालमियाने सपत्नीक सभी संतों-महापुरुषोंका स्वागत-सत्कार करते हुए श्रीडोंगरेजी महाराजके आसन ग्रहण कर लेनेपर परम श्रद्धा और भक्तिपूर्वक व्यास-पूजन करके पुष्पमाला धारण करायी।

सबके यथायोग्य आसन ग्रहण कर लेनेपर पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने हाथ जोड़कर नेत्र बन्द कर लिये और कुछ ही क्षण पश्चात् उनका गुरु गम्भीर मधुर स्वर माइकपर गूँजने लगा—

करारविन्देन पदारविन्दम् मुखारविन्देन विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटेशयानम् बालंमुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

मंगलाचरणमें बालकृष्णकी त्रिभुवनमोहिनी छवि वर्णन करके भाव गतिसे आगे बढ़े। उनका अनुभवपूर्ण उद्घोष था— ठाकुर बालकृष्ण लाल हमसे बहुत प्रेम करते हैं। उनकी आँखोंमें देखो, उनसे आँखें मिलाओ, मन-ही-मन उनसे बात करो और देखो उनका प्रेम आपमें संक्रमित होगा। लोकोत्तर लीलाराज्यकी बातें अगम्य ही होती हैं, पर संतोंने करुणा करके उसे भी सुलभ बना दिया।

'चेहरा मनका दर्पण होता है।' यह कथन पूज्य डोंगरेजी महाराजपर अक्षरशः चरितार्थ होता था। उनके द्वारा वर्णित लीलारसका प्रत्येक भाव ऐसा रहता, मानो मूर्तिमान् कर दिया हो। कथामें उनका अनुभव बोलता था। भले ही ये कथा गुजरातीमें कर रहे थे। फिर भी भारतके सभी प्रान्तोंसे श्रोता आये हुए थे। अपार समूह होते हुए भी परम शान्तिपूर्ण स्तब्धता प्रशंसनीय थी। गुजराती भाषाके बीच-बीचमें मराठी और हिन्दी शब्दोंका प्रयोग श्रोताओंके मनको जैसे गुदगुदा देता। कथाके बीचमें यहाँ-वहाँ संत चरित वर्णन करते जिससे कथाका रस द्विगुणित हो जाता। कहीं-कहीं ऐसे

सूत्र बोलते जो जीवनको भक्ति-पथपर आरूढ़ कर दें। उनकी प्रत्येक बात शास्त्र-सम्मत और अनुभवगम्य होती थी।

ठीक जन्माष्टमीके दिन श्रीकृष्ण-जन्मकी कथा हुई। उस दिन तो देश-विदेशसे आये लोगोंका अपार जन-समूह आनन्द-सागरमें डूब-उतरा रहा था। स्वामी श्रीरामस्वरूपजीकी मण्डली द्वारा प्रतिदिनकी कथाके अनुरूप रातको लीला प्रदर्शित की जाती। उन दिनोंका आह्लाद अवर्णनीय है। जिन्हें इस कथा-श्रवण, लीला-दर्शनका सौभाग्य मिला, वही हृदयमें अनुभव कर पाते हैं। वर्णनके लिये शब्द नहीं। मुझे भी तातकी सान्निध्यतामें इस कथा-श्रवणका अवसर मिला।

पदार्पण—रामनिकुंजमें

श्रीचक्रजीका वृन्दावनसे ही एटाके पं० रामदत्तजी आयुर्वेदाचार्यसे वर्ष 1960 से परिचय था, जिनका वर्ष 1965 में फाल्गुन कृष्ण एकादशीको उत्तरायणमें काशीवास हो गया था। होलीपर प्रतिवर्ष श्रीचक्रजी वृन्दावन रहते थे। वर्ष 1975 में संयोगसे एटासे माँ एवं मुन्नी भी वृन्दावन पहुँच गयी थीं। एक दिन स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके प्रातःकालीन सत्संगके पश्चात् श्रीउड़िया बाबाके आश्रमके प्रांगणमें माँके साथ मुन्नीने श्रीचक्रजीको प्रणाम किया। श्रीचक्रजीने पहचानते हुए कहा— मुझे तुम्हारे पिताका समाचार ज्ञात है। वाराणसीसे फोन आनेके समय मैं महाराजश्रीके समीप ही बैठा था। वे महाभाग तो धर्मप्राण, निष्ठावान् एवं आत्मतत्त्वमें परिनिष्ठित थे। उनकी आत्मीयताभरी वाणी सुनकर सुअवसर देखकर माँने एटा पधारनेकी प्रार्थना की, जो स्वीकृत तो हो गयी, किन्तु सुयोग बना एक वर्ष बाद अक्टूबर 1976 में प्रथम बार केवल दो दिनके लिये।

श्रीवैद्यजीके घरपर प्रतिदिन सायंकाल चार बजे सत्संग होता और रातको कीर्तन। संत-महापुरुषोंमें जगद्गुरु श्रीकृष्ण-बोधाश्रमजी महाराज, स्वामी

हीरानन्दजी महाराज, स्वामी रामतीर्थजी (कानपुर) आदि महात्मा पधारते रहनेकी कृपा करते थे। पंचदशी, ब्रह्मसूत्र, योगवासिष्ठ आदि इनके प्रिय ग्रन्थ थे। इनकी ज्ञान-परक परिपक्व धारणा होनेपर भी घरके प्रथम मंजिलपर मंदिर बनवाकर अपने आराध्य श्रीसीतारामजीको पधराकर प्राण-प्रतिष्ठा करायी। इन्होंने अपने एकमात्र सुपुत्र कैलाशको सुसंस्कार तो दिये ही थे, संध्या-वन्दन-ध्यान कराते तथा दोनों नवदुर्गोंमें हवन-यज्ञ आदि। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजीपर एकाधिकार है इनका।

ये श्रीचक्रजीके घर पधारनेपर इनसे दूर-दूर रहते। इन्हें भय था कि पिताजी तथा अन्य महापुरुषोंकी भाँति ये भी मुझे कर्मकाण्डमें एवं कठोर नियमपालनकी साधनाकी ओर प्रवृत्तिका आदेश देंगे जो मेरे वशकी बात नहीं है। एक दिन इनकी छोटी बहिन मुन्नीने संकोच सहित कहा— भैया! आप भी श्रीचक्रजीके चरण-सान्निध्यमें सत्संग-लाभ लें। किन्तु उन्होंने हँसकर बड़ी सहजतासे कह दिया— मैं चक्रजीके चक्करमें नहीं पड़ूँगा। जब श्रीचक्रजी घरसे मथुरा जाने लगे, तब उनके साथ माँ और बहिनका जाना भी निश्चित हुआ, क्योंकि माँकी आँखका ऑपरेशन मथुरामें डॉ० रमेशचन्द्र कुलश्रेष्ठके द्वारा होना निश्चित हुआ था। तब चलते समय कैलाश भैयाने माँके चरण स्पर्श करके श्रीचक्रजीको प्रणाम करते हुए कहा— बाबा! मेरी धृष्टताको क्षमा कीजियेगा। मैं अशिष्ट नहीं हूँ, किन्तु मेरी विवशता है कि मैं तराजूके दोनों पलड़ोंमें एक साथ नहीं बैठ सकता। लोक-व्यवहार, कर्त्तव्यका निर्वाह और अध्यात्मकी गहनतामें प्रवेश एक साथ करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। यदि अन्तर्मुख होता गया, फिर जगत्की ओर झाँकना सम्भव नहीं है। अभी लड़कियोंके विवाह करने हैं मुझे। चक्रजी किंचित् मुस्कराये और सहजतासे बोले— तुम अपने स्थानपर ठीक हो... लगे रहो, पहले कर्त्तव्यका पालन करो। समय सब करा लेगा... तनिक प्रतीक्षा ही तो करनी है।

'बाबा! मैं आपको समझ नहीं पा रहा हूँ, पर कुछ-कुछ समझनेका प्रयास

कर रहा हूँ। अन्तर्मन बार-बार खिंच रहा है आपकी ओर... किन्तु यदि आपके सशक्त एवं घनीभूत परमाणुओंके प्रभावमें आ जाऊँगा तो लोक-व्यवहार निभ नहीं सकेगा।'

चक्रजीने मुस्करा कर हाथ उठा दिया। कार मथुराकी ओर चल पड़ी। इसके पश्चात् 20 अक्टूबर 1978 को रामनिकुंज, एटामें पुनः पधारे। नीचेके कक्षमें अखण्ड श्रीरामचरितमानसका पाठ चल रहा था। आनायास उनकी दृष्टि बरामदेमें लिखे श्लोकपर पड़ी—

श्रीरामेदत्ते चित्तेन रामदत्तेन शर्मणा,
यच्छ्री रामाङ्घ्रितोऽवाप्तं श्रीरामाङ्घ्रौतदर्पितम्।"

अर्थात् श्रीरामकी अहैतुकी अनुकम्पासे जो भी कुछ मुझ रामदत्तको प्राप्त हुआ है वह सब श्रीरामजीको ही समर्पित है।

श्लोक पढ़कर श्रीचक्रजी प्रसन्न हो उठे— अरे! यह तो मेरा ही घर है। कहा— कैलाश! तुम्हारे पिताने यह घर बनवाकर निष्ठापूर्वक मेरे पिताजीको सौंप दिया है। मैं रघुवंशी हूँ। श्रीरघुनाथजी मेरे पिता एवं श्रीजानकीजी मेरी अम्बा हैं, अतः घर मेरा हुआ न।

'हाँ, सचमुच निःसन्देह घर आपका ही है, आप तो यहाँ रहते ही नहीं। क्यों? आप ही सँभालिये अपना घर। घरकी रखवाली करनेके लिये एक चौकीदारकी आवश्यकता तो आपको रहेगी ही, यह सेवा मुझे मिल जाय। इस बाहरके बरामदेमें (जो कमरेके रूपमें परिवर्तित हो गया है अब) चौकीदारी करता रहूँगा।' भैयाकी बातका अनुमोदन करते हुए श्रीचक्रजीने मेघ-गम्भीर तेजस्वी वाणीमें कहा— अब ठीक, घर मेरा और तुम इस घरके चौकीदार हो, इतना समझ लेना पर्याप्त है। उचित रीतिसे कर्त्तव्योंका पालन करो।

कब, कौन-सा शब्द किसीके हृदय-पटलपर 'दीक्षामंत्र' की भाँति बैठ जाय, कहा नहीं जा सकता। श्रीचक्रजीका यह कथन ही— तुम मेरे घरके

चौकीदार हो, कैलाशके जीवनका मूलमंत्र बन गया— जीवन ही पलट गया उनका। जो गृहासक्ति, देहासक्ति, लोकैषणा-वितैषणा कठिन साधन करने-पर भी नहीं छूटा करती, वह श्रीचक्रजीके एक समर्थ वाक्यने सहज ही सदा-सदाके लिये छुड़ा दी।

एक बार संयोगसे अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीने श्रीचक्रजीसे पूछ लिया— क्या तुमने किसीको दीक्षा दी है? श्रीचक्रजीने उत्तर दिया— हाँ, एकको कुम्भमें दी और दूसरेको उसीके घरका चौकीदार बना दिया।

महाराजश्रीको अनायास हँसी आ गयी — तुम्हारे सब काम अटपटे हैं और तुम्हारा कन्हाई भी ऐसे ही कार्योंका पक्षपाती है।

चेतनावस्थामें ऑपरेशन

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर रह रहे थे। जीवन-पर्यन्त पर्यटन करते-करते शरीरमें शैथिल्य आ गया था। रोग-अवरोधक शक्ति भी शनैः-शनैः क्षीण हो रही थी। यहीं शोक समाचार आया कि शारदा प्रसादजीका शरीर 7 मार्च 1978 को सायं 4 बजे पूरा हो गया। उनके जामाता डॉ० हरिनाथ टण्डनने वहाँका मंत्री पद सँभाल लिया है। यही शारदा प्रसादजीकी अन्तिम आकांक्षा थी किन्तु अब रामवनका रचनात्मक कार्यक्रम डावाँडोल है। इधर चक्रजीका उत्साह कुछ लिखनेका नहीं रहा, शरीर टूटा-टूटा रहता था। तनिक देरमें थकान बढ़ जाती थी।

श्रीचक्रजी होलीपर श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानसे वृन्दावन आ गये थे। आनन्द वृन्दावनमें निवास करते समय अचानक 20 अप्रैल 1978 को मूत्र-अवरोधकी पीड़ा हुई। पेटमें भयंकर दर्द उठा। 21 अप्रैलको प्रातः ही रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटलमें प्राइवेट रूममें रहे। वहाँ भी चिकित्सासे कुछ लाभ न

होनेपर 23 अप्रैलको श्रीजयदयालजी डालमिया आग्रह करके दिल्ली ले गये। उसी दिन सीधे 'सर गंगाराम अस्पताल' में भर्ती कराया। 24 अप्रैल 1978 को प्रातः 8 बजे बड़ा ऑपरेशन किया गया। वरिष्ठ सर्जन डॉ० मेहराने आपरेशन किया। श्रीचक्रजीको बेहोश करनेके प्रयास किये पर वे सफल नहीं हुए, तब डॉ० मेहराने कहा— आप बेहोशीकी दवा स्वीकार नहीं कर रहे हैं तो मैं ऑपरेशन कैसे करूँगा?

'आप परेशान मत होइये, पाँच मिनट बाद अपना काम प्रारम्भ कर दीजिये। चक्रजीने डॉ० मेहरासे इतना कहा और अपने कन्हाईके स्मरणमें अन्तर्मुख हो गये। शरीरका भान छूट गया। ऑपरेशनमें डेढ़ घंटा लगा। डॉक्टरने जैसे ही टाँके लगाकर उपकरण हटाये कि चक्रजी हल्के स्वरसे बोले — गोविन्द!... कार्य हो गया क्या? डॉ० मेहरा स्तब्ध... चकित होकर बोल पड़े — आप... आप होशमें हैं? क्या बिलकुल बेहोश नहीं हुए?

उत्तरमें चक्रजी केवल मुस्करा दिये। चक्रजीकी इस अन्तर्मुखता, धैर्य भगवद्-भक्ति और देहाध्याससे परेकी स्थिति देख डॉ० मेहरा बड़े प्रभावित हुए और 'भागवत भवन' की प्रतिष्ठाके समय चक्रजीके आमंत्रणपर सपत्नीक आये और पूछा— परमार्थ-पथ पानेके लिये मुझे क्या करना चाहिये?

चक्रजीने उत्तर दिया— कर्त्तव्य करते रहो, एक कक्ष परमात्माके निमित्त कर दो। जो भी असहाय, धनहीन आ जाय, उसको ईश्वरकी सेवा मानकर ऑपरेशन, औषधि, भोजन सब निःशुल्क उपलब्ध कराया जाए, डॉ० मेहराने तुरन्त उनके आदेशको स्वीकार किया।

गुरु श्रीबलरामजीका ममत्व

जिस दिन श्रीचक्रजी सर गंगाराम अस्पताल, नयी दिल्लीमें भर्ती हुए थे, उस दिनकी असह्य पीड़ासे उन्हें नींद तो क्या झपकी भी नहीं आ रही थी। अपनी वेदना और विकलताका वे किसीको आभास तक नहीं होने देते

थे। श्रीकृष्णकी स्मृति ही उनका सम्बल थी। कष्टकी अधिकतासे मुखपर वैवर्ण्य छाया था। प्रातः पौने तीन बजे होंगे, नेत्र खोले घड़ीकी ओर देख रहे थे। एक भीनी तेजोमय आभामें दिव्य सुगन्धित सुवास और आनन्दकी अनुभूति होने लगी। तनिक सिरहानेकी ओर दाहिनी ओर निहारा तो निहारते ही रह गये— आह! यह क्या? नीलाम्बरधारी, एक कुण्डल गौरवर्ण अपने गुरुदेव दादा श्रीबलरामजीको खुली आँखोंसे निरखकर विस्मय-विमुग्ध बोल पड़े— दादा!....दादा!...........मेरे प्राणोंके भी प्राण....... ..मेरे गुरुदेव! आप यहाँ....? इस अपवित्र स्थानपर.....?

'तुझे देखने आया हूँ।' अपनोंके बीच पवित्र-अपवित्र क्या होता है? मन्द स्मितपूर्वक श्रीहलधरने कहा।

उनकी करुणापूर्ण प्रेमपरिप्लावित असीम वात्सल्यमयी दृष्टि पड़ते ही पीड़ा कब, कहाँ तिरोहित हो गयी, उन्हें ज्ञात भी न हो सका। वे तो अपने दादाकी रूपमाधुरी और अहैतुकी प्यारपगी दृष्टिपर बलिहार हो रहे थे और देखते-देखते दाऊ दादा अदृश्य हो गये, तब यही पता लगा कि वे पीड़ासे मुक्त हो गये हैं। मन-ही-मन अपने मृणालगौर दादाके चरणोंमें प्रणति की—

जय जयादिमनन्तमतन्तक, दिग दिगन्तमनन्त गत श्रुतः।
सुर मुनीन्द्र बहीन्द्र नुताय ते, मुसलिने बलिने नमः।।

24 अप्रैलको ही ऑपरेशनके पश्चात् प्रभुदयालजी झुनझुनवालाके बड़े भाई पुरुषोत्तम झुनझुनवाला चक्रजीको देखने अस्पताल आये। 25 अप्रैलको स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती इन्हें देखने पधारे। 26 अप्रैलको जज स्वामी विपिनचन्द्रानन्दजी तथा बहिन मिथिलेश शाह अस्पतालमें चक्रजीको देखने आये और उस दिन सत्संगका ऐसा रंग जमा कि जज स्वामीकी किसी बातका उत्तर देते हुए घंटे भर बोलते रहे।

जज स्वामीजीने पूछा—कैसे हैं?

श्रीचक्रजीने सहजतासे उत्तर दे दिया— मैं तो ठीक हूँ। यह शरीर शरारती

है। इसे कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। कन्हाईकी स्मृति बनी रहे और चाहिये ही क्या?

'उसे क्यों नहीं लाये?' जज स्वामीजीने पूछ ही लिया।

'यह अस्पतालका वातावरण उसके अनुरूप नहीं लगा मुझे। वह जहाँ भी है, आनन्दसे है। अस्पतालसे छुट्टी होते ही डालमियाजीके घर रहे। 15 मईको श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर चले आये। बच्चूसिंह सेवा करता। भोजन पहुँचाता, पैरोंमें तैल मालिश करता, डाक लाता और ले जाता। रात्रिको तो अपने कक्षमें किसीको सोने नहीं देते। बच्चूसिंहको भी भेज देते, कहते— कन्हाईके सिवाय कौन सँभालेगा मुझे। 20 मईको माँके साथ मुन्नीजीजी बड़ी बहिनके पुत्र ब्रजेशके साथ डेढ़ महीनेके लिये श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर सेवामें आ गये।

दो दिनके लिये 6 जूनको पुनः जाँचके लिये दिल्ली गये। डॉक्टरने बताया— आप सामान्य हैं। संयोगसे उसी दिन काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके सर्जरी-विभागके अध्यक्ष डॉ० घनश्यामजी मित्तल दिल्ली आये हुए थे। उन्होंने भी जाँच करके कहा— आप पूर्ण रूपसे ठीक हैं, किन्तु चुभन एवं तनाव धीरे-धीरे जायगा। 9 जूनको मथुरा आ गये। अस्वस्थताके कारण जीवनमें पहली बार ग्रीष्म-ऋतुमें मथुरा रहे। 11 अक्टूबरसे 18 अक्टूबर तक श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर वाराणसीके श्रीनाथजी शास्त्री द्वारा मानस प्रवचनका आयोजन हुआ।

ऑपरेशन—हार्नियाका

5 फरवरी 1979 को दिल्लीमें प्रातः 8 बजे श्रीचक्रजीका आन्त्रवृद्धि (हार्निया) -का ऑपरेशन हुआ। मुरलीधरजीने मथुरासे प्रभुदयालजीको पत्र द्वारा समाचार दिया— संयोगसे श्रीचक्रजीको चार फरवरीको दिल्ली जाना और उनका 5 फरवरीका ऑपरेशन सफल रहा। इस समय ग्लूकोज चढ़ रहा है। डॉक्टरोंका कहना है—पन्द्रह दिन रहना पड़ेगा। घबड़ाने-जैसी कोई

बात नहीं है।

16 फरवरीको श्रीचक्रजीने प्रभुदयालजीको बताया पत्र द्वारा—ऑपरेशन कराना अच्छा ही रहा। हार्निया तो था ही, बार-बार फोड़ा होता था, वह सूराख मसाने तक था। बाँया पुट्ठा भी फटा हुआ निकला। फलतः ऑपरेशनमें तो आधा घंटा और भीतरी सिलाईमें डेढ़ घंटा लगा। अब 12 फरवरीको टाँके कट गये हैं। 14 ता० को मैं कोठीमें आ गया। कल डॉक्टरने स्नान करनेकी अनुमति दे दी है। पेटके भीतर जो टाँके हैं, वे दो-तीन सप्ताहमें गल जायँगे, तब तक तो उनमें चुभन बनी रहेगी। कमजोरी बहुत बढ़ गयी है। 17 फरवरी 1979 को मैं वृन्दावन जा रहा हूँ। अपने कार्यक्रमके अनुसार 17 फरवरीको प्रातः 10 बजे वृन्दावन आ गये। मथुरासे बच्चूसिंह 11 बजे तक वृन्दावन पहुँच गया था सेवामें। श्रीचक्रजी आनन्दवृन्दावनके कक्ष नं. 4 में ठहरे हुए थे।

स्वयं मनुष्यने, डॉक्टरने और सेवकने, सभीने अपनी ओरसे कोई कोर, कसर सेवा करनेमें नहीं छोड़ी, किन्तु होनहारको क्या कहें? और क्या कहें प्रारब्धको, जो इन्हें कभी एक स्थानपर विश्रामके लिये भी नहीं टिकने देता था। ऑपरेशनके बाद इन्हें कम-से-कम दो महीने तक विश्राम आवश्यक था; किन्तु 10 मार्चको ही चित्रकूट यात्रा कर आये अर्थात् 15 दिन भी ठीकसे विश्राम नहीं कर सके।

10 मार्चको प्रभुदयालजीके पत्रके उत्तरमें श्रीचक्रजीने लिखा था— मैं डालमियाजीके साथ कल ही चित्रकूटकी यात्रासे लौटा हूँ। कामदगिरिकी परिक्रमा पूर्ण होनेके अन्तिम आधा घंटा पूर्व टाँके दुखने लगे थे। कानपुरसे चित्रकूटकी कारकी यात्रामें ऊँची-नीची गाड़ी होती तो बहुत कष्ट होता था। कारसे भी अधिक असुविधा हुई छोटी लाइन कानपुरसे मथुरा आनेमें। यह ट्रेन बहुत हिलाती है।

मेरी स्थिति यह है— पिछले वर्ष मेरे चार ऑपरेशन हुए। उनमेंसे एक पौरुष-ग्रन्थिका था। इस वर्ष 'हार्निया' का ऑपरेशन हुआ, इस बार मैंने

डॉक्टरको खुलकर बताया। उनका कहना है कि पेटमें आँतोंको रोकनेवाला एक पुट्ठा होता है, वह फटे तो हार्निया होता है। जगहसे आँत बाहर आ जाती है। मेरा वह पूरा पुट्ठा पिछले वर्षके घावके सड़नेसे गल चुका है। इस ऑपरेशनमें जितना सम्भव हुआ, सिलाई करके उन्होंने रुकावट बनायी है। भीतर अठारह टाँके हैं। ये टाँके चार-छः महीनेमें गलेंगे, किन्तु पेटपर दबाव नहीं पड़ना चाहिये। न चोट लगनी चाहिये, न भार उठाना चाहिये। इससे कुछ भी हो सकता है— आँतें फट भी सकती हैं।

भला कहिये तो, जान-बूझकर आगमें कूदनेकी यह कैसी प्रवृत्ति थी? ऑपरेशनके तुरन्त बाद चित्रकूटकी यात्रा, कामदगिरिकी परिक्रमा, अनसूया आश्रमपर चलना और गुप्त गोदावरीका स्नान (बिना सूखे घावपर) आदिकी क्या आवश्यकता थी? कितनी बार चित्रकूटकी यात्राएँ पहले भी कीं तथा बादमें भी करते रहे। कम-से-कम ऑपरेशनके बाद तो विश्रामको थोड़ा समय देनेमें हानि ही क्या थी? किन्तु कहा गया है कि **'स्वभावो हि दुरतिक्रमः।'**

ललिताकी सँभाल

श्रीचक्रजीका स्वभाव था कि स्वयं श्रीकृष्ण-चिन्तनमें लीन रहकर भी जो कोई भूला-भटका सामने आ जाता, तब उसके हित-साधनमें कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते थे। सन् 1979 में 17 फरवरीको जैसे ही हार्नियाके ऑपरेशनसे उठकर थके-हारे विश्रामके लिये स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराजके आश्रममें आनन्दवृन्दावनके कक्ष चारमें पहुँचे ही थे कि तीन-चार घंटे बाद ही चाकुलियासे प्रभुदयालजीके चाचाकी पुत्री ललिता केवल गाउन पहने शॉल ओढ़े उनके कक्षमें पता लगाती हुई आ पहुँची।

चाकुलियामें बगीचेका एकान्त और शान्त वातावरण श्रीचक्रजीको रुचिकर था। वर्ष 1973 से प्रभुदयालजीके अतिशय प्रेम, श्रद्धाके नातेसे 20-25 दिनके लिये जाने लगे थे। सायंकाल चार बजे प्रभुदयालजी बगीचेसे लिवा

लाते। घरके विशाल प्रांगणमें सत्संग-सरिता प्रवाहित होती, जिसमें दो घंटे तक सम्पूर्ण परिवार, परिजन एवं आसपासके लोग अवगाहन कर कृतार्थ होते। प्रभुदयालकी चाचाकी पुत्री अपने परिजनोंके साथ सत्संग सुनती। नित्य पूजाके लिये पुष्प चयन करके ले जाती। 14-15 वर्षीय किशोरी ललिताके निर्मल हृदयमें श्रीकृष्णकी ललित लीलाएँ बस गयीं। उनके सौन्दर्य माधुर्यमय रूपपर विमुग्ध हो उठी। उसके मानस और नेत्रोंमें उनकी रूप-माधुरी छा गयी। वह तीन-चार घंटे तक जप-पूजा-चिन्तन करती। हा वृन्दावन... वृन्दावन जाने-पहुँचनेकी छटपटी और श्रीकृष्णकी लीलाभूमिके दर्शनकी लालसा उसके मनमें प्रबल हो उठी। **'वृन्दावनम् परित्यज्य पादमेकं न गच्छति'** के श्रवणसे उसकी लालसा मानो दावानल बनकर धधक उठी।

संयोगसे उसके दूरके सम्बन्धी वृन्दावन जाने लगे। अब तो ललिताके धैर्यका बाँध टूट गया। उसे लगा कि यही अवसर उचित है और उसने अपने माता-पितासे उनके संग जानेका बहुत आग्रह किया, किन्तु माताने उनके साथ भेजना उचित नहीं माना, फिर वे लोग वृन्दावन होते हुए द्वारिका जानेवाले थे।

ललिताका दुःखी मन रो उठा... वह रो-रो कर प्रार्थना करने लगी— क्यों भूल गये अपनी सखीको— किंकरीको? क्यों अपनी लीलाभूमिसे इतनी दूर पटका मुझे कि वहाँका एक रज-कण भी उड़कर मुझ तक नहीं पहुँच सकता। मैं तो अपराधिनी हूँ। पर तुम तो निजजन-प्राण हो, भक्त-वत्सल हो, करुणानिधि हो, तुम्हारे इन नामोंके विरदकी परिधिमें मैं क्या कहीं नहीं आती? मैं तो भूल सकती हूँ, पर तुम कैसे भूल गये मुझे? कैसे भूल गये? दिनोदिन उसकी व्याकुलता, छटपटाहट और इच्छा प्रबलसे प्रबलतम होती गयी। आखिर एक दिन घरमें किसीको बताये बिना ही कपड़ोंमें रातको सोई थी, उसी गाउनको पहने ऊपरसे एक शॉल ओढ़े एक झोलेमें अपना पूजा-चित्र,

पाठकी पुस्तक और जेब-खर्चमें मिलनेवाले रुपयोंकी छोटी-सी गुल्लक लेकर घरसे निकल पड़ी और रातको मथुरा जानेवाली ट्रेनमें बैठ गयी। आगे चलकर टिकट-चेकरने टिकट माँगा तो गुल्लक तोड़कर सभी रुपये सामने धर दिये—

'टिकटके जितने पैसे हों, ले लीजिये।' उसने भोलेपनसे कहा।

टिकट-चेकरने उसकी निर्दोष आँखों और मुखमें भोलेपनको देखकर ईमानदारीसे उचित किराया लेकर टिकट बनाकर दे दिया।

दूसरे दिन संध्या समय ललिता मथुरा स्टेशनपर पहुँची और स्टेशनसे ही वृन्दावन जानेवाले यात्रियोंके साथ वृन्दावन पहुँच गयी। असीम वैराग्य और अपने नित्यसखापर अटल विश्वासके चलते अपने पासके सभी पैसे उसने रास्तेमें भिखारियोंको बाँट दिये। 'मैं उनकी हूँ... मेरा चितचोर... मेरा जीवन-धन जैसे चाहे, वैसे रखे' भाव भरी उमंगमें स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके आश्रममें आ गयी और आनन्दवृन्दावनमें पैर रखते ही 'चक्रजी कहाँ हैं' पूछा! आश्रमके ही एक व्यक्तिने उसे उनके कमरे तक पहुँचा दिया।

'किसके साथ आई हो? प्रभुदयाल, मोहनलाल या अपने माता-पिताके साथ, कौन है साथमें?'

'दादा!' पूछनेके साथ ही वह तो फफक-फफक कर रो पड़ी। आप मुझे घर लौटनेके लिये मत कहियेगा। अब मेरा उत्तरदायित्व आपके अनुजपर है। मैं उनकी हूँ। मुझे और किसीसे विवाह करनेको मत कहियेगा। अब मैं घर कभी नहीं जाऊँगी। मैं तो सदाके लिये वृन्दावन आयी हूँ। अपनी सिसकियोंके मध्य अटक-अटक कर अपनी सारी बात कह दी। उसकी आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह थमनेका नाम नहीं ले रहा था।

अभी दो प्रहर पूर्व ही चक्रजी दिल्लीसे ऑपरेशनके बाद थके-हारे विश्रामको लेटे थे कि यह बालिका आँधीकी तरह उनके कक्षमें प्रविष्ट हो गयी। श्रीचक्रजीने सिरपर हाथ फेरते हुए कहा – रो मत; देख, चुप होकर

बात कर। देख, तेरे रोनेसे, सिसकनेसे मेरा तख्त हिलता है। इससे ऑपरेशनके टाँकोंमें दर्द होता है, अतः पुनः सान्त्वना देते हुए शान्त रहनेको कहा। साथ ही स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजको संदेश दिया कि प्रभुदयालको तार करवा दें— ललिता सुरक्षित वृन्दावन पहुँच गयी है, अतः आश्रममें इसके माता-पिताको भेज दें।

उधर प्रातःकाल होते ही, जब घरमें ललिता दिखायी नहीं दी तो माता-पिता और स्वजन अत्यधिक घबड़ा गये। कहीं भी घरसे अकेले न निकलनेवाली बेटी कैसे बिना कहे चली गयी। आजके वातावरणमें कुछ भी हो सकता है। अपने परिचितोंको फोन द्वारा पूछा। किशोरी पुत्रीके अपवादके डरसे माता-पिता चिन्तित थे। अकस्मात् मन कौंधा, बिजलीकी तरह... कहीं वृन्दावन तो नहीं चली गयी? हम लोगोंने रोक लगा दी थी। अपने सम्बन्धी जो वृन्दावन गये थे, वे तो वृन्दावनसे कबके द्वारिका भी चले गये होंगे। वे कहाँ ठहरे होंगे? इसका पता भी ललिताको ज्ञात नहीं है। दो दिन-रात ऐसे ही असमञ्जसमें बीत गये। रातको घरमें कोई नहीं सो सका, तभी जैसे सूखती खेतीको वर्षाका जल सुलभ हुआ हो। वृन्दावनसे भेजा तार मिला। माता-पिताने तुरन्त ही फोन द्वारा सूचना दी—हम लोग आ रहे हैं।

चौथे दिन माता-पिता और भाई तीनों ही आ पहुँचे। इनको देखते ही ललिताके रुदनका बाँध फिर टूट पड़ा, वह रो-रोकर कहने लगी दादा! आप मुझे घर लौटनेकी बात मत कहियेगा। मैं लौटनेके लिये यहाँ थोड़े ही आयी हूँ।

श्रीचक्रजीने उसके माता-पिताको समझाया— ललिताकी मनःस्थितिको सँभालनेमें दो-तीन दिन लगेंगे। आप चिन्ता न करें। मैं अपनी ओरसे पूरा प्रयास करूँगा कि वह प्रसन्न मनसे आपके साथ लौट जाय।

ललिता जब वृन्दावन आयी थी, तब उसके पास दूसरे दिन स्नान करके पहननेके वस्त्र भी नहीं थे। संयोगवश यह अच्छा रहा कि उसी दिन मुन्नी जीजी अपनी माँके साथ श्रीचक्रजीका पूजा-विग्रह चित्रपट लेकर वृन्दावन पहुँची। वह ललिताको अपने कक्षमें ले गयी। प्रातः स्नानके पश्चात् वे ललिताको बिहारीजीके दर्शन कराने ले गयीं। बिहारीजीके मंदिरमें ललिताके भावकी रक्षा करते हुए बिहारीजीकी ओरसे वस्त्र, फल-मिष्टान्न-मेवासे इसकी गोद-भराईकी रस्म कर दी। ललिता अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए प्रेम-पुलकित नेह-भरी दृष्टिसे ठाकुरजी (बिहारीजी) -को निहारने लगी। विभोर होकर बोली– जीजी! मेरा मन नाचनेको कर रहा है। थोड़ा-सा इनके सामने नाच लूँ? इसकी प्रीति भरी वाणीपर रीझ कर अनुमति दे दी। ललिताने साड़ीका पल्ला कटिमें खोंसा और बोल निकला–

'गोविन्द हरे गोपाल हरे, जय जय प्रभु दीनदयाल हरे'

ललिताने नृत्यके लिये जैसे दो-चार बार कीर्तन किया कि वह अचेत होकर गिर गयी। मुन्नी जीजीने स्नेहसे पुकार कर सचेत किया और बिहारीजी मंदिरमें परिक्रमाकी ओरसे गलीमेंसे ले जाकर रिक्शेमें बैठाकर आश्रममें आयी, क्योंकि मंदिरमें जिसने भी उसकी यह भाव-दशा देखी वह उसकी चरण छूने, चरण-रज लेने दौड़ पड़े। जीजी बड़ी कठिनाईसे उसे भीड़मेंसे निकालकर ला पायी। मंदिरसे लौटकर चक्रजीको सब बताया, तब उन्होंने ललिताको समझाया– अरे! जीवका नित्य सम्बन्ध भगवान्‌के प्रति–कन्हाईके साथ ही है। इस सम्बन्धमें कोई भी बाधा स्वीकार करने योग्य नहीं है। तुम अपने अन्तरंग भावोंको कन्हाईके प्रति दृढ़ बनाये रखो। और हाँ, तुम्हारा नृत्य-संगीत भी उसीके लिये होना चाहिये। जब नृत्यका मन हो, कमरा बन्द करके कन्हाईके सन्मुख नृत्य करो, पर सबके सामने नहीं।

ललिताने उनकी सब बात मान ली। श्रीचक्रजीने उसके माता-पिताके आ जानेके बाद फिर समझाया— यह शरीर तुम्हें माता-पिताने दिया है। उन्होंने ही इसका लालन-पालन किया है। अतः शरीर उनका है। यदि पिता पुत्रीका कन्यादान करता है तो उसकी देहका ही दान करता है। मनका नहीं। वह केवल शरीर ही दे सकता है। हृदय तो पिताका है नहीं।

वह यदि कोई परमात्माको देता है तो वह धन्य है। उसने अपने हृदयको हृदयके स्वामीको ही सौंपा है। उसका सम्पर्क तो दूसरेको भी धन्यता प्रदान करेगा। देखो, मेरा कन्हाई तो किसीको पकड़ कर छोड़ना जानता ही नहीं। इस प्रकार बहुत समझा-बुझाकर आश्वासन-सान्त्वना देकर ललिताको उन्होंने माता-पिताके साथ चाकुलिया भेज दिया।

बेरका रसिक कन्हाई

सुप्रसिद्ध मानसकार श्रीमानसशास्त्रीजीकी रसमयी-प्रेममयी-भावभीनी भक्ति-रससे ओत-प्रोत कथा प्रवचनसे भारतके ही नहीं, विदेशके श्रोता भी अत्यन्त प्रभावित थे। वे श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों कथाओंके रस-मर्मज्ञ पण्डित वक्ता थे, जो व्रजधामके श्रीगिरिराजजीके सचल विग्रह पं० गयाप्रसाद महाराजके आत्मज थे। इनपर भगवदीय भाव-सिन्धुमें सतत निमग्न पूज्य पण्डितजीके परम भागवती जीवनका प्रभाव था। पूज्य पण्डित-जीका श्रीगोवर्धन धाममें नित्य निवास था। श्रद्धा, निरभिमानता, उदारता, क्षमा, तितिक्षा, सरलता एवं भजनपरायणता आदि अनेक सन्तोचित सद्गुणोंका मूर्तिमान् स्वरूप था उनका संयमनिष्ठ जीवन।

श्रीचक्रजी प्रायः अकेले अथवा श्रीजयदयालजी डालमियाके साथ गिरिराजजीके पण्डितजीके समीप प्रायः आते-जाते रहते और वहाँ सत्संगमें इनकी पुस्तकें भी (रामश्यामकी झाँकी) आदि पढ़ी जाती थीं। इन्हींकी प्रेरणासे

श्रीमानस शास्त्रीजीकी श्रीरामचरितमानसकी नवाह्न क्रमसे कथा श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर हुई, जहाँ इस समय बिजलीसे चलनेवाली झाँकियाँ बनी हुई हैं। उस समय भागवत-भवनका निर्माण-कार्य चल रहा था, प्रतिष्ठा नहीं हुई थी।

यह कथा चैत्र कृष्ण तृतीया, शुक्रवार तदनुसार 16 मार्च 1979 से चैत्र कृष्ण एकादशी, शनिवार 24 मार्च 1979 तक हुई। इस कथाके मुख्य श्रोता श्रीजयदयालजीके आत्मज श्रीयदुहरिजी एवं उनकी पत्नी श्रीमती बेला डालमिया थे। कथा प्रातः आठ बजेसे ग्यारह बजे तक तथा सायं तीन बजेसे छः बजे तक होती थी।

कथाका मंगलाचरण करते हुए प्रारम्भ एवं विश्राम मानसके नवाह्न क्रमसे था। कथामें नित्य नूतनता एवं अद्‌भुत रस उमड़ता। कथा प्रारम्भ हुई, यह तो ज्ञात रहता, फिर तो ऐसा रस-आनन्द बहता कि समयका भान ही नहीं रहता। समापनके दोहेपर चौंकते कि क्या समय पूरा हो गया। कथा-प्रसंगके अनुरूप ही प्रतिदिन नैवेद्य अर्पित होता। छठे दिवसपर शबरी-प्रसंगकी चर्चा की जा रही थी, प्रेमविभोर शबरीकी विचित्र अस्त-व्यस्तता, भावोर्मिल विकलता, उन्मत्तता एवं प्रेमवैचित्र्य-स्थितिका ऐसा वर्णन किया कि वक्ता-श्रोता सब अपनी सुध-बुध बिसराये भाव विभोर हो रहे थे और उस प्रसंगके अनुरूप उस दिन झरबेरीके बेर, जितने भी उपलब्ध हो सके, मँगा लिये गये।

कथा श्रवण करते समय श्रीचक्रजी सबसे पृथक् ही बैठते। अपने दाहिने बायें थोड़ा-सा खाली स्थान अवश्य छोड़ दिया करते। उनका कहना था— पता नहीं कि कब मेरा भोला कन्हाई किधरसे आ जाय और मेरे समीप बैठना चाहे। इस दिन कथामें मध्यान्तर होनेपर वे नित्यकी भाँति बैठे नहीं और न इधर-उधर टहले ही, अपितु प्रसादके बेरोंकी दो मुट्ठी भरी और भागवत-भवनकी सीढ़ियोंसे उतर कर सीधे अपने कक्षमें गये और पाँच मिनट

पश्चात् ही कथास्थलपर अपने स्थानपर बैठ गये।

इस कथामें श्रोता कैलाश भैया, उनकी माँ एवं मुन्नी जीजी भी थीं। ये ध्यानपूर्वक देखते रहे कि कमरेमें जानेका क्या प्रयोजन था। कथा-विश्रामके पश्चात् चक्रजी जब कुर्सीपर विराजे, तब अवसर पाकर उनसे कक्षमें गमनका कारण पूछा। कहते ही श्रीचक्रजी सजल-नेत्र हो गये, बोले— कहना तो नहीं चाहता, चलो, बता ही देता हूँ— कथा-श्रवणके मध्य मेरा चिर चपल कन्हाई मेरी दाहिनी ओर बैठ गया और मेरा घुटना हिलाकर बेरोंकी टोकरीकी ओर नन्हीं तर्जनी दिखाकर बोल रहा था— दादा! मैं बेर खाऊँगा।

मैंने कहा— चुपचाप मेरेसे सटा बैठा रह। कथाके बीचमें नहीं बोलते, वह चुप हो जाता, दो मिनट बाद फिर वही बात। बार-बार कहनेपर मैंने कह दिया— अच्छा चल, कक्षमें मैं बेर लेकर आ रहा हूँ और फिर मैं करता ही क्या? बेर ले जाकर बाहर उसके सामने रख दिये। यहाँ बैठकर खा ले, अब मैं कथा श्रवण करने जा रहा हूँ। उनके जीवनमें ऐसी झाँकियाँ, अनुभूतियाँ होती ही रहती थीं।

इतनेमें पूज्य श्रीमानस शास्त्रीजी भी कक्षमें श्रीचक्रजीसे मिलने आ गये। प्रसंग बदल गया, किन्तु जब उनसे शबरी-प्रसंगकी अलौकिकता एवं अद्भुत रसमयताकी चर्चा की कि सभी श्रोता मंत्र-मुग्धसे झूम रहे थे तब स्वयं श्रीमानस शास्त्रीजी चकित होकर बोले— भैया मोकूँ पतो नाय, कहा भई, कैसे भई, को कथा कहि गयो! कथाके बाद मोंकूँ लगी कि मैंने कथा ना कही, जैसे वे स्वयं आइके मोते करवाय गये। भला! मोते ऐसी कथा कैसे बनि आयेगी? कुछ समय सत्संग-चर्चा करके अपने आवासपर चले गये।

श्रीचक्रजी 25 मार्चको पाक्षिक कथा-श्रवणके लिये सत्संग भवनमें मुजफ्फरनगर चले गये। वहाँसे हरिद्वार होते हुए मईमें अमृतसर रहे।

नाम-लेखनमें तत्परता

सर्वप्रथम अप्रैल 1979 में 'श्रीकृष्ण-सन्देश' पत्रिकाने एक विज्ञापन निकाला 'एक भव्य आयोजन' के शीर्षकसे। 'महाप्रभुका आविर्भाव ही भगवन्नामके प्रचार-प्रसारके लिये हुआ था। वे भगन्नामकी साकार मूर्ति थे। उन चैतन्य महाप्रभुकी पंचशतीके अवसरपर पाँच सौ करोड़ भगवन्नाम अर्पित किये जायँ। यह संकल्प ही अपने-आपमें परम पावन है।'

आपका योगदान—चौरासी लाख योनियोंके भ्रमणसे परित्राण पानेके लिये आप नाम-लेखनका संकल्प करें। नहीं तो जितना लिख सकें, उतना लिखें। कापियाँ मँगा लें, केवल नाम-लेखनमें प्रयोग करें। कापियोंमें खाने छपे हैं। एक खानेमें एक नाम लिखना है। नाम लाल स्याहीसे लिखना उत्तम है।... ..'हरे राम हरे कृष्ण' वाला महामंत्र अथवा 'राम राम' या 'कृष्ण कृष्ण' इनमेंसे जो भी नाम लिखना हो, एक कापीमें तीस हजार नाम आयेंगे। पूरी कापी हो जाय तो कापीमें नाम-पता लिखकर नीचेके पतेपर लौटा दें। पता—चैतन्य महाप्रभु समिति, चाकुलिया (बिहार)। मथुरासे वर्षके प्रारम्भमें ही प्रभुदयालजीको पत्र लिखा—अयोध्याके छोटी छावनीके महन्त श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराजके यहाँ पाँच सौ कापियाँ भिजवा देना। वे सहयोग करेंगे और जयदयालजी डालमिया भी नाम-लेखनसे बहुत प्रभावित हैं। वे स्वयं लेखनमें जुटे हैं। महामंत्र मैं भी लिख रहा हूँ। मुझे यह नाम-लेखन बहुत प्रिय है। जितना सहयोग देना सम्भव है, वह दे रहा हूँ। हिसाब रखना मेरे स्वभावमें नहीं है। अमृतसरवाले बीस करोड़ नाम-लेखन वार्षिक देंगे। पं० चिम्मनलालजी शर्मा पूरा सहयोग कर रहे हैं। सौ कापियाँ मुजफ्फरनगर भी भेज दी जायँ। एक हजार कापी सवाई माधोपुरमें हरिनारायणजी गोयल, मैनेजर वेयर हाऊसको भेज देना। अब इस प्रयत्नमें हूँ कि ढाई अरब नाम-लेखन हो जाय। यह तब सम्भव होगा, जब वार्षिक पचास करोड़ नाम लिखे जायँ। अयोध्या और अमृतसरवाले बीस-बीस करोड़ नाम दे रहे हैं।

शेष दस करोड़ फुटकर आ जायगा।

श्रीचक्रजीका नाम-लेखनमें योगदान सचमुच श्लाघनीय रहा। जहाँ कहीं भी रहे, वहाँ कथाओंमें, भागवत-प्रतिष्ठा-समारोहमें, एक महीनेके उत्सवमें, कथासे पूर्व और कथाके पश्चात् सशक्त शैलीमें ऐसा प्रेरणाप्रद बोलते केवल पाँच मिनटको, जिसके प्रभावसे श्रोताजन डेढ़ सौ-दो सौ कापियाँ प्रतिदिन ले जाते। अधिकांश लोगोंने उत्सवमें समापन तक लिखकर वापस कर दी और बादमें भी ली। परिणाम यह निकला कि विशिष्ट महापुरुषोंसे लेकर सामान्य-जन; स्त्री-बालक-वृद्ध सभी आयुके लोगोंने नाम-लेखन किया। हिन्दुओंके अतिरिक्त कुछ मुसलमानों एवं ईसाइयोंने भी नाम-लेखन किया। चक्रजीकी सदा धारणा रही कि नाम-प्रचार तो बढ़ना ही चाहिये। नाम स्वयं भगवान् है।

9 से 10 नवम्बर 1979 तक श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर श्रीरामकिंकरजीसे कथा श्रवण कर एकान्तमें शुकतीर्थ गंगा किनारे आ गये। 1980 की जनवरीमें चाकुलिया, फरवरीमें मथुरा, होलीपर वृन्दावन। होलीके बाद ही अयोध्याकी आकांक्षा प्रबल हो उठी।

कनकविहारीकी वत्सलता

परम श्रद्धेय श्रीरामकुमारदासजी महाराज रामायणीजीसे श्रीचक्रजीकी अटूट मित्रता थी। अयोध्या वर्षमें एक बार जाते रहते और रामायणीजीके प्रेम-परवश उन्हींके यहाँ रुका करते थे। मणिपर्वतके निकट ही उनका आश्रम था। सदाके नियमके अनुसार जिस-जिस दिन अयोध्या पहुँचते, उसी दिन श्रीकनकविहारी सरकारके श्रीचरणोंमें प्रणति सहित चरण-वन्दन करने अवश्य पहुँचते—पिताजी! आपका बालक आ गया, प्रणति स्वीकार करें।

जाते समय भी जानेवाले दिन आज्ञा लेकर अवधधाम छोड़ते कि 'आपका अल्पज्ञ अबोध बालक काशी या वृन्दावन जा रहा है, अनुमति प्रदान करनेकी

अनुकम्पा प्रदान कीजियेगा।'

इस बार श्रीअवधधाम पहुँचे ही थे, सामान रखकर कनकभवन जानेको तैयार कि श्रीरामकुमारदासजी महाराजने कहा— कृपया अभी रुक जाइये, हम भी चल रहे हैं। इस प्रकार साथ चलनेकी प्रतीक्षामें रात्रि हो गयी और ऐसी घनघोर मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गयी, जो रात दस बजे तक रुकी ही नहीं। यह श्रीचक्रजीके जीवनमें पहली बार ऐसा हुआ कि वे उसी दिन अपने पिताश्रीके दर्शन एवं चरण-वन्दना करने नहीं पहुँच सके थे। उन्हें खेद, व्याकुलता, अकुलाहट, असीम छटपटाहट हुई और मन-ही-मन मूक रूपसे अपनी व्यथा निवेदित करते रहे— पिताजी! आपका शिशु आज दर्शनको नहीं आ सका—मैं कितना निष्ठुर, अल्पज्ञ, अकृतज्ञ निकला, अवधमें प्रवेश करते ही सर्वप्रथम महलमें उपस्थित होना चाहिये। क्यों किसीकी बातोंमें आया? आप अपने बालकका अपराध क्षमा करेंगे न! इस प्रमादसे मेरा हृदय फट क्यों नहीं गया? इसी बैचेनीमें चिन्तन करते-करते सो गये। नित्य-नियमके अनुसार पौने तीन बजे जाग गये। उसी कक्षमें सोये श्रीरामकुमारदासजी रामायणी भी शय्या परित्याग कर सीढ़ियोंसे नित्य कर्मको उतर रहे थे। उनके उतरनेकी पदचाप चक्रजी स्पष्ट सुन रहे थे और मन-ही-मन भगवन्नाम लेते हुए प्रातः स्तवनके लिये बैठनेका उपक्रम कर ही रहे थे, तभी क्या देखा, उन्हींके शब्दोंमें—तेजोमय दिव्य आभाके मण्डलमें अनन्त करुणावरुणालय सन्मुख प्रकट हो गये हैं। नवीन नीरदश्याम विद्युत् वसन, द्विभुज, प्रशान्त पद्मलोचन प्रसन्न वदन, परात्पर पुरुष रघुवंशभूषण श्रीरघुनाथजी मेरे पिताश्री सस्मित करुणावारिसे सिञ्चित करते हुए कृपापूर्ण नेत्रोंसे अपने इस अबोध बालककी ओर निहार रहे हैं। उनके कुटिल घनकृष्ण केश, बंकभृकुटि, मनोहर कर्ण, उन्नत नासिका, निर्मल कपोल, छोटे-छोटे स्मित रेखासे खिंचे-से अरुण-अधर, विशाल प्रशस्त भुजाएँ वत्सांकित वक्षःस्थल कौस्तुभ-भूषित,

कम्बु कण्ठ, गम्भीर नाभि, अश्वत्थपत्रका आकार लिये उदर, क्षीणकटि, मनोहर पिण्डलियाँ, नवीन किसलय समान पादांगुलियाँ और उनके अरुण ज्योतिर्मय नख! एक दृष्टिमें यह सब जो देख सका सो देख लिया, फिर तो वात्सल्य-रसघन उन नयनोंपर मेरी दृष्टि अटक गयी। आत्म-विस्मृत होकर मैं उन कृपार्णव नयनोंको देखता ही रह गया। वे हैं ही ऐसे— जिस श्रीअंगपर दृष्टि जाती है, वहीं अटक जाती है, फिर जैसे-तैसे स्तवनको तत्पर हुआ तो वह मनोहर छवि अन्तर्हित हो गयी। सावधान होकर प्रकृति धरातलपर आनेमें कुछ समय लगा। उठते ही नित्य कर्म, संध्या-वन्दन और पूजा सम्पन्न होते ही बिना किसीको बताये चरणवन्दन करने पहुँचा कनकविहारीजीके मंदिरमें। हृदयमें अकुलाहट, पीड़ासे मेरा व्यथित मन संकोचसे विदीर्ण हो रहा था। कातर स्वरमें बोलता रहा— अवधमें प्रवेश करते ही माता-पिताके श्रीचरणोंमें प्रणतिके लिये प्रमाद क्यों हो गया? इधर मेरी अज्ञता, उधर उनकी अनुकम्पा कि मैं मन्दमति बालक नहीं पहुँचा तो करुणासागर वात्सल्यनिधि स्वयं दर्शन देने पधारे। उन्होंने अपना लिया, यह मेरा अहोभाग्य! उस अप-रूपका वर्णन मैं कैसे करूँ—

नव दूर्वादल श्याम मंजु, नव वारिज लोचन।
स्वर्ण पीत परिधान छटा, मन्मथ मनोहर॥
मणि भूषण श्रीअंग स्मरण निर्बाध अभयप्रद।
भजिय राम छविधाम जानकी-कर चर्चित पद॥

श्रीरामनवमीके अवसरपर दिल्लीसे श्रीजयदयालजी डालमिया सपत्नीक अयोध्या आये और जानकी महलमें ठहरे। उस समय जानकी महलमें वर्तमानके समान अधिक कक्ष नहीं थे। ऊपरकी मंजिलके चारों कक्ष उन्होंने ले लिये। प्रथम कक्षमें सेवक केशव एवं रसोइया, द्वितीय कक्ष खाली रखा,

तृतीयमें सपत्नीक डालमियाजी तथा चौथे कक्षमें उनके पुत्र श्रीजयहरि डालमिया एवं पुत्रवधू कविताजी रुके। जब इन्हें ज्ञात हुआ कि श्रीचक्रजी भी मणिपर्वतके समीप रुके हैं, तो वे वहाँ जाकर आग्रहपूर्वक उन्हें जानकी महलमें ले आये और कमरा नं० 2 में ही अपने समीपस्थ ठहरा लिया।

श्रीचक्रजीके साथ श्रीजयदयालजीने सपरिवार श्रीअवध धामकी परिक्रमा की और वे अयोध्याके अच्छे-अच्छे संतोंके दर्शन कराने इन्हें ले जाते। कभी संतोंके यहाँ— महापुरुषोंके यहाँ जाते; सत्संग करते, दर्शन करके कभी-कभी वहाँ प्रसाद भी पाते। एक दिन पूज्य श्रीनृत्यगोपाल दासजी महाराजके यहाँ प्रसाद पाने बैठ गये। प्रसादमें लौकीकी सब्जी बनी थी। संयोगसे कोई लौकी कड़वी होगी, अतः पूरी-सब्जी कड़वी हो गयी। भोग लग चुका था, अतः प्रसाद होनेसे बिना कुछ बताये ये सभी लोग कड़वी लौकी पा गये। बादमें जब स्वयं श्रीनृत्यगोपाल महाराजने प्रसाद पाया, तब उन्हें ज्ञात हुआ। बादमें बड़े स्नेहसे प्रसन्न होकर महाराजजी इसकी चर्चा करते।

संयोगसे स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती भी वाराणसी आये थे। उनके साथ उनके शिष्य अर्जुन सिंह भी थे। इनकी श्रीचक्रजीसे आत्मीयता भी थी। उन दिनों एटासे माँ अपनी पुत्री मुन्नी जीजीके साथ आनन्द-कानन वाराणसीमें पन्द्रह दिनके लिये आयी थी। वहीं अर्जुन सिंहसे ज्ञात हुआ कि श्रीचक्रजी अयोध्यामें मणि पर्वतपर हैं, अतः माँ और मुन्नी जीजी भी अयोध्या आ गयीं, मणिपर्वतपर पता लगाकर जानकी महलमें पहुँच गयीं। श्रीचक्रजी शामके चार बजेसे कुछ पूर्व ही श्रीकनकविहारीजीके दर्शन करने गये। मुन्नी जीजी साथमें श्रीरघुनाथजीको नैवेद्य अर्पित करनेके लिये बड़े चावसे रसगुल्ले लायी थी, जिन्हें चक्रजीको सौंप दिया।

मंदिरमें सभी पट खुलनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। चार बजकर बीस मिनटपर भी जब पट नहीं खुला, तब चक्रजीने पूछा— दर्शन होनेमें विलम्ब क्यों हो रहा है?

पुजारीजीने बताया— उत्थापनके पश्चात् लगनेवाला भोग अभी सिद्ध होकर आ नहीं सका है। चक्रजीके मुखसे तुरन्त निकला कि भोगके लिये नैवेद्य तो हम लोग लेकर आये हैं और रसगुल्लेसे भरा पात्र उन्होंने दे दिया। उस दिन वही नैवेद्य अर्पित हुआ और भोग लगाकर प्रसाद मिला सभीको। यह तो सम्भवतः श्रीचक्रजीका ही संकल्प था, जिसे प्रभुने स्वीकार कर लिया। वैसे उस समय नियम था कि उत्थापनके बाद पहला भोग मंदिरके भंडार-गृहसे ही आता था। मंदिर खुलनेके पाँच मिनट बाद ही उत्थापनका नैवेद्य सिरसे लिये भंडारीजी आ गये। उसका भोग भी बादमें लगा। सचमें **'उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन'** ही थे।

दूसरे दिन श्रीचक्रजीने नित्यकी पूजा बड़ी रुक-रुक करके की। जलपान जरा-सा करके छोड़ दिया। उनके मुखपर आनन्दकी विचित्र भंगिमा थी। वे खोये-खोये-से किसी स्मृतिमें डूबे जा रहे थे। एक दिव्य भावधारामें निमग्न देखकर माँ और मुन्नी जीजी बैठ गये। भाव प्रशमित होनेपर जानेका संकेत किया, तब तो मुन्नी जीजीका अन्तर्मन उनकी दिव्यानुभूतियोंको जाननेको अकुला उठा। स्पष्ट लग रहा था कि यह उनकी सहज स्थिति नहीं है। अवश्य ही श्रीरघुनाथजीने आज कोई अलौकिक कृपा की है। अब वास्तविकता कैसे ज्ञात हो? इस लालसाको मनमें सँजोये दोनों बैठे ही रहे। मनका दैन्यभाव और हृदयकी तीव्र अभिलाषा देखकर बैठे रहनेकी अनुमतिसे कृतार्थ करते हुए उनकी मधुर, स्निग्ध, किन्तु स्वर-भंग वाणी फूट पड़ी—देख, रघुवंशमें उत्पन्न होनेके कारण मैं राघवेन्द्रका शिशु हूँ। हम अपने सम्बन्धको जितनी दृढ़तासे मानेंगे, दूसरी ओरसे उतनी दृढ़ता पा जायँगे। यह सत्य है और विश्वास भी है। किन्तु मनमें ललक थी— उनकी ओरसे स्वीकृति की... आज... मेरे पिताजीने मेरी साध... पूरी कर दी।... मैं कक्षमें प्रातः पौने तीन बजे शय्यापर बैठा स्तवन कर रहा था— बस तभी अनायास दिव्य

प्रकाशसे कक्ष आलोकित हो उठा और एक अलौकिक सुगन्धिसे सारा वातावरण महकने लगा— स्वयं सर्वेश्वर साकेताधीश मेरे सम्मुख प्रकट हो गये। उन्होंने अपनी अमृतवर्षिणी वाणीमें स्पष्ट कहा— तुम्हारी अम्बा तुमसे यह अपेक्षा करती हैं कि तुम एक रूपसे सदा साकेतमें बने रहो... उन संकोचीनाथसे इससे अधिक स्पष्ट आदेशकी आशा की नहीं जा सकती। पराम्बाकी अनुकम्पासे मैं साकेताधीशका राजकुमार बन गया... मैंने मस्तक झुकाकर श्रीचरणोंपर धर दिया। उनके वरदहस्त रखते ही मैं तो परमानन्द सागरमें निमग्न हो गया।

कहते रहे— अद्भुत बात है यह, किन्तु जब सोचता हूँ, तब उनकी असीम उदारतासे हृदय भर आता है। उनके श्रीमुखसे निःसृत वचन 'तुम्हारी अम्बा तुमसे यह अपेक्षा करती हैं... ' शब्द कर्ण-कुहरोंमें गूँजते रहे... गूँजते रहे... उनके करुणाभरे औदार्यसे देहकी सुध-बुध जाती रही।... बड़ी कठिनाईसे नित्यका जप पूरा हुआ है।

उस दिन कहीं जा नहीं सके। सर्वथा अपने-आपमें खोये रहे। न ठीकसे भोजन किया, न सायंको सरयू किनारे गये एकान्तमें।

आनन्द-कंदकी मधुरतम वाणी ही गूँजती रही। ठीक दूसरे दिन भी सर्वथा विलक्षण सौन्दर्य सुधा-सागरमें डूबते-उतराते रहे, जिसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है।

कलकी भाँति आज भी टकटकी लगाये सुननेकी तत्परता देखकर बोल पड़े— मेरी ममतामयी अम्बाका वात्सल्य तो देख। आज मानो रघुनाथजीका 'तुम्हारी अम्बा... ' का स्पष्ट स्वर भी उन्हें सहन नहीं हुआ और अपनी बात स्पष्ट करने और अपने इस शिशुको देखने चली आयीं वे— जैसे अपने शयनकक्षसे उठकर सीधे आयी हों, ऐसा लगता था। अंकसे लगाकर सिर सूँघकर स्नेह-शिथिल स्वरमें बोलीं— तुम प्रसन्न रहो, ठीक? अब मुझे तुम्हारे

पिताजीकी सेवामें उपस्थित होना चाहिये। वे जैसे जल्दीमें थीं। माँकी मन्दस्मित छवि देखकर दो क्षणको ठिठक कर रह गया। प्राण भी उनके सुकुमार श्रीअंग (श्रीचरण)-को छूनेमें सिहरेंगे। कर तो अत्यन्त कठोर हैं। अनन्त चन्द्र-ज्योत्स्ना भी उनके अरुण चरण-नखकी कान्ति-छाया होगी। वे शुद्ध सात्त्विक प्रेमपूत प्रतिमा—मानो घनीभूत होकर साकार बन गयी हैं।

प्रेमातिरेकसे मैं अपनी पराम्बाको जाते हुए दिव्य वस्त्राभूषणोंकी अस्त-व्यस्तता और पृष्ठ भागपर बिखरी खुली, दिव्य, सघन, सुगन्धित केशराशि निहारता रहा, न जाने कितने क्षण तक। वे कब अन्तर्धान हो गयीं, मुझे ज्ञात ही न हो सका। मुझे तो अब भी उनका स्नेह-स्पर्श, वह दिव्य सुगन्ध, वह ममता भरे नेत्र और वह वात्सल्य, भीगी वाणी, सब कुछ सम्मुख ही हो— ऐसा लगता है। उनकी कृपा-करुणाकी कहीं परिसीमा नहीं है। माँके लिये ऋषियोंके कंठसे सस्वर श्रीसूक्तके स्तवनकी गुंजित ध्वनिसे धरा-नभ गुंजित हो जाता है, किन्तु अपना हृदय तो पुकारने लगा— माँ!... माँ!...

मातृ मम भूमिजा दुलारती सदा ही रहे।
स्मृति स्वप्नमें भी प्राण सहलाती है।।
स्नेह परिपूर्ण हो मिलाती राम अभिराम।
बन्दौ जनकात्मजाके पावन पद पुण्य धाम।।

पूज्या माँजी (श्रीमती कृष्णादेवी डालमिया धर्मपत्नी—श्रीजयदयालजी डालमिया) -का भी वृषभानुनन्दिनी और श्रीजनकनन्दिनीके प्रति आन्तरिक भावमय अनुराग था। उन्होंने भी उसी समय श्रीचक्रजीके कक्षसे निकल कर जाती हुई श्रीकिशोरीजीके पृष्ठभागका दर्शन अपने कक्षमें बैठे हुए ही किया था।

अवधधामसे चैत्र शुक्ल चतुर्दशीको प्रातः चार बजे सरयूजीमें स्नान कर प्रयागके लिये सबने प्रस्थान किया। मध्याह्नमें त्रिवेणी स्नान कर तुरन्त चित्रकूट

धाम पहुँचकर संध्या सात बजे मन्दाकिनीमें स्नान किया। दो दिन चित्रकूट रहे।

विठूर होते हुए श्रीचक्रजी श्रीकृष्णजन्मस्थान लौट आये।

पाक्षिक-कथा

श्रीचक्रजीको आचार्य बाँकेलालजी त्रिवेदीकी कथा-शैलीका प्रवचन बहुत प्रिय था, जो नरवर (बिहार घाट, उ०प्र०) -में संस्कृत महाविद्यालयमें प्राचार्य थे। चक्रजीके निर्देशनमें यह तय हुआ कि वे एटामें श्रीमद्‌भागवतकी पाक्षिक क्रमसे कथा करेंगे। आचार्यजीकी ब्रह्मलीन पं० रामदत्तजी शर्माके प्रति गुरु-तुल्य असीम श्रद्धा थी। कथाका आयोजन 10 अक्टूबर 1980 से 25 अक्टूबर 1980 तक होना निश्चित हुआ।

श्रीचक्रजीने आदेश दिया मुन्नी! इस कथामें मुख्य श्रोता कैलाश रहेंगे। सपत्नीक पूजन-अर्चन करना और समस्त नियमोंका पालन करते हुए कथा श्रवण करनी होगी। मुन्नी और माँ तो सुनकर स्तब्ध रह गयीं। असमञ्जसमें पड़कर मुन्नीने कहा। भैयासे कैसे कहें? पता नहीं मानेंगे या नहीं। वह जानती थी, वही क्या, सभी जानते थे कि कैलाश भैयाकी जीवनचर्या, दिनचर्या और स्वभाव सब एकदमसे शाही, अंग्रेजीदाँ है। प्रातः तीन बजे उठकर स्नानसे निवृत्त हो धोती, उत्तरीय धारणा कर पाँच बजे तक मंदिरमें अर्चनके लिये पहुँच जाना और सबसे कठिन था— दिनमें छः-सात घंटा भूमिपर बैठकर कथा श्रवण करना। अतः छोटी बहिन मुन्नीको संकोचमें देखकर श्रीचक्रजीने अधिकारपूर्वक कहा— मानेंगे, अवश्य मानेंगे, यह मेरा आदेश है। यह सब चर्चा श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर हुई थी।

घर आकर मुन्नी जीजीने डरते-डरते भैयाके कक्षमें जाकर बड़े संकोचपूर्वक श्रीचक्रजीका आदेश झिझकते हुए कह दिया— सुनते ही कैलाश भैया एक बार तो चौंककर खड़े हो गये, क्या कहा? मानो किसीने नींदमें झकझोर

दिया हो, मानो हृदयको हिला दिया हो, अन्तरको जैसे अज्ञात शक्तिने खींच लिया हो। जाने क्या हुआ, सजल नेत्र खड़े होकर धीरे-धीरे अपने कक्षमेंसे अपने पिताजीके चित्रपटके समक्ष प्रणाम करते हुए बोले— उनके आदेशने तो मुझे सदा-सदाके लिये बाँध लिया है... अब आदेश पालन तो करना ही है। इसमें इच्छा, अनिच्छा, स्वेच्छा, परेच्छाका तो प्रश्न ही नहीं उठता। कैलाश भैया अब भी चर्चा चलनेपर कहते हैं— बस, यहींसे पूज्य श्रीचक्रजीकी करुणा, उदारताका ऐसा अजस्र स्रोत उमड़ा कि उसमें नैसर्गिक सहज सरल वात्सल्यकी तरल तरंगोंमें मैं सदा-सदाके लिये बहकर उनके पावन श्रीचरणोंमें आ लगा और जीवनकी डोर उनके चरणोंमें उलझ गयी। सुलझानेका मन कभी हुआ ही नहीं, बस, उलझी ही रहे! इनकी छत्रछाया पाकर सनाथ हो गया। अब तो कुछ सोचने-समझनेको स्थान ही नहीं रह गया, मेरे श्रेय-प्रेय सब कुछ वही हैं।

कथासे एक दिन पूर्व सायंकाल तक जब आचार्य बाँकेलालजी शास्त्री एटा नहीं पहुँचे तो घरके सभी लोग उदास हो गये। व्यासपीठ और मंच-सज्जा हो चुकी थी, पर आचार्यजी तो आये ही नहीं। कई आशंकाओंसे मन मुरझा गया।

सबको उदास देखकर श्रीचक्रजीने कहा— निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है, आचार्यजी आ ही जायँगे, किन्तु वे नहीं आ सके, तो व्यासासनपर बैठकर मैं श्रीमदभागवतकी कथा करूँगा। उनकी अहैतुकी, अनुग्रहभरी वाणी सुनकर सबके मुरझाये मनोंपर मानो आनन्दकी वर्षा हो गयी हो। सभीके मुख खिल उठे।

रात्रिके ठीक 11 बजे आचार्य बाँकेलालजी शास्त्रीकी गाड़ी फाटकपर रुकी। आचार्यजीने बताया कि गाड़ी खराब हो जानेके कारण समयसे नहीं आ सका।

एक टीसभरी कसक तो कैलाश भैयाके मनमें रह गयी— क्या पूज्य श्रीचक्रजीकी वाणी-विचार सुननेसे हम सब वंचित रह जायँगे? चरणोंमें प्रणाम करते हुए उन्होंने समय पाकर निवेदन किया— बाबा! हमलोग अधिकारी तो नहीं हैं, किन्तु जैसे भी अल्पज्ञ हैं, विमूढ़ हैं, आपके हैं और आपके वात्सल्याधिकारी बालक आपके वचनामृत सुननेको लालायित हैं। सच्चे मनसे की गयी प्रार्थना कभी भी निष्फल नहीं जाती। उन्होंने आधा घंटा बोलना स्वीकार कर लिया।

प्रातः ठीक पाँच बजे कैलाश भैया अपनी शाही शान और अंग्रेजियत ताकपर रखकर स्नानादि, नित्य-पूजासे निवृत्त धोती पहने उत्तरीय ओढ़े मंदिरमें पूजाके आसनपर बैठ गये। गौरी, गणेश, सर्वतोभद्र षोडश मात्रिकाएँ, नवग्रह इत्यादिके पूजनके पश्चात् व्यासासनपर आसीन श्रीभागवतजीको माल्यार्पण कर चरण स्पर्श करके नीराजन किया। श्रीचक्रजीको माल्यार्पण, चरण-वन्दन कर मुख्य श्रोताके रूपमें आसनपर बैठ गये।

कथा प्रातः 8 बजेसे 10.30 तक होती थी और साढ़े दससे ग्यारह बजे तक श्रीचक्रजी प्रवचन करने लगे।

प्रथम दिवस उन्होंने 'सत्-चित्-आनन्द' की ऐसी हृदय-स्पर्शी व्याख्या की कि सबके मन रीझ गये। कैलाश भैया इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने दूसरे ही दिन श्रीचक्रजीके प्रवचनको टेप करनेका निश्चय कर लिया। जैसे ही प्रवचन प्रारम्भ हुआ, उन्होंने टेप खोल दिया। श्रीचक्रजीको जैसे ही इसका आभास हुआ, वे बोले-- क्यों, मैं कोई प्रवचनकर्त्ता हूँ?

कैलाश भैयाने नम्रतापूर्वक अनुरोध किया— बाबा! एक बार सुनकर मैं आत्मसात् कर सकूँ, ऐसी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। यह सब प्रचार-प्रसारके लिये नहीं है, व्यक्तिगत रूपसे सुनकर समझनेका प्रयास कर रहा हूँ। कृपापूर्वक श्रीचक्रजीने अनुमति दे दी। उनके प्रवचनमें इसी बातपर जोर दिया जाता

था कि श्रीमद्भागवतके अनुसार भगवत्प्रेम-प्राप्ति ही जीवनका लक्ष्य है।

कथा श्रवणके समय उनकी सहज अन्तर्मुखता बनी रहती। आत्म- संगोपनकी वृत्ति होनेपर भी अर्धनिमीलित नेत्र, पुलकित शरीर, कंटकित रोमावली उनकी अन्तःस्थितिको प्रकट कर ही देते। कभी जड़वत् निष्कम्प अचल बैठे रहते तो कभी बाल-लीला श्रवणके समय शरीरमें बार-बार ऐसा कम्प होता कि धरासे उछल पड़ते। कैलाश भैया उनकी भावाभिभूत स्थिति निकटसे देखकर विस्मित हो जाते। वे कहते हैं — श्रीचक्रजीके रोमकूप फूल जाते। जड़ता और कम्पकी जैसी स्थिति उनकी मुझे देखनेमें मिली, वह पढ़ने-सुननेमें बहुत आयी, पर प्रत्यक्ष देखनेका सौभाग्य अन्यत्र नहीं मिला। उनके सान्निध्यकालमें नित, नये आनन्द, नित नये अनुभवोंकी वर्षासे हमलोग स्नात होते रहे।

धूम-धामसे श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव एवं नन्दोत्सव मनाया गया। उसी दिन सायंकालीन कथामें आचार्यजीने बड़े भावविभोर होकर सूरदासका पद मधुर कंठसे गया—

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटवनि चलत रेनुतनमंडित मुख दधि लेप किये।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मदहि दिये।।
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत रुचिर हिये।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिये।।

प्रथम चरणके गायनके साथ ही श्रीचक्रजीकी देह प्रकम्पित होने लगी। वे मंत्रमुग्धसे, प्रेम पुलकित, भावभरे नयनोंसे अपने बालकृष्णलालको देख लेते थे। इधर न जाने कहाँसे कैलाश भैयाका छोटा दौहित्र 'अनुज', जो केवल तीन वर्षका था, लाल वस्त्र पहने, लाल गुब्बारेसे खेलता-उछलता कथाके

बीचमें आ गया; जबकि सब बच्चोंको एक व्यक्तिके संरक्षणमें छोड़ दिया गया था। ज्योंही बच्चेको रोकनेको उठने लगे कि श्रीचक्रजीने हाथके संकेतसे मना कर दिया। उन्हें लगा, बालकमें कन्हाईका आवेश आ गया है। श्रीठाकुरके आवेशमें बालकका थिरक-थिरक कर नाचना सब मुग्ध भावसे देख रहे थे। उसका मृदु हास्य, तिरछी चितवन, सब कुछ अलौकिक थी। भावविमुग्ध श्रीचक्रजीका हाथ उस बालकको लेनेके लिये बढ़ा; किन्तु देहके बार-बार कंपित होनेसे न बोल पा रहे थे, न अंकमें उठा पा रहे थे। जैसे ही पद-गायन समाप्त हुआ, बालक एक क्षणको उनकी गोदमें बैठकर भाग गया। चक्रजी भी अपने कन्हाईके लीला-चिन्तनमें डूब गये। उनके नेत्र आनन्दमें मुँद गये। कथा क्रमसे आगे बढ़ने लगी।

कथाके अन्तिम दिन शरद-महोत्सव मनाया गया। खीरको निर्मित करने-का निर्देशन भी श्रीचक्रजीने दिया कि श्रीकृष्णको अर्पित किया जानेवाला नैवेद्य उत्तम हो, प्रभुका चिन्तन करते हुए उसका रन्धन हो।

रात्रिको शरद्की ज्योत्स्नामें उनके बालकृष्णलालको विराजमान किया गया। 'हरश्रृंगार' के ताजे पुष्पोंसे उनका श्रीअंग सजाया गया। रात दो बजे तक पद-गायन, संकीर्तन और नृत्य हुए। आनन्दकी उत्ताल तरंगोंपर जैसे सभी तैर रहे हों। दो बजे ठाकुरजीको आसनपर पधराया गया। सब लोग छतसे नीचे आ गये। प्रातः जब कैलाश भैया चरण-वन्दन करने गये, तब श्रीचक्रजीने बताया — कन्हाई तो शरद्का उत्सव मनाकर तीन बजे लौटा है। यह उसकी अपनी व्यक्तिगत लीला-क्रीड़ा है।

यह आया तो अपने दिव्य अलौकिक प्रकाश और सुगन्ध द्वारा अपने आनेका आभास मुझे करा दिया। तब इसे अंकमाल देकर नित्यके पूजाक्रममें संलग्न हो गया।

कथाके समापनका और भी विलक्षण अद्‌भुत आनन्द था। कथाका विश्राम होनेपर आचार्यजीने पं० रामदत्तजी शर्माकी ज्ञान-गरिमा विद्वत्ता, उदारता और अपने इस घरसे संलग्नताकी चर्चा की। इसके पश्चात् स्वरचित काव्य

रचनासे श्रीचक्रजीका स्तवन किया—

सृजति तावद शेष गुणाकरं पुरुष रत्नमलंकरणं भुवः ।
तदपि तत्क्षण भंकि करोति चेदहह कष्टम पण्डितता विधेः ।। 1 ।।

वदनं प्रसाद सदनं हृदयं सदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां जते बन्धाः ।। 2 ।।

येषां भक्ति रसायनेन जनता प्राप्ताचिरं जीवनं,
ये विद्वज्जन वन्दिताः सुकृतिनामा सेवनीयाः सताम् ।। 3 ।।

येषां कृष्णपदारविन्द युगलै नैसर्गिकी सद् गतिः,
तेषामेष समर्प्यते सविनयं श्रद्धांजलि सादरम् ।। 4 ।।

श्रीमत्चक्रपदाभिधा समधियां धौरेयता मागता,
भक्ति ज्ञान विरागिता विलसिता येषां पवित्रतनुः ।। 5 ।।

नाम्नार्थेन सुदर्शना हशिमतां सदर्शता नन्दनाः,
तान् श्रीसिंह समन्वितान् गुरुवरान् बन्दामेह सादरम् ।। 6 ।।

शेषाभेष स्वरूपाणा श्री श्रीकृष्ण स्वरूपिणां
स्तुतिश्चक्र पदानां भूयात् भव्याय भूयसे ।। 7 ।।

इस सब कार्यक्रममें अभिभूत भावविभोर कैलाश भैयाके नेत्र झरने लगे। भागवतजीकी आरतीके पश्चात् वे सिरपर भागवतजीको लेकर घंटे एवं शंख-ध्वनिके साथ अपने श्रीसीताराम मंदिरमें पधराने जा रहे थे तो आँखोंके आँसू रोके नहीं रुक रहे थे। वे कभी दाहिने और कभी बायें हाथसे भागवतजीको सँभालते और दूसरे हाथसे आँसुओंको पोंछते जा रहे थे। पैर डगमगाते हुए चल रहे थे। इसी बीचमें श्रीचक्रजी अपने कन्हाईको लेकर मंदिरके समीपवाले अपने आवास-कक्षमें आ चुके थे।

श्रीमद्‌भागवतजीको मंदिरमें पधराकर कैलाश भैयाने श्रीचक्रजीके कक्षमें प्रवेश कर दरवाजेकी कुंडी अन्दरसे बन्द कर ली और चक्रजीके चरणोंपर सिर रखकर फूट-फूट कर रो पड़े। आज कैलाश भैयाका ऊपरसे ओढ़ा हुआ नकली कठोरताका खोल जैसे फट गया और हृदयका बाँध तोड़कर रसधार बह चली। श्रीचक्रजीका अभय स्नेहभरा हाथ मस्तकपर घूमता हुआ मौन सान्त्वना दे रहा था। चारों ओर आनन्दकी जैसे बाढ़ आ गयी थी। सबकी आँखोंमें आँसू एवं हृदय आनन्दसे लबालब भरे थे। यह सब श्रीचक्रजीकी उन दिनोंकी स्मृति कर कभी चर्चा चलनेपर कैलाश भैया कहते हैं—

इन बीस दिनोंकी अवधिमें चक्रजीकी दिनचर्या, रहन-सहन और स्वभाव-को निकटसे देखनेका अवसर मिला। उनके विचारोंको सुना, जितना-जितना सुनता गया, वे हृदयमें बसते गये। मुझे लगा— उनका जीवन साधारण नहीं है, श्रीचक्रजीके भगवद्-विषयक विचार, भगवत्सम्बन्धी अनुभव और भगवन्मय जीवन उनके असाधारण लोकोत्तर भव्य व्यक्तित्वके परिचायक हैं। उनके व्यक्तित्वका, वाणीका और विचारोंका ऐसा प्रभाव पड़ा कि बीस दिनोंमें ही निर्णय हो गया— अब किसीकी खोज नहीं करनी है, और किसीकी ओर नहीं देखना है तथा और किसीसे आशा भी नहीं करनी है।

बस... इन्हीं श्रीचरणोंकी रजपर जीवन अर्पण कर देना है। यही मेरे जीवनका महत्त्वपूर्ण मोड़ था, मानो मेरी चिर-प्रतीक्षित साध पूरी हो गयी।

कथाके पश्चात् मनोवृत्ति इनकी ऐसी हो गयी कि अहर्निश रामश्यामकी झाँकियोंके भावचिन्तनमें डूबे रहते। डिस्पेन्सरी जाना छूट गया, किसीसे न बोलना, न सुनना, न किसीकी ओर देखना। अपने कक्षका द्वार ही तब खोलते, जब श्रीचक्रजीके पास जाना होता। घरके सभी सदस्य फिर चिन्तित हो गये— इन्हें क्या हो गया है? ऐसे कैसे काम चलेगा? पुत्रियोंके विवाह करने हैं। वृद्धा माँको सँभालना है। बच्चोंकी माँ (भाभी) भी अस्वस्थ रहती

है, आदि सभी उत्तरदायित्व निभाने हैं। एक दिन माँने ही चक्रजीसे कहा— लल्लाको क्या हो गया है? श्रीचक्रजीने सान्त्वना देते हुए कहा— माँ! धीरे-धीरे सब ठीक हो जायगा। दूधमें जैसे उबाल आता है, वैसा ही है। धीरे-धीरे वह रुक जायगा अर्थात् चित्तकी मनोवृत्ति श्रीकृष्णमें स्थिर हो जायगी, तब सब कुछ सामान्य हो जायगा। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो?

तत्पश्चात् वर्ष 1981 से प्रतिवर्ष आश्विन कृष्ण दशमीको एटा रामनिकुंजमें पधारते और दशहराके पश्चात् मथुरा चले जाते। यहाँ विजयादशमीपर स्वयं श्रीरघुनाथजीका षोडशोपचारसे अभिषेक-पूजन करते और सब लोगोंसे उत्सव कराते। श्रीचक्रजीको सार्वजनिक प्रवचनका आयोजन रुचिकर नहीं था। घरके सभी सदस्य, दो-चार परिचित रात्रिको आठ बजेसे पहले ऊपर उनके कक्षमें पहुँच जाते और नौ बजे तक सत्संग चलता, जिसमें वे श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंकी चर्चा करते तथा स्वानुभूतिपरक अनुभव-संस्मरण सुनाते। बड़ी ही सरलतासे वर्णन करके सहज सुलभ करा देते थे। सभी इतने आह्लादित रहते कि श्रवणकी लालसा बनी रहती। अधिकांशतः प्रश्न पूछनेका अवसर ही नहीं आता, क्योंकि प्रश्न हृदयमें उठता और चक्रजी अपनी चर्चामें उसका उत्तर उसे दे दिया करते। कैलाश भैया चकित होते— बाबाको कैसे ज्ञात हो जाता है कि मैं यही बात पूछनेवाला हूँ। सच है— **'गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।'**

इतनेपर भी कभी समक्ष और कभी पत्र द्वारा प्रश्न पूछे ही जाते थे; यथा—

प्रश्न— क्या संसारमें कभी एकरस सुख-शान्ति पाना सम्भव है? क्या आवागमन छूट सकता है?

चक्रजीने हँसकर कहा— तुम भी विचित्र हो। अरे, हिमालयमें गर्मी और जलती भट्टीमें कहीं शीतलता मिला करती है, जो तुम खोज पाओगे।

जिसको तुम सुख समझ कर प्रसन्न होते हो, वह तो सुखका आभास-मात्र है। रही आवागमनकी बात, तो मायाका पूरा क्षेत्र ही आवागमनका है। अतः शरीर कोई-सा भी हो, शरीरके रहते भी कभी आवागमन छूटा करता है?

भैयाने पूछा— श्रेय और प्रेय क्या है?

श्रीचक्रजीने कह दिया— कैलाश! पथ दो ही हैं। श्रेय— अन्तमुर्खता और प्रेय — सांसारिकता, क्योंकि प्रारब्ध भी कोई कर्म ही है पूर्वका; अतः वर्तमानके कर्म भी उसे कुछ तो प्रभावित करते ही हैं और सर्वेश्वर प्रेयार्थीकी ओर तटस्थ बना रहता है; किन्तु जब कोई उसकी ओर देखने लगता है तो वह भी उसके प्रति सक्रिय होता है। यह दूसरी बात है कि उस बन्धनछेत्ताकी सक्रियता अनेक बार अल्पज्ञ मनुष्यको असफलता एवं दुःखदायी लगती है। अतः तुम केवल कन्हाईको देखते रहो।

प्रश्न — बहुत बार 'पतित-पावन' नाम सुना है, क्या है वह?

उत्तर — वे सर्वज्ञ ही यदि पामर प्राणीके पाप देखने लगें, तो क्या कभी किसीका उद्धार होगा? किन्तु वे तो पतित-पावन हैं। पापी प्राणीपर उन्हें अधिक अनुकम्पा सूझती है। उन्हें लगता है— यह अबोध अधिक दुर्बल है। अतः सबसे दुर्बल शिशुपर ही माताका वात्सल्य अधिक उमड़ता है या नहीं? अपने अतिशय दुर्बल, असमर्थ शिशुके गिर जानेपर वह दौड़ पड़नेको आतुर हो उठती है। शिशु तो अज्ञानी है, असमर्थ है। स्वभावतः चंचल है। अटपटे मार्गपर दौड़ना उसकी सहज प्रवृत्ति है।

आप जानते हैं— शिशु कभी अपराध नहीं करता। शिशु गिरकर अपनेको आहत कर ले या कीचड़में लथपथ हो जाय— अपराध माताका है।

प्रश्न — बालकका दायित्व क्या है?

उत्तर — केवल रोना, माँको पुकारना और झल्लाहट बढ़े तो माँसे रूठ जाना, उसकी गोदमें आनेकी हठ करना। रोना, पुकारना, मचलना यदि तुम्हें

आ गया तो तुम कृत-कृत्य हो गये। तुम तो सर्वथा निर्दोष, निष्पाप, परम निर्भय हो। किसको साहस है कि पतित-पावनके पदाश्रितमें त्रुटि देख ले।

श्रीरघुनाथजी पतित-पावन हैं। उन्हें प्रमाद स्पर्श नहीं करता। उन्हें पुकारता नहीं, स्मरण नहीं करता— यही तो है जीवका सबसे बड़ा अपराध। यही उसका अभाग्य। उस सर्वेशने तो कभी, किसी, कैसे भी अपावनकी उपेक्षा नहीं की।

प्रश्न — आप जप करनेको कहते हैं, बात ठीक ही होगी, किन्तु कहिये तो — यदि मुन्नी समीप बैठी हो, और मैं मुन्नी-मुन्नी रटूँ तो वह प्रसन्न होगी या चिढ़ेगी?

उत्तर — श्रीचक्रजीने हँसकर उत्तर दिया— यह तर्क तुम्हारे मनमें उठा ही इसलिए कि व्यक्ति या पदार्थके समान ही तुमने भगवन्नामको समझा है। भगवन्नाम लेना वैसा नहीं है, जैसे मुन्नी-मुन्नी कहना।

भगवन्नाम कैसा है? यह शब्दों द्वारा समझाया नहीं जा सकता। इसलिये गोस्वामीजीने इसे 'अकथ' कहा है; किन्तु कुछ संकेत ही करना हो तो कहना पड़ेगा कि नाम ऐसा है— जैसे आप समीप बैठे भगवान्‌का स्पर्श कर रहे हों। यह आपकी भावनापर निर्भर है कि आप कृष्ण-कृष्ण कहते यह अनुभव करें कि कन्हाईकी अलकोंपर, पीठपर हाथ फेर रहे हैं या उसके चरणोंको सहला रहे हैं। लेकिन भगवन्नामका जप साक्षात् भगवान्‌का स्पर्श है। उत्तम स्थिति यही है कि भगवन्नाम लेते हुए भगवान्‌के स्पर्शका अनुभव करना। तभी आप ठीक-ठीक नाम-जप कर रहे हैं।

प्रश्न — सर्वेश्वरके इस साक्षात् स्पर्शकी अनुभूतिका अनुभव सदा-सर्वदा कैसे रहे?

उत्तर — इस अनुभूतिके लिये आवश्यक है— निष्ठा अर्थात् परमात्माके किसी रूपको तुम अपना बनाओ। ध्यान रखो कि परमात्मा केवल बनाने,

मान लेनेसे अपना हो जाता है; क्योंकि वह अपना तो पहलेसे ही है। परमात्माका स्पर्श हमें रात-दिन प्राप्त हो रहा है। केवल उस स्पर्शके अनुभवको जगाना है। नाम-स्मरण इस अनुभवको धीरे-धीरे जगा देगा ।

प्रश्न – भगवत्कृपाकी अनुभूति कैसे होती है?

उत्तर – जब मन भगवत्-स्मरणमें, नाम-जप, भगवच्चरित्र सुनने-पढ़नेमें लगे, तब समझो तुमपर भगवत्कृपा है। सबसे बड़ी भगवत्कृपा यह है– भगवान्के साथ किसी भी सम्बन्धसे आत्मीयता हो जाना अथवा किसी सच्चे भगवद्भक्तमें अनुरक्ति हो जाना।

एक दिन सहसा सत्संगमें ऐसा शान्त, स्निग्ध आनन्दमय वातावरण होता गया कि मनसे भी कुछ सोचने-समझने, बोलने-सुननेकी शक्ति नहीं रही। सात्त्विकता साकार होकर घनीभूत होती जा रही थी और सभी अपने-आपको एक असीम सुखानुभूतिमें विस्मृत कर बैठे।

जैसे-तैसे भैयाने प्रश्न किया – बाबा! यह क्या होता जा रहा है? आनन्दके स्पन्दनमें, भगवदीय रसकी तरंगोंमें सब निमग्न होता जा रहा है।

श्रीचक्रजीने बड़ी सहजतासे कहा–

इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? सत्संग चल रहा है न! सत्संगके व्यसनी श्रीहनुमान्‌जी हैं और श्रीदेवर्षि नारदजी भी – जिनके अंग-प्रत्यंगसे भगवत्प्रेमकी ज्योत्स्ना झरती रहती है। हो सकता है कि इनमेंसे कोई दिव्य विभूति आकाश-मण्डलसे विचरण करते जा रहे हों और ये जहाँ कहीं भी एक क्षणको ठहर गये, तो वहाँका वायुमण्डल एक अलौकिक दिव्य मधुरतापूर्ण आनन्दानुभूति करानेवाला स्वतः ही हो जायगा, अन्यथा यह मलय-चन्दन, कपूर-तुलसीमिश्रित सुवास, सुगन्धि किसकी हो सकती है? इस दिनके सत्संगका आनन्द अपने-आपमें अद्भुत रहा।

श्रीशास्त्रीजी द्वारा भागवत-कथा

2 दिसम्बर 1980 से 15 दिसम्बर 1980 तक गुजरातके प्रसिद्ध विद्वान्, श्रीमद्भागवतकी अनेक टीकाओंके सम्पादक, प्रकाशक और भक्तिपरक भावप्रधान वक्ता श्रीकृष्ण शंकरजी शास्त्री द्वारा श्रीमद्भागवतकी चौदह दिनकी कथा श्रीकृष्णजन्मस्थानके लीलामंचपर हुई। इस कथाके मुख्य श्रोता श्रीजयदयालजी डालमिया सपत्नीक थे।

श्रीशास्त्रीजीकी कथा बड़ी प्रभावपूर्ण होती, इनके द्वारा लोगोंको समझानेकी पद्धति बहुत सरल एवं सरस थी। भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी इनकी कथा आयोजित होती है। इनका जीवन बहुत सादा और सदाचारयुक्त है। इन्होंने श्रीवल्लभाचार्यजीकी चौरासी बैठकोंकी स्मृतिमें एक भवन अपने – आश्रममें बनवाया है।

एक भागवत भवन अहमदाबादके पास 'सोला' गाँवमें बनवाया, जो अपने- आपमें अनूठा है। वहाँ श्रीनाथजीके श्रीविग्रहकी स्थापना करायी है। एक बहुत बड़ा उद्यान भी है, जिसके फल पक्षियोंके आहारके लिये सुरक्षित रखे जाते हैं। आश्रमवासी वृक्षसे गिरे फल ही खा सकते हैं। आश्रममें विद्यालय, वृद्धाश्रम, सन्त निवास और साधकोंके लिये आवास एवं भोजनके लिये सुविधा है।

कथा प्रारम्भ होनेसे पाँच मिनट पूर्व मंचपर आकर श्रीचक्रजी सारी व्यवस्था देख लेते। कहीं कोई त्रुटि दिख पड़ती तो तुरन्त अपनी देख-रेखमें ठीक करा लेते। श्रीशास्त्रीजी जिन्हें 'दद्दाजी' भी कहा जाता है – इन्होंने कथा-प्रसंगमें श्रीकृष्णजन्म और उनकी बाललीला इतने सरस ढंगसे विस्तारपूर्वक सुनायी कि कंसवधका समय आ गया; किन्तु उनसे भावविभोरतावश व्रजलीलाका विस्तार समेटा नहीं जा रहा था कि उसी समय संयोगसे अथवा भगवत्कृपासे पुराणाचार्य श्रीनाथजी शास्त्री वृन्दावनवाले कथा-श्रवणके लिए आ पहुँचे। दोनों ही विद्वान् वक्ता बड़ी श्रद्धा और प्रेमसे

एक-दूसरेसे मिले— **'मिलन प्रीति किमि जाइ बखानी'** श्रीशास्त्रीके चित्तमें श्रीनाथजीके श्रीमुखसे कुछ सुननेकी उत्कण्ठा उमड़ पड़ी, वे बोले— अरे भाई! अब कंस हमसे नहीं मर पायेगा, उसे मारनेमें तो श्रीनाथजी महाराज ही समर्थ हैं। उनकी बात सुनकर सभी प्रसन्नतासे हँसने लगे। बड़े सम्मानसे उन्हें बरबस कथा-मंचपर बैठाकर स्वयं श्रोता रूपसे सामने बैठ गये। दोनोंकी विनम्रता, प्रेमपरवशता, सरलता देखकर सभी श्रोता आनन्दमें झूमने लगे। अब श्रीनाथजी शास्त्रीने व्रजभाषामें अपनी समास शैली द्वारा एक घंटेकी कथामें मथुरा-चरित्र, धनुर्भंग, कंस-वध करके उग्रसेनजीको राज्य-सिंहासनपर आरूढ़ करा दिया। सभी लोगोंको विस्तारसे बाल लीलाएँ भी सुननेको मिल गयीं और कथा भी आगे बढ़ गयी। एक साथ दो-दो विद्वान् वक्ताओंकी सरस कथा श्रवण कर सभी श्रोताओंके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी और प्रसन्नतासे उनके मुख खिल उठे।

श्रीकरपात्रीजी द्वारा ग्रन्थकी प्रामाणिकता

ज्योतिष्पीठके जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीब्रह्मानन्दजी महाराजके शिष्य और स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके गुरुभाई स्वामी करपात्रीजी महाराजकी विद्वत्ता एवं पाण्डित्यका प्रकाश दिग्-दिगन्तमें परिव्याप्त था। विरक्तोंमें उनकी ब्रह्मविद्या, दर्शनशास्त्र एवं अद्भुत प्रतिभाकी प्रतिष्ठा थी। वे सनातन धर्मकी पद्धतिके पूर्ण समर्थक थे एवं शास्त्रोंके अक्षर-पंक्ति-मात्रमें निष्ठा रखते थे तथा अपनी अद्भुत प्रतिभा एवं गम्भीर-विद्याके द्वारा सबका समन्वय करते थे, युक्तियुक्त सिद्ध करते थे।

श्रीचक्रजीकी दृष्टिमें भी श्रीकरपात्रीजी महाराज महापुरुष और वेदशास्त्रोंके ज्ञाता ही नहीं, अपितु शास्त्रानुकूल आचरण भी करते थे। इनकी मान्यता थी— वेदवाणी और तदनुकूल समस्त शास्त्रोंका जैसा समन्वित स्वरूप उन्होंने अपनी वाणी और लेखनीके द्वारा व्यक्त किया है, वह आत्मसात् करने योग्य है। अतः श्रीचक्रजी अपनी प्रकाशित पुस्तकोंकी एक प्रति उन्हें भेंट किया

करते थे। इनके द्वारा लिखित 'श्रीरामचरित्र' एवं 'श्रीशत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा' पढ़कर उन्होंने सजल नयन भावविह्वल वाणीसे कहा — मैं तो इन्हें अभिनव तुलसीदास मानता हूँ।

वर्ष 1980 में ही श्रीचक्रजीने 'कलियुगका अंत और कल्कि अवतार' प्रकाशित होनेके पूर्व ही पाण्डुलिपि श्रीकरपात्रीजीको भेंट करते हुए कहा— मैंने तो वेद-शास्त्र पढ़े ही नहीं हैं, अतः आप इसे पढ़कर बताइये— कोई बात शास्त्र-विरुद्ध तो नहीं है? मुझसे तो कन्हाई जैसा भी लिखवा देता है, लिख देता हूँ। यदि शास्त्र-सम्मत है तो छपनेको प्रेसमें दे दूँगा, अन्यथा नहीं। श्रीकरपात्रीजीने पढ़कर बताया कि एक-एक शब्द शास्त्र-पुराणके अनुसार है। आप निश्चिन्त होकर प्रेसमें दे दीजिये और जब प्रकाशित हो जाय, तब एक प्रति मुझे भी चाहिये।

श्रीचक्रजीकी बात सच थी कि श्रीकरपात्रीजी महाराजकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा साधारण जनताको भी श्रुति-सम्मत तथ्योंको सहज-सरल शब्दोंमें हृदयंगम करानेमें समर्थ थी। बड़े-बड़े महात्माओंकी सभामें जब वेद-शास्त्रोंकी व्याख्या और तथ्योंका निरूपण करने लगते और खड़े होकर धारा प्रवाह युक्तियोंकी वर्षा करते, तब सुननेवाले लोग मंत्र–मुग्ध हो जाया करते थे।

डी०लिट्० का निर्देशन

वर्ष 1981 ई० में वृन्दावनकी होली करके श्रीकृष्णजन्मस्थान लौट आये। स्मारिकाका कार्य पूर्ण करके 15 मईको परमार्थ आश्रम, हरिद्वार चले गये। वहाँ अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती द्वारा प्रातः गीता-प्रवचन होता था। सायंकालके सत्संगमें पूज्य स्वामी सदानन्दजी महाराज सरस्वती, स्वामी धर्मानन्दजी महाराज सरस्वती, आचार्य भागवतानन्दजी महाराज और श्रीराजेशजी 'रामायणी' द्वारा प्रवचन हुआ करते। यहींसे श्रीचक्रजी 24 मईको उत्तरकाशी और स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज परमार्थ निकेतन,

ऋषिकेश चले गये।

श्रीचक्रजी उत्तरकाशीमें योगनिकेतनमें गंगा किनारे ठहरते थे। समाचार पाकर माँके साथ बालचन्द्रिका भी एक महीनेके लिये चली आयी। उन दिनों बालचन्द्रिका 'श्रीरामचरितमानस एवं श्रीमद्‌भागवतका तुलनात्मक अध्ययन' (संरचना एवं लक्ष्य) -पर शोध-प्रबन्ध लिख रही थी। उसमें श्रीचक्रजी द्वारा निर्देशन प्राप्त करना ही उनका उद्देश्य था। श्रीचक्रजीका भागवतपर अध्ययन इतना गम्भीर तथा रस-तत्त्वके प्रतिपादनमें अनुभव ऐसा बोधगम्य था कि मनीषी भी आश्चर्यचकित रह जाते। श्रीचक्रजी भागवतके अध्यायोंको बोलकर लिखवाते, बिना किसी सहायक ग्रन्थके। मूलपाठके ग्रन्थसे अध्यायोंके शीर्षकके अनुसार धाराप्रवाह बोलते चले जाते; जैसे— श्रीमद्‌भागवतका प्रमाण, प्रमेय, साधन और फलरूपत्त्व। श्रीमद्‌भागवतका छन्द-विधान जैसे— शार्दूल विक्रीड़ित, द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मालिनी आदि... बत्तीस छन्दोंमें उदाहरण।

श्रीमद्‌भागवतकी प्रसंगानुकूलभाषा — अभिव्यंजनात्मक, लक्षणात्मक, सूत्रात्मक आदि तथा शब्द चयनात्मक। भाषामें—भाव-सौन्दर्य, चित्रात्मक, व्यंगात्मक, भावात्मक, अलंकारात्मक एवं बिम्बविधानके समस्त उदाहरण सहित नवरसोंके सभी उदाहरण भी। श्रीमद्‌भागवतकी प्रमुख धाराके लक्ष्यके अन्तर्गत भागवत ग्रन्थके छः प्रयोजन — उपक्रम, उपसंहार, अपूर्वता, फल, अर्थवाद आदि। भगवदीय भक्तिके स्वरूपमें अवान्तर प्रसंगोंमें तादात्म्य, भागवतका लक्ष्य, अद्वैत भक्ति। श्रीकृष्ण लीलानुकथनसे अद्वैत भक्तिकी सिद्धि और अद्वैत भक्तिमें साध्य एवं साधनका स्वरूप निर्णयका प्रतिपादन अद्‌भुत था। श्रीमद्‌भागवतमें भक्तिके विविध रूपोंमें— शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य गोपी प्रेमपर जब धारा प्रवाह विवेचन करते तो रसानुभूति प्रत्यक्ष होने लगती थी।

इसी प्रकार 'लक्ष्य खण्ड' के शीर्षकोंमें — अवतार-तत्त्व, अवतार-प्रयोजन, अवतारोंका तात्त्विक विवेचन, भागवत एवं मानसके मंगलात्मक (व्यष्टिगत और समष्टिगत) रूपका अनुशीलन, अनुष्ठान और उनके विशेष नियमोंकी व्याख्या भी वे सहज रूपसे कर देते थे। अवान्तर और उपकथाओंका नाम-निर्देश करते हुए उनके द्वारा प्रमुख कथाओंका पोषण, भागवतके उपदेशात्मक प्रसंगोंकी व्याख्या भी आनन्दवर्धक होती।

रस-परिकल्पनाके सन्दर्भमें भक्ति-रसकी शास्त्रीय पीठिकाके अन्तर्गत दोनों ग्रन्थोंका रस-परिपाक निरूपण, काव्य रसमें भक्ति-रस-परिपाक निरूपण, काव्य-रसमें भक्ति-रसकी अलौकिक स्थिति तथा श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके रस परिपाकमें एक दृष्टि और शीर्षकमें उन्होंने अपने मौलिक चिन्तनकी छाप छोड़ी है। अंतमें श्रीमद्भागवतका सादृश्य-विधान (साम्य-वैषम्य), लौकिक एवं अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्तिकी बड़े सहज ढंगसे ऐसी व्याख्या की, जो उनकी प्रखर विद्वत्ता प्रत्युत्पन्नमतिका सुदृढ़ उदाहरण है। बालचन्द्रिका प्रायः कहा करती है कि मुझ अल्पमतिको डी०लिट्० में स्वर्णपदक उनके प्रसादसे ही प्राप्त हुआ है, अन्यथा उनके भावोंकी गहराईको आत्मस्थ करनेकी पात्रता मुझमें है ही कहाँ।

एक साधन-विहीन सातवीं कक्षा तक पढ़े व्यक्तिका ज्ञान, सामर्थ्य, गहन चिन्तन और लेखन देखकर मति चकित हो जाती है। वे अपनी प्रतिभासे भक्तिरसका ऐसा अद्‌भुत, अपूर्व एवं विद्वज्जन-मनोहारी अभिप्राय बता देते थे कि श्रोता आश्चर्यमय आनन्दमें मग्न हो जाते थे। अनुभवपक्व होनेके कारण ही इनकी वाणी सारगर्भित थी और स्थायी प्रभाव छोड़नेमें समर्थ।

भागवत-भवनका प्रतिष्ठा-समारोह

वर्ष 1982 ई० के जनवरी मासमें भागवत-भवन-प्रतिष्ठा-समारोह प्रारम्भ हुआ। इस समारोहके सभी कार्यक्रम श्रीचक्रजीके निर्देशनमें हो रहे थे।

भागवत-भवनकी विशाल छतका निर्माण कार्य आरम्भ हुआ तो इन्जीनियर श्रीनन्दकिशोरजी शर्मा आदर-श्रद्धा सहित श्रीचक्रजीको ऊँचाई तक नसैनीसे ऊपर ले गये और छत-निर्माणकी पहली ईंट उनसे रखवायी थी। वही भव्य भागवत-भवन अब बनकर तैयार था। इसीकी प्रतिष्ठा-समारोहमें भाग लेने देश-विदेशसे लोग आ रहे थे। भारतके सुदूर प्रान्तोंसे संत-महापुरुष भी अपनी सेवा अर्पित करने आ रहे थे।

श्रीचक्रजीका भी उत्साह अथाह था। उनकी मान्यता थी कि श्रीकृष्ण जन-जनके हैं, अतः उनका उत्सव सबका अपना है। प्रतिष्ठा-महोत्सव कम-से-कम एक महीनेका तो होना ही चाहिये।

भागवत-भवनकी शुभ आधारशिला तो नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके कर-कमलों द्वारा हुई थी। प्रतिष्ठा-समारोहके मांगलिक अवसरपर स्वामी चक्रधरजी (श्रीराधाबाबा) एवं पूज्या माँजी (धर्मपत्नी-श्रीभाईजीकी) -का मंगलमय आशीर्वाद भी प्राप्त हुआ। महोत्सवकी अध्यक्षता श्रीकृष्णजन्मस्थान सेवासंस्थानके अध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराजने की।

माघ शुक्ल दशमी, 3 फरवरी 1982 से भगवद्-विग्रह स्थापनाका वैदिक कर्मकाण्ड वाराणसीके वेदाचार्य पं० श्रीरामजी लाल शास्त्रीके आचार्यत्वमें प्रारम्भ हुआ। नवनिर्मित सुसज्जित यज्ञ-मण्डपमें गणेशपूजन, नान्दीमुख श्राद्धके पश्चात् दस विद्वानोंने चार दिन तक वास्तुजप किया। माघ शुक्ल एकादशी, 4 फरवरीसे महाविष्णुयज्ञ प्रारम्भ हो गया। सोलह ब्राह्मणों द्वारा चलनेवाला यह यज्ञ प्रतिदिन सात घंटे तक चलता रहता। इसकी पूर्णाहुति माघ पूर्णिमा, 8 फरवरीको हुई। 6 फरवरीको कर्मकुटी हवन, रात्रिमें श्रीविग्रहोंका जलाधिवास हुआ। रविवार सात फरवरीको अन्नाधिवास, आठको घृताधिवास तथा गंधाधिवास, नौको पुष्पाधिवास-धूपाधिवास और दसको

वस्त्राधिवास एवं फलाधिवास सम्पन्न हुआ। 11 फरवरीको रथमें श्रीजगन्नाथ-सुभद्रा-श्रीबलरामजी तथा दूसरे रथमें श्रीकृष्णकी शोभायात्रा उद्दाम संकीर्तनके साथ नगरमें निकली। श्रद्धालुजनोंका उत्साह ऐसा था कि सर्दी-वर्षामें भी कोई शिथिलता नहीं आती। रात्रिमें शय्याधिवास हुआ। फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, शुक्रवार, बारह फरवरीको मध्याह्नमें पंचमी तिथि प्रारम्भ होनेपर मुहूर्तोत्तम अभिजित्‌में इन श्रीविग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा विधिपूर्वक न्यासादि करके सम्पन्न हुई।

भागवत-भवनके मुख्य मंदिरमें श्रीराधाकृष्ण विराजमान हैं। दाहिने भागमें श्रीबलराम-सुभद्रा तथा जगन्नाथजी हैं। जिनके पीछे दीवारपर श्रीचैतन्य महाप्रभुका भावपूर्ण चित्र है। मन्दिरमें वाम भागमें श्रीराम-जानकी-लक्ष्मणजी हैं। श्रीराममंदिरके सामने ही भगवान् केशवेश्वरकी स्थापना हुई है। सामने ही श्रीहनुमान्‌जीकी श्रीमूर्ति है। श्रीजगन्नाथजीके सामने भगवती दुर्गाजीका मंदिर है। इस मंदिरके साथ ही श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते हुए गरुड़-स्तम्भके साथ श्रीचैतन्य महाप्रभुजीकी मूर्ति विराजित है। सभागृहके दक्षिण द्वारपर श्रीराधाकृष्णकी ओर मुख किये श्रीकृष्ण जन्मस्थानके पुनरुद्धारके प्रेरक महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीकी मूर्ति, मध्यमें जीर्णोद्धारके प्रारम्भकर्त्ता जुगलकिशोर विरला और बायीं ओर भागवत-भवनका शिलान्यास जिनके करोंसे हुआ– उन श्रद्धेय श्रीभाईजी हनुमानप्रसाद पोद्दारकी मूर्ति है।

श्रीकृष्णजन्मस्थान सेवा-संस्थानके मैनेजिंग ट्रस्टी भारतके प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीजयदयालजी डालमिया सपत्नीक एवं उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीविष्णुहरिजी डालमिया और उनके सभी पुत्र सपरिवार प्रतिष्ठा-समारोहमें सम्मिलित हुए। सभी मंदिरोंमें प्रतिष्ठा, पूजा-यज्ञादि कार्य इन्हीं सबके द्वारा सम्पन्न हुए। भागवत-भवनकी प्रतिष्ठा--कार्य सम्पन्न होनेपर एक सप्ताह बाद डालमिया परिवार स्वजनों सहित दिल्ली लौट गया।

उत्सव-व्यवस्थामें तत्पर कन्हाई

अब एक महीनेका उत्सव कार्य सँभाला श्रीचक्रजीने। माघ शुक्ल त्रयोदशी (6 फरवरी) शनिवारको प्रातः साढ़े सात बजेसे महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द सरस्वतीजी महाराज (कैलाशमठ, पंचवटी-नासिक) -के द्वारा श्रीमद्भागवतकी कथा प्रारम्भ होनेवाली थी और नरवर संस्कृत महाविद्यालय (बिहार घाट, उ०प्र०) -के प्राचार्य पण्डित बाँकेलालजी त्रिवेदी द्वारा श्रीमद्भागवतका मासपारायण क्रमसे सस्वर पाठ ग्यारह बजेसे प्रारम्भ होनेवाला था। पूरी तैयारी हो चुकी थी, किन्तु पाँच फरवरीको रात्रि नौ बजे श्रीचक्रजी अपने कक्षमें विश्राम करने चले गये। तब तक दोनोंमेंसे कोई नहीं आ सके थे। अतः थोड़ा चिन्तित होना स्वाभाविक था।

प्रातः पौने तीन बजे उठकर श्रीचक्रजी नित्यकी पूजा करके अपने श्रीकृष्णको, अपने कन्हाईको आशीर्वाद देते हुए किंचित झुँझलाकर बोले— कनूँ! तू नित नयी खटपट करता रहता है। मैं क्या अकेला व्यवस्था सँभाल पाऊँगा तेरे बिना? तूही मेरा जीवन, प्राण है और कथावाचक एवं सस्वर पाठ करनेवाले दोनों ही नहीं आये अभी तक। लगता है कि तुझे प्यारसे कोई बात समझमें ही नहीं आती— डाँटना पड़ेगा क्या? कहते हुए नित्य नियमके अनुसार मंगला आरतीके दर्शन करने प्रातः पौने पाँच बजे कक्षसे निकलकर केशवदेवजीके मन्दिरकी ओर चल दिये। कक्षसे बरामदेमें पहुँचे ही थे कि कैलाश भैयाने सूचना दी— बाबा! पण्डित बाँकेलालजी त्रिवेदी आ गये हैं रातको ही वे समीपके कक्षमें स्नान करके पूजापर बैठ गये हैं। श्रीमद्भागवतका सस्वर पारायण समयपर प्रारम्भ कर देंगे। अब जन्मभूमिका प्रांगण पार करके मंदिरकी सीढ़ियोंपर चढ़ ही रहे थे कि श्रीशिवनाथजी शर्मा (अधिशासी अधिकारी) श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थानने प्रणाम करके सूचना दी— रात दस बजे नासिक, कैलाशमठसे महामण्डलेश्वर विद्यानन्दजी

आ गये हैं। उनकी व्यवस्था जन्मभूमिके गेस्ट-हाउसमें कर दी गयी है। वे ठीक समयपर कथा करने आ जायँगे।

चलते-चलते हर्षातिरेकसे विभोर हो अस्फुट स्वरमें अपने-आपसे चक्रजी कहने लगे— मैं कितना निष्ठुर हूँ। व्यर्थ ही अपने कन्हाईपर रुष्ट हो गया। वह कितना सावधान और तत्पर है। मेरा मन-ही-मन उसे उपालम्भ देना सर्वथा अनुचित था।

जब मंगला आरतीके लिये पर्दा खुला, श्रीचक्रजी तो श्रीकेशवदेवकी झाँकी देखते ही स्तब्ध रह गये। उनका सात्त्विक मन उल्लास और आनन्दसे भर गया— अहा! मेरा लाल तो कमरमें फेंट कसकर सारी व्यवस्था सँभालनेको तत्पर खड़ा है। इसके चंचल कमलनयन एकटक मुझको ही निहार रहे हैं। मंदस्मित भंगिमासे इसने सब कुछ कह दिया। आश्वस्त कर दिया।

इससे पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि श्रीकेशवदेवजीके शृंगारमें फेंट बाँधी गयी हो, श्रीचक्रजीने भी कभी नहीं देखा। आज प्रथम और अन्तिम बार उन्होंने अपने अनुजकी कटि-प्रदेशमें फेंट बँधी देखी, अन्यथा शृंगार-सेवामें उनका उत्तरीय स्कन्धपर दायें-बायें आगे ही खुला लटकता है। फहरा रहता था... आज... आज वह तो अपने अग्रजकी सहायता हेतु कटिबद्ध खड़े हुए हैं न! अपने ही उत्सवमें बालरूप केशवदेवजीकी यह शोभा देखकर चक्रजी तो जड़वत् अप्रकम्पित निहारते रह गये। उनमें किन-किन अलौकिक भाव-तरंगोंका आदान-प्रदान होने लगा... साधारण जन भला क्या जानें? उनके अन्तरमें उभरा-उमड़ा वह भावोच्छलन कितना गम्भीर और विशाल था — यह स्पष्ट दिखायी दे रहा था। शरीरमें आविर्भूत जड़िमा भावके दर्शनका शुभ अवसर समीपस्थ जनोंको मिला, वे सभी भाग्यशाली हैं। चक्रजीने बड़ी कठिनाईसे अपने-आपको संयत किया और प्रसन्न मनसे उन्हें आशीर्वाद देकर लौट आये। इधर वे अपनी असमर्थतापर और उधर अपने कनूँके

स्वभावपर रीझ उठे...

सौकुमार्य माधुर्य सौन्दर्य ऐश्वर्य सब,
सृष्टिका विलास सब तुमसे तुझसे हैं।
कठोरता कटुता कुरूपता कंगाली सब,
अवगुणोंका मेरेमें साकार घनी भाव है।
इतनेपर भी मुझको अपना बना बैठे हो,
मुझपर ममत्व यह तब मनमें है।
विवशता तुम्हारी यह जानता हूँ भलीभाँति,
करुणातिशयता-कृपा ही तुम्हारा स्वभाव।

लीलामंचपर माघ शुक्ल त्रयोदशी (6 फरवरी) शनिवारको ठीक समय प्रातः 7 बजकर 30 मिनटपर आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द सरस्वतीजी महाराज (पंचवटी, नासिक) -ने श्रीमद्भागवतकी कथा प्रारम्भ की। इसीसे महोत्सवके कथा-सत्संग रूपका प्रारम्भ हुआ। स्वामीजी महाराजके स्वर-सौष्ठव और भाव-गम्भीर-विवेचनाका रस तो भावुक श्रोता ही प्राप्त कर सकते हैं। यह कथा बहुत आह्लादकारी रही। प्रथम दिन ही अनुभव हुआ कि शीतकालका प्रातः बहुत ठिठुरनेवाला है। अतः दूसरे दिनसे प्रातःकालकी कथा आठ बजे चलने लगी और ग्यारह बजे कथा विश्राम लेती। ठीक बारह बजेसे श्रीहरिबाबा रासमण्डलीके स्वामी किशनलालजी, वृन्दावन द्वारा सायं तीन बजे तक रामलीलाका मंचन होता तथा इसी मण्डली द्वारा रात नौ बजेसे बारह बजे तक श्रीकृष्णलीला हुआ करती थी।

मध्याह्न ग्यारह बजेसे भागवत-भवनके एक कक्षमें माइकपर श्रीबाँकेलालजी त्रिवेदी सस्वर मासपारायणके नियमसे श्रीमद्भागवतका मूल पाठ करते।

सायंकाल 7 बजेसे 9 बजे तक श्रीरामचरितमानसकी कथाका प्रारम्भ किया आचार्य श्रीरामजी शास्त्री साहित्य, व्याकरणाचार्यने। देशके श्रेष्ठतम

मानस व्याख्याताओंमें श्रीशास्त्रीजी हैं। इनकी कथा श्रोताओंको भलीभाँति भक्ति भावसे विभोर बनाती रही। प्रथम 9 दिन (6 फरवरीसे 14 फरवरी तक) शास्त्रीजीने श्रीरामचरितमानसका प्रथम एवं द्वितीय सोपान (बालकाण्ड-अयोध्याकाण्ड) सुनाया। 15 फरवरीसे 23 फरवरी तक अरण्यकाण्डसे उत्तरकाण्ड अन्त तक (तृतीयसे सप्तम सोपान तक) श्रीरामचरितमानसके सुप्रसिद्ध वक्ता श्रीमानसजी शास्त्रीकी मानस कथा चलती रही। श्रीरामचरितमानसके अत्यन्त प्रसिद्ध व्याख्याता पण्डित रामकिंकरजी उपाध्याय 24 फरवरीसे 8 मार्च तक मानसकी पर्यालोचना सुनाते रहे। मानसके अध्यात्म पक्षकी ऐसी व्याख्या दुर्लभ है। उत्सवमें आगत विद्वद्वर्गके लिये मंचपर समय दिया जा सके, इसके लिये अपराह्न तीन बजे जब लीला सम्पन्न हो जाती तो वही मंच कथामंचमें परिणत हो जाता। आगत विद्वानोंमें पं० श्रीकृष्णशंकरजी शास्त्री (गुजरात), महन्त श्रीनृत्यगोपाल दासजी (अयोध्या), श्रीनीलकंठ पुरुषोत्तम (अध्यक्ष संग्रहालय), आचार्य चक्रमणिजी (वृन्दावन), गोस्वामी बनमाली दासजी (गोरेदाऊजी, वृन्दावन) गोस्वामी श्रीहितजीवनलालजी (वृन्दावन), श्रीसीताचरणजी मानस किंकर (छत्तीसगढ़), स्वामी परमात्मानन्द सरस्वती (परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश), स्वामी धर्मानन्दजी सरस्वती (परमार्थ आश्रम, हरिद्वार) डॉ० विद्यानिवास मिश्र (वाराणसी), श्रीजगन्नाथ प्रसादजी भक्तमाली (वृन्दावन), डॉ० शान्ति प्रकाश अज्ञेय (देहरादून), दण्डी स्वामी विपिनचन्द्रानन्दजी (भूतपूर्व जज-हाई कोर्ट, दिल्ली) वंशीवाले गोपालजी (वृन्दावन), वैष्णव महामण्डलेश्वर श्रीरामदास शास्त्री (संस्थापक चार सम्प्रदाय आश्रम, वृन्दावन), वेदमूर्ति प्रज्ञाचक्षु अनन्तश्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज (शताधिक आयु, अध्यक्ष—श्रौत्र मुनि आश्रम, वृन्दावन), डॉ० गोवर्धन नाथ शुक्ल (अध्यक्ष—हिन्दी-विभाग, अलीगढ़) आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी (हिन्दी-अध्यक्ष, हिन्दू वि०वि०, वाराणसी)

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी (संस्थापक-संकीर्तन भवन वृन्दावन एवं झूँसी-प्रयाग)

इन महापुरुषों-संतों-विद्वानोंके पधारनेसे कथा- प्रवचन भी 5 मार्च तक चलता रहा। कथा-श्रवण एवं श्रद्धाञ्जलि देने आये लोगोंमें तो सुरीनाम और हालैण्ड (यूरोप) कनाडाके भी लोग थे। देशमें हिमालयके सुदूर प्रांत वागेश्वरसे लेकर कटक, मुम्बई, कोलकाता, गोरखपुर, हैदराबाद आदि सभी स्थानोंसे लोग आये थे। आगत प्रवचन-वक्ताओंको श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानका पूरा प्रकाशन सेट भेंट किया जाता था। संस्थाके अध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजके प्रवचन तो प्राणप्रतिष्ठाके समयसे समापन-दिवस तक हुए। महाराजश्रीने उत्सवकी सम्पन्नतापर कहा— उत्सव माने आनन्दोल्लास, निरन्तर आनन्द, निरन्तर मंगल। भगवान्‌का नाम नित्योत्सव है। इस उत्सवका कभी अंत नहीं होता। समापन शब्दका अर्थ भी, फल भी सम्यक् प्राप्ति है... यहाँ आनेवालोंको शान्ति मिले, भक्ति मिले, सत्प्रेरणा मिले।

आनन्द पूर्वक उत्सव सम्पन्न हो गया। श्रीचक्रजीने स्वयं कहा— एक महीनेके उत्सवकी खुराफात मेरे मनमें जागी और मैं साधनहीन हूँ। मेरे पास न धन है, न योग्यता और न साधुवेश ही। मैंने तो मंगला आरतीमें केशवदेवजीसे कहा— तुम यहाँ पहलेसे उपस्थित हो। अतः आविर्भाव स्थलीका महोत्सव... तुम सँभालो... लेकिन समारोहमें तुम्हारी जय-जयकार हो। आगतकी श्रद्धा-दृष्टि तुमपर रहे सेठ या दक्षिणापर नहीं। क्या रूप देना है, तुम जानो, और मैं निश्चिन्त हो गया। जो मनमें आता गया, केशवदेवकी प्रेरणा मानकर करता गया। उसीने सँभाला, अतः यदि कोई त्रुटि हुई तो मेरी और श्रीकेशवदेवजीकी भी। आप उन्हें उलाहना दोगे।

इस उत्सवके बीचमें श्रीचक्रजीको श्रमकी अधिकतासे एक दिन तेज ज्वर आ गया। कारण, रात्रिको बारह बजे शयन करते, प्रातः दो बजेसे उठ जाते। अतः संकल्प किया कि उत्सवके बीचमें ज्वरको स्थान नहीं है। समापनके

पश्चात् जितने दिनको ज्वर आना हो, आ जाय; उसका भी सत्कार है, और सचमुच प्रातः ज्वर चला गया उत्सव तकके लिये। उत्सवके बाद एक सप्ताह तक ज्वरको झेलते रहे, तब ठीक हो पाये।

शिवरात्रिके अर्चक

उत्सवके बीच ही शिवरात्रि पड़ी। श्रीचक्रजी सदासे ही महाशिवरात्रि—पर भगवान् आशुतोष सदाशिवकी अर्चना करते आ रहे थे। भागवत-भवनमें भगवान् केशवेश्वरका अर्चन हुआ करेगा, अतः पारदेश्वर (केशवेश्वर) पारदलिंगका निर्माण श्रीचक्रजी की प्रेरणासे हुआ। यह लगभग पाँच किलोका पारदलिंग बिना किसी धातु-मिश्रणके बनाया गया है। यह शुद्ध विप्र पारद है।

वर्तमानमें भारतके एकमात्र पारदलिंग निर्माता मुम्बईके भाऊ साहब कुलकर्णीजी हैं। इनको श्रीयुत जयदयालजी डालमियाने श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-पर बुलाया। श्रीकुलकर्णीजी श्रीचक्रजीके समीपवाले कक्षमें ही रुके थे और उन्होंने श्रीचक्रजीकी देखरेखमें पारदलिंगका निर्माण किया। वर्ष 1981 में इनका निर्माण हो गया था। चक्रजीकी आकांक्षा थी कि फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशीको शिवरात्रिके दिन रात्रि-जागरण, रुद्राभिषेक, चारों प्रहरका अर्चन भागवत-भवनमें हुआ करेगा।

भागवत-भवनमें विग्रह-प्रतिष्ठाके साथ फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी, शुक्रवार 12 फरवरीको भगवान् केशवेश्वर पारदलिंगकी प्रतिष्ठा मंदिरमें सविधि सम्पन्न हो गयी थी। इनके विशिष्टत्वके सम्बन्धमें चक्रजीने लिखा है—

'भगवान् केशवेश्वर पारदलिंग हैं। यह लगभग नौ इंचका रजत शुभ्र श्रीविग्रह पाँच किलो भारी है। दो मुखीसे लेकर त्रयोदशमुखी तकके रुद्राक्षोंका जो कण्ठा इन्हें धारण कराया गया है, उसमें गौरीशंकर (युग्म) रुद्राक्ष भी

है। एक मुखी और चतुर्दश मुखी रुद्राक्ष स्थापना-पूजनके समय सन्निधिमें थे और शिवरात्रिको सन्निधिमें रहा करेंगे। स्मरण रखने योग्य है कि एक मुखी और चतुर्दश मुखी रुद्राक्ष भगवान् महेश्वरके साक्षात् स्वरूप पुराणोंमें माने गये हैं। इसी मंदिरमें एकादश दलके विल्वपत्र सुरक्षित रखे हैं। पारदलिंग की ज्योतिर्लिंगके समान ही मान्यता है।'

कथा-उत्सवके बीचमें महाशिवरात्रिका पर्व आ गया। प्रातःकालसे ही पूजाकी सामग्री एकत्रित की जाने लगी उत्साहपूर्वक। दुग्ध, दधि, घृत, मधु, गंगाजल, विल्वपत्र, मन्दारकी माला, आक, धतूरा, पुष्प, इलायची, लवंग, इत्र, अक्षत, रोली, वस्त्र, उपवस्त्र, पंचमेवा, पंचफल, मिष्टान्न, यथाशक्ति दक्षिणा आदि सँजोकर थालमें सजाये गये।

श्रीकेशवेश्वरजीकी प्रथम प्रहरकी षोडशोपचार पूजाके लिये सामग्री लेकर कक्षसे श्रीचक्रजी निकलने लगे। द्वारपर प्रथम चरण बढ़ाया ही था कि उनके कर्णकुहरोंमें बड़ी मधुर बाल-ध्वनि सुनायी पड़ी, अपने अनुज कन्हाई की— दादा! बाबाकी पूजा आज तो मैं भी करूँगा। आनन्दातिरेसे छके श्रीचक्रजी पुनः कक्षमें तुरन्त लौटे और अपने बालकृष्णलालके पूजा-विग्रह (चित्रपट)-को अंकमें सँभाले दुलारते हुए भागवत-भवनकी सीढ़ियोंपर धीरे-धीरे चढ़ते जा रहे थे। उनका तन-मन अपने कन्हाईकी शिव-अर्चनाकी तत्परता-उत्सुकतापर मुग्ध हो रहा था। शिव-अर्चकके आसनपर उन्हें विराजमान कर पुलकित हो रहे थे। तब आचार्यको वरण कर पूजन प्रारम्भ किया। संकल्प अपने अनुजकी ओरसे किया— नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वृष्णि गोत्रीय तत्प्रतिनिधि सुदर्शन सावर्णि गोत्रीय। षोडशोपचारकी समस्त पूजा उन्हें संस्पर्श कराते हुए की गयी। जैसे-जैसे अभिषेकके लिये दूध-दही-पंचामृत शिवलिंगपर चढ़ने लगा वैसे-वैसे श्रीविग्रह धवल चाँदीके समान नहीं-नहीं... पारेके समान अरे नहीं, वह ज्योतिर्मय शिवलिंग ऐसे चमकने लगा कि नेत्र ठहर नहीं

रहे थे। हमलोग उस छविको आश्चर्याभिभूत नेत्रोंसे देख रहे थे। प्रत्यक्ष लग रहा था— आशुतोष गंगाधर नीलकंठ महेश्वर प्रसन्न मनसे पूजा स्वीकार कर रहे हैं। पूजा करके सभी ब्राह्मणोंको दक्षिणासे सन्तुष्ट कर चक्रजीने भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। रुद्री-पाठ श्रवणमें समयका पता ही नहीं चला कि कब घड़ीने नौ बजा दिये और द्वितीय प्रहरकी पूजाका समय आ गया। आनन्दमें भरे हुए श्रीचक्रजी अपने लालको लिये कक्षमें आ गये। द्वितीय प्रहरकी पूजा श्रीजयदयालजी डालमियाने की, तृतीय प्रहर रात्रि बारह बजेकी डॉ० ब्रह्मदत्त पाठकने की और चतुर्थ प्रहरकी पूजा श्रीकृष्ण जन्मस्थानके अधिशासीने की। प्रातः मंगलापर्यन्त रुद्री-पाठकी ध्वनि मंदिरमें गूँजती रही।

प्रथम प्रहरकी पूजा कर कक्षमें पहुँच जानेपर भी श्रीचक्रजी भावोदधिसे नहीं उबर पाये। अपने कन्हाईको आस्तरणपर विराजमान करा आशीर्वाद देने लगे तो स्नेहाधिक्यसे देह प्रकम्पित हो उठी। कुछ क्षणों पश्चात् ही शान्त-स्थिर-स्तब्ध भावमें समाधिमें डूब गये—न जाने कब तक बैठे रहे—जड़वत्, अप्रकम्पित। धीरे-धीरे बाह्य चेतना हुई, पर हृदयमें एक विशेष आनन्द उमड़ता-घुमड़ता रहा। जागरणकी रात थी— आसनसे ढाई-पौने तीन बजे उठना ही चाहते थे कि सहसा कक्षमें ज्योतिर्मय दिव्य प्रकाश फैल गया और उस अलौकिक आभामण्डलमें ज्योतिर्घन कर्पूरगौर त्रिनेत्र नीलकण्ठ सदाशिव भगवान् त्रिपुरारि प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। उनका कर्पूरगौर ज्योतिर्मय श्रीविग्रह पारदर्शी था। उनके पदनखकी चरणकान्ति ऐसी, जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके सूर्य-चन्द्रादिको प्रकाशित करनेवाली ज्योत्स्नाको फीकी कर रही थी। वे मंत्रमुग्ध-से निहारते हुए अवरुद्ध कंठसे इतना ही प्रेमाधिक्य स्वरसे बोल सके—'बाबा' और अन्तरके भाव तरंगोंमें डूबे हुए अपलक निहारने लगे। उधर, उन करुणालयने भी वात्सल्य-कृपादृष्टि-स्नेहसे अपने इस नन्हें शिशु (चक्रजी) -की ओर निहारा। साथ ही मन्द-स्मित बिखेरती छवि अन्तर्धान

हो गयी और उनके स्तवनमें स्वर स्वतः निकलते रहे—

तृतीय नेत्र धूम्र धूसरित पीत जटा जाल।
गंगाधर आर्द्र कृष्ण कुण्डलित फणीश माल।।
उज्ज्वल इन्दुभाल भव्य घूर्जटि कर-कपाल।
नीलकंठ आशुतोष गरलानलय प्रणतपालय।।
हर-हर साम्ब शम्भु वन्दन सगण सुत समेत।
कृपावृष्टि परमोदार वृषभध्वज कृपागार।।

पूरे दिन इन्हीं भावोंमें खोये रहे। रात्रिके प्रथम प्रहरमें शयनसे पूर्व हम सबकी अतिशय जिज्ञासापर कृपा करके यह अनुभव सुनाते हुए बोले—प्रदोषका व्रत तो तुम लोग करते हो और भोले बाबा आज मुझे कृतार्थ कर गये।

सख्य-भावके पोषक

सख्य-रसके उपासक श्रीचक्रजी वृन्दावनमें लीलामंचनके दर्शनका आनन्द तभी लेते, जब वे लीलाएँ बाल-चरित्रकी होतीं अथवा सख्यभाव प्रधान। श्रीबोहरेजीकी मण्डलीके रासबिहारी ठाकुरजीके प्रति उनका असीम वात्सल्य था। पूज्य श्रीग्वारिया बाबाके साथ कभी-कभी सख्य रसकी लीलाओंको देख लेते। जब माधुर्य भावकी लीलाएँ प्रारम्भ होतीं, तब अपने कक्षमें चुपचाप लौट आते। उदाहरणके लिये भागवत-भवनकी प्रतिष्ठाके समय श्रीकृष्ण-लीलाका शुभारम्भ होने जा रहा था। श्रीहरि गोविन्दजीके परिकर स्वामी किशनलालजीकी मण्डली द्वारा लीला मंचनका शुभारम्भ हो रहा था। स्वामी किशनलालजी दो व्यक्तियोंको साथ लेकर श्रीचक्रजीके कक्षमें आये और अनुरोधपूर्वक प्रार्थना की— दो मिनटको मंचपर पधारनेकी कृपा करें। क्यों और 'किसलिये' पूछनेपर उन लोगोंने लीलाके शुभारम्भपर रासबिहारी ठाकुरजीको माल्यार्पणका अतिशय आग्रह किया। श्रीचक्रजीने बार-बार

टालनेका प्रयत्न किया, किन्तु उनका प्रबल आग्रह देखकर साथ चल दिये। लीला-मंचपर पहुँचकर युगल सरकारमें श्रीठाकुरजीको माल्यार्पण करा दिया; किन्तु जब श्रीकिशोरीजीको माला धारण करानेको हाथमें दी तो संकोचमें पड़ गये और मालाको गोलमोल समेटकर श्रीजीकी गोदमें उनके करकमलोंपर रख दी। युगल सरकारको धीरेसे अपने कौशेय उत्तरीयमें हाथको छुपाकर आशीर्वाद दिया जिससे कोई देख न सके। कक्षमें लौटकर बताया— रासमें माधुर्य भावकी लीलामें ललिता-विशाखा आदि अष्ट सखियोंके प्रवेशका अधिकार है। बड़ोंका होना उचित नहीं है। मेरे उपस्थित रहनेसे मेरे कन्हाईको संकोच होगा। वह तो होगा ही, किन्तु प्रेमप्रतिमा शीलमयी लली (श्रीराधा)-को अतिशय संकोच होगा। उसे संकोचमें डालना न मर्यादा है, न उचित ही। यह तो श्रीकृष्णकी व्यक्तिगत लीला है—

जिसके मधुरभावकी छाया, छू न सकी है वाणी।
उसका क्या वर्णन क्या वन्दन, सुखी रहे कल्याणी।।

भाव-निमग्नता

इसी प्रकार श्रीकृष्ण जन्म-स्थानके लीलामंचपर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी श्रीकृष्ण-विरहानुभूतिका मंचन स्वामी हरिगोविन्दजीकी मण्डली द्वारा हो रहा था। महाप्रभुजीने श्रीकृष्ण-प्रेममें उन्मुक्त होकर किसीको स्पर्श कर, किसीको दृष्टिपात कर, किसीको आलिंगन कर सभीको अपने नृत्य-कीर्तनसे उन्मत्त बना दिया था। लीलामें ऐसा रस-वर्षण किया कि अनायास सबका मन श्याममय हो गया। वे विरहावेशमें भाव-विभोर हुए अश्रु-विसर्जन करते हुए 'हा कृष्ण.......हा श्रीकृष्ण.......कृष्ण.......कृष्ण.......पुकारते हुए पछाड़ खाकर गिरते, बेसुध होते, कभी जलसे वियुक्त मछलीकी भाँति तड़फड़ाते थे, जिन्हें देखकर सभी दर्शक प्रेम-विमुग्ध हो रहे थे। सभीके नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे। चैतन्य महाप्रभुका भावोन्मादपूर्ण रुदनका मंचन इतना प्रभावशाली

था कि दर्शकोंके अश्रु रुक नहीं रहे थे। ऐसी भावपूर्ण लीलाके दर्शन करते हुए मुझसे नहीं रहा गया। मैं उत्साहके साथ श्रीचक्रजीके कक्षमें गयी और उन्हें लीलाकी उत्कृष्टता सुनाते हुए लीला-दर्शनके लिये पधारनेकी प्रार्थना की। उस समय श्रीचक्रजी अपनी कुर्सीपर विराजे हुए किसी चिन्तनमें, लोकोत्तर दिव्य भावोंमें खोये थे। तीन-चार मिनट खड़े रहकर पुनः मैंने चलनेकी प्रार्थना की— तात! लीला सुन्दर भावमयी हो रही है। कृपया आप पधारिये न!

नेत्र-पटल खोलकर एक बार उन्होंने देखा— मानो उनके चित्तको बहिर्मुख होनेमें बड़ा कष्ट उठाना पड़ रहा हो। धीरे-धीरे पुनः नेत्र मुँद गये। तब चक्रजीने बड़ी शिथिल वाणीसे कहा— तू जा, लीलाका आनन्द ले, पर मुझसे आग्रह मत कर। मंचपर भावमयी लीला चल रही है, यह ठीक है, पर उससे भी अनन्त-अनन्त गुनी बढ़कर भावोर्मिल रसानुभूति मुझे अभी हो रही है। आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे सभी दिशाओंमें जिधर भी दृष्टि जाती है, उधर मेरा कन्हाई नृत्य करता, थिरकता, अनोखी अदासे रसकी वर्षा कर रहा है, उसकी श्रीअंग-गन्धसे दिशाएँ सुवासित हो उठी हैं। अलौकिक दिव्य आभाका आलोक सर्वत्र बिखर गया है। मन तो मन, शरीरकी सुधि भी बिसर जाती है। उनकी पलकें बन्द हो गयीं और वे पुनः आनन्द-समुद्रमें उतर गये।

तातकी अनुग्रहमयी कृपा और भावमयी छविका दर्शन कर मैं वापस लौटकर लीला-दर्शन करने लगी। उनकी वह स्थिति कब तक रही, कौन जाने? भाव-जगत्से निकलकर उन्होंने लिखा—

मेरा भाई भव्य लगता है सभीको सदा,
ब्रजरजमें लोट-पोट भूत-सा बन जाय।
करे भगवान् भला भले-भले झक मारे
भूलकर भी किससे न कन्हाईकी ठन जाय।

छलक-छलक छवि सायं झलक जब
गो-रजसे इस भुवनसुन्दरकी सन जाय।
मुनि मन मोहिनी माया हाथ जोड़ लेती
भैया मेरे मोहनमें मानव मन लग जाय।।

ठाकुरजीके प्रति स्नेह

ठाकुरजी अर्थात् श्रीघनश्यामजी शर्मा, जो रासलीलामें श्रीकृष्णका स्वरूप धारण कर लीला करते थे, इनका वृन्दावन एवं गीता-वाटिका-गोरखपुरमें बहुत सम्मान था। पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं श्रीराधा बाबा दोनों युगलविभूतियोंका इनपर असीम वात्सल्य था। श्रीचक्रजीका भी इनके प्रति असीम स्नेह था। इनके स्नेह-सम्बन्धके बारेंमें स्वयं ठाकुरजी (श्रीघनश्यामजी शर्मा) -ने मुझे गीतावाटिकामें बताया कि इनसे एक बार श्रीस्वामी चक्रधरजी महाराज (राधा बाबा) -ने कहा— चलो तुम्हें तुम्हारे बड़े भाईसे मिला लायें। तब ठाकुरजीने कहा— श्रीराधा बाबा मुझे लेकर श्रीचक्रजीकी कुटियामें पहुँचे। चक्रजी भूमिपर ही आसनपर बैठे हुए थे। श्रीराधा बाबा द्वारपर ही ठहर गये और मैं कुटियामें जाकर खड़ा हो गया।

श्रीचक्रजी निर्निमेष नेत्रोंसे मेरी ओर देखते रहे—स्नेह से, वात्सल्यसे। कुछ क्षण पश्चात् मैंने कहा— यों टुकुर-टुकुर मेरी ओर क्या देखते हो? ऐसे मिलो न! कहते हुए मैं कूदकर उनकी गोदमें चढ़ गया और गलेमें बाहें डालकर लिपट गया। इसके साथ ही श्रीचक्रजीमें प्रेमके कई लक्षण एक साथ प्रकट हो गये, अश्रु प्रवाह, रोमांच, कम्प, स्वरभंग, हर्ष। ये मुझे दुलारना चाहते थे और कुछ कहना भी, किन्तु उनके काँपते कर ठीकसे उठ भी नहीं पा रहे थे और न ही कंठ भावोंकी अभिव्यक्तिमें समर्थ हो सका। श्रीराधाबाबा हम दोनोंको वहीं छोड़कर अपनी कुटियामें चले गये। भाव प्रशमित होनेके पश्चात् हम दोनों साथ-साथ हाथ पकड़े बाबाके पास आ गये।

भगवदापराधसे रक्षा

श्रीचक्रजीका नित्य नियम था— पौने पाँच बजे मंदिरमें मंगला-दर्शनमें पहुँचते। इन्हीं दिनों एक बार श्रीमती विजया राजे सिंधिया, ग्वालियरसे वृन्दावन होती हुई श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर पधारीं। वे व्यवस्थापक श्रीशिवनाथजी शर्माके साथ मंगला-दर्शनमें पहुँचीं विलम्बसे। संयोगवश श्रीकेशवदेवजीके मंदिरमें और गर्भगृहमें मंगला आरतीके पश्चात् वे श्रीचक्रजीको प्रणाम नहीं कर सकीं। जब चक्रजी श्रीभागवत-भवनमें मंगला आरतीके पश्चात् परिक्रमा करते हुए श्रीराम-जानकी-लक्ष्मण मंदिरमें नीराजनमें खड़े थे, तभी श्रीमती विजया राजे सिंधियाने उन्हें प्रणाम किया, किन्तु श्रीचक्रजीने कोई स्वीकृति नहीं दी। पुनः श्रीकेशवेश्वर शंकरजीके मंदिरके समक्ष उन्होंने प्रणाम किया, फिर श्रीचक्रजी उनके द्वारा किये प्रणामको देखा-अनदेखा करके तटस्थ भावसे अपने कक्षमें चले आये। नित्य-नियम एवं जलपानसे निवृत्त होकर जब लेखन-कार्यमें प्रवृत्त होनेके लिये कुर्सीपर विराजे तब उपयुक्त अवसर देखकर विजयने पूछा— आपने राजमाताके दो बार प्रणाम करनेपर भी क्यों स्वीकृति प्रदान नहीं की, मैं समझ नहीं सकी। श्रीचक्रजीने सहज भावसे समझाया— देख, यदि वे श्रीकेशवदेवजीके मंदिरमें, गर्भगृह या भागवत-भवनमें श्रीराधाकृष्ण मंदिरमें प्रणाम करतीं तो मैं अवश्य प्रणाम स्वीकार करता, किन्तु उन्होंने मेरे माता-पिता साकेताधीश्वरके सन्मुख प्रणाम किया तो मैं संकोचमें पड़ गया। ऐसा ही उन्होंने कैलाशपति मेरे बाबा श्रीकेशवेश्वरके सामने किया। अब तू ही बता, अपनोंसे बड़ोंके सामने अपनेको किये प्रणामको स्वीकार कर स्वयंको और प्रणाम करनेवाले—दोनोंको अपराधी बनाना था। मैंने तो उनका प्रणाम स्वीकार न कर राजमाताको भगवदापराधके दोषसे बचा लिया। यदि वे यह बात न समझ सकें तो मेरा क्या दोष? इस प्रकार तथ्यका समाधान कर वे लेखन-कार्यमें संलग्न हो गये।

अभिनन्दन-ग्रन्थसे वितृष्णा

श्रीचक्रजी सदा कहते थे— ''लोकैषणा बहुत सारहीन प्रलोभन है। लोकैषणाका भूत जिसके सिर चढ़ता है, कन्हाईको सँभालना भूल जाता है और तब यह चपल धीरेसे खिसक भागता है। यह भागा और आप भवमें भटके।' इनका लोकैषणासे उपरत जानते हुए भी प्रकाशन-विभागके व्यवस्थापक श्रीराधाकृष्ण चौधरीने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे कैलाश भैयाको पत्र लिखा— 'श्रीजयदयालजी डालमियासे मेरी दिल्लीमें बात हो चुकी है। उन्होंने अभिनन्दन-ग्रन्थ छपवानेकी अनुमति देकर मुझे आदेश दिया है कि कार्य जल्दी पूर्ण किया जाय, आधेसे अधिक कार्य मैंने कर लिया है। आप एक संस्मरण भेज दें। ग्रन्थ तैयार करके इसी वर्ष 1985 की गीता-जयन्तीके समारोहपर लोकार्पण होनेका निश्चय हुआ है; किन्तु इसकी जानकारी श्रीचक्रजीको नहीं दी जानी चाहिये, अन्यथा वे कार्य पूर्ण नहीं करने देंगे। जब पूर्ण हो जायगा, तब हम लोग चरण पकड़ कर मना लेंगे। वे नाराज तो अवश्य होंगे। यदि उनकी नाराजगी हम लोग धैर्यपूर्वक सह गये और फिर विनम्र अनुरोध करेंगे तो सम्भवतः वे वात्सल्य-वश हम लोगोंका मन रखनेको स्वीकृति दे देंगे।' संयोगवश, उन दिनों श्रीचक्रजी प्रवासपर दशहराके पर्वपर एटामें ऊपरके कक्षमें विराजमान थे। मध्याह्नमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थान एवं अन्यत्र स्थानोंसे श्रीचक्रजीकी डाक एटा पहुँची और उनके पत्रोंके साथ घरके बच्चेकी भूलसे वह पत्र भी उनके पास पहुँच गया। कारण कि कैलाश भैया थोड़ी देरको डिस्पेन्सरी चले गये थे और मुन्नी जीजी कॉलेजमें थीं। अतः डाकके पत्र बिना चेक किये जैस-के-तैसे चक्रजीके पास पहुँच गये। श्रीचक्रजीने राधाकृष्णकी लिखावट पहचान कर वह पत्र खोलकर पढ़ लिया। रात पौने आठ बजे सत्संगके लिये जब कैलाश भैया परिकर सहित उनके कक्षमें पहुँचे और प्रणाम करके जैसे ही बैठे, वैसे ही कैलाश भैयाके हाथमें

पत्र देते हुए क्रोधावेशमें बोले— इसे पढ़ो। पुनः मुन्नी दीदीसे डाँटते हुए पूछा— यह खुराफात किसको सूझी है? क्या तुम लोग चाहते हो कि मैं यहाँ कभी नहीं आऊँ? श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे ऐसा प्रस्ताव है तो मुझे वहाँ भी कभी नहीं जाना। गंगा किनारे जानेमें कितनी देर लगेगी मुझे? तुम किसीको ज्ञात भी नहीं हो सकेगा कि मैं कहाँ हूँ।

उनकी यह ओजस्विता भरी वाणी और तेजस्वितापूर्ण मुखमण्डल देखकर और बात सुनकर सभी स्तब्ध रह गये। अभिनन्दनके प्रति उनकी वह उपेक्षा और वितृष्णापूर्ण दृष्टि हम लोगोंके मानस-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है।

उनका क्रोध भी जलमें खींची गयी लकीरके सामान था। पुनः स्नहेसे समझाया— लोगोंकी प्रशंसा मच्छर और मक्खियोंकी भिनभिनाहटसे अधिक कुछ नहीं है। प्रतिष्ठा शूकरी-विष्ठाके समान है। तब कौन इसे बिछायेगा या ओढ़ेगा। और यह प्रस्ताव सदाके लिये समाप्त हो गया।

साकेतमें प्रवेश

चित्रकूट धामके पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामभद्राचार्यजी भागवत एवं मानसकी कथाके अद्भुत विद्वान् हैं। ये वसिष्ठ गोत्रीय होनेसे अपनेको श्रीरघुनाथजीका कुलगुरु मानकर मुक्त-हृदयसे उन्हें आशीर्वाद प्रदान करते हैं। बिहार प्रान्तके बक्सर जिलेमें पूज्य श्रीमन्नारायण दासजी 'भक्तमाली' प्रतिवर्ष श्रीसीताराम-विवाहोत्सवका बड़ा विशाल एवं भव्य आयोजन करते हैं, जिसमें सम्पूर्ण भारतके विद्वद्वर्य संत-महापुरुष-महात्मा-विद्वान् पधारते ही रहते हैं, जिनमें जगद्गुरु शंकराचार्य वासुदेवानन्दजी सरस्वती, पूज्य नृत्यगोपालदासजी (अयोध्या), आचार्य प्रवर कृपाशंकरजी महाराज, श्रीमुरारी बापू, श्रीरमेश भाई ओझा, संत गोपालाचार्यजी (अयोध्या), श्रीराजेन्द्रदासजी प्रभृति महापुरुष वृन्दावन एवं अन्य स्थानसे प्रायः प्रतिवर्ष आते ही रहते

हैं। सच तो यह है कि उदारमना मामाजीकी सन्तोंके प्रति श्रद्धा, लगाव, आस्था, अन्तर्मनका प्यार इतना अधिक है कि सभी उनके प्रेमपरवश होकर अपनेको गौरवान्वित मानते हैं। इनके उत्सवमें श्रीरामभद्राचार्यजी प्रतिवर्ष आते हैं और विवाहोत्सवमें रघुवंशकी ओरसे गुरु वसिष्ठजीका प्रतिनिधित्व करते हुए विवाह-मण्डपमें जयघोषके साथ अपने ओजस्वी स्वरमें जब शाखोच्चारण करते हैं, तब सम्पूर्ण वातावरणमें आनन्दकी वर्षा होने लगती है। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर इन्हीं चित्रकूट पीठाधीश्वर जगद्गुरु डॉ० पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज द्वारा 19 जुलाई 1985 (अधिक श्रावणमास शुक्ल द्वितीया, शुक्रवार) -से 9 अगस्त 1985 (अधिक श्रावणमास कृष्ण प्रतिपदा, गुरुवार) तक श्रीमद्भागवतजीकी कथा हुई। आचार्यजीने दशम स्कन्धकी कथा विस्तारसे व्रजरसका आनन्द लेते हुए की। मुख्य श्रोता श्रीजयदयालजी डालमिया सपत्नीक थे। उनके पुत्र जयहरि डालमिया एवं पुत्रवधू कविता डालमिया भी पूरी कथामें रहे। कैलाश भैया माँ एवं छोटी बहिन मुन्नी जीजीके साथ आये हुए थे। कासगंजसे फकीरचन्दजी भी अपनी पुत्री मिथिलेशके साथ आये थे। इस सम्पूर्ण कथामें मुझे भी अपनी छोटी पुत्री राजश्री और स्वजनोंके साथ आनेका सौभाग्य मिला।

दशम स्कन्धकी कथामें आचार्यजीने बाललीलाका बड़े विस्तार और मधुरतासे ऐसा वर्णन किया कि श्रोताओंको लग रहा था मानो नन्दभवनके प्रांगणमें हो रही लीलाएँ व्रज-वीथियोंमें खड़े होकर प्रत्यक्ष देख रहे हों। कथाकी रसमयताने सभीको आत्मविस्मृत बना दिया था।

एक दिन अनायास कथाके बीचमें श्रीचक्रजी प्रवचनकर्त्ता आचार्यजीकी ओर न देखकर आकाशमें सामनेकी ओर देखने लगे। उनके नेत्रोंकी हलचल, अधरोंका स्पन्दन, अस्फुट स्वर और मुखकी भाव-भंगिमा संकेत दे रही थी कि वे किसी अव्यक्तसे वार्तालाप कर रहे हैं। कथाके मध्य अपने आत्मीय

जनोंमें मैंने (सौभाग्य) ही चौंककर मुन्नी जीजीसे पूछा— जीजी! तात किससे बात कर रहे हैं।

मुन्नी जीजीने कहा— लगता तो ऐसा ही है कि किसीको वन्दन कर हाथ जोड़े हैं, किन्तु बात पता नहीं चली और हम दोनों चुप होकर कथा सुनने लगे।

कथा विश्राम होनेपर सभी अपने-अपने निवास-स्थानपर आ गये। कैलाश भैया कथासे उठते ही श्रीचक्रजीके पीछे-पीछे उनके कक्षमें आये। उन्होंने देखा— श्रीचक्रजी आते ही अपने लाड़ले कन्हाईके पूजा-विग्रह (चित्रपट)—के सन्मुख बैठ गये हैं। दाहिना हाथ उठाकर श्रीविग्रहके ऊपर रखा— मानो अपने अनुजको आशीर्वाद देते हुए कुछ कह रहे हों ऐसे उनके ओष्ठ हिले, पर वाणी मुखर नहीं हो पायी। तत्पश्चात् अनुजकी स्वीकृतिके साथ-साथ उनका मस्तक भी स्वीकृतिमें सामनेकी ओर झुक गया। श्रीचक्रजीने देखा— एक तेजोमय नील-ज्योति-बिन्दु उनके कन्हाईमें समा गयी। आनन्दातिरेकसे उनकी सम्पूर्ण देह कँपकँपा उठी। कैलाश भैया उपयुक्त अवसर एवं ठीक समय न समझकर अपनी जिज्ञासाको अन्तर्मनमें लिये लौट पड़े अपने कक्षकी ओर।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें श्रीचक्रजीके भोजन कर लेनपर हम सभी उनके कक्षमें पहुँच गये। साहस बटोरकर भैयाने ही प्रश्न किया— बाबा! आप कथाके मध्य किनसे वार्तालाप कर रहे थे?

'कैलाश!' चक्रजीने उत्तर दिया— तुम भाग्यशाली हो कि ऐसे पिताकी संतान हो। उन्होंने आगे बताया (उन्हींके शब्दोंमें) 'कथाके बीचमें सहसा हल्के प्रकाशके बीचमें तुम्हारे पिता श्रीपण्डितजी दिखायी पड़े। हम दोनोंने एक-दूसरेको सिर झुकाकर अभिवादन किया और मैंने थोड़े चकित स्वरमें पूछा — आप कहाँसे पधारे हैं?

'महर्लोकसे'। उन्होंने उत्तर दिया।

'आदेश प्रदान करें।' मैंने कहा।

'आपने घर-बालकोंको स्वीकार कर मेरा कुल पवित्र कर दिया है। एक प्रार्थना है— मैं सप्रयोजन आया हूँ।'

'आज्ञा दीजिये' मैंने कहा।

'आप अपने अनुजसे निवेदन कर मेरी स्थिति साकेत धाममें करवा देनेकी कृपा करें। मैं महर्लोकमें कब तक पड़ा रहूँगा। वहाँसे तो भगवान् पद्मसंभवके साथ ही मेरी और वहाँके निवासियोंकी निष्कृति होगी और अभी तो ब्रह्माकी आयु... ।'

'किन्तु मैं तो गोलोकका हूँ' मैंने सम्भ्रम निवेदन किया।

किंचित् मुस्कराते हुए पण्डितजीने कहा— आपकी तो सब कहीं अबाध गति है। मैंने 'ॐ जय गोविन्द' कहकर-स्वीकृतिमें सिर हिलाया। हम दोनोंने परस्पर प्रणाम किया और वे अन्तर्धान हो गये।'

दूसरे दिनकी कथामें हम सभी सावधानीपूर्वक देख रहे थे कि सम्भवतः आजकी कथामें भी श्रीपण्डितजी आयेंगे न! देखें आज क्या होता है?

ठीक कथाके मध्यमें फिर श्रीचक्रजीकी आँखें सामनेकी ओर उठीं। उन्होंने प्रणाम किया और मुस्कराकर कुछ कहा। कुछ क्षणों पश्चात् फिर सावधान होकर कथा सुनने लगे। कलकी भाँति पूछनेपर श्रीचक्रजीने बताया— श्रीपण्डितजी आज भी आये थे। उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक प्रणाम किया। मैंने प्रणाम करके पूछा— आपका काम हो गया। उन्होंने स्वीकृतिमें सिर हिला दिया— आपके अनुजकी अनुकम्पासे। बस, यही कहने आया था।

इसी प्रसंगपर श्रीचक्रजीसे मैंने 'साकेत, गोलोक' धामकी स्थितिके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की। तब बहुत देर तक वे वहाँके आनन्दरस सिन्धुमें सिन्धु-बिन्दुवत्-एकाकार होकर अन्तर्मुख हो गये। तनिक बाह्यज्ञान होनेपर उसी भावमें स्थित दिव्य धामकी भावमयता एवं अनिर्वचनीय आनन्दकी

अलौकिक अनुभूतिका यत्किञ्चित् वर्णन करने लगे— निर्गुण तत्त्वके समान सगुण तत्त्व भी अनिर्वचनीय और अवाङ्मनस्-गोचर ही है। वे स्वयं आनन्दघन और उनकी क्रीड़ाका प्रतिष्ठान भगवद्धाम साकेत एवं गोलोक चिद्घन है। वह भावानुरूप उपलब्ध स्वरूप व्यापक है, नित्य है, शाश्वत है। गोलोकमें सबका जीवन-प्राण है— 'श्रीकृष्ण'। एकमात्र लक्ष्य उन्हें उल्लसित एवं प्रमुदित करना है। नन्दनन्दनकी प्रीति प्रफुल्लता ही वहाँका जीवन है। क्या कहूँ? उस परमोज्ज्वल चिद्घन धामके सम्बन्धमें। कुछ कहनेका प्रयास करते ही वाणी थकित हो जाती है।' चक्रजीकी अनुभूतिपरक वाणी सुनते-सुनते बाह्य ज्ञान तथा जगत् सर्वथा लोप हो जाता। गति-मति विसर जाती। चित्तकी, मनकी एक-एक वृत्ति उनके भगवदीय प्रेमकी महा सत्त्वमयी परमोच्च स्थितिका थोड़ा-सा अनुभव कराने लगती, जो अनुभवगम्य है, वाणीका विषय नहीं। यह तथ्य उनके श्रीमुखसे सुननको मिला, यह मुझ अकिञ्चनाका परम सौभाग्य था।

ठा० हिम्मत सिंहके निमित्त कथा

मेरे पिताजी ठा० हिम्मत सिंहजी राणावतका देहान्त 2 जनवरी 1982 को हुआ था। माँकी इच्छा उनके निमित्त भागवत-सप्ताह करानेकी थी। माँने मुझसे अपनी इच्छा प्रकट की; किन्तु मैं स्वयं निरुपाय थी। पितृविहीन छोट-छोटे बालक और सहायकके नामपर कुल दो व्यक्ति। मैं चिन्तामें पड़ गयी— कैसे और कहाँ हो पायेगा यह आयोजन।

अचानक मुझे अपने तात याद आये और मैं प्रफुल्लित हो उठी, किन्तु 'यह किन्तु' बड़ी बुरी बला है; इसने फिर मुझे चिन्ताकी गर्तमें ढकेल दिया— मुझ नाचीजकी क्या गिनती तात मानेंगे, मान भी लें तो मैं उनसे कैसे कह पाऊँगी? संकोचका मानो मनों बोझ मेरे मन-मस्तिष्कपर चढ़ गया।

भागवत-भवनकी प्रतिष्ठामें जब मैं श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरामें गयी तो वहाँ एक दिन मुन्नी जीजीसे चर्चा की।

अरे! इसमें इतना चिन्तित होनेकी क्या बात है? हम सब मिलकर प्रबन्ध कर लेंगे और इस श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे अधिक पवित्र स्थान और कहाँ मिलेगा? मुन्नी जीजीने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा। बहुत संकोचपूर्वक मैंने कहा— मैं कैसे कहूँ, आप ही कृपाकर निवेदन करें।

'हाँ-हाँ, हम सब निवेदन कर देंगे'— दोनोंने उत्साहपूर्वक कहा।

'पहले तुम जाओ मुन्नी' — मिथिलेश जीजीके आग्रहपर मुन्नी जीजी तातके कक्षकी ओर चलीं। हम सब अपने-अपने कक्षमें आ गये। मुझे चिन्ता थी, न जाने तात क्या फरमायेंगे? यह नहीं कि मुझे उनके वात्सल्यपर संदेह था। उन्होंने तो मुझ अरण्यवासिनीको बचपनसे ही अपने लेखन द्वारा दिशा-बोध दिया था। जब प्रथम बार वृन्दावनमें दर्शन किये तो कृपापूर्वक मुझ अबोधको सुता स्वीकार करके 'सुमिरिनी, प्रदान की थी। वृन्दावन अथवा मथुरा आती, तब घूमते हुए द्वारके समक्ष पधारकर आवाज देते—

'गोविन्द'। मैं समीप जाकर कहती— आज्ञा, तात!

'कोई असुविधा, परेशानी तो नहीं'— वे पूछते।

'नहीं तात! उन्हें तो हम घर छोड़कर आये हैं, साथ नहीं लाये'— मैं कहती तो वे 'अच्छा-अच्छा कहते हँसते हुए अपने कक्षकी ओर लौट जाते।

कई बार मिथिलेश जीजी और मुन्नी जीजीने मुझसे कहा था— तुम्हारे तातकी आज्ञा है कि हम तुम्हारा विशेष ध्यान रखें। वे कहते हैं— बिटिया संकोची है।

जब घर लौटते समय प्रणाम करती तो अपनी सद्यः प्रकाशित पुस्तकें देते हुए कहते— तुम्हारे पिताने तुम्हें कितना कुछ दिया होगा, तुम्हारे इस पिताके पास तो बस, यही है।

'उस सबको बाँट लेनेवाले कई हैं तात! किन्तु यह तो केवल मेरा ही धन है'— मैंने कहा। एक बार ऐसे ही अवसरपर मैंने निवेदन किया — इन पुस्तकोंपर अपने हस्ताक्षर कर दीजिये।

एक बार थोड़ा झिझके, फिर कलम उठाकर लिखा— 'सुता सौभाग्यको सस्नेह' सुहृद्, सुदर्शन सिंह।'

अपने तातका वह वात्सल्याधिकार पाकर मैं निहाल हो गयी। ऐसी न जाने कितनी स्मृतियाँ मेरे मानसमें संकलित हैं। ऐसे स्नेह-वारिधरके लिये अस्वीकृतिकी आशंका करना कृतघ्नता होगी। आशंका अस्वीकृतिकी नहीं, शायद उन दिनों इन्हें कहीं पधारना हो? इन चिर-यायावरका स्वास्थ्य भी अनुकूल होगा कि नहीं? ऐसेमें मेरे कारण एक अतिरिक्त उत्तरदायित्वका वहन... आदि-आदि। सायंकाल तातको प्रणाम कर अम्मा और मुन्नी जीजीको प्रणाम करने गयी तो उन्होंने बताया— जब तुम कथाका आयोजन कराना चाहो, बता देना— हो जायगा। तुम्हारे तातने स्वीकृति दे दी है।

जन्माष्टमीपर जब मैं पुनः मथुरा गयी तो तातने बताया कि तुम्हारे पिताजीके लिये जो भागवत करानी है, उसके लिये मैं आचार्य श्रीभागवतानन्द सरस्वतीको पत्र लिख रहा हूँ, यदि वे नहीं आ सके तो फिर श्रीबाँकेलालजी शास्त्री कथा करेंगे। इन दोनोंकी ही कथा हमें बहुत अच्छी लगती है।

'आप जैसा उचित समझें तात!' मैंने कहा। कुछ दिनों बाद ही निश्चय हो गया कि कथा श्रीबाँकेलालजी शास्त्री करेंगे। आचार्य श्रीभागवतानन्दजी महाराज कहीं अन्यत्र कथा करनेको वचनबद्ध थे।

तातने एक सूची-पत्र दिया, जिसमें कथाके लिये आवश्यक सामानके नाम लिखे थे। बड़ी पुत्री स्वयंप्रभाको सूचना दे दी कि कार्तिकमें पाक्षिक-कथा श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरामें होगी। अतः वह समयपर सीधी वहाँ पहुँच जाय।

इसी बीच यह भी निश्चय हो गया कि मेरे पुत्र ठाकुर वीरेन्द्र सिंहका यज्ञोपवीत-संस्कार भी कथाके बीच एकादशीको होगा।

मैं घर आकर सब सामग्री इकट्ठी करनेमें, सहेजनेमें लग गयी। बालकोंमें बड़ा उत्साह था। साथमें राजश्री, वीरेन्द्र सिंहके अतिरिक्त नाना काकोसाकी बहू और महाराज साहब श्रीशिवदान सिंहजी (मेरे बड़े ननदोई) चलेंगे, उन्हें भी सूचना भेज दी। कार्तिक कृष्ण एकादशीको प्रस्थान करना था। सामान बाँधकर हम तैयार थे कि प्रस्थानसे एक दिन पूर्व दशमीको मेरे काका ससुरके पुत्र जीवन सिंहजीका हृदयगति बन्द हो जानेसे देहावसान हो गया। हमपर मानो वज्रपात हुआ। अब सूतक लगनेसे वीरेन्द्र सिंह कैसे पूजा कर सकेंगे? समयपर न गये तो तात क्या सोचेंगे? यदि जायँ तो यहाँ क्या, कैसे होगा? लोग क्या कहेंगे? पता नहीं कितने प्रश्न एक साथ उठ-उठ कर मन-मस्तिष्कको आन्दोलित करने लगे।

जवान मौत, बालकोंको देखकर प्राण हाहाकर कर उठते; किन्तु किसे कहूँ, कैसे सुनाऊँ अपनी कठिनाई? यों एक-एक दिन बीतने लगे तो सोचा— दस दिनकी शुद्धिके बाद चलें तो ठीक होगा।

इधर ठीक दसवें दिन श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर तातकी सेवामें रहनेवाला बच्चूसिंह आ गया, उसने तातका संदेश दिया— 'परसों बारह बजे तक तुम-लोग नहीं पहुँचे तो मैं आचार्यको दक्षिणा देकर विदा कर दूँगा।'

बच्चू सिंहके साथ स्वयंप्रभा भी आयी जो अपनी ससुराल बड़नगर (उज्जैन) -से सीधी मथुरा पहुँच गयी थी। उसने बताया— मथुरामें सारी तैयारी हो चुकी है। कथाकी सूचना 'श्रीकृष्ण-संदेश' पत्रिकामें निकलनेसे लोग नानोसा (नानाजी) -से पूछने आते हैं कि कथा होनेवाली थी— सो क्या हुआ? नानोसा मुन्नी मौसीपर नाराज होते हैं। परिवार सहित मुन्नी मौसी,

मिथिलेश मौसी दीपावलीसे एक दिन पहले आ गयी हैं। यह सब देखकर मैंने निवेदन किया कि माँ छोटे-मोटे विघ्नके कारण तो रुकनेवाली नहीं है। अवश्य ही कोई अनहोनी हुई, तभी वह नहीं पधार सकी। मैं जाकर सबको ले आऊँगी।

नानोसाने फरमाया कि मैं तुझे अकेली नहीं भेज सकता। बच्चू सिंहको साथ ले जाओ।

अब मुझे निश्चय करनेमें तनिक भी देर नहीं लगी। गढ़से ताँगेमें बैठकर बस तक जाने लगे तो रास्तेमें ताँगेका धुर टूट गया। उसी समय छातेवाली घुमटी मँगायी और उसमें होकर हम गये।

दूसरे दिन प्रातः दस बजे जब मैं श्रीकृष्ण-जन्मभूमि पर माँ, वीरेन्द्र आदिके साथ पहुँची तो तात धूपमें कुर्सीपर विराजे अखबार पढ़ रहे थे। मैंने प्रणाम किया तो बिना कुछ कहे कक्षमें पधार गये। मिथिलेश जीजी जब हमारे कमरेका ताला खोल रही थीं कि सामनेसे आचार्यजी आये। मैंने प्रणाम करके वीरेन्द्रसे प्रणाम करनेको कहा, वह अभी प्रणाम कर ही रहा था कि पीछेसे तातने अपने कक्षसे निकलते हुए फरमाया— आचार्यजी! आपके यजमान आ गये हैं। फिर मुझसे पूछा— कथाका प्रधान श्रोता वीरेन्द्र कहाँ हैं?

मैंने कहा— आचार्यजीको प्रणाम कर रहे हैं।

वीरेन्द्र सिंहने आचार्यजीको प्रणाम कर तातको प्रणाम किया। अपने लाड़ले दौहित्रको देखते ही उनकी बची-खुची नाराजगी भी दूर हो गयी और प्रसन्नतासे मुख खिल उठा। 'राजश्री कहाँ हैं?' उन्होंने सबको कृपापूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पूछा। 'वह केशवदेवजीके दर्शन करने गयी हैं'— मिथिलेश जीजीने कहा।

कार्तिक शुक्ल अष्टमीसे सप्ताह क्रमसे लीलामंचपर कथा प्रारम्भ हुई और लीलामंचसे सटे छोटे कक्षमें सर्वतोभद्र, नवग्रह, षोडश मातृकाओं आदिका

पूजन पं० रामजी शास्त्रीने कराया। उसी कक्षमें आचार्यजी विराजते थे।

प्रथम दिन कथा-विश्रामके थोड़ी देर पश्चात् आचार्यजी स्वयंप्रभाके छोटे पुत्र ध्रुवको गोदमें उठाये अपने कक्षसे आये और तातसे कहने लगे— छोटे बालक अपरिचित व्यक्तियोंको देखकर डरते, झिझकते हैं, पर यह बालक तो कक्षमें आते ही मेरी गोदमें चढ़कर बैठ गया। तातने हँसते हुए कहा— पिछले जन्मका परिचय होगा।

इस कथामें तातने सबको अलग-अलग सेवा सौंप दी थी। राजश्री एवं संध्याको पुष्प चुनना, एटावाली भाभीको पुष्पमालाएँ बनाना, मुझे मंचकी समयसे सफाई एवं व्यवस्था देखना, स्वयंप्रभाको पूजन-सामग्री सज्जित करना, नीराजनका थाल सजाना तथा आगन्तुकोंका सत्कार, जलपान आदि कराना।

एकादशीको प्रातःकी कथा विश्रामके पश्चात् सविधि वीरेन्द्र सिंहका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। चतुर्दशीके दिन प्रातः दस बजे महाराज साहब शिवदान सिंहजी पधारे। पूर्णिमाको प्रातः हवन, केशवदेवजीके मंदिरमें छप्पन भोग एवं भण्डारा हुआ।

श्रीतातचरणकी कृपासे ही इस कथाका आयोजन सम्भव हो सका। विघ्न तो कई आये; किन्तु उनकी कृपा-करुणाके आगे सब ध्वस्त हो गये।

स्वयंप्रभा, वीरेन्द्र सिंह और राजश्री तीनों ही बालकोंपर उनका अपार वात्सल्य था और है। स्वयंप्रभाके दोनों बालकोंका नामकरण भी तातने ही किया। बड़ेका मृत्युंजय सिंह और छोटेका धनञ्जय सिंह। वीरेन्द्र तो आज भी उन्हींकी बातको प्रमाण मानते हैं। राजश्रीका कहना है— मैं जब भी नानोसाको याद करती हूँ, मुझे तो सामने खड़े नज़र आते हैं। स्वयंप्रभा तो जैसे उन्हींकी गढ़ी हुई है। एक बार उज्जैनके एक संतके दर्शन करने गयी, वहाँ तातकी कई पुस्तकें रखी देख वह, कौन-कौन पुस्तकें यहाँ नहीं

हैं, यह देखने लगी। तब संतने कहा— इन्हें पढ़ना चाहो तो दो-चार पुस्तकें ले जाओ। बहुत अच्छे संत द्वारा लिखी गयी हैं।

स्वयंप्रभाने मुस्कराकर कहा— इनकी सभी पुस्तकें मेरे पास हैं और मैं उन्हें पढ़ चुकी हूँ।

'तुमने कहाँसे ली?'

'श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे।'

'क्या तुम इन्हें जानती हो?'

'हाँ, ये मेरे नानोसा (नानाजी) हैं।'

"पर मैंने तो सुना कि ये अविवाहित थे... " "हाँ, यह सच है। मेरी माँ उनकी मानसपुत्री हैं। हम दौहित्र-दौहित्री उनके वात्सल्य-भाजन हैं।' ओह! उन संतके मुखसे निकला— तभी तुम्हारी बात इतनी सटीक और व्यक्तित्व आत्मबलसे पूर्ण हैं।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके विकासमें चक्रजीका योगदान

जगत्से तटस्थ रहनेवाले श्रीचक्रजीने अपने सम्बन्धमें निर्णय लिया था कि 'अनारम्भ, अनिकेत, अनपेक्ष, अपरिग्रह' — ये चारों जीवनमें बने रहें। इनके कन्हाईने भी इन नियमोंका जीवनपर्यन्त भली प्रकार निर्वाह करा दिया; किन्तु स्वयं जहाँ कहीं भी पृथक्-पृथक् स्थानोंपर रहे, जैसे मेरठमें संकीर्तनके सम्पादन-कार्यमें, रामवनमें, परमार्थ आश्रम-हरिद्वार अथवा श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर, वहाँ-वहाँ संस्थाके विकास एवं उन्नतिकी दिशामें मन-वचन-कर्मसे सदा इनका श्लाघनीय योगदान रहा। इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति इनके सम्पर्कमें आया, तब उसका लोक-परलोक कल्याणकारी बने, परमार्थ-पथका श्रेयस्कर मार्ग प्रशस्त बने—ऐसा ही सुझाव देते थे 'परहिताय'

ही जीवन था। स्व-सुखकी ओर तो कभी झाँका भी नहीं। यहाँ श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके विकासमें इनके योगदानकी झलक दी जा रही है—

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के सम्पादकके रूपमें

'श्रीचक्रजीने वर्ष 1975 की मईसे 'श्रीकृष्ण-सन्देश' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य सँभाला। सदा अवैतनिक सेवा-कार्य करते रहे। यह कार्यभार सँभाला, तभीसे 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के ग्राहकोंकी संख्या बढ़ती गयी, जो पत्रिकाकी लोकप्रियताका परिचायक है। इनके पहले वार्षिक संख्या केवल 652 थी और आजीवन संख्या 204; किन्तु श्रीचक्रजीके कार्यकालमें ग्राहक-संख्या दिसम्बर 1981 की गणनाके अनुसार वार्षिक संख्या 1265 एवं आजीवन ग्राहक-संख्या 681 से भी अधिक थी। श्रीकृष्ण-सन्देशकी 2500 प्रतियाँ प्रतिमास छपतीं, जिनमेंसे ग्राहकोंके अतिरिक्त सरकारी विभाग एवं सरकारी कर्मचारियोंको, पत्र-पत्रिकाओंको एवं विशिष्ट व्यक्तियोंको प्रेषित की जाती थीं। उस समय लगता था कि निकट भविष्यमें अधिक प्रतियोंका संस्करण करवानेकी आवश्यकता पड़ सकती है।'[1]

श्रीचक्रजी अपना सारा कार्य स्वयं ही कर लेते। उन्हें किसी सहायककी आवश्यकता नहीं। जिस कमरेमें सम्पादकीय कार्यालय था, वही उनका शयन-कक्ष और उपासना-कक्ष भी था। केवल एक चपरासी (बच्चू सिंह) उनकी सेवामें रहता था, जो कमरेकी सफाई, कागज-पत्रादि, डाक आदि इधर-उधर ले जाने और पहुँचानेका कार्य करता था।

सादगी इतनी अधिक थी कि एक बैगमें ही अपने ओढ़ने-बिछानेका सामान, एक धोती, एक उत्तरीय चादर, गमछा और कौपीन मात्र था। सिला

1. श्रीकृष्ण-जन्मस्थान स्मारिका, पृ० 211 के आधार पर

वस्त्र नहीं धारण करते। सर्दीके दिनोंमें गर्म ऊनी चादर ओढ़े रहते। स्वेटर, टोपा नहीं रखते। मई 1975 में जब कक्षमें प्रवेश किया तो वहाँ टेलीफोन पहलेसे कामके लिये रखा था। आते ही फोनका कनेक्शन कटवा दिया सबके मना करनेपर भी। कहते थे– मुझे तो किसीसे फोनपर बात करना नहीं है और किसीका फोन आनेपर बात करनेके लिये मुझे अवकाश भी नहीं है। यह तो मेरे कार्यमें व्यवधान-स्वरूप है। श्रीराधेश्यामजी बंका भैया कहते हैं कि श्रीचक्रजी गीतावाटिका, गोरखपुरमें अपनी कुटियामें बैठकर लेखन कार्य इतने मनोयोगसे करते कि पासमें रखे फोनकी घंटी बजते-बजते बन्द भी हो जाती, किन्तु उन्हें इसका आभास भी नहीं होता था।

गीता-रामायण पत्र-व्यवहार विद्यालय

श्रीचक्रजीने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर वर्ष 1978 से गीता-रामायण पत्र -व्यवहार' विद्यालयका श्रीगणेश किया था और 'गीता-जयन्ती' पर उपाधिके प्रमाण-पत्र दिये जाते थे। ये प्रमाण-पत्र इतने भव्य रंगीन चित्रयुक्त हैं कि स्वयंमें ही बड़ा आकर्षण रखते हैं।

गीता और रामायण (श्रीरामचरितमानस) -मेंसे प्रत्येकका पाठ तीन वर्षोंका है। तीस पाठको एक वर्ष मान लिया गया है। एक पाठके साथ प्रश्नपत्र संलग्न रहता है। अध्येता प्रश्नपत्र भरकर लौटाता है तो उसे सुधार कर नये पाठके साथ भेज दिया जाता है। अलगसे कोई परीक्षा नहीं होती। कोई अध्येता प्रश्नपत्र भेजना ही बन्द कर दे तो अनुत्तीर्ण नहीं माना जाता।

'गीता-जयन्ती' को श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं। यदि अध्येता नहीं आ सका तो डाक द्वारा प्रमाण-पत्र मँगा सकते हैं। कोई अध्येता गीता एवं रामायण, एक साथ दोनोंका अध्ययन कर सकता है।

प्रत्येक अध्येताको प्रथम वर्षके प्रारम्भसे ही पाठ मँगाने पड़ते हैं।

मध्यके वर्षोंसे अध्ययन प्रारम्भ नहीं कराया जाता।

उपाधि आदिका विवरण

विषय	उपाधि	शुल्क
प्रथम वर्ष—गीता	गीता-रसिक	20/-
प्रथम वर्ष—रामायण	मानस-रसिक	20/-
द्वितीय वर्ष—गीता	गीता-मराल	25/-
द्वितीय वर्ष—रामायण	मानस-मराल	25/-
तृतीय वर्ष—गीता	गीता-रत्न	30/-
तृतीय वर्ष—रामायण	मानस-रत्न	30/-

प्रथम वर्षके तीस पाठमें गीता या रामायणकी पाठविधि, ग्रन्थका महत्त्व तथा अर्थ करनेकी सामान्य प्रणालीका अध्ययन कराया जाता है।

द्वितीय वर्षके पाठोंमें ग्रन्थके शोधात्मक अध्ययनकी आवश्यकता तथा उसके उपयुक्त ग्रन्थोंका परिचय, विशेष अर्थ करनेकी प्रणाली, ग्रन्थकी व्यापकता तथा छन्द, अलंकारादि समझाये जाते हैं।

तृतीय वर्षमें गीता एवं मानसका तत्त्वज्ञान, इनके विभिन्न भाष्यों एवं टीकाओंका परिचय, इनको लेकर जीवन बनानेवाले महापुरुषोंका परिचय तथा इन ग्रन्थोंका विशद अध्ययन सिखलाया जाता है।[1]

हिन्दी भाषाके माध्यमसे ही यह पत्र-व्यवहार विद्यालय अध्ययन कराता है। इन दोनों ग्रन्थोंके सभी पाठ श्रीचक्रजी द्वारा ही लिखे गये हैं।

---

1. श्रीकृष्ण-जन्मस्थान स्मारिका, पृ० 220

श्रीगीता-जयन्ती महोत्सव

श्रीकृष्णकी विश्ववन्दिता शाश्वत वाणी गीताका उद्घोष-दिवस प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशीको 'गीता-जयन्ती' के रूपमें मनाया जाता है। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर गीता-जयन्ती-समारोहके पावन दिवसको प्रतिवर्ष मनाया जाता है। यह समारोह श्रीचक्रजीके निर्देशन एवं संरक्षणमें मनाया जाता था। इस अवसरपर श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके अध्यक्ष स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज, डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी (सप्ताचार्य), नारायण मंदिरके आचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी महाराज (वृन्दावन) डॉ० गोवर्धननाथजी शुक्ल (अध्यक्ष—बल्लभ शोधपीठ मथुरा) एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष, अलीगढ़ वि० विद्यालय आदि अनेक विद्वानोंको आदर सहित बुलाया जाता और सायं दो बजेसे छः बजे तक प्रवचनका कार्यक्रम चलता। सबसे पीछे श्रीचक्रजी गीता-प्रवचन करके सबका सत्कार, धन्यवाद ज्ञापन कर अध्यक्षजी द्वारा गीता-रामायण पत्र-व्यवहार विद्यालयके अध्येताओंको उपाधि वितरण कराते थे।

आगेके प्रतिवर्षोंमें विद्वानोंकी संख्या बढ़ती जाती थी। वृन्दावनसे श्रीअवध बिहारी लालजी कपूर एवं मथुरासे श्रीरामानुजाचार्यजी, गोरखपुरसे आये श्रीसूर्यदेव प्रसादजी आदि विद्वानोंके बड़े मार्मिक प्रवचन होते थे। श्रीचक्रजीकी स्वरचित कविता 'गीता-जयन्ती' पर पावन सन्देश दे रही है—

आज जगका व्यथित जीवन!

आह! अस्थिर हो उठा है— विजयसे भी दीनतर नर,

और पथको खो चुका है— लक्ष्यहीन प्रमत्त बनकर!

एक है उद्वेल व्यापक—विकल सकल समिष्टका मन।

आज जगका व्यथित जीवन!

भोग ही उद्देश्य है अब और वह भी रक्त लथपथ;
फँस चुका है विष विषमता कीचमें यह विश्वका रथ;
आज संग्रहणीय तृण है और हैं उच्छेद्य जन मन!
आज जगका व्यथित जीवन।
सो चुकी है शक्ति उस तव गानकी हे दिव्य गायक!
किन्तु क्या तुम भी सजग अब हो नहीं हे जगन्नायक?
क्यों नहीं अब गूँगती है शंख ध्वनि तम-मान-मर्दन!
आज जगका व्यथित जीवन।
अब नहीं—तब फिर भला कब ज्ञान गीता जग सुनेगा।
पांचजन्य प्रमत्त ही क्या कर कमलमें सिर धुनेगा?
'चक्र' चमके हो चमत्कृत फिर उठे भव भुवन मोहन!!

पुरस्कृत निबन्धोंपर संस्थाका अधिकार रहता और श्रीचक्रजी उन्हें श्रीकृष्ण-संदेश पत्रिकामें प्रकाशित करते। उन्होंने अनुभव किया कि बालकोंके लिये गीतापर निबन्ध लिखना भारी पड़ रहा है, अतः बालकोंके निबन्धोंमे श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डके प्रारम्भसे दोहा 16 तक श्रीहनुमान्‌जीके समुद्र-लंघन तकके विषयमें निबन्ध लिखाते। श्रीचक्रजीका कथन है— 'श्रीलोकमान्य तिलक एवं महामना मदन मोहन मालवीयजी सदा गीताको अपनी जेबमें रखते थे... गीताको अपनाइये। गीता भगवदीय आलोकका शाश्वत आलोक है।

श्रीकृष्ण-शोधपीठ पुस्तकालय

धर्म एवं साहित्यके अध्येताओं एवं जिज्ञासुओंकी सुविधा-हेतु श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर सर्वप्रथम तो श्रीगिरिधरदासजी द्वारा प्रदत्त पाँच हजार रुपयेके अनुदानसे पुस्तकालयका जन्म हुआ था; किन्तु आज श्रीचक्रजीकी प्रेरणासे

एवं श्रीजयदयालजी डालमियाके उत्साह-लगनसे पुस्तकालयका आकार इतना समृद्ध एवं बृहत् हो गया है कि पत्र एवं पत्रिकाओंके अतिरिक्त उसमें वर्तमानमें बीस हजारसे अधिक ग्रन्थ संगृहीत हैं, जिनमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थ एवं पाण्डुलिपियाँ भी सम्मिलित हैं। राजवैद्य पं० लक्ष्मीनारायणजी शर्मा, वृन्दावन; श्रीमाधवप्रसादजी गोयनका, कोल्हापुर; श्रीहरिकृष्णदासजी गोयनका, बाँकुड़ा; श्रीमदनगोपालनाथ, कलकत्ता; भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली; बाबा श्रीकृष्णदासजी, कुसुमसरोवर आदि सभीने मुद्रित ग्रन्थोंके अतिरिक्त हस्तलिखित प्रतियाँ भी श्रीकृष्ण-जन्मस्थानको प्रदान कीं।

श्रीकृष्ण-शोधपीठ पुस्तकालयमें अध्ययनार्थ विद्यार्थियों, शोधार्थियों अथवा जनसाधारण किसीसे भी कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। वर्तमानमें उपलब्ध सीमित साधनोंसे अध्येताओंको अधिकाधिक सुविधा प्रदान करनेकी चेष्टा की जाती है।

श्रीचक्रजी जिन ग्रन्थोंको उपयोगी समझते थे, उन्हें पुस्तकालयके लिये तुरन्त दिल्लीसे अथवा उपलब्ध स्थानोंसे मँगा लेते। पुस्तकालयके लिये 56.5 फुट x 20 फुट आकारका हाल है, जिसमें अध्ययन करनेवाले पाठक बैठकर अध्ययन कर सकते हैं। हालमें पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, श्रीआनन्दमयी माँ, श्रीकरपात्री महाराज, श्रीगिरिराजजीके सचल विग्रह पं० गयाप्रसादजी महाराज आदि महापुरुषोंके चित्र श्रीचक्रजीकी प्रेरणासे लगे हैं। 'आदर्श-वाक्य' और 'कविताएँ' भी मानवको प्रेरणा दे रही हैं। श्रीचक्रजीकी एक कविता उदाहरणके लिये दी जा रही है—

नर! तू नारायणका भाई,
अरे, दीनता तुझमें आई।
जाग और हुंकार गुँजा दे,
देख सृष्टि तुझसे थर्रायी।।

तेरी जय अम्बर गाता है,
तुझसे भूति धराने पाई।
असुर देवता सृजन करोंके,
मुक्ति-माधुरी स्वत्व सदा ही।।
पौरुष तू सँभाल ले अपना,
प्रऔति सेविका सेवा लाई।।

नाम-बैंककी स्थापना

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर आनेके एक वर्ष पश्चात् ही मानसमें नाम-बैंक खोलनेकी योजना बना ली। चिन्तन चलता रहा। 12.03.78 को मथुरासे प्रभुदयालजीको पत्र लिखा— मुझे काशीके नाम-बैंकका ढंग पसन्द आया। उसी ढंगका काम इसी वर्ष 'नाम-बैंक' श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे खोलने जा रहा हूँ। संसारके लोग सकाम ही अधिक हैं। 'हरिनाम' उन्हें सहारा देगा। प्रत्येक कामनाके लिये राम-नाम लिखनेकी योजना है।

नाम-बैंकके अधिष्ठाता (एकमात्र डायरेक्टर) भगवान् केशवेश्वर महादेव हैं। किसी भी प्रयोजनके लिये नाम-ऋण प्राप्त करनेका कोई भी आवेदन भेज सकता है।

समय एक ही हो, प्रतिदिन हो तो बहुत अच्छा और एक ही स्थानपर एक ही आसनपर बैठ सकें तो सोनेमें सुगन्धि। लेखनी-कागज लेकर बैठ जाइये, भगवन्नाम लिखिये। मुखसे नाम लेते रहिये। जितने समय आप नाम लिखेंगे, उतने समय मन कहीं नहीं जायगा। जो नाम आपको प्रिय हो, वही लिखिये।

बैंक होगा तो नियम भी होंगे—

1. नाम जहाँ तक बने सुन्दर लिखा जायगा।
2. लाल स्याहीसे लिखा जायगा।

3. जप करते हुए मौन होकर लिखा जायगा।
4. कागजके दोनों ओर लिखा जायगा।
5. कोई अक्षर गलत हो जानेपर काटें नहीं, उसे वैसा ही छोड़ दें, आगे नाम लिखें।

जो भी यह पूँजी अर्पण करेंगे, वह स्वीकृत होगी। समझा जायगा कि लिखनेवालेने उसे भगवान् केशवदेवजीको अर्पण किया है।

कलियुगमें नाम ही आधार है।

नाम सदाका शरण प्रदाता। नाम सभीका त्राता।।
आज नाम भी जाग्रत रक्षक। नाम अभयका दाता।।
नाम कर्म भवपाश प्रछेत्ता। नाम अमर पद काशी।।
नाम जीभ रट नाम हृदयधर। नाम ब्रह्म अविनाशी।।

श्रीकेशवदेवजीकी पुष्पवाटिका

श्रीचक्रजी प्राकृतिक सौन्दर्यके सहज प्रेमी थे। इसकी एक नन्हीं-सी झलक 13 जुलाई 1981 को योग निकेतन-उत्तरकाशीसे लिखे पत्रसे मिलती है। अपना कुशल-समाचार देते हुए प्रकृतिका मानवीयकरण कितनी सहजतासे कर दिया है— 'इस समय फुहार पड़ रही है पर्वतोंपर, चीड़ोंके झुरमुटोंमें जहाँ-तहाँ मेघशिशु बैठे हैं — नवजातसे लेकर युवक तक। एकाकी थककर सोये हुए भी और दो-चार मिलकर गपशप करते हुए भी। दो-तीन स्थानोंपर वृद्ध बादल भी उतर कर थकान मिटाते हुए बालमेघोंका विनोद देख रहे हैं।'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानमें श्रीकेशवदेव मंदिरके प्रांगणमें श्रीकृष्ण-चबूतरा एवं गर्भगृहके दोनों ओर विशाल वाटिकाओंका निर्माण किया गया है, जिन्हें सुरक्षाकी दृष्टिसे लोहकी रेलिंगसे घेर दिया गया है, किन्तु उस वाटिकामें श्रीचक्रजीकी दृष्टिमें पूजाके उपयुक्त पुष्प नहीं थे।

श्रीचक्रजीको अपने श्याम-सुन्दरके लिये नित्य ही प्रतिदिनके अनुरूप पृथक्-पृथक् सुगन्धित सुकोमल पुष्पोंसे सजानेका व्यसन था। अतः उन्होंने पृथक् केशवदेवजी-वाटिका बनानेका निर्णय लिया। अपने यायावरी जीवनमें भी जहाँ कहीं रहते, वहीं छोटी-सी वाटिकाकी व्यवस्था करके देखभाल स्वयं ही कर लेते।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके विशाल प्रांगणमें लीलामंचके बायीं ओरका स्थान एक विशाल वाटिकाके लिये पर्याप्त था। वहीं मालीकी व्यवस्था करके पुष्प वाटिकाकी साज-सज्जा करायी, प्रति मौसममें ऋतुके अनुसार पुष्प प्राप्त होते रहें, ऐसी व्यवस्था की। सब प्रकारके गुलाब, बेला, मोंगरा चमेली, कुंद, निवाड़ी, रजनीगन्धा आदि पुष्प पर्याप्त प्राप्त होते रहते थे। अतः दूर-दूरसे पौधे मँगा लेते। उन्होंने कहा था—

मैं चाकुलियासे पौधे ले आया था। मालती और कुन्द दोनों बगीचेमें लग गये। उस समय मन तो स्वर्णचम्पा लानेको था, किन्तु वह पौधा मिला नहीं। मैं तो सुगन्धित नीले पुष्पकी लता चाह् रहा था, पर वह अभी मिल नहीं सकी है। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी वाटिका तो श्रीकेशवदेवजीकी है।

प्रतिदिन पुष्पोंका चयन पृथक्-पृथक् दिनके अनुसार करते। सोमवारको बेला, जूही, चमेली; मंगलको गुलाबी गुलाब, बुधवारको तुलसीकी मंजरी, गुरुवारको पीला गुलाब, शुक्रवारको मोंगरा, कुन्द आदि; शनिको नीलापुष्प एवं रविवारको लाल गुलाबका पुष्प। इसी क्रमसे अपने कन्हाईको सजाते।

दो वर्षके अन्दर ही पुष्पोंकी भरमार हो गयी। श्रीरामनवमीपर इतनी अधिक मात्रामें बेला एवं गुलाब उपलब्ध रहता कि मंदिरके लिये बड़ी-बड़ी मालाएँ पर्याप्त संख्यामें तैयार हो जातीं। शीतमें बड़े-बड़े गेंदासे वाटिका आच्छादित रहती। प्रत्येक ऋतुके अनुसार सुगमतासे पर्याप्त पुष्प सब मंदिरोंको प्राप्त हो जाते थे। श्रीचक्रजीका नियम था कि प्रतिदिन मालीको निर्देश देते

और देखभालके लिये दो बार दिनमें अवश्य बगीचेमें जाते।

श्रीमद्भागवतका ताम्रपत्रीकरण

पूर्वयोजना थी कि भागवत-भवनकी दीवारोंपर श्रीमद्भागवतके सम्पूर्ण श्लोकोंको संगमरमरकी शिलाओंपर उत्कीर्ण करवाकर जड़वाया जाय। इसके लिये मंदिरके सामनेके जगमोहनको पर्याप्त बड़ा बनवाया गया; परन्तु प्रकाशके लिये खिड़कियाँ आदि छोड़नेके कारण, जगह कम पड़ने लगी। अतः श्रीचक्रजीने श्रीजयदयालजी डालमियाको सुझाव दिया कि पत्थरके लेखोंसे ताम्रपत्रके लेख कहीं अधिक टिकाऊ होंगे और कागज नष्ट हो जायँ तो भी ताम्रपत्रपर लिखे ग्रन्थसे श्रीमद्भागवत ग्रन्थका पुनरुद्धार सरलतासे हो सकता है। अतएव ताम्रपत्रोंपर श्रीमद्भागवतका मूलपाठ अधिक कालतक सुरक्षित रह सके, इसलिये श्रीमद्भागवतको ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण करवाकर भागवत-भवनमें लगवाया गया। कालान्तरमें जीर्ण-शीर्णताकी अवस्थामें इन ताम्रपत्रोंपर उत्कीर्ण श्रीमद्भागवतका मूल पाठ हजारों वर्षोंतक सुरक्षित रह पायेगा; जबकि मकरानेके संगमरमरपर श्रीमद्भागवतको खुदवानेसे ऐसा सम्भव नहीं था।

अनुशासनपूर्ण व्यवस्था

श्रीचक्रजीको अनुशासनपूर्ण व्यवस्था बनाये रखना अभीष्ट था। एक-एक मिनट और एक-एक क्षणका महत्त्व था। ठीक समयपर सभी कार्य सम्यक् रीतिसे सम्पन्न होने चाहिये। सेवामें प्रमादको स्थान नहीं देना चाहिये। जीवनमें अपने इस सिद्धान्तका स्वयं पालन किया तथा अपने सम्पर्कमें रहनेवालोंको प्रेरणा देते रहे।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर प्रातः ठीक पौने पाँच बजे मंगलामें नित्यकी पूजा सम्पन्न कर पहुँच जाते, तभी शंखध्वनिके साथ आरती प्रारम्भ होती। मंदिरोंमें

उत्सवके पश्चात् वन्दनवार सूख जाती। मुरझाये पुष्पोंकी सज्जाको स्वयं खड़े रहकर उतरवा देते, स्वच्छता न होनेपर निर्देश देते तथा मंदिरमें विराजमान श्रीविग्रह, ऋतुके अनुरूप वस्त्र धारण किये हैं या नहीं? ग्रीष्म-ऋतुके अनुसार पतले, झीनें, हल्के और कोमल वस्त्र होने चाहिये। शीतकालमें गर्म वस्त्र एवं साज-सज्जा भी ऋतुके अनुसार ही करनेका आदेश पुजारीको देते रहते।

प्रकाशन विभागमें श्रीराधाकृष्ण चौधरी चक्रजीके कार्यकी तथा समय-पालनकी तनिक भी उपेक्षा नहीं करते। कार्यालयमें व्यवस्थापकसे लेकर कर्मचारी अथवा परिचारक तक श्रीचक्रजीके आदेशकी अवहेलना करनेका साहस नहीं जुटा पाते। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका सब कार्य श्रीकृष्णका ही है, इसी भावनासे सबको कर्तव्य करनेकी प्रेरणा देते।

दैनिक-चर्या एवं वर्ष-चर्या

श्रीचक्रजीका सिद्धान्त था— समय ही भगवान् है, समयका आदर करो। उन्होंने स्वयं अपने इस सिद्धान्तका जीवनपर्यन्त पालन किया। कथा-श्रवणमें सदा एक मिनट पूर्व पहुँच जाते। दैनिक-चर्याकी संक्षिप्त झलक दी जा रही है—

प्रातः 2.45 पर शय्या त्याग

प्रातः 4.45 तक स्नान-पूजा

प्रातः 4.45 पर मंगला दर्शन

प्रातः 6.00 पर सूर्यनारायणको अर्घ्य समर्पित (उदय होते सूर्यको अर्घ्यका नियम जीवनपर्यन्त चला।) शीतकालके कोहरेमें पंचांगसे समय देखकर एक-दो मिनट पहले जाकर प्रतीक्षा करते रहते तथा यात्रामें ट्रेनमें भी नियम रहा।

7 से 8 तक पुष्प चयन कर श्यामसुन्दरका शृंगार। जलपानमें एक कटोरी दही अथवा छाछ (1 गिलास) अथवा आसानीसे जो भी उपलब्ध

हो।

प्रातः 8 से 11.30 तक लेखन-कार्य एवं दैनिक समाचारपत्रका पढ़ना।

प्रातः 11.30 से 12.30 तक भोजन एवं बगीचेमें जाकर दूसरे दिनके पुष्प चयनकी स्थिति देखना।

12 बजकर 30 मिनट से 1 बजे तक विश्राम।

अपराह्व 1 से 4 बजे सायंकाल — लेखन-कार्य, प्रूफ देखना, सम्पादकके नाम आये पत्रोंका उत्तर देना।

सायंकाल 4 से 5 तक — स्नान (सर्दीमें नहीं) कन्हाईके पुष्प समेटना और बगीचीमें मालीको निर्देश देना। ठीक सूर्यास्तके समय कन्हाईको आशीष देते हुए संध्याकालीन पूजा। रात्रिमें 8 से 9 बजेके मध्य भोजन एवं दूध। 9 बजे शयन।

विशेष— कथा-श्रवणके परम रसिक श्रोता थे। प्रातः 8 बजे से 11 और सायं 3 से 6 तक कथाएँ होती ही रहतीं, जिन्हें नहीं छोड़ते थे। जब लेखन- कार्य प्रारम्भ करते, तब प्रातः 8 से 11 तक लेखन करते। स्वयं 'आंजनेयकी आत्मकथा प्रातः लिखी और सायं 2 से 4 बजे तक श्रीमुरलीध रजीको 'श्रीशिवचरित' बोलकर लिखवाया, जिसे श्रीमुरलीधरजी आशुलिपिमें लिख देते। इस नियमित समयमें बिना बोले संकेतसे काम चल जाय तो चार-चार दिन तक बोलते ही नहीं और श्रीकृष्ण-चर्चा करनी पड़े तो छः-छः घंटेका समय भी कम पड़ जाता।

इसी प्रकार वर्ष-चर्या भी व्यस्ततापूर्ण रहती। जनवरीमें चाकुलिया, फरवरीमें शिवरात्रि-पर्यन्त श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर सम्पादन-कार्य। होलीसे पूर्व वृन्दावन तथा जब तक स्वामी अखण्डानन्दजीकी कथा चले, अप्रैलमें मथुरा रहकर मई प्रारम्भ श्रीबिहारीजीके श्रीचरण-दर्शन करके अमृतसर, हरिद्वार होते हुए प्रतिवर्ष गर्मियोंमें कुल्लू, मनाली, अल्मोड़ा रानीखेत या उत्तरकाशीमें

अधिकांश रूपसे रहते। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीसे पहले ही श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर आ जाते। जन्माष्टमीके पश्चात् पुनः वृन्दावन एवं लौटकर मथुरामें अक्टूबरमें पितृ-पक्षकी एकादशीसे दशहरा एवं शरद्-पूर्णिमा-पर्यन्त एटा आनेकी कृपा करते। कार्तिक द्वितीयाको श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानपर दिसम्बरके समापन-पर्यन्त रहते। इन्हीं दिनों कथाएँ भी होतीं एवं गीता-जयन्ती-महोत्सव करते और सम्पादनका-कार्य करते हुए दो-दो महीनेके 'श्रीकृष्ण-सन्देश' पत्रिकाका कार्य पहलेसे सम्पन्न करके रख देते।

उत्सवप्रियता

श्रीचक्रजी 'श्रीकृष्ण-सन्देश' पत्रिकामें कभी कवर पृष्ठपर, कभी 'सन्देश-चिन्तन' के बादमें एक पृष्ठपर प्रति महीनेके उत्सवों, त्योहारों एवं पर्वोंका महत्त्व प्रतिपादन करते हुए उनके विषयमें जानकारी भी दिया करते तथा करणीय और अकरणीय बातोंको सरल पद्धतिसे समझाकर एक पृष्ठमें ही व्याख्या कर देते। श्रीचक्रजीके अपने कुछ गिने-चुने उत्सव थे, जिन्हें मनाते थे। उनकी चर्चा की जा रही है—

1. नव संवत्सर— चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे हिन्दू धर्मके नये संवत्सरका प्रारम्भ होता है। इसी दिनसे नवरात्र प्रारम्भ होता है। यह प्रत्येक कामके लिए शुभ है। पूरा नवरात्र ध्वजारोहण, उपासना, व्रत, पूजन और पाठका समय है। पंचमीको श्रीराम-राज्य-महोत्सव, षष्ठीको स्कन्द षष्ठी, अष्टमीको भवानी-पूजा, महानिशा और नवमीको श्रीराम-जन्मोत्सव तथा 'श्रीरामचरित-मानस' की जयन्ती है।

श्रीचक्रजी चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको नीमके कोमल पत्ते, पुष्पोंका चूर्ण या गोली, जिसमें अनुपातसे थोड़ा-थोड़ा काली मिर्च, भुनी हींग, सेंधा नमक, अजवायन, जीरा इमली और शक्कर मिलाकर लेनेकी शास्त्रीय-विधि बताते थे। यह रोगोंसे सुरक्षित रखता है। इसे वे तैयार कर अपने कन्हाईको देते और तुरन्त माखन-मिश्री अर्पित करते, मिष्टान्न खिलाते — "कन्हाईको पदार्थ

नहीं, अर्पण करनेवालेका प्रेम स्वादिष्ट लगता है। जो पदार्थ लाभकारी है— वह देना चाहिये, भले ही वह मुख बनावे।' भगवदर्पित प्रसाद ही ग्रहणके योग्य है। अपने कन्हाईको आशीर्वादकी झड़ी लगाते हुए अंकमाल देकर भाव-विभोर हो उठते। श्रीकृष्णके प्रति नववर्ष—

नीमके नन्हें पुष्प-गुच्छ सजी अलकें।
उठी हैं कुतूहलसे बड़ी-बड़ी पलकें।।
हरी है छोटी है गोली है उपहार।
यह भी कोई अद्भुत विशेष आज सम्भार।।
ले ली जो मुखमें निगल ही तो लेना था।
किन्तु कटु निम्ब क्या कन्हाईको देना था?
भोलेसे आननपर आई अरुचि रेखा।
धन्य क्षण जिसने इस शोभाको देखा।।
मिश्री और माखनका रसिक कन्हाई है—
श्रीमुखपर आभा उज्ज्वल अब आई है।।
वर्षका प्रथम दिन चैत्र शुक्ल परवा,
मोहन बधाई! बधाई वर्ष बनेगा।।

जगत्‌के लिये उनकी कामना होती—

नूतन वर्ष मंगलमय सब जन शान्ति सहज सुख पावें।
दुष्कृत दूर हृदय निर्मल हों मन अन्तर्मुख हरि गुण गावें।।

2. **श्रीकृष्णजन्माष्टमी** — श्रीकृष्ण सबकी आत्मा, प्रेमके मूर्तिमान् प्रत्यक्ष विग्रह हैं। अतः जन्मदिन तो श्रीकृष्णका मनाया जाना सच्चा सार्थक एवं सबको ही प्रेम-परिपूत करनेवाला है। इनका आविर्भाव भाद्र कृष्ण अष्टमी, बुधवारको अर्धरात्रिमें, रोहिणी नक्षत्रमें हुआ था। उस समय सूर्य सिंह राशिमें थे।

श्रीचक्रजीका यह पर्व वर्षका सबसे बड़ा आनन्द और उल्लासका रहता। कभी-कभी हम लोगोंको भी उनके अपार हर्षका यह दिन उनके सान्निध्यमें रहकर देखनेका सौभाग्य मिल जाता। वे पहलेसे ही नवीन पीत कौशेयका आस्तरण मँगाकर कन्हाईको विराजमान करनेको रख लेते। उन्हें पुष्पोंसे सुसज्जित करनेमें कोई कोर-कसर नहीं रखते। उनके श्रीकृष्ण मथुरामें अर्धरात्रिको आविर्भूत होनेवाले नहीं; अपितु गोकुल, वृन्दावनमें भोरके तीन बजे यशोदाके अंकमें जन्म लेनेवाले नन्दनन्दन थे।

एक बारकी जन्माष्टमीपर हम दो-तीन जन प्रातःकी मंगलासे पूर्व ही उनके कक्षमें धीरे-धीरे पहुँच गये। देखा— श्रीचक्रजी अपने पूजाके आसन-पर विराजमान थे, किन्तु आनन्दके उद्रेकमें अथवा एकाग्रतामें उनका कोई अंग हिलता ही नहीं था। उनका एक कर वक्षःस्थलपर इस प्रकार रखा था मानो वे किसीको अंकमाल दे रहे हैं और दूसरा कर आशीर्वादकी मुद्रामें वक्षःस्थलसे आगेकी ओर। अस्फुट स्वर प्रस्फुटित हो रहा है, पर सुननेमें स्पष्ट आ रहा है... अरे... यह क्या मेरा नव जलधर ज्योतिर्मय सुन्दर मेरा कन्हाई।... हाँ, इसके ही हैं ये घुँघराले काले केश और केशोंमें लहराता मयूर-पिच्छ, किंचित् अरुणाभ कमल-दल विशाल लोचन, अतिशय अरुण कर-पद-अधर। यह अरुणमणि कण्ठ मौक्तिक माला शिशु हँसता-किलकता हृदय-कर्णिकापर तो प्रकट हुआ और अब यह तो अंकमें ही आकर बैठ गया। उनकी यह आत्म-विस्मृतिभरी स्थिति देखकर हम सबकी सुधि-बुधि भी समाप्त हो रही थी। उनके इस आनन्दमें विक्षेप न पड़े, अतः शान्त-चित्त बिना हलचल किये चुपचाप बैठ गये।

मंगला आरतीके पाँच मिनट पूर्व वे स्वाभाविक स्थितिमें आये और संकेतसे हम सबको मंगलामें चलनेका निर्देश देकर स्वयं पूरे मंदिरोंमें मंगला करके लौटे, तब हम सभी कन्हाईको माखन-मिश्री, पंचमेवा एवं नव-निर्मित मिष्टान्न

आदि नैवेद्य लेकर पहुँचे। उन्होंने कन्हाईको पुष्पोंसे सुसज्जित कर क्रमशः सब समर्पित किया और हम सबको नन्दोत्सव मना लेनेकी अनुमति दे दी। हम सबके गायनके साथ छोटी बालिकाएँ राजश्री एवं संध्याने आनन्दसे नृत्य प्रारम्भ कर दिया। बच्चोंके साथ सब थिरकने लगे, कौन कब तक नाचता रहा, क्या पता? गायन और नृत्यके बीच नवनीत-दक्षि-दुग्ध-हरिद्रा मिश्रित जलका निक्षेप प्रारम्भ हो गया। कितना दधि, दूध एवं सुगन्धित जल पड़ा, कुछ पता नहीं। ऐसा आनन्द, ऐसा सुख कदाचित् ही जीवनमें मिल पाता है— वह भी श्रीचक्रजी-जैसे महापुरुषोंकी वात्सल्य-कृपा-दृष्टिके सहारे।

आज तो श्रीचक्रजीने अपने हाथों ही प्रसाद वितरण कर हम सबको दस बजेसे भागवत-भवनमें होनेवाले नन्दोत्सवमें जानेकी आज्ञा देकर भेज दिया और स्वयं पुनः अपने बालकृष्ण लालके सन्मुख बैठ उन्हें दुलार करते रहे—

कृष्ण! आज तुम्हारी वर्षगाँठ
मेरे मनका परमाह्लाद!
धुल गया—जैसे कभी था नहीं
माया अविद्याका समस्त कलुष
अन्तरका—
युग-युगका सञ्चित
विषाद-अवसाद!
आजका तुमको उपहार?
किन्तु, दिया है कभी किसीने
अपनेको ही उपहार?
सदा-सदाका मैं क्या तुम्हारा नहीं?
तुम क्या मेरे नहीं?
दो क्या तुम और मैं?

तब–बस उपहार

सम्पूर्ण सम्भार

मेरा यह भीतर उमड़ता

आकूल आह्लाद!

कनूँ मेरे रूठ मत आज, जानता हूँ

तुझे चाहिये आज आशीर्वाद

अंकमाल

वह तो तेरा स्वत्व!

बहुत–बहुत आशीर्वाद–

आ दे अंकमाल

बड़ी भली लगती है–

धूलि सनी भृकुटी और

नासिकानग्र–धूसर विशाल भाल

चल, हम दोनों करें साथ साथ

मैयाको, माँको, बाबाको

दाऊको प्रणाम

सुलभ सबका

आशीर्वाद

x x x x x

कनूँ मेरे

आज वर्षगाँठ तेरी, बाबाके सदनमें

काल भ्रू–भंग जिसका

शाश्वत अविनाशी, उस अजन्माकी आज जन्मतिथि

क्या दूँ तुझे! क्या देगा तेरा, अकिंचन यह बन्धु

केवल आलिंगन

वह भी मानसिक ही क्योंकि–
        आया कहाँ नेत्रोंके सन्मुख तू!
सर्वरूप निर्लेप निर्गुण निराकार
        निर्विकार दिगातीत.... अरे नहीं,
ऊखलसे बाँधा था भैया यशोदाने
चड्डी ले लेते थे गोपोंके किशोर,
उस नन्दनन्दनको
देखूँ दृग भर-भुजभर भेंट लूँ,
        जीवनकी अभिलाषा यह–
        आजका उपहार
        करेगा स्वीकार?
करना कृतार्थ इसे... कनूँ मेरे... अच्छे कनूँ!...

x x x x x

        यह उज्ज्वल दिन श्याम हमारा।
तुम चिद्घन वपु अविनाशी।
पर जन आँखें दर्शन प्यासी।
        यह काया ही सचमुच माया,
हम इसमें आबद्ध, उतर तू इससे आया।
वर्षगाँठका पर्व परम, यह हमको प्यारा।।
        किसने जाना रूप तुम्हारा?
'श्रुति' तक मूक जहाँ हो जाये।
कैसे कोई 'अथ' 'इति' पावे।।
        लेकिन यह तो जन्म दिवस तब।
        तू ब्रजजीवन यशुदानन्दन।।
        सुघर सलोना कनूँ हमारा

तन मन जीवनके कण-कण भी।
आज बधाई इस अर्पणकी।।
नन्दलाल गोपाल कन्हाई।
जय जय जय जय गोपदुलारा।।

3. गो-प्रेम एवं गोपाष्टमी–

यया सर्वमिदं व्याप्तं, जगत् स्थावरजंगमम्।
तां धेनुं शिरसा वंदे भूतभव्यस्य मातरम्।।

(महाभारत-अनुशासन पर्व)

'जिस गौसे यह स्थावर-जंगम विशव व्याप्त है, उस भूत और भविष्यकी जननी गौको मैं सिर नवाकर प्रणाम करता हूँ।'

श्रीचक्रजी गायको सर्वदेवमयी मानते थे– देवता और भगवान् केवल भावके भूखे होते हैं। गायके सम्बन्धमें यही बात कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है। गायको पदार्थकी उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी स्नेहकी है। यह श्रीचक्रजीका अपना अनुभव है गायके सम्बन्धमें।

गायोंसे श्रीचक्रजीका असीम प्रेम था, जिस स्नेहसे उनपर हाथ फेरनेपर आगे-पीछे, दायें-बायें गायोंका समूह उन्हें घेर लेता। 'रामवन' सतनाकी कृष्णा गायके सम्बन्धमें एक उदाहरण पर्याप्त है–

कृष्णा (गाय) आज चरने ही नहीं जा रही है। उसे दूर ले जानेको कहिये। मैं बात पूरी करूँ, इससे पहले ही यह दौड़ती-कूदती कृष्णा भड़भड़ाकर मेरी कोठरीमें घुस आयी। उसने जल्दी-जल्दी मुझे सिर, भुजा, पेट, पैरके समीप कई बार सूँघा और फिर शान्त खड़ी हो गयी। भला इस गायसे किसने कह दिया कि मलेरिया ज्वरके कारण मैं रोग-शय्यापर हूँ। चरवाहेने खोला तो सीधे दौड़ती मेरी कोठरीमें घुस आयी, तबसे आज तक इसे चारा-पानी रुचता ही नहीं है। चरवाहा बार-बार हाँक ले जाता है। बड़ी कठिनाईसे

मेरे बार-बार पुचकारनेपर जाती है और पाँच-दस मिनटमें फिर हुँकार करती कोठरीमें आ खड़ी होती है। मुझे सूँघती है, आँसू गिराती है। इसे चरने तो जाना ही चाहिये।

इतनी कृतज्ञता गायमें होती है— मैं सोच-समझ सका तब, जब कृष्णा बार-बार आ जाती है। मैं कृष्णाके गलेपर हाथ फेरकर समझानेकी चेष्टा करता हूँ— मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं ठीक हूँ। तुम चरने जाओ। तुम्हारा पेट गड्ढा बन गया है। तुम कलसे भूखी हो, किन्तु वह कुछ पानेकी कहाँ प्रतीक्षा करती है। वह तो केवल स्नेह देखती है। एक दिन चरवाहेने कृष्णाको तंग किया तो वह बिफर गयी। मारनेको दौड़ी तो उसने श्रीचक्रजीको पुकारा। इन्होंने गायपर हाथ फेरकर रूखे स्वरमें कहा – माँ! तुम तो माता हो, यह क्या कर रही हो? वह बाँधी भी नहीं गयी। पूरी रात मेरे तख्तेके समीप बैठी ही रही। ऐसे अनेक उदाहरण हैं।

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिपर गाएँ नौ बजेके समय आती थीं। उनको प्रतिदिन रोटी और एकादशीको केले खिलाते रहते थे।

वृन्दावनमें स्वामी अखण्डानन्दजीके आश्रममें एक गायको फोड़ा हो गया। वह ठीक नहीं हो रही थी तो श्रीचक्रजी प्रतिदिन अपना चुम्बक-चिकित्साका बक्सा लेकर जाते और नियमसे दस मिनट रोज लगाते। तब तक करते रहे, जब तक गाय पूरी तरहसे ठीक नहीं हो गयी।

गोपाष्टमीके दिन गायका पूजन करते। गायोंको तृण, भीगे अन्न, गुड़, नमक खिलाकर गायकी सेवा करनेवालेको भी द्रव्य देते। गोपाष्टमीके पवित्र पर्वपर तो गोपाल भी गौ-पूजन करते हैं।

श्रीचक्रजीके शब्दोंमें—'वैज्ञानिक गोबर, गोमूत्र, पंचगव्य आदिका प्रभाव पता लगा सकते हैं, किन्तु उन्हें गायमें जो देवत्व है, उसका पता कभी नहीं लगेगा। देवत्व श्रद्धैक-गम्य है और श्रद्धासे ही व्यक्त होता है, यहाँ तक

कि लक्ष्मीजीकी पूजा गोबरमें और गंगा-पूजन गोमूत्रमें किया जाता है।'

गौ-रक्षाके सम्बन्धमें 12 अप्रैल 1979 को प्रभुदयालजी झुनझुनवालाको पत्रमें लिखा—

'गौ-रक्षाके लिये कुछ करना होगा। मैं कुछ पत्र धार्मिक नेताओंको लिख रहा हूँ। सरकारी पदोंपर बैठे लोगोंसे कुछ आशा करना व्यर्थ है, अतः जनतासे ही प्रतिज्ञा करानी होगी कि अगले चुनावमें एम०पी० के लिये खड़े उसी व्यक्तिको वोट दिया जाय, जो सभाओंमें शपथ ले कि वह संविधानमें संशोधन कर सम्पूर्ण गोवंशके वधको रोकनेका कानून बनायेगा। इसके विपरीत निर्देश अपनी पार्टीका भी नहीं मानेगा और मतदानमें तटस्थ भी नहीं रहेगा। जो ऐसी प्रतिज्ञा करे, चाहे वह किसी पार्टीका हो, उसीको वोट दें। इस प्रकार तीन वर्ष मिलते हैं पूरी देशकी जनताको तैयार करनेमें। कम-से-कम अब तो ऐसा हो कि जो सरकार बने, वह पहला कानून यही बनानेको प्रतिज्ञाबद्ध रहे। श्रीभाऊराव देवरसजीको भी पत्र लिख रहा हूँ। यह कार्य आर०एस०एस० को भी कराना चाहिये। तुम अपने बड़े भाई पुरुषोत्तमजीसे भी इसकी चर्चा करना। मैं अमृतसरसे यह प्रयत्न प्रारम्भ कर रहा हूँ। गोरक्षा तो गोपाल करेगा, किन्तु शुभके लिये प्रयत्न किया जाना चाहिये।

उनका सभीसे कहना था—'आजसे गो-पूजन कीजिये। गोरक्षा, गोवध-निषेधके कार्यमें यथासम्भव सहयोग दीजिये। भगवान् एवं गोमातासे प्रार्थना कीजिये कि देशके कर्णधारोंको सद्बुद्धि प्रदान करें, जिससे भारतमें गोवंशका वध अपराध घोषित करनेका आत्मबल वे पा सकें।'

अपने कन्हाईके गौ-प्रेमपर श्रीचक्रजी बलिहारी जाते थे। उन्हींके शब्दोंमें—

उच्च स्वर पुकारते हैं आतुर मयूर-मुकुट
कपिला, नन्दा, अरुणा कहाँ हो?
धर्म, आनन्द, गौरव बोलो भी जहाँ हो।
बार बार अधरोंसे शृंग लगा फूँकते हैं।
ऐसे पुकारते हैं व्याकुलसे हूकते हैं।

पशुओंको पुकारते हैं नाम ले लेकर।
व्याकुलसे देखते हैं अहो अखिलेश्वर!
गायोंको पुकारते हैं प्रेमसे विवश वन
श्रुतिका सस्वर स्तवन सुनकर भी रहते मौन
गायोंको दुलारते यहाँ धन्य ऐसी धरा कौन?

गायके गोबरसे सने और गोबर-सुसज्ज-बिन्दु-भालकी कृष्ण शोभा उनके मनको मोहित कर लेती है—

परम पुरुषके तेजोमय पादपद्म,
निखिल निगम मस्तक रख करते जिसमें प्रणाम।
होते ब्रज-धरामें वे भी महिमान्वित ह—
गीले-गौ-गोबर उपलिप्त अतिशय ललाम।।

गोपोंके प्रति आत्मीयता भी विलक्षण थी—

श्याम! तुम्हारी कृपा रहे न रहे।
करुणा इन गोप बालकोंकी बनी रहे।।

महाशिवरात्रि

श्रीचक्रजी कहा करते थे— महाशिवरात्रिके पावन पर्वपर परम पिता स्वरूप प्रलयंकर सदाशिवको स्मरण सदा ही करना चाहिये; तब काल, मृत्यु, भय और विपत्ति स्पर्श करनेका साहस कैसे कर सकेंगे—

शिवशंकरमें भक्ति हो प्रलयंकरकी याद।
भीति भला यमकी कहाँ-कहाँ विपत्ति विषाद।।

महाशिवरात्रिको पूरे उल्लाससे व्रत करते हुए (कभी निर्जल, कभी फलाहार) बिल्वपत्र, आकके फूल, धतूरेके फूल, फल, कमल पुष्प, पंचफल, पंचमेवा, मिष्टान्न, पंचामृत आदि मुख्य सामग्रसे षोडशोपचारसे सायंकाल प्रदोष बेलाके प्रथम पहरमें शिवलिंगार्चन करते। रुद्रीका पाठ श्रवण करते

हुए रात्रि-जागरण करते। अर्चाके बाद स्तवन करते हुए कामना करते—

साष्टांग प्रणिपात करके सर्व भावसे।
आशुतोष सदाशिवसे इतनी ही याचना है।।
मन्दस्मित मधुर शशांकपूर्ण श्रीमुख।
मुरलीधर मोहन पुण्य राशिमें अनुरक्ति हो।।

कभी-कभी कहते—

पार्थके प्रिय सखामें हो रति मेरी।
इतनी अनुकम्पा रहे सतत तेरी।।

उनका अन्तरका प्यार अपने 'कन्हाई' को भोले बाबासे अभिन्न मानते हुए सदाशिवका 'वन्दन-अभिवन्दन' शिवरात्रिपर आनन्द विभोर होकर करते—

पशुपाल कहें, पशुचार कहें,
पशुपति गोपाल विनय वन्दन।
तुम त्रिनयन द्विनयन, सहसनयन।
तुमपंचवदन, तुम कमलवदन।।
अहिभूषण हे, अहिफण-नर्तक,
ताण्डव-प्रिय संतत अभिनन्दन।
प्रिय मुण्डमाल, वनमाल वक्ष,
डमरू मुरली-वादन सुदक्ष,
अर्धांग उमा, वक्षस्थरमा,
शशिशेखर, शशिमुख नित्यार्चन।
गंगाधर बर्हिबर्ह सुन्दर,
नवकृतिवास पीताम्बरधर,
हे नीलकण्ठ, हे मेघश्याम,
तुम आशुतोष तुमको वन्दन।
भव-अभिवन्दन, जय नन्दनन्दन।।

चक्रजीके अनुसार महाशिवरात्रि-व्रतमें त्याग, संयम, साधना और विवेक-की आधारशिलापर ही होलीकी उल्लसित उमंग शोभा पाती है—

शिवरात्रि नहीं आवेगी? क्या होली आ पायेगी?
जीवनकी शिवरात्रि-प्रबुद्ध वैराग्यका
डिमडिम महानाद-ताण्डव विवेकका—
त्याग शुद्ध साधना-अनुराग उच्छलित आनन्द
होलिका तो शिवरात्रिका — सात्त्विक उपहार है।

5. होली

वसन्त-ऋतुका सबसे प्रमुख पर्व है होली। यह रंगोंका त्योहार है। प्रेम, आह्लाद, हर्ष, उल्लाससे सारा वातावरण ही महक उठता है। अबीर-गुलालकी बौछार, रंगोंकी बहार प्रकृतिके साथ मानव भी रसमें सराबोर।

सम्पूर्ण व्रजके मंदिरोंमें फाल्गुन सुदी अष्टमी (होलिकाष्टमी) -से ही जोर-शोरसे होली वृन्दावन, मथुरा, गोकुल, दाऊजी, नन्दगाँव, गोवर्धनमें मनायी जाती है। फाल्गुन शुक्ल अष्टमीको बरसानेमें 'रंगीली होली' मनायी जाती है, जिसे देखने देशके विभिन्न अंचलोंसे हजारों नर-नारी आते हैं।

श्रीचक्रजी फाल्गुन शुक्ल रंगभरी एकादशीसे अपने कन्हाईकी होलीका श्रीगणेश करते थे। इत्र-मिश्रित कुंकुम इसी दिनसे प्रतिदिन कन्हाईके भालपर लगाते और होलीके दिन तो भाल, कपोल, चिबुक, श्रीअंगके श्रीचरणों तक जमकर रंगसे सराबोर कर देते। श्रीवृन्दावन धाममें प्रतिदिन बिहारीजी जानेका नियम था। मंदिरसे रंगमें भीगते हुए प्रसन्न मुद्रामें आते कि 'आज तो उसने जमकर रंग डाल दिया है।' श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर रहते, तब होलीवाले दिन (धुलेंडी) श्रीकेशवदेवजी, गर्भगृह, श्रीभागवत-भवनके पाँचों मंदिरोंमें प्रातः मंगलापर इत्र-मिश्रित कुंकुम, ताजी बनी गुजिया आदि मिष्टान्न हम सभीसे तैयार कराकर प्रथम मंगला भोगमें अर्पित कराते।

एक बार होलीके दिन मंगला आरतीका पर्दा खुलते ही चौंक पड़े—आनन्दसे सिहर गये। हम लोग भी मंगला आरतीमें सम्मिलित होते थे। श्रीचक्रजीके आनन्दका पारावार नहीं था। मंगला आरतीसे लौटकर पूछनेपर बताया— 'ऐसा लगता है मंगलाकी शंख-ध्वनि सुनकर अभी-अभी गुलाल-अबीरके भरे बोरेमेंसे निकलकर जल्दीसे आकर खड़ा हो गया है... अगले वर्ष भी ऐसा ही कुछ हुआ। बार-बार मंगलामें कम्प होने लगा... अरे, यह क्या! यह तो पूरा-का-पूरा रंगमें भीग कर आ गया है। संयत होकर श्रीबंजरगलालजी पुजारीको निर्देश दे देते—'आज अभी इसके वस्त्र बदल देना।' भागवत-भवनकी सीढ़ियोंसे उतरते-उतरते गुनगुनाने लगते—

होली खेलो धूम मचाओ,
आज करो मत इसे मना।
भुजभर भेंट लो,
अन्तरमें समेट लो।
राग रंग नव उमंग,
स्नेहकी शाश्वत तरंग।।
अब तो कन्हाईको अपना बना,
लालको रंगमें रहने दो सना।

x x x x x

छोटा सा गुलाल मैया यशोदाके अरुण चरणोंपर,
थोड़ी सी अबीर बाबा नन्दजीकी सलोनी दाढ़ीपर।
केसरके पाँच छीटे वृषभानुललीकी लाल चुनरीपर,
खड़ा गुलाल तिलक दादा दाऊके विशाल भालपर।
तनिक सा सुरग रंग कन्हाईके ललित कपोलपर।।

किस तरहकी होली?

होली कैलासपर भी होती है—भूत प्रेतोंकी होली,
धूम-धड़ाका धक्कामुक्खी हँसनेवाली होली।
होली-साकेतमें भी होती है, मर्यादा पुरुषोत्तमकी होली।
सविनय वन्दना, श्रद्धामय अर्चना, प्रीति पगे प्राणोंकी
होली सर्वस्वार्पण-अमित पुरस्कार भरी होली।
होली-गोलोकमें भी होती है— होती ही होली गोलोकमें
ब्रजधरामें—ब्रजकी लट्ठमार होली। प्यारकी उमंग भरी
कोई पराया नहीं, सबको अंकमाल देनेकी उमंग।

आप कौन हैं? किनके परिकर हैं? कैसी होली आपकी?

x x x x x

आपकी होली हो ली?
जन्म-जन्मान्तरका—अन्तरमें जमा-कलुष।
भस्म यदि हो गया, जल गया राम-द्वेषका।।
यदि कुत्सित अम्बार, हो गयी होली आपकी।
परिपूत प्रेम परागकी भर ली बन्धु झोली।।
अवश्य आयेगा नन्दलाल देने तुम्हें अंकमाल।
शोभित होगा इस तिलकसे, उसका विशाल भाल,
तुम्हारे जीवनमें धन्य हो जायेगी आजकी होली।

x x x x x

अनुराग रस पूरित लाख लाख अन्तर है,
तुमको आशीर्वाद देनेको आतुर आज
अपनी आकांक्षाओंकी भस्ममात्र मेरे पास
प्यार भरा अंक-माल भायेगा तुझे ब्रजराज?

शिष्टाचारकी शिक्षा

जीवनमें शास्त्रानुकूल आचरणने चक्रजीके स्वभावको अक्खड़ बना दिया था। भारतीय संस्कृतिके विपरीत बोलनेपर, मर्यादाभंग होनेपर अथवा नीति-विरुद्ध आचरण करनेपर दीपशिखावत् उग्र हो उठते। कटु सत्य बोलनेमें भी तनिक हिचक नहीं होती। वे ब्रह्मण्यदेव थे। ब्राह्मणों एवं संत महापुरुषोंका सम्मान सदा करते रहे।

एक बार दक्षिण यात्रामें कोयम्बटूरके मार्गमें स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज किसी सेठके यहाँ ठहरे थे और श्रीचक्रजी अपने परिचितके यहाँ टिके थे।

एक दिन ये स्वामीजी महाराजसे मिलने कारसे आये। जिन सेठके यहाँ महाराजश्री टिके थे, उनके कमरेमें जानेके लिये बगीचेसे होते हुए लाँवीसे गुजर रहे थे। सामने ही बहुत बड़ी गद्दीपर अपने ऐश्वर्यमें मत्त सेठजी भी बैठे थे। श्रीचक्रजीका बिना किसी ओर ध्यान दिये उधरसे गुजरना सेठजीको अपना अपमान प्रतीत हुआ। उन्होंने सन्मुख बैठे व्यक्तिसे इनका परिचय पूछा। संयोगसे वहाँ वृन्दावनके प्रसिद्ध महापुरुष श्रीबिन्दुजी महाराज विराजमान थे। उन्होंने ही संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा— ये श्रीचक्रजी हैं। ये बहुत बड़े सेठों या उद्योगपतियोंको कोई महत्त्व नहीं देते। इसपर सेठजी तो तुनक गये और तेज आवाजमें श्रीचक्रजीको सुनाते हुए बोले— हम लोगोंके बिना तो इनका भी काम चलता नहीं? कटाक्ष सुनकर चलते हुए श्रीचक्रजी तनिक रुके और सहज सतेज स्वरमें बोले— काम तो मेरा प्रतिदिन शौचालय जाये बिना भी नहीं चलता है। इसमें उसका कौन-सा गौरव है? कहकर स्वामीजी-के कक्षकी ओर बढ़ गये।

सदैव चाटुकारोंसे घिरे सेठजीने भला कब ऐसा कठोर सत्य कहाँ सुना होगा? फिर भी साधु-संगने थोड़ा विवेक तो प्रदान किया ही था — यों भी

व्यापारी आवेशमें जल्दी नहीं आते। सेठजी श्रीचक्रजीके लौटनेकी प्रतीक्षा करने लगे। जब श्रीस्वामीजीसे बात करके वे लौटे तब गद्दीसे उतर कर कारके पास आकर सेठजीने इनसे आतिथ्य स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। श्रीचक्रजीने कहा— व्यक्ति दो परिस्थितियोंमें आतिथ्य स्वीकार करता है। प्रथम या तो भूखा हो, खानेका ठिकाना न हो अथवा व्यक्तिके अतिशय प्रेमके कारण। यह दोनों बातें यहाँ नहीं हैं। दूसरी विशेष बात आपके हितमें कहनी है— भैया! महापुरुषोंका सम्मान करना सीखिये— आपके सम्मुख इतना बड़ा विद्वान् महापुरुष सामने नीचे बैठा है और आप गद्दीपर विराजमान हैं— ये आपसे आयुमें बड़े हैं। विद्वत्तामें बड़े हैं ही, सन्तोचित लक्षणोंसे भी संयुक्त हैं। उन्हें उचित सम्मान प्रदान करना चाहिये।

नम्रतापूर्वक सेठजी हाथ जोड़कर बोले— यह तो हमें कभी किसीने सिखाया ही नहीं। अब ऐसा अपराध कभी नहीं होगा— क्षमा कीजियेगा।

श्रीचक्रजीने कहा— भूतको भूल जाओ, भविष्यकी चिन्ता मत करो सँभालना है केवल वर्तमान—

एक दिन जीवनका जीवन बनानेवाला,
एक दिन जीवनका करता करता कल्याण है।।
कौन सा दिन जीवनमें महान धन्य है?
कौन दिन जिसका भला इतना सम्मान है।
जानते हैं आप-उसे सचमुच अब तक क्या
आजका दिन, वह जो वर्तमान है।।

प्रतिकूलतामें आनन्दानुभूति

प्रतिकूल एवं विषम, विपरीत परिस्थितियोंमें भी श्रीचक्रजी सदा प्रसन्न रहते हुए धैर्यसे काम करते। अदम्य उत्साह और साहस, लगनके साथ कर्तव्य-पालनमें जुटे रहते। किसी कार्यको छूते तो पूरा करके ही मानते। उस समय

विश्राम भी विस्मृत हो जाता। मानसकी अनुक्रमणिका एवं भागवतके अन्वय-पदच्छेद-टीकाके कार्यमें मध्याह्नका विश्राम भी छोड़ दिया और प्रातःसे सूर्यास्त तक लगातार दस-दस घंटे मैंने स्वयं कार्य करते देखा है। मध्याह्नका भोजन ठंडा भी हो जाता। बच्चूसिंह मंदिरसे प्रसाद-थाली लाकर रखकर चला जाता। कभी-कभी जलपानका बिलकुल स्मरण नहीं रहता और जलपानके नामपर कभी एक कटोरी दही, कभी एक गिलास छाछ और कभी शुद्ध जलपान अर्थात् पूजाके पश्चात् एक गिलास केवल जल पीकर लेखन-कार्यमें लगे रहते।

एक बार 25 अक्टूबर 1981 को एटासे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर पहुँचे। 25 ता० को ही कैलाश भैयाने पत्र लिखा— "बाबा! इस यात्रामें गाड़ी खराब होनेसे आपको बड़ा कष्ट हुआ। आपको वृक्षके नीचे एक घंटे बैठना पड़ा। मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।'

पत्रका तुरन्त उत्तर देनेका श्रीचक्रजीका स्वभाव था। 31.10.81 को उन्होंने उत्तर दिया— 'कैलाश! मनुष्यको अपना स्वभाव ऐसा बनानेका अभ्यास करना चाहिये कि दुःखका वास्तविक कारण होनेपर भी मन दुःखी या चिन्तित न हो और तुम अकारण कारण कल्पित करके दुःखी होते हो? यह आदत छोड़ो! जरा देरको गाड़ी खराब हो गयी तो क्या हो गया? पहिया ही तो बदलना था। गाड़ीने समझदारी दिखायी कि शहरसे तीन किलोमीटर पहले एक बगीचेके सामने रुकी, मैं तो आनन्दसे पेड़के नीचे छायामें बैठकर हरियालीका आनन्द लेता रहा। सबने गाँवमें पानी भी पी लिया। कष्ट तो कोई हुआ ही नहीं। तुम ऐसी नन्हीं बातोंको गम्भीरतासे लेना छोड़ो'

सब चिन्ता छोड़कर कन्हाईका चिन्तन ही श्रेयस्कर है। उसे ही देखते रहो—

चिन्ता करे बलाय हमारी जगतीके जंजालकी।
बलिहारी बलिहारी मेरे गिरधारी गोपालकी॥

अघ अरिष्ट मुर पाश नरक मिटे गम नहीं काल करालकी।
ब्रह्मा इन्द्र अपनी कर हारे काँपे त्रय कुञ्चन लख भालकी।।
कमला कर जोड़े सेवामें दृग देखें नन्दलालकी।
सानुकूल सर्वदा कन्हाई जय जय जन प्रतिपालकी।।

सादगी एवं असंग्रह-वृत्ति

श्रीचक्रजी सादगी एवं असंग्रह-वृत्तिके प्रतिमूर्ति थे। मदुराईमें रामेश्वर यात्राके समय श्रीचक्रजीसे प्रभावित होकर प्रभुदयालजीके परिचित व्यक्तिने उन्हींसे अनुरोध किया कि 'श्रीचक्रजीको आप मेरी कोई भेंट स्वीकार करा सको तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा।' तब एक दिन प्रसन्न मुद्रा और अनुकूल परिस्थिति देखकर प्रभुदयालजीने उनकी बात कह दी। तब श्रीचक्रजीने प्यारसे समझा दिया— 'भैया, मैं किसीसे कुछ लेकर क्या करूँगा? मेरी आवश्यकताएँ ही सीमित हैं। मैं अकारण किसीसे ले भी लूँ, तो मुझे संग्रह करना पड़ेगा अथवा उसकी वस्तु किसी दूसरेको लेकर दूँ तो व्यर्थमें मैं देनदार बनूँ। इन दोनोंमें ही मेरी प्रवृत्ति नहीं है।'

इसी प्रकार वर्षमें केवल एक ही धोती स्वीकार करते। संयोगकी बात थी कि प्रभुदयालजी तीन महीने बाद पुनः शुकतीर्थ गये और एक धोती ले गये। तब हम सबके बीचमें श्रीचक्रजीने कहा— 'प्रभुदयालसे पूछो कि मैं क्या धोतीकी दुकान लगाऊँगा। अभी तीन महीने पहले ही तो होलीपर धोती मथुरामें दी है।' प्रभुदयाल भैया तो सहम गये सुनकर। हम लोगोंने धीरेसे निवेदन किया— बाबा! प्रभु भैया आपकी प्रसादी चाहते हैं। तब हँसकर उनका मन रखनेको धोती स्वीकार कर तुरन्त पुरानी धोती उनको दे दी।

संग्रह करनेकी तो नहीं; किन्तु छोड़नेकी बात उनके मनमें तुरन्त आ जाती। न जाने कितनी एकादशी निर्जला करते रहते। इसी प्रकार दो-तीन बार उन्होंने भगवान् ऋषभदेवजीकी भाँति सब कुछ छोड़कर जंगलमें जानेका

मन बना लिया। मथुरा आनेसे पूर्व इसका पूर्वाभ्यास भी किया। जलपान बन्द, दूध बन्द, बोलना बन्द। चौबीस घंटेमें केवल मध्याह्न ग्यारह बजे भोजनका नियम महीनों चला। वह भी बन्द करना चाहते थे। पैरोंमें कपड़ेके जूते धारण करते थे, वे भी छोड़ दिये जंगलमें सदा-सदाको जानेके लिये। हम लोग जगत्‌के नगण्य प्राणी भला कहाँ रोकनेमें समर्थ थे? यह तो जगदाधार श्यामसुन्दर अंतःप्रेरणा करके और बाह्य रूपसे भी ऐसे बानक बनाता गया, जिसमें हम लोगोंके अकुलाये-सिहरे प्राण लौट आये। जब श्रीचक्रजीका 2.2.1975 को हरिद्वारसे हस्तलिखित पत्र प्राप्त हुआ—

'सब कुछ छोड़कर परिव्रजनकी बात तो कट गयी। शामको दूध लेने लगा हूँ। जैसी कन्हाईकी इच्छा। वह नहीं चाहता तो मैं कर ही क्या सकता हूँ। अपने कन्हाईके प्रति समर्पणमें अपना अस्तित्व ही खो गया हो। उनकी इच्छामें ही अपनी इच्छा मिला दी। उन्हींके शब्दोंमें—

'न मैं बुरा हूँ, न अच्छा हूँ, तुमने बनाया वही हूँ मैं।
और भी बनाओ वह बन जाऊँगा, यंत्र ही तुम्हारा भला-बुरा क्या?

अभिमानरहित विरक्ति

निवृत्ति परायण सहज रहनीमें अभिमानकी गन्ध भी नहीं थी। एक बार प्रवास यात्रामें श्रीचक्रजीने वर्ष 1983 में गंगोत्री-जमुनोत्रीकी चौथी बार यात्रा की। गंगोत्रीमें ऑक्सीजनकी कमी होनेसे ज्वर आ गया। गंगोत्रीमें स्वामी श्रीवियोगानन्दजी महाराजके यहाँ टिके थे। वही दवाएँ अपनी होम्योपैथीकी लेते रहे। ज्वर उतरनेपर उत्तरकाशी आ गये। एक महीने रहकर 3 जुलाईको हरिद्वार परमार्थ आश्रममें आ गये।

श्रीचक्रजी 25 जुलाई तक हरिद्वार परमार्थ आश्रममें ही रहे। स्वास्थ्य बहुत शिथिल था, फिर भी गंगास्नान, बाँधपर भ्रमण दोनों समयका चलता रहा। परमार्थ आश्रममें रहते हुए गटानीजी, काबराजी प्रायः संध्याको चार

बजे श्रीचक्रजीके कक्षमें आ जाते थे और अध्यात्म-चर्चा होती रहती एक घंटे तक तथा अपने व्यक्तिगत प्रश्नोंका समाधान भी करते। इन्हीं दिनों जजस्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्दजी महाराज भी चातुर्मास करने परमार्थ-आश्रम हरिद्वारमें 14 जुलाई 1983 से आकर रहने लगे थे।

ये श्रीचक्रजीका बहुत सम्मान करते और स्वयं रात्रिके आठ बजे श्रीचक्रजीके कक्षमें आ जाते और नौ बजे जाते थे। इनका स्वभाव भी बहुत विनोदी, आत्मीयताभरा था। एक दिन अध्यात्म-चर्चा करते हुए श्रीचक्रजीसे पूछ बैठे—'घरपर कौन-कौन है?'

'केवल कन्हाई है मेरा छोटा भाई।'

'शिक्षा कितनी हुई?'

'सामान्यतः कक्षा सात तक। संस्कृत, गुजराती, बँगला ठीक-ठीक पढ़ लेता हूँ।'

'कहाँ-कहाँ रहे? सम्पादन-लेखन कैसे प्रारम्भ हुआ?'

'आजीविकाके लिये कलम उठाई और पहला लेख ही विशेषांकमें छपा। लिखने लगा तो सम्पादन सिर पड़ गया। 'संकीर्तन' का पहला अंक ही निकला— 'शंका-समाधान अंक'। ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी प्रधान सम्पादक थे। उन्होंने आश्वासन दिया कि साथ-साथ काम करूँगा, किन्तु वे कश्मीर चले गये। पत्र भी नहीं लिखा। अंक निकलनेमें विलम्ब न हो, अतः जुट गया काममें और बन गया सम्पादक।'

'वैराग्य कैसे हुआ?'

'वैराग्य हुआ ही नहीं। रेशम पहनता हूँ, पक्के घरमें रहता हूँ, खाता-पीता हूँ। गद्दा, कम्बल, पंखा, चपरासी सभी तो हैं। वैराग्य तो अपनेमें मुझे कहीं दूर-दूर तक नहीं दिखायी देता।'

'परमार्थमें कैसे लगे?'

कन्हाई मेरा स्वार्थ और परमार्थ दोनों है:

खोज-खोज प्रिय गेह पथ मैं अति हुआ अशक्त।
ज्यों ही आँखें मुँद गयीं पथ हो गया प्रशस्त।।

श्रीचक्रजीने पत्र द्वारा बताया कि 'मेरे उत्तरोंसे जज स्वामीको निराशा ही हाथ लगी—न जाने वे क्या सुनना चाहते थे। फिर उन्होंने अपना जीवनवृत्त सुनाया। कहने लगे कि 'मैं व्याख्यान देने लगा हूँ।'

व्याख्यानमें क्या-क्या बोलते हैं, वह भी सुना देते हैं। कुछ व्याख्यान मुझे भी पिला जाते हैं।

श्रीचक्रजी-जैसी स्पष्टवादिता, सहजता, सरलता कहाँ देखने-सुननेको मिल पाती है? कोई आडम्बर-प्रपंच नहीं। यही बात उनके द्वारा 23 जुलाई 1981 को हरिद्वारसे लिखे पत्र द्वारा और अधिक स्पष्ट हो जाती है—'कैलाश! किसीको देनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। कोई सिद्धि या सम्पर्क-सूत्र नहीं है कि किसीकी लौकिक सहायता कर सकूँ। ले-देकर एक ही बात है कि जो लेना चाहे—उसे मेरे सम्पर्कसे कन्हाईकी स्मृति मिलेगी और उसका सौहार्द भी मिल सकता है। अन्यथा मैं तो प्रशंसा-कृपण भी हूँ। डाँट न पड़े तभी कुशल मनाना चाहिये।

रघुवंशी-तेजस्विता

सम्पूर्ण भारतके आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्रमें लोग 'श्रीचक्रजी' को 'कल्याण' (गीताप्रेस, गोरखपुर) -के माध्यमसे जानते थे, उनकी कहानियोंको पढ़कर प्रभावित थे। इसी दृष्टिसे मुजफ्फरनगरके सर्वशक्तिस्वरूपजी एडवोकेटकी श्रीचक्रजीके प्रति असीम श्रद्धा थी और उनके दर्शनोंकी उत्कण्ठा थी। संयोगसे श्रीचक्रजी अमृतसरकी यात्रासे ऋषिकेश जाते समय मुजफ्फरनगर (उ०प्र०) -में 'सनातन-धर्म-समाज' में आयोजित

श्रीमद्भागवत-कथा-श्रवणके लिये श्रीपरमेश्वरदयालजीके आमंत्रणपर एक सप्ताहको पधारे। एक दिन कचहरीमें शक्तिस्वरूपजीके मित्र अरुण वर्मा एडवोकेटने इनसे कहा कि आप जिन श्रीचक्रजीकी चर्चा करते रहते हैं वे तो अपने नगरमें 'सनातन-धर्म-समाज' में आये हुए हैं। अपना प्रिय सन्देश मिलते ही उसी दिन शामको सर्वशक्तिस्वरूपजी 'सनातन-धर्म-समाज' में पहुँच गये। जानेपर ज्ञात हुआ कि श्रीचक्रजी प्रातः ही शुकतीर्थ चले गये हैं। दूसरे दिन प्रातः 11 बजेसे पहले ही सर्वशक्तिस्वरूपजी शुकतीर्थ दण्डी आश्रममें पहुँच गये। दण्डी आश्रममें छतपर एकान्तमें बने कक्षमें ये जाकर श्रीचक्रजीका चरणस्पर्श करके चुपचाप कई लोगोंके पीछे बैठ गये। लोगोंकी उपस्थितिमें वे अपने मनकी बात नहीं कर सके। तीन दिन यही क्रम चला। चौथे दिन कक्षसे सभी लोगोंके जानेके बाद भी ये बैठे ही रहे। श्रीचक्रजीने सर्वशक्तिस्वरूपजीसे जानेके लिये कहा, तब तो इन्होंने अकुलाकर श्रीचक्रजीके चरण पकड़ लिये और निवेदन किया— मैं बड़ी आशासे आपके पास आया हूँ। अपनी पुत्रीके विवाहके लिये चिन्तित हूँ। बड़े-बड़े व्यवधान बीचमें आ रहे हैं। उनका समाधान आपसे पाना चाहता हूँ। श्रीचक्रजीने आश्चर्यसे कहा— मैं लौकिक सम्बन्धोंके विषयमें कुछ नहीं जानता और मुझमें तो कोई चमत्कार भी नहीं है। आप भी उसे लौकिक कर्तव्य समझकर निभाते रहिये।

श्रीचक्रजीकी तटस्थता देखकर सर्वशक्तिस्वरूपजीने उनके चरण पकड़कर बड़ी कातरतासे कहा— मैंने सुना और पढ़ा भी है कि आप रघुवंशमें उत्पन्न होनेके कारण अपनेको श्रीराघवेन्द्रका शिशु मानते हैं। अतः मैं आप रघुवंशीकी शरणमें आया हूँ। आपके रघुवंशका प्रचण्ड तेज भावीको भी मिटानेमें समर्थ है। आपके कुलसे कोई निराश नहीं लौटा है।

यह सुनते ही श्रीचक्रजीका मुखमण्डल रक्ताभ हो गया। उनका क्षत्रियत्व तेज जाग उठा। मुखपर रघुवंश कुलोद्भवका तेजोमय आवेश स्पष्ट था।

गम्भीर स्वरमें बोले— निश्चिन्त और अभय हो जाओ। कल इसी समय कन्याकी जन्म-कुण्डली लेकर आ जाना। कोई विघ्न नहीं आयेगा अब।

आश्वासन पाकर प्रसन्न मनसे सर्वशक्तिस्वरूपजी घर लौट आये और दूसरे दिन पुत्रीकी जन्म-कुण्डली लेकर पहुँच गये। श्रीचक्रजीने पूछा— बोलो क्या व्यवधान है? तब शक्तिस्वरूपजीने निवेदन किया— मैंने कई स्थानोंपर पृथक्-पृथक् ज्योतिषियोंको अपनी पुत्रीकी जन्म-कुण्डली दिखायी है। सभी एक स्वरमें अरिष्ट ग्रहोंकी प्रबलता देखकर सौभाग्य-सुख वंचिताका योग बताते हैं। पिता होनेके नाते मेरा हृदय काँप गया और मन घोर निराशासे भर उठा है।

अब श्रीचक्रजीने गम्भीरतासे जन्म-कुण्डलीपर दृष्टिपात किया। उन्होंने स्व-करोंसे कुछ लिखा भी और अपनी दृढ़ संकल्पशक्तिसे अरिष्ट ग्रहोंकी स्थितिको मंगलमय बना दिया। साथ ही एक अनुष्ठान भी करनेको बता दिया। शक्तिस्वरूप प्रसन्नचित्त घर लौट गये और छः महीनेके अन्दर बड़ी धूमधामसे कन्याका विवाह बहुत सम्पन्न घरमें हो गया और इस समय कन्या सब प्रकारसे सुखी है। ये तभीसे निरन्तर हनुमद्धाम एवं श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीचक्रजीके सान्निध्यकी लालसासे सत्संगमें आने लगे। हनुमद्धामके निर्माणमें भूमिपूजनसे अब तक संस्थाके कार्योंमें मन-वचन-कर्मसे सहयोग देते आ रहे हैं। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे कभी भी श्रीचक्रजी हनुमद्धाम आते, तब ये एक दिनके लिये अवश्य ही अपने घर मुजफ्फरनगरमें रहनेकी प्रार्थना करके रख लेते— विश्रामके लिये। श्रीसर्वशक्तिस्वरूपजी श्रीचक्रजीकी असीम कृपाका अनुभव करते हुए कहते हैं कि 'मुझे तो परमार्थ-पथपर इन्होंने ही लगाया। यही मेरे मार्ग-दर्शक, आराध्य एवं गुरु हैं। मैंने तो अपनी जीवन-नौकाकी पतवार इनके श्रीचरणोंमें सौंप दी है।'

आचार्य भागवतानन्द सरस्वतीजीकी दृष्टिमें

मनसि वचसि काये पूर्ण पीयूष पूर्णास्त्रिभुवनमुपकार श्रेणीभिः - प्रीणयन्तः।
परगुण परमाणुन् पर्वतीकृत्य नित्यं निज हृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

'मन-वाणी-कर्मसे विशुद्ध सदा परोपकारपरायण, दूसरेके गुणमात्र देखना, दोषोंपर दृष्टि न देना, सदा स्वाधीन प्रसन्न रहनेवाले विरले ही होते हैं। सौभाग्यशाली हैं वे जिन्हें ऐसे सन्तोंका कुछ भी संग मिल जाता है। जिसमें सबका अत्यन्ताभाव है वही सन्त हैं... हमारे श्रीचक्रजी ऐसे ही संत थे। एक श्वेत धोती, स्वाधीन, प्रसन्न, आस्तिकता, विश्वासकी अडिग मूर्ति, अपने इष्टके प्रति अटूट समर्पण, अतुल स्नेह, दृढ़ सम्बन्ध, श्रवण-मनन-लेखनका व्यसन, संयतेन्द्रिय, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, यम-नियमादिका कठोरतासे पालन, तत्त्वदृष्टिसे एकता, असंगता, समताका प्रत्यक्ष दर्शन, गंगा-सी स्वच्छ करुणा-उदारता, अगाध पाण्डित्य, आयुर्वेद, होम्योपैथी, प्राकृतिक चिकित्साके साथ ज्योतिषका अद्‌भुत प्रयोगात्मक ज्ञान उनमें देखा है।

पूज्य सद्गुरुदेव स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजके महराई गाँवके पास ही गाँव होनेके नाते अत्यन्त घनिष्ट मित्रता दोनोंमें थी। मैंने 1952 में इन दोनोंका दर्शन किया था। इनके अतुल स्नेह सूत्रमें तभीसे बँध गया। जब कभी भी श्रीचक्रजी मिलते, उनका वरदहस्त मेरे पीठ और सिरपर जाता रहा। उनके लाड़-प्यार भरे दुलारका स्मरण करते ही दो प्रेमाश्रुबिन्दु उनके चरणोंमें अर्पित करते बनता है।

उन्होंने मुझे अधिक-से-अधिक पढ़नेकी प्रेरणा दी। 1967 में परम पूज्य स्वामी सदानन्दजी महाराज (परमार्थ-निकेतन) -ने तीर्थयात्रा ट्रेन निकाली; जिसमें मुझे एक चिकित्सककी हैसियतसे करीब 100 दिन तक श्रीचक्रजीके साथ रहनेका अवसर मिला।

वे अपने साथ ही कारमें बैठाकर तीर्थ दर्शन और उसका महत्त्व समझाते

हुए ज्ञान-वैराग्यकी प्रेरणा देते। उनके बताये अनेक निर्देश मेरे पथके सन्देश हैं। आनन्दवृन्दावनमें बैठे अचानक मुझसे बोले— पण्डित! चलो शुकतीर्थ चलें। उनकी आज्ञा पाकर उनके साथ शुकतीर्थ आया। जमीन देखी गयी। उनके हनुमान दादा खड़े हुए। प्रतिष्ठा-समारोहमें जगद्गुरु शंकराचार्य शान्तानन्दजीके सान्निध्यमें वाल्मीकीय रामायणकी कथा कहनेका सौभाग्य मुझे प्रदान किया। एक बार मुजफ्फरनगरमें सनातन धर्म सभामें श्रीचक्रजीके सान्निध्यमें कथा कह रहा था। तीसरे दिन ऐसा ज्वर आया कि कठिनतासे मध्याह्नकी कथा पूरी की। कथाके पश्चात् डॉक्टरके मना करनेपर भी श्रीचक्रजीने ठंडे पानीके टबमें अपने सामीप्यमें ही बैठा दिया और बैठनेका समय पूरा होनेपर अपनी होम्योपैथीकी चार मीठी गोलियाँ खिला दी। उन्होंने अपना वरदहस्त मेरे सिरपर रखा और मैं पूर्ण स्वस्थ होकर पुनः कथा करने लगा।

उनका स्मरण मात्र मेरे लिये प्रेरणाप्रद है। वे भले ही चले गये, पर वे मेरे मन-मस्तिष्कमें समाये हुए हैं और समाये रहेंगे। कहा गया है—

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वाग्मी दशसहस्रेषु त्यागी भवति वा न वा।।

सैकड़ोंमें कोई शूरवीर, हजारोंमें पण्डित और दश हजारोंमें कोई श्रेष्ठ प्रवक्ता, किन्तु त्यागी तो शायद ही देखनेमें आता है। वे सचमुच त्यागी महापुरुष थे। उनके विषयमें कुछ कहना या लिखना मैं अपनी वाणी पवित्र करनेका सुअवसर समझ रहा हूँ।'

श्रीशंकराचार्यजीसे अभिन्नता

अनन्तश्री वरिष्ठ ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी शान्तानन्द सरस्वतीजी महाराजसे श्रीचक्रजी असीम आत्मीयता एवं घनिष्ठता थी। ये प्रत्येक उत्सवमें उन्हें बुलाते थे और स्वयं भी जोशीमठमें ग्रीष्मकाल यापन

हेतु महीनों साथ रहते थे। पूज्य शंकराचार्यजीके शब्दोंमें— 'श्रीचक्रजी हमारे परम स्नेहियोंमें थे। मित्रकी भाँति सन् 1943 ई० से लेकर शरीर-त्याग-पर्यन्त बराबर मिलते रहे। अन्तर्बाह्यैक रस होनेसे छल-कपट एवं किसी भी दोषका जीवनमें प्रवेश नहीं हो सका। निर्दोष निरहंकार जीवन तो परमात्माका अपर रूप ही लगता है। ऐसे परम भागवत श्रीचक्रजीके अन्तिम जीवनके दो वर्ष पूर्वसे अधिक सम्पर्क मथुरा एवं शुकतीर्थमें रहा। ग्रीष्मकालमें तो दो-दो मास शुकतीर्थमें साथ ही रहनेका संयोग मिला। जब मिलते थे, तब मात्र सत्संगकी बातें करते थे। लगता था —सत्संग ही इनके जीवनकी खुराक है।

जब-जब मैं शुकतीर्थमें और मथुरा-श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर जाता था तो व्यवस्थापकोंके होते हुए भी स्वयं व्यवस्थाको देखते, पूजनका कक्ष, विश्रामका कक्ष, भक्तोंके मिलनेका स्थल अलग निर्धारित कर देते, जिससे हमें कोई परेशानी न हो— यह उनके अत्यन्त स्नेहका प्रतीक था।

जब प्रयाग श्रीरामजानकी मंदिर प्रतिष्ठोत्सवपर आये, तब सबसे पहले मंचपर आ जाते थे और अत्यन्त ध्यानपूर्वक कथा-प्रवचनको श्रवण करके अंतमें सबका सारांश बता देते। यह उनकी मनस्विता एवं प्रबुद्ध प्रज्ञाका परिणाम था। इष्टके सम्बन्धका अनुयोग उनकी कथनी ही नहीं, करनी भी थी। श्यामसुन्दरकी आराधना सदा अनुज मानकर सख्य भावसे करते। उनके साहित्य एवं सत्संगसे लगता कि इनके भाव इष्ट प्रेरणासे स्वाभानुगत होकर प्रभावकारी हो रहे हैं।'

एक दिन श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर कक्षमें श्रीचक्रजी पूज्य शंकराचार्यजी महाराजसे सत्संग-वार्ता कर रहे थे। इसी समय उत्सवके बीच स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज आ गये। उन्होंने पाँच मिनटके लिये किसी अति आवश्यक परामर्शके लिये श्रीचक्रजीको बुला लिया। तुरन्त लौटनेकी बात कहकर चक्रजी तो चले गये। उनके जाते ही पूज्य शंकराचार्यजीकी दृष्टि

टेबुलपर चक्रजीकी खुली व्यक्तिगत डायरीपर पड़ गयी। शीर्षक देखा– 'मत आओ'। जिज्ञासा प्रबल होते ही पूरा लेख पढ़ गये और आनन्दसे उल्लसित स्वरमें बोल पड़े– सचमुच यह है श्रीचक्रजीके–

सरव्य भावका रोष

'सम्भव हो, तो मत आओ माधव!

पुकारना मेरा काम है। मैं पुकारे बिना रह नहीं सकता। तुम अपने मनकी करते रहो।

मैं तुम्हें तुम्हारी कृपाके लिये, दयाके लिये पुकारता हूँ?

नहीं! बिलकुल नहीं!!

समझे मेरा तात्पर्य!!

तुम अपने बसमें आते हो क्या?

तुम आते हो—खींच लिये जाते हो और वह-वह नाच नचाये जाते हैं कि तुम्हारी सर्वशक्तिमत्ता श्रान्त हो कहीं शयन करने मुचुकुन्दके समान गिरि-गुहाका अन्वेषण करने लगती है।

क्या दया कर-करके आते हो तुम?

अच्छी दया है! रोते-रोते पलकें भर जाती हैं। जीवन जल जाता है। संसार श्मशान हो जाता है, पर वह दया द्रवित नहीं होती। किन्तु जब एक अक्खड़ अकड़ जाता है 'ऐसा होकर रहेगा' 'मैं या तुम' तब सब नटखटपन हवा हो जाता है। पीछे-पीछे घूमते दौड़ते हो। रहने दो अपनी दया—मुझे नहीं चाहिये। मेरी पुकारपर दयाकी आवश्यकता नहीं। मैं भिखारी नहीं... मैं तुमसे कृपा या कुछ दान नहीं चाहता... जो तुम दया करोगे।

जो मेरा स्वत्व है, उसे स्वयं ले लूँगा।

रोकना चाहो तो रोको—शक्तिभर मुझे उससे वंचित करके तो देखो।

... चुनौती है इस दीनकी, समझे दीनबन्धु।

मैं किसीका आभारी नहीं होना चाहता— तुम्हारा भी नहीं, अपनी उदारता अपने पास रखो।

यह प्रणयी प्राणोंकी आहुति है— जगत्‌का प्यार नहीं, मुझपर उपकार करोगे पधार कर, इस शुचि सुरभिसे सौष्ठवका सुस्वाद लेने, तब अपना उपकार रहने दो और मेरे प्राणोंकी आतुर उत्कण्ठाओंकी उपेक्षा कर दो। निःसंकोच— बिना हिचकिचाहटके।

मैं अपने कर्तव्यको समझता हूँ। मैं हताश नहीं हूँ। अपनी शक्तिपर न सही— अपनी उज्ज्वल आहोंपर मुझे विश्वास है। मुझे समृद्धिका लोभ नहीं। युग-युग इस असफलताओंका मैं स्वागत करता हूँ। किसीकी कृपासे उससे न त्राण पानेकी न प्रतीक्षा है, न इच्छा।

सहायताका स्वीकार भी अपेक्षित नहीं है।

देखना है— जर्जर प्राण जीतका माल्य पाते हैं या जयके गर्वीले तुम्हारे उद्‌गार। दयाको दूर रहने दो, परिणाम देखो। कोई नहीं रोक सकता, विश्वकी कोई भी शक्ति। मेरे नयनोंसे यह अविरल अश्रुधारा प्लावित होती रहेगी, निःश्वासोंकी तीव्र निर्झरिणी और झूमती रहेंगी ये पगली वेदनाएँ प्राणोंके प्रज्वलित झूलोंपर।

जो जलता हो, जल जाय– जो गिरता हो, गिर जाय!

जीर्ण जीवनकी क्या आसक्ति? सड़े संसारकी क्या आवश्यकता?

अपने हाथों अपने विश्वको विदीर्ण करनेमें न वेदना है और न विकलता। असफलताओंकी ठोकरोंसे जो चूर्ण होता हो, उसे होने देनेमें कोई बाधा नहीं।

हृदयको हाथोंमें मसलते हुए मैं बढ़ता जाता हूँ। मुझे देखना है— तुममें कितना सार है। तुम्हारे हठकी हद कहाँ तक है? कब तक चलता है तुम्हारा यह महानताका मान?

तुम आओगे— दौड़े हुए आओगे।

उपकारी और महान् बनकर नहीं। विवश और समान बनकर तुम्हें आना पड़ेगा। एक दिन वह भी अवश्य आयेगा, जब मुझ कंगालकी करुण पुकार कृष्णको भी कर्षित करनेमें समर्थ हो सकेगी।

उस स्वर्णिम दिनकी मुझे पूरी आशा है।

क्या कहा— कल्पना है।

मैं कब कहता हूँ कि तुम इसे सत्य मान लो। मेरी कल्पना, भावना और अन्तर्व्यथा मेरे साथ और तुम्हारी सच्चाई तुम्हारे साथ... मुझे यों ही तड़फने दो, रोने दो, सुनो मत, उपेक्षा कर दो।

न आ सको तो मत आओ'... (श्रीचक्रजीकी डायरीसे)

लेख पढ़कर पूज्य शंकराचार्य जी मुग्ध हो गये। श्रीचक्रजीके लौटनेपर स्नेहमयी वाणीसे कहा— "मैंने चोरीसे आपकी डायरीके दो पृष्ठ पढ़ लिये हैं। उन्होंने भी श्रद्धाभरित स्वरमें उत्तर दिया— 'आपका स्वत्व है।'

पूज्य शंकराचार्य शान्तानन्दजी महाराजने अपने लेखमें लिखा है— 'श्रीचक्रजी मेरी आत्मासे अभिन्न हैं। ऐसा मुझे अनुभव होता रहता है। श्रीचक्रजी अध्यात्मवियतिके देदीप्यमान भास्वान् थे। उनकी रश्मिरूपी साहित्य जन-मानसको आलोकित करती आ रही है।

श्रीचैतन्य पंचशती-उत्सव

फाल्गुन पूर्णिमा संवत् 2042 को श्रीचैतन्य महाप्रभुका 500वाँ जन्मदिवस न केवल भारतवर्षमें अपितु सम्पूर्ण विश्वमें चैतन्य-पंचशती-महोत्सवके नामसे मनाया गया। 'चाकुलिया' बिहारमें भी यह उत्सव 10 नवम्बर 1984 से 511 दिनके उत्सवका गौरवपूर्ण आयोजन प्रारम्भ किया गया जिसकी परिसमाप्ति भारत-विख्यात पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी द्वारा भागवत-कथा, एक सौ आठ ब्राह्मणों द्वारा भागवत-पारायण, श्रीरामचरितमानसके एक सौ आठ पारायण, नवकुंजमें अखण्ड संकीर्तनके साथ 5 अप्रैल 1986 को सम्पन्न हुई।

इस उत्सवके आयोजक-संयोजक श्रीहनुमन्तलालजी ही थे। उनके प्रतिनिधिके रूपमें श्रीचक्रजीके निर्देशनमें प्रभुदयालजीने सपरिवार उत्सवके आयोजनका कार्यभार सँभाला। इस उत्सवके लिये चक्रजी मथुरासे उत्कल एक्सप्रेस ट्रेनसे चलकर 11 मार्चको रात्रि 11 बजे चाकुलिया उत्सवमें पहुँच गये। प्रभुदयालजीने इन्हें अपने मिलके नवनिर्मित भवनमें ठहराया, जहाँ उनके आराध्य श्रीहनुमान्‌जीका मंदिर था तथा जिसके विशाल मैदानमें उत्सवके लिये पण्डाल सजाया जा रहा था। प्रातः व्यवस्थाकी पूरी जानकारी ली। ज्ञात हुआ कि श्रीरामकुमारदासजी 'रामायणी' अयोध्यासे पधारे हुए हैं और इस समय वे अस्वस्थ भी थे। अतः श्रीचक्रजी उन्हें 12 मार्चको ही अपने कक्षमें ले आये जिससे समय-समयपर उन्हें औषधि दी जा सके—ठीक परिचर्या हो सके।

उत्सवके कार्यक्रम बड़े ही भव्य थे। दस नवम्बर 1984 से प्रारम्भ कार्यक्रम—

1. उत्सव-स्थलमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके षट्‌भुज विग्रहके अतिरिक्त श्रीबलदेवजी, श्रीसुभद्राजी एवं श्रीजगन्नाथजीके विग्रह स्थापित किये गये। दैनिक-पूजाके अतिरिक्त 400 पुस्तकें (भगवन्नाम लिखी पुस्तकोंके बण्डल) जिनमें एक करोड़ बीस लाख नाम रहते थे, प्रतिदिन महाप्रभुको अर्पित किये जाते।

2. सायं 6 बजेसे प्रातः 6 बजे तक महामंत्रका सुमधुर स्वरमें अखण्ड संकीर्तन।

3. श्रीमद्‌भागवत-महापुराणका सप्ताहक्रमसे मूलपाठ।

4. श्रीरामचरितमानसका नवाह्न क्रमसे मूलपाठ।

5. वाल्मीकीय रामायण का 21 दिवसीय पाठ।

6. विष्णुसहस्रनाम, हनुमानचालीसा आदि विभिन्न स्तोत्र-पाठ।

7. चैतन्य-चरितामृत, चैतन्य-भागवत तथा अन्य पुराणों एवं ग्रन्थोंके

पाठ। समय-समयपर प्रवचन एवं लीला होती थी।

इक्कीस दिवसीय समापन-कार्यक्रम

1. 16 मार्चसे 26 मार्च तक पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज द्वारा भागवत-कथा।
2. एक सौ आठ पण्डितों द्वारा भागवत-पारायण।
3. 16 मार्चसे 4 अप्रैल तक रात आठ बजे बंग भाषामें कीर्तन, रामायण, प्रवचन आदि।
4. 26 मार्चको 6 बजे प्रातः 500 दिन व्यापी अखण्ड संकीर्तनकी परिसमाप्ति।
5. अपराह्न 8 बजेसे महाप्रभुकी आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें 1008 कलश जल द्वारा महाप्रभुजीका अभिषेक एवं विशेष पूजा।
6. 27 मार्च प्रातः 6 बजेसे कुंज प्रारम्भ। (नौ दिनों तक नौ मण्डपोंमें एक साथ अखण्ड नाम-संकीर्तन)
7. 27 मार्चसे 4 अप्रैल तक प्रातः 7 बजेसे 12 बजे तक 108 विद्वान् पण्डितों द्वारा श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठ और सायंकाल तीन बजेसे विद्वानोंका प्रवचन।
8. 27 मार्चसे 4 अप्रैल तक श्रीमानसजी शास्त्री द्वारा श्रीभरत-प्रेमपर प्रवचन।
9. 5 अप्रैल प्रातः 6 बजे नवकुंज एवं संकीर्तनका समापन और 6 बजेसे हनुमानचालीसाका सामूहिक पाठ।

उत्सवके प्रथम दिवस 108 ब्राह्मणोंको वरण कर श्रीमद्भागवत-पुराणका पारायण प्रारम्भ हुआ। श्रीमद्भागवतजीकी शोभायात्रा पूजन-कक्षसे मंचतक संकीर्तनके साथ हुई, तत्पश्चात्-भागवतजीको व्यास आसनपर पधराया।

अत्यन्त विनय एवं अहंकाररहित श्रीडोंगरेजी महाराज व्यासपीठपर

आसीन होनेसे पूर्व असीम श्रद्धापूर्वक 108 ब्राह्मणों द्वारा जहाँ मूलपाठ हो रहा था, वहाँ एक-एक ब्राह्मणके समीप सिर झुकाये, हाथ जोड़े दक्षिणा अर्पित करते हुए आगे बढ़ रहे थे। ब्राह्मणवृन्द भी बड़े संकोचपूर्वक उनकी वन्दना सिर झुकाकर स्वीकार कर रहे थे। पंक्तिबद्ध विराजे ब्राह्मणोंका सत्कार कर पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज कथा-मंचकी ओर पधारे। श्रीचक्रजी एवं श्रीप्रभुदयालजीने मार्ग प्रदर्शित करते हुए आदरपूर्वक उन्हें व्यासपीठपर विराजमान कराया।

मंचपर आयोजकके रूपमें श्रीहनुमान्जीका सौम्य विग्रह विराजमान था। उनके प्रतिनिधि रूपमें श्रीचक्रजीने श्रीहनुमान्जीके करोंसे मालाका संस्पर्श कराते हुए श्रीडोंगरेजी महाराजको माला धारण करायी। तत्पश्चात् प्रभुदयालजीने कथाव्यासके रूपमें पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी पूजा-अर्चना कर माल्यार्पण किया। माल्यार्पणके समय श्रीडोंगरेजी महाराजने श्रोताओंकी अग्रिम पंक्तिमें भूमिपर विराजे श्रीचक्रजीकी ओर देखकर प्रभुदयालजीको धीरेसे 'वे मेरे भी प्रणम्य हैं' कहकर संकेतसे माल्यार्पणका आदेश दिया।

पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजको व्यासासनपर विराजमान देखकर सभी श्रोता महापुरुष संतजन महानुभाव उनके अमानी स्वभावपर बलिहारी हो उठे। व्यासासनपर विराजे पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजका स्वरूप लगता था— मानो सतयुगके कोई ऋषि ही भगवत्कथाका रस-वितरण करने पधारे हैं। इसी समय 'श्रीचैतन्य महाप्रभु पंचशती-समारोहकी स्मारिका' का पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजके कर-कमलों द्वारा विमोचन हुआ। अपने हृदयधनकी, बालकृष्ण लालकी ललित लीलाओं, उनके द्वारा करायी गयी नित-नयी अनुभूतियोंसे उनके मन-प्राण सदा ओत-प्रोत रहते थे। कथामें विद्वत्ताके साथ उनके श्रीमुखसे उनके अनुभव प्रसारित होते थे। अपने बालकृष्ण लालके प्रति उनकी असीम श्रद्धा और प्रेम था।

कथामें बार-बार कहते कि भक्तिका आश्रय लेनेवाले निर्भय हो जाते हैं। प्रभुसे सम्बन्ध रखो। इससे भगवान्में प्रेम और भक्ति बढ़ती है। उन्हें

पिता-पुत्र, भाई, पति, स्वामी, सखा जो चाहो सो मान लो... सम्बन्धसे स्मरण बढ़ेगा। दुःख प्रभुकी कृपा है। इसमें हरिस्मरण होता है। दुःख मिटानेका प्रयत्न मत करो अपितु प्रभुस्मरण करो... प्रभुका नाम और स्मरण ही मनुष्यको अभय कर देता है।

'गंगा पानी नहीं है, ब्रह्मद्रव है।'

'श्रीहनुमानूजी वानर नहीं हैं।'

'श्रीशालग्रामजी पत्थर नहीं हैं।'

'ये सब अलौकिक हैं।'

'आनन्द अन्तर्मुख होनेपर मिलता है। आनन्दका सागर अन्दर लहरा रहा है। भजन करनेमें आरम्भमें कष्ट मालूम होता है, पर धीरे-धीरे आनन्द उमड़ने लगता है।'

पूज्य डोंगरेजी महाराजके ऐसे सूत्रात्मक प्रेरणात्मक अमृतरस वचन सबको आनन्द-विभोर बना रहे थे।

कथामें नन्दोत्सव उल्लासपूर्वक मनाया गया। स्वयं प्रभुदयालजी सिरपर पगड़ी बाँधकर नन्दबाबा बने थे। टोकरीमें बालकृष्णकी छवि बड़ी सुहावनी थी। छोटे-बड़े गोपोंका समूह बधाई-गान करते हुए मंचपर पहुँच गया। गोप-समूहमें मण्डलाकार थिरक रहे थे। उनके उल्लास-उमंग भरे आनन्दको पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज सिर नीचा किये मुग्ध भावसे निहार रहे थे। सरस बधाइयोंका गान सभी श्रोताओंके साथ धीर-गम्भीर स्वभाववाले पूज्य डोंगरेजी महाराजको भी रस-विभोर कर रहा था। एक घंटे तक स्वरसे स्वर; तालसे ताल मिलाकर वाद्य बजाये गये। मंचपर उल्लासभरा आनन्द था। सभी श्रोता संकीर्तन और आनन्दमय रस-प्रवाहमें बहे जा रहे थे। आज प्रभुदयालजीके हृदयमें जो उल्लास उमड़कर बह रहा था, उसे शब्दोंमें व्यक्त करना कठिन है। झूम-झूमकर संकीर्तन करते हुए वे बीच-बीचमें पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी ओर निहार लेते कि उन्हें यह सब अपने कार्यमें व्यवधान तो

नहीं लग रहा? जब उनके भावोंको, मन्दस्मितको देख लेते तो उनका आनन्द द्विगुणित हो जाता।

तत्पश्चात् कथाके समयका ध्यान रखते हुए सबने अपने भावोंको संयत किया और नन्दोत्सवका कार्य सम्पन्न करके श्रीडोंगरेजी महाराजकी चरण-वन्दना की। आरती करके कथाको विश्राम दिया और श्रीडोंगरेजी महाराजको उनके कक्ष तक पहुँचाया।

कथा आरम्भके दो दिन पश्चात् पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज ज्वर-ग्रस्त हो गये। उनका त्रिकाल स्नान-संध्याका नियम अटल था। समाचार पाकर श्रीचक्रजी उनके कक्षमें उन्हें देखने आये, वे पूजाके आसनपर बैठे थे।

श्रीचक्रजीने उन्हें प्रणाम कर निवेदन किया— मैं स्नान करके आ रहा हूँ। कौशेय वस्त्रमें हूँ। आपकी अनुमति हो तो नाड़ी-परीक्षण करना चाहता हूँ और मेरी होम्योपैथी औषधिमें कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो सेवनीय नहीं हो।

सुनते ही श्रीडोंगरेजी महाराजने विनयपूर्वक सिर झुकाकर अपना दाहिना कर श्रीचक्रजीकी ओर बढ़ा दिया।

श्रीचक्रजी नाड़ी देखकर होम्योपैथीकी तीन पुड़िया बना लाये। उन्हें ग्रहण करनेकी विधि बतायी। श्रीडोंगरेजी महाराजने औषधि सेवन की और ज्वरमुक्त हो गये। इसके बाद कथामें कोई विघ्न नहीं आया।

26 मार्च प्रातः प्रभुदयालजीके घरके विशाल प्रांगणमें 500 दिन व्यापी अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन समापनके उपलक्ष्यमें धूम-धामसे बड़ा भारी संकीर्तन हुआ। इस संकीर्तनको देखकर व्रज-मण्डलकी होलीका स्मरण हो आता था। लोग लाल-पीला, हरा, गुलाबी, गुलाल एक-दूसरेको मलते हुए जोर-जोरसे गाते-बजाते नृत्य कर रहे थे। होलीके रंगमें सब सराबोर थे। नृत्य भी जिसको जैसा आवे, वैसा कर रहे थे। कोई क्रम-नियम नहीं था।

26 मार्चको मध्याह्न 12 बजे श्रीमद्भागवतजीकी कथाका विश्राम हुआ।

26 मार्चको ही सायं चार बजेसे श्रीमहाप्रभुजीकी आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें अभिषेकके लिये 1008 जलकलश आम्रपल्लवोंसे सुसज्जित लिये कुमारिकाएँ, सौभाग्यवती स्त्रियाँ पीले वस्त्र धारण किये शोभा-यात्रामें निकलीं।

एक विशाल मंचपर श्रीमहाप्रभुजीका षट्भुज श्रीविग्रह पधराया गया। शंख-ध्वनि, जयघोषके तुमुल नादके साथ उन मंगल कलशों द्वारा भावपूर्ण मुद्रामें तन-मनसे आनन्दमें भरे पूज्यश्री डोंगरेजी महाराज महाप्रभुजीके श्रीविग्रहका अभिषेक कर रहे थे। कुछ समय बाद उनकी थकानका विचार कर प्रभुदयालजी उन्हें कक्षमें ले गये और यह कार्य श्रीचक्रजीने सँभाला।

पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजको 26 मार्चको ही गुजरातकी ओर प्रस्थान करना था। अतः न चाहते हुए भी उन्हें भावभरे मनसे श्रद्धापूर्वक विदा करना पड़ा।

26 मार्च प्रातः 6 बजेसे नवकुंज अर्थात् नौ मण्डलोंमें नौ दिनों तक अखण्ड संकीर्तन प्रारम्भ हो गया। उसी परिसरमें एक ओर श्रीकृष्णलीला और चैतन्यलीलाकी सम्पूर्ण झाँकियोंकी प्रदर्शनी बड़े विशाल और भव्य रूपमें सजायी गयी थी।

26 मार्चसे 4 अप्रैल तक प्रातः 6 बजेसे 12 बजे तक जिन पण्डितोंने श्रीमद्भागवतके पारायण किये थे, उन्हींके द्वारा सस्वर श्रीरामचरितमानसका सामूहिक पारायण होने लगा और सायंकाल 3 बजेसे 6 बजे तक श्रीमानस शास्त्रीजी द्वारा श्रीभरत-चरित्रकी भक्ति-रससे सराबोर करने-वाली कथा प्रारम्भ हो गयी। आगत विद्वानों, संत-महात्माओंके कथा-प्रवचन भी रातके 8 बजेसे 10 बजे तक होते थे।

'नवकुंज-संकीर्तन' प्रारम्भ होनेके पाँचवें दिन 31 मार्चको ऐसा आँधी-तूफान आया कि सब भयभीत हो गये। लगता था कि नवकुंज-पण्डाल,

लीला-प्रदर्शनी एवं सभी नवनिर्मित पण्डालोंका अस्तित्व भी बचेगा या नहीं। टीनशैड उड़ने लगे। नवकुंजोंमें संकीर्तनकारोंका खड़ा रहना कठिन लग रहा था। उस समय अर्धरात्रिका एक बजा था। परिसरमें ही श्रीहनुमान्‌जीका एक मंदिर था। 'हारेको हरिनाम' ही सहारा था। प्रभुदयालजी धैर्य धारण कर बड़ी कठिनाईसे आँधीमें किसी प्रकार मंदिरमें पहुँचे और मंदिरकी प्रदक्षिणा कर आँखें बन्द कर श्रीहनुमान्‌जीके सामने बैठ गये। वे सम्भवतः जाम्बवंतकी भाँति हनुमान्‌जीको उनके बल-सामर्थ्यका स्मरण करवा रहे हों और सचमुच ही वे महावीर बजरंगी हेमशैलाभ देह हों। उन्होंने अपने आयोजनमें आये इस विघ्नको इस प्रकार निबटा दिया केवल बीस-पच्चीस मिनटमें ही, जैसे उस तूफानमें उसके आदेशकी अवहेलना करनेकी शक्ति न रही हो। इसके बाद थोड़ा-सा पानी पड़ गया। आँधीसे उड़ी मिट्टी बैठ गयी और पौन घंटे पश्चात् सब शान्त हो गया। रात्रि 2 बजे प्रभुदयालजी भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम करके उठे और सारी व्यवस्था देखने चल दिये। अखण्ड संकीर्तन चलता रहा। इस तूफानमें भी प्राणोंकी बाजी लगाकर संकीर्तनकार कीर्तन करते रहे।

5 अप्रैलको उत्सवके समापनके दिवस प्रातः 6 बजेसे श्रीहनुमान-चालीसाके सामूहिक रूपसे 108 पाठ हुए। समापनसे पूर्व ही श्रीचक्रजी वहाँ पहुँच गये थे। प्रभुदयालजी सपरिवार आनन्दपूर्वक पाठ कर रहे थे। अन्तिम पाठ पूरा होते-होते श्रीहनुमान्‌जीके श्रीविग्रहके कर-कमलसे शनैः-शनैः एक पुष्प प्रसाद श्रीचक्रजीकी गोदमें गिरा। उन्होंने सम्मान सहित मस्तकसे लगाकर प्रभुदयालजीको देते हुए कहा—श्रीहनुमान्‌जीने तुम्हारी सेवा स्वीकार कर ली है। पुष्प-प्रसाद उनकी प्रसन्नताका परिचायक है। उसी दिन भण्डारा हो गया था।

6 अप्रैलको विद्वानों, पण्डितों, आगत सन्तों एवं पूज्य श्रीमानसजी

शास्त्रीको विदा कर रात्रि 8 बजे प्रभुदयालजी श्रीचक्रजीके कक्षमें आये और प्रणाम करके बोले— आपकी कृपा, सम्बलसे उत्सव सम्पन्न हो गया, अन्यथा मुझमें ऐसी सामर्थ्य कहाँ थी?

श्रीचक्रजीने प्रसन्न-मनसे आदेश दिया— श्रीमानस-चतुश्शती एवं श्रीश्री चैतन्य महाप्रभु पंचशती-महोत्सव मेरे पूज्य श्रीहनुमानदादाने स्वयं आयोजक बनकर सँभाले हैं। उन्हींकी अनुकम्पासे ये दोनों उत्सव सफल हुए हैं। अब उन्हें तंग मत करना। अब बड़े-बड़े आयोजनोंकी बात छोड़ दो।

दूसरी बात, नाम-संकीर्तन करते रहो। कलिमें नामजप, नाम-संकीर्तन और नाम-लेखन ही सार है। स्वयं श्रीहनुमान्जीने स्वीकारा है कि नामका आश्रय ही मेरा प्राण, मेरी प्रियता, मेरा परम सत्कार है।

मंगलमय है नाम तुम्हारा।
पावनतम पुण्यधाम, बना रहे रसना पर।
अन्तरमें नाम अभिराम, दयानिधि मम दयाधाम।।

7 अप्रैलको श्रीचक्रजी भुवनेश्वर चले गये। वहाँसे श्रीजगन्नाथपुरी होते हुए मथुरा लौटे।

भगवन्नामके सुरक्षाकी चिन्ता

श्रीचक्रजीके चित्तमें उत्सवसे पूर्व ही भगवन्नामकी सुरक्षाका चिन्तन चल रहा था। जगत्से तटस्थ रहनेवाले श्रीचक्रजीने अपना निर्णय सबको बता दिया— यह दायित्व लेना मेरे वशका रोग नहीं है। मैं किसी नये आरम्भको न लेनेका नियम ही कर चुका हूँ। अनारम्भ, अनिकेत, अनपेक्ष, अपरिग्रह— ये चारों जीवनमें बने रहें, यह चाहता हूँ। अब श्रीहनुमान्जी ही जानें कि वे लगभग सात सौ करोड़ रामनाममयरूपमें कहाँ खड़े होना चाहते हैं, किसे अपना सेवक बनाना चाहते हैं। अथवा यह सब उन्हें स्वीकार न हो तो मेरा कोई अपना आग्रह भी नहीं है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु पंचशती-उत्सवसे पहले 1 जनवरी 1986 के पत्रमें श्रीजयदयालजी डालमियाको अपने विचार व्यक्त किये— 'प्रभुदयालकी श्रद्धा और श्रमसे लगभग सात सौ करोड़ भगवन्नाम संग्रह हुए हैं। यह नष्ट नहीं होना चाहिये। इसलिये मैंने हनुमत्मूर्तिका प्रस्ताव रखा है। अब प्रश्न यह है कि कहाँ बने?

1. मेरी दृष्टिमें चाकुलिया वन्यप्रायः है और प्रभुदयालके पश्चात् किसी धर्मस्थल जैसा प्रश्न नहीं है। कारण कि बंगालका कम्यूनिज्म वहाँ फैलने लगा है।

2. जहाँ तक लौकिक सफलताकी बात है— यह युगमें सौम्य सात्त्विक देवता कम ही सहायक होते हैं। **'कलौ चण्डी विनायकौ'** इनके साथ श्रीहनुमान्जीको भी मान लेना चाहिये। अतः हनुमद्-विग्रह की बात जँची। क्या रामवनमें बने?

3. रामवन, सतना (म०प्र०) स्थान इसलिये भी ठीक नहीं लगा, क्योंकि शारदा प्रसादजी वहाँका मानस-संग्रहालय पुस्तकालय, भूमि भी सरकारको दे गये हैं। अब दो प्रस्ताव हैं— एक श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर, किन्तु वह आपको निर्माणकी जिम्मेदारीके कारण उचित नहीं लग रहा है। तब तो स्वतन्त्र हनुमत्तीर्थ स्थापित किया जाय।

ऐसा तीर्थ पवित्र स्थल गंगातटपर हो, रेलवे-स्टेशनसे दूर न हो, उत्तराखण्डमें हरिद्वार या शुकतीर्थ। यह स्थानकी दृष्टिसे पवित्र एवं सम-शीतोष्ण। यह विग्रह स्वयंमें तीर्थका महत्त्व बढ़ा देगा। कोई उत्साही, स्वस्थ साधु ढूँढ़ना होगा। अयोध्या-चित्रकूट भी विचारणीय है। बड़ी मूर्ति महाप्रभुजीकी नहीं बन सकती, अन्यथा वे भी नाममय हैं, किन्तु उनपर सिन्दूर नहीं चढ़ सकता और सिन्दूर चढ़े बिना मूर्ति खुलेमें हो तो उसपर

घास उगेगी। सिन्दूर तो केवल श्रीगणेशजी एवं श्रीहनुमान्‌जीपर ही चढ़ सकता है।'

जयदयालजी डालमिया श्रीचक्रजीकी दूरदर्शितासे बड़े प्रभावित थे और प्रसन्नतापूर्वक इनके निर्देशसे ही कार्य करनेको तैयार रहते। इधर प्रभुदयालजी तो सब निर्णय श्रीचक्रजीपर छोड़कर निश्चिन्त होकर केवल आदेशकी प्रतीक्षा करने लगे।

23 जनवरी 1986 को श्रीचक्रजीने असीम अनुग्रहपूर्ण आदेश एवं दिव्य सन्देश पत्र द्वारा दिया—

'भगवन्नामका क्या होगा। यह मिलनेपर विचार करेंगे। चाकुलियामें तुम्हारे बाद इस निर्माणका उत्तम भविष्य नहीं दिखता और तुम्हारे प्रति मेरा जो दायित्व है, उससे मैं भी नहीं चाहता कि तुम 'लोकैषणा' के जालमें उलझो। शारदाप्रसादजीके बाद रामवन उच्छिन्नताके कगारपर है। अतः मनमें आया कि नाममय विग्रह बने तो हनुमद् तीर्थ हो जायगा। श्रीजयदयालजी व्यय तो कर देंगे, निर्माण करानेका दायित्व लेनेको प्रस्तुत नहीं हैं।'

श्रीचक्रजी 12 अप्रैल 1986 को जगन्नाथपुरी होते हुए श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर लौट आये थे। 15 अप्रैलको दो दिनके लिये आनन्द-वृन्दावनमें स्वामी अखण्डानन्दजीके यहाँ गये। वहाँ महाराजश्रीसे भी भगवन्नाममय विग्रहके विषयमें चर्चा की। चर्चाके समय मुजफ्फरनगरके परमेश्वर दयालजी (भगतजी) और हरीशजी भी वहाँ उपस्थित थे। ये दोनों महाराजश्रीके शिष्य थे और श्रीचक्रजीके भी निकटस्थ परिचित थे। इन सबके समक्ष श्रीचक्रजीने मनकी बात कही—मुझे गंगातट प्रिय है। कोई चालीस-पचास वर्षकी आयुका एकाकी, उत्साही साधु मिल जाय तो उत्तम है। वह हनुमत्सेवा समझकर इस कामका दायित्व उठा ले तो निर्माणकी बात सोची जा सकती है। भागवततीर्थ शुकतीर्थमें विग्रह निर्माणकी बात मनमें आयी है।

उसी समय परमेश्वर दयालजी और हरीशजीने शुकतीर्थकी बात सुनकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीकेशवानन्दजी (पूर्व-आश्रमका नाम—श्रीइन्द्रकुमारजी)-का नाम सुझाया। ये दोनों शुकतीर्थ आते-जाते रहते थे और श्रीब्रह्मचारीजीसे भी परिचित थे। उनकी कर्मठता और कार्यके प्रशंसक भी थे। उसी समय श्रीचक्रजीने उनसे पता लेकर श्रीब्रह्मचारीजीके नाम पत्र लिख दिया— 'मैं 21 अप्रैलको मथुरासे चलकर शाम तक मुजफ्फरनगर पहुँच रहा हूँ। तुम 22 अप्रैलको प्रातः परमेश्वरदयालके घरपर मिलो।'

श्रीचक्रजीद्वारा निर्देशित समय 22 अप्रैल 1986 को श्रीब्रह्मचारीजीका श्रीचक्रजीसे प्रथम परिचय हुआ। सर्वप्रथम श्रीब्रह्मचारीजीने श्रद्धापूर्वक उनके चरणस्पर्श किये और कहा— आपके आदेशसे मैं सेवामें उपस्थित हो गया हूँ।

श्रीचक्रजीने पूछा— तुम किस महापुरुषके कृपापात्र शिष्य हो?

'पूज्य श्रीरामधारीजी महाराज का'— श्रीब्रह्मचारीजीने उत्तर दिया।

'हे भगवान्! तुम उन तपोनिष्ठ महापुरुषके अनुग्रह-भाजन हो? तब ठीक है, मैं आश्वस्त हो गया कि मुझे योग्यतम पात्र मिल गया है। अब तुम्हें मेरा एक काम करना है।'

'भगवन्! आज्ञा करें'— विनम्रताभरा उत्तर सुनकर प्रसन्न हो गये।

'मुझे ऐसा ट्रस्ट चाहिये, जो आयकरसे मुक्त हो और रजिस्टर्ड हो।'

'भगवन्! शुकतीर्थमें श्रीराम आध्यात्मिक-ट्रस्ट भी है और वह आयकरसे मुक्त भी। इसके अन्तर्गत 'रामरसोई' नामक 'अन्न क्षेत्र' चलता है, दो छोटे कमरे भी हैं'— श्री ब्रह्मचारीजीने कहा।

'ठीक है, मैं कल प्रातः शुकतीर्थ आ रहा हूँ। 'दण्डी आश्रम' में ठहरूँगा। वहीं विस्तारसे चर्चा होगी।' चलते समय श्रीचक्रजी उनकी हस्तरेखाएँ पाँच मिनट तक देखते रहे, फिर प्रसन्न मनसे उन्हें विदा करते समय कहा— यदि

तुम्हारी जन्म-कुण्डली हो तो उसे कल देखना चाहूँगा।

भूमिचयन एवं भूमिपूजन

अपने निश्चित कार्यक्रमके अनुसार 23 अप्रैलको प्रातः श्रीचक्रजी 10 बजे तक शुकतीर्थमें दण्डी आश्रम पहुँच गये। उसी दिन सायंकाल 4 बजे श्रीकेशवानन्दजीको साथ लेकर भूमि देखनेके लिये दण्डी आश्रम, रामानुज कोटि आश्रम और रामाश्रम देख आये, किन्तु कोई स्थान उपयुक्त नहीं लगा। दूसरे दिन प्रातः 9 बजे श्रीशुकदेव आश्रम गये, वहाँके अध्यक्ष स्वामी श्रीकल्याणदेवजी मिल गये और उन्होंने भी स्थान दिखाया। चर्चा करनेपर उन्होंने शर्त रखी— आप यहाँके वर्तमान ट्रस्टके अन्तर्गत कुछ भी बना सकते हैं। पृथक् ट्रस्ट अथवा संस्था नहीं बना सकेंगे। श्रीचक्रजीको यह बन्धन—वाला प्रस्ताव रुचिकर नहीं लगा और दण्डी आश्रम लौट आये।

उसी दिन सायंकाल नै० ब्र० केशवानन्दजीने पृथक् भूमि लेनेके विषयमें चर्चा की। इस सन्दर्भमें उन्होंने वर्तमान स्थानकी भूमि दिखायी जो श्रीचक्रजीको पसन्द आ गयी।

नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीने बताया कि यह भूमि नरैलानिवासी दिल्लीके लख्मीचंदजी और राजेन्द्र प्रसाद सिंघलकी है। आप पसन्द कर लीजिये। मुझे विश्वास है कि वे मना नहीं करेंगे। भूमि पसन्द आते ही श्रीब्रह्मचारीजीने टेलीफोनसे दिल्ली बात की और राजेन्द्रप्रसादजी सिंघलने सहर्ष अपनी भूमि हनुमद्-विग्रह निर्माणके लिये श्रीराम आध्यात्मिक प्रन्यासको दानमें दे दी। श्रीराजेन्द्र प्रसाद सिंघलका गो-प्रेम एवं गोसेवामें योगदान सराहनीय है।

श्रीचक्रजीने 25 अप्रैलको ही शुकतीर्थसे प्रभुदयालजीको पत्र लिखा— '24 अप्रैलको जयदयालजी मुझसे दण्डी आश्रममें आकर मिल गये हैं। उन्होंने इस कार्यके लिये एक लाख रुपया पहले ही भेज दिया था, अभी दो लाख और दे दिये हैं। ... यदि तुमने नाम-लेखन न भेजे हों तो ट्रकमें रखनेसे

पूर्व सब बण्डल एकत्रित कर उनका आयतन नाप लिखकर भेज दो तो यहाँ मूर्तिका आकार तय कर लेना सरल हो जायगा। मेरा विचार शुकतीर्थमें 22 अगस्त तक रुकनेका है। दोनों समय गंगा-स्नानका क्रम चल रहा है।'

13 मई सन् 1986 अक्षय तृतीयाकी शामको चार बजे भगवन्नामके बण्डलों, उत्सववाली चादरों और रजिस्टर आदि लेकर चाकुलियासे ट्रक आ गया। ट्रकवालेने बताया— मार्गमें सात दिन लग गये। नाम सुरक्षित कक्षमें रखवा दिये गये। पुष्पांजलिकी प्रतियाँ पुस्तकालयको दे दी। प्रभुदयालजीको सूचना दे दी कि तुम सुविधानुसार आकर स्थान देख जाओ। अब तुम हनुमद्धामके ट्रस्टी भी हो। अतः अपनी स्वीकृतिका पत्र भेज देना।

श्रीचक्रजीने श्रीविग्रह निर्माणके लिये 'शहडोल' (म०प्र०)-के मूर्तिकार केशवराम कलाकारको बुलवाया। वे रामवन-सतना (म०प्र०) -में इसी कलाकार द्वारा हनुमान्जीकी 36 फुट ऊँची मूर्ति इससे पूर्व बनवा चुके थे।

26 मई 1986 का प्रातःकाल था। श्रीचक्रजी पंचांगमें देखकर उत्तम मुहूर्त जानकर निर्धारित भूमिपर आये और श्रीब्रह्मचारीजीसे थालीमें पुष्प, अक्षत, रोली, कलावा, नारियल, बेलका फल, केला, बताशा दक्षिणादि एकत्रित करवा कर पूछा— क्या स्वर्ण-तार है?

नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी स्वीकृति दे कर गये और आज्ञानुसार तुरन्त स्वर्ण तार लेकर लौटे। सस्मित श्रीचक्रजीने कहा— ठीक, तुम अच्छे व्यवस्थापक हो, अन्यथा इस निर्जन-नीरव स्थानपर स्वर्ण तार कैसे मिल सकता है? मैं तुम्हारी कार्यक्षमतासे बहुत प्रसन्न हूँ।

श्रीचक्रजीने स्वयं तारको मोड़कर मण्डलाकार कुण्डली रूप सर्पका आकार दे दिया और वास्तुपूजनके लिये पण्डित श्रीरामजी शास्त्रीको बुलाया। ये श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर भागवत-भवनमें प्रतिष्ठाके समयसे ही पुजारी थे। कुछ महीनोंसे अनुष्ठान-पूजनके लिये श्रीचक्रजीसे अनुमति माँगकर दण्डी आश्रममें रहने

लगे थे। आचार्यजीने सविधि वास्तुपूजन सम्पन्न कराया।

विग्रह-निर्माण

श्रीचक्रजी किसी कार्यको प्रारम्भ करनेका संकल्प करते ही नहीं, किन्तु परिस्थितिवश, संयोगसे, प्रभु-प्रेरणासे यदि किसी कार्यको हाथमें लेते तो जब तक वह पूर्ण न हो जाय, तब तक रात-दिन विश्रामको ही स्थान नहीं देते, तब स्वास्थ्यकी ओर कौन ध्यान दे? बीमारियोंको झेलते हुए 75 वर्षकी आयुमें ऐसा परिश्रम किया जो 30-35 वर्षकी आयुमें भी इतनी तत्परतासे कौन कर पायेगा?

विग्रह-निर्माणका कार्य तीव्र गतिसे चलने लगा। विग्रह-निर्माणके समय श्रीचक्रजी बड़ी लगन और मनोयोगसे पूरा कार्य देखा करते। जूनकी कड़ी गर्मीमें प्रतिदिन दोनों समय प्रातः 9 से 11.30, सायं 3 से 6 निर्माण-स्थलपर ही रहते। इन्जीनियरोंको ऐसे निर्देश देते कि जैसे स्वयं वास्तुकलाके पूर्ण ज्ञाता हों। श्रीविग्रहके चरणोंसे स्कन्ध तक चार पिलर भूमिके इतने नीचेसे उठाये गये, जहाँ भूकम्पकी सम्भावनासे क्षति न हो।

जूनके अन्तिम सप्ताहमें श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज भी दण्डी आश्रममें पधारे। श्रीचक्रजी उन्हें लेकर हनुमद्धामको दिखाने लाये भगवन्नाममय विग्रहकी चर्चा की— वर्ष 1987 के उत्सव-समारोहके विषयमें भी बताया।

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीने भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा— रामनाममय विग्रहका संकल्प बहुत श्रेयस्कर है। प्रतिष्ठाके समय केवल संदेश दे देना, मैं अवश्य आऊँगा। सचमुच उन्होंने प्रवचन एवं संकीर्तनका बहुत आनन्द दिया अपने निवासकालमें।

श्रीचक्रजी 21 अप्रैलसे 23 अगस्त तक शुकतीर्थमें हनुमद्धामका कार्य करते रहे। नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीको आगेकी योजनाएँ एवं कार्य समझा

कर आवश्यक निर्देश देकर 24 अगस्तको श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरा चले गये।

संकल्पसे विघ्न-निवारण

अनुकूलताके साथ प्रतिकूलता और सम्पत्तिके साथ विपत्तिका आगमन ध्रुव सत्य है। श्रीचक्रजी श्रीहनुमद्धामके निर्माणके लिये पाँच लाखकी धनराशि छोटी-सी बोरीमें लपेटकर पैरोंके नीचे ही डालकर लाये थे। उस राशिसे स्वयं या किसी अन्यपर एक पैसा भी खर्च नहीं होना चाहिये और यात्राके सम्बन्धमें किसीको कहते भी नहीं थे। किसीपर भार न डालते हुए बस द्वारा ही मथुरासे मुजफ्फरनगर अपने ही व्ययसे अकेले आये थे। इस समयमें शुकतीर्थके दण्डी-आश्रममें इतनी बड़ी धनराशिको सुरक्षित कहाँ रखें? कुछ सोचकर उन्होंने मुजफ्फरनगरके एक सज्जन श्रीचिम्मन लालजी, जो दण्डी आश्रममें पन्द्रह वर्षोंसे अपना कमरा बनवाकर निवास कर रहे थे, उन्हींको सुरक्षित रखनेको सौंप दिया और चिम्मनलालजीने मुजफ्फरनगरमें अपने घर ले जाकर व्यक्तिगत कमरेमें लकड़ीकी अलमारीमें सुरक्षित रख दिया। समय-समयपर जितने धनकी आवश्यकता होती, श्रीचक्रजी उनसे मँगवा लेते थे।

अगस्त के पहले सप्ताहमें एक दिन अनायास उनका छोटा पुत्र भागकर शुकतीर्थ आया। वह बहुत घबड़ाया हुआ था। उसने आते ही अपने पिता चिम्मनलालजीको बताया कि पता नहीं इन्कम टैक्सवालोंको किसने सूचना दे दी है— इनके घरमें बहुत-सा नाजायज पैसा आया हुआ है। इसलिये इन्कम टैक्सकी टीमने अचानक आज छापा मार दिया है। घरमें घुसकर टीमने सबको एक कमरेमें बन्द कर दिया है और घरकी तलाशी ले रही है। मैं तो घरके बाहर था, वहीं बाजारमें समाचार सुनकर भागा आया हूँ आपको खबर करनेके लिये।

चिम्मल लालजी तो हताश-निराश होकर ऐसे घबड़ा गये कि एक क्षणको उनकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। पुत्रने सँभाला तब भागे श्रीचक्रजीके कक्षकी ओर। जाते ही सब समाचार बताया और श्रीचक्रजीको प्रणाम कर मुजफ्फरनगर जानेकी आज्ञा माँगी—श्रीचक्रजीने शान्तचित्तसे सुनकर धीर-गम्भीर वाणीसे कहा— तुम इसी क्षणसे श्रीहनुमानचालीसाका पाठ मनमें करते हुए निश्चिन्त मनसे धैर्य धारण करके जाओ। उन मंगल-मूर्ति मारुतनन्दनके समीप अमंगलको स्थान कहाँ है? उनके जानेपर अपने कन्हाईकी ओर सस्मित देखकर अपने कार्यमें संलग्न हो गये। उधर श्रीचिम्मललालजी विचलित मनसे सोचने लगे— हे भगवान्! धर्मकार्यके लिये आया पैसा नहीं मिला तो मैं क्या करूँगा? फिर श्रीचक्रजीके शब्द-स्मरण आते— तुम निश्चिन्त मनसे जाओ। उनके मुखसे निरन्तर श्रीहनुमानचालीसाका पाठ हो रहा था। पर मन तो मन ही है— मेरे पास तो कोई प्रमाण भी नहीं है कि यह पैसा चक्रजीका है—कैसे टीमके सामने साबित कर सकूँगा? हे प्रभु देव-द्रव्य मेरे घरसे जायगा तो कितना पातक लगेगा? हे हनुमान्जी महाराज... अशरणशरण... आप ही रक्षा कीजिये... रक्षा करो... रक्षा करो... कातर मनसे प्रार्थना करते हुए किसी प्रकार डगमगाते पैरोंसे घर तक पहुँचे।

'पिताजी पैसा सुरक्षित है।' घरमें प्रवेश करते ही बड़े पुत्रने शुभ सूचना दी।

'क्या हुआ? टीम चली गयी? तलाशी नहीं ली?' उन्होंने एक साथ कई प्रश्न पूछ लिये।

'सब कुछ हुआ पिताजी। पूरी टीमवालोंने हम सबको बाहरकी बैठक-वाले कमरेमें बन्द करके घरकी ताली माँगी। उनको घरकी तालियोंका पूरा गुच्छा थमा दिया। तब फिर पुत्रने कहा— वे एक-एक कमरा और उसकी

एक-एक अलमारी खोलकर देखते रहे। अंतमें वे उस अलमारीकी तालीको दूसरे तालोंमें लगाकर देखने लगे। वह अलमारी जैसे उन्हें दिखायी नहीं दे रही थी। बार-बार उसके सामनेसे गुजरते रहे। मैं खिड़कीकी जालीसे झाँक रहा था। डरके कारण मेरे मुखसे 'हनुमानचालीसा' का पाठ चलने लगा। आपके कमरेकी दूसरी दोनों अलमारियाँ उन्होंने खोल दीं, किन्तु जिसमें पैसे थे, उस ओर देखा भी नहीं। जब उस तालीसे दूसरी अलमारीके ताले खोलनेका प्रयास किया और सफल न होनेपर 'की इज डैड' कहकर गुच्छा ही फेंक दिया। अपने साथीसे बोले— लोगोंने व्यर्थमें हमें गलत सूचना दी है— कहते हुए हम लोगोंके कमरेकी बाहरसे कुण्डी खोलते हुए चले गये।

चिम्मनलालजीने बेटेकी बात सुनकर राहतकी साँस ली। पसीना पोंछते हुए मन-ही-मन श्रीहनुमान्जीको और श्रीचक्रजीको प्रणाम किया और पुत्रोंसे बोले— भला! इन्कम टैक्सकी टीमकी आँखोंमें कौन धूल झोंक सकता है? उनसे पार पाना बड़ा कठिन है। टीमवालोंके रहते यह असम्भव कैसे सम्भव हो गया? सिरपर हाथ थामकर बैठ गये और बोले— श्रीचक्रजीकी कृपासे श्रीहनुमान्जीका पैसा तो बचा ही अपितु पुलिस और समाजकी नज़रोंमें हमारा और हमारे परिवारका सम्मान भी बच गया। चिम्मनलालजीने श्रीहनुमान्जीको कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए भोग-प्रसाद अर्पित किया और शुकतीर्थ लौटकर श्रीचक्रजीको सब समाचार ज्यों-का-त्यों सुना दिया।

वृन्दावनमें अमृत-महोत्सव

श्रावण कृष्ण अमावस्या 5 अगस्त सन् 1986 ई० को अनन्त श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी पूरे 75 वर्षके हो गये थे। इस उपलक्ष्यमें उनके शिष्यों, भक्तोंने मुम्बईमें 'आनन्द जयन्ती' को ही 'अमृत महोत्सव' के रूपमें मनाया था। यही उत्सव बृहद् रूपसे 26 सितम्बर सन् 1986 से 30 सितम्बर सन् 1986 तक आनन्द वृन्दावन—मोतीझीलमें उल्लासपूर्वक मनाया गया।

इस अवसरपर भारतवर्षके सभी प्रान्तोंसे श्रीस्वामीजीके परिचित स्नेही, स्वजन, परिवार और श्रद्धालु सेवक-शिष्योंने उन्हें प्रणिपात कर अपनी श्रद्धा समर्पित की।

देश-विदेशसे विश्रुत-महात्माओं, संतों, मूर्धन्य विद्वानों एवं श्रीस्वामीजीके शिष्योंका एक अपूर्व समागम था। अमृत-महोत्सवकी मंचसज्जा अत्यन्त आकर्षक थी। उसपर पृथक्-पृथक् दस सुसज्जित सिंहासन थे, जिनपर चारों पीठके जगद्गुरु शंकराचार्य, बदरिकाश्रमके श्रीस्वामी शान्तानन्दजी महाराज सरस्वती, लक्ष्मण किलाधीश श्रीसीताराम शरणजी महाराज, अयोध्या; दण्डी स्वामी विपिनचन्द्रानन्दजी सरस्वती आदि महापुरुषोंके मध्यमें अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज सरस्वती विराजमान थे। प्रथम दिनका मंच संचालन वाराणसीके मूर्धन्य विद्वान् (स्व०) डॉ० विद्यानिवास जी मिश्र– उपकुलपति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसीने किया।

दूसरे दिनका मंच-संचालन पटनाके मूर्धन्य विद्वान् श्रीरामनारायणजी मिश्रने किया। अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके आजीवन अध्यक्ष रहे, अतः श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थानके सचिव, व्यवस्थापक एवं सभी ट्रस्टी आये हुए थे। सभीने माल्यार्पण सहित चरण-वन्दन किया। सभी श्रद्धा-सुमन समर्पित कर रहे थे। उसी भव्य अयोजनकी महती भीड़में सहसा महासाधारण वेशमें एक व्यक्ति आधी धोती पहने, आधी धोती ओढ़े उठ खड़े हुए और मंचपर अपनी मधुर वाणीमें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करने लगे।

पीछे लोगोंको ज्ञात हुआ– ये व्यक्ति महान् विरक्त श्रीचक्रजी ही थे। ऐसा महान् साधु जिसके न मठ था, न शिष्यमण्डली, जो अनिकेत था, अभय था, निरभिमान, दंभरहित था और स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजका बालमित्र था। उपर्युक्त वक्तव्य श्रीरामनारायणजी मिश्रका है।

अस्वस्थतामें विग्रह-निर्माण

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरासे 17 नवम्बर सन् 1986 को शुकतीर्थके लिये प्रस्थान करनेका निश्चय कर लिया। सभी चाहते थे कि शीतकालमें शुकतीर्थ न जायँ। सिला वस्त्र पहनते नहीं थे। शीतकालमें गाँधी आश्रमकी गरम चादर ओढ़ते थे केवल, अतः जन्मस्थानपर राधाकृष्ण चौधरी (जो प्रकाशन-विभाग सँभालते थे) सचिव, व्यवस्थापक एवं भार्गव साहब आदि सबने अनुरोध किया— बाबा! दिसम्बर-जनवरीका जाड़ा बचाकर आप फरवरीके प्रारम्भमें जानेकी कृपा कीजियेगा। किन्तु उन्होंने सबको समझा दिया—

'सेवामें प्रमाद ठीक नहीं। मेरा प्रयत्न है कि श्रीहनुमान्जीका श्रीविग्रह शीघ्र बन जाय और महाभिषेकका उत्सव सम्पन्न हो जाय, तभी मैं निश्चिन्त हो सकूँगा। अब यह शिथिल शरीर तो नदी किनारेका जर्जर वृक्ष है, कब गिर जाय, क्या ठिकाना?'

सचमें श्रीचक्रजीका जीवन-लक्ष्य था— **'कार्यंसाधयामि वा शरीरं पातयामि'**। वे कोई भी कार्य प्रारम्भ करते नहीं और करते तो सम्पन्न होने तक विश्रामका अवकाश नहीं। यही स्थिति उनके अन्तिम लेखन श्रीमद्भागवतके अन्वय, पदच्छेद, टीका करते समय रही। अनवरत 10-10 घंटे प्रतिदिन कम्पन करते हाथोंसे लिखते रहे। इसीसे मोटा पेन रखते कि हाथमें कम्पन कम हो। अब हनुमद्-विग्रह-निर्माणमें यही मनोबल और संकल्प शक्ति काम कर रही थी। अधिक कहनेका साहस किसीका नहीं था, फिर भी आग्रह करनेपर उन्होंने अपना मत सुना दिया 'अब कुछ भी हो, हनुमत् काज किये बिना मोहि कहाँ बिश्राम। मुझे शरीर नहीं देखना। जीवनमें बहुत कम अवसर आता है, जब किसी महान् कार्यका दायित्व प्राप्त होनेका सौभाग्य मनुष्यको मिलता है।' वे अकेले ही अपनी तिथिके अनुसार 17 नवम्बर 1986 को शुकतीर्थके लिये चले गये।

इन सर्दियोंका श्रीचक्रजीके स्वास्थपर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। कैलाश भैयाके लिये लिखे पत्रसे एक झलक मिलती है—

'सर्दी इतनी है कि मुझे अपनी हिमालयकी यात्राएँ स्मरण आती हैं। अब सर्दियोंमें इधर आनेका साहस नहीं होगा। मन प्रसन्न है, क्योंकि श्रीहनुमान् दादाकी प्रतिमा नाभि तक पहुँच गयी है। आज नामके बण्डल भीतर रखे जा रहे हैं। कल ही हृद-शूल हुआ है। अपनी ही दवासे काम चलाया'।

श्रीचक्रजीने यह वर्ष 1986 का ग्रीष्मकाल और शीतकाल दोनों ही श्रीहनुमान्जीको समर्पित कर दिये। इस वर्ष दिसम्बर-जनवरीमें इतना अधिक शीत पड़ा कि बीस दिन तक सूर्यनारायणके दर्शन नहीं हुए। रामरसोईसे स्नानके लिये उबलता जल प्रातः 3:30 पर पहुँचता तो दण्डी आश्रमके कक्षमें आते-आते स्नानके योग्य हो जाता। भोजनकी थाली पहुँचती वह भी आवश्यकतासे अधिक ठंडी हो जाती। शीतके कारण पैरकी नसोंमें रक्त जमने लगा और हनुमद् विग्रहके सन्मुख 21 दिसम्बरको दिलका दौरा (हृदयाघात) पड़ा। हनुमद्धामकी नवनिर्मित सीढ़ियोंपर अचेत होकर गिर गये। नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी दौड़े-दौड़े आये और फोल्डिंग पलंगपर लिटाकर सावधानी पूर्वक दण्डी आश्रममें सीढ़ीसे ऊपरकी मंजिलके कक्षमें लाये। डॉ० ने परामर्श दिया— इन्हें पूर्ण विश्राम कराया जाय। सीढ़ियाँ बिलकुल चढ़ें-उतरें नहीं। यह कक्ष एकान्तमें पड़ जाता। श्रीब्रह्मचारीजीने स्वयं रहनेका या किसी सेवकको कक्षमें रहनेका अनुरोध किया तो सदाकी भाँति दृढ़ वाणीमें कह दिया— मेरे कन्हाईसे अधिक मेरी देख-रेख दूसरा कौन कर सकता है? सच तो यह है उनका जर्जर शरीर उनकी संकल्प-शक्तिसे ही चल रहा था।

मनमें अपने श्रीकृष्णका चिन्तन अनवरत चलता रहता था। वृत्तियाँ अन्तर्मुख बनी रहतीं। दिन-रात स्मृतिमें डूबे रहते। मन चिन्तनमें रहता और शरीर हनुमत्-सेवामें। केवल एक दिन विश्राम कर दूसरे दिन प्रातः 9 बजे पुनः हनुमद्धामका निर्माण-कार्य देखने लगे, उचित निर्देश देने लगे।

एक जनवरी 1987 को दण्डी आश्रम–शुकतीर्थसे प्रभुदयालजीको पत्रसे संकेत दिया– 'मेरे स्वास्थ्यका दायित्व इन दिनों हनुमान् दादाने उठा लिया है। शीतलहर पुनः प्रारम्भ हो गयी है। मथुरासे तीन गुना शीत यहाँ अधिक है। शीताधिक्यसे पैरकी अँगुलियाँ सूज गयी हैं। प्रातः आठ बजे दादाकी सेवामें पहुँच जाता हूँ और ग्यारह बजनेके बाद लौटता हूँ। भोजन-विश्राम कर ढाईसे चार बजे तक निर्माण-स्थलपर सेवामें रहता हूँ। पूज्य दादाका श्रीविग्रह लगभग गले तक बन गया है। नाम-लेखनके केवल सैंतालिस बण्डल शेष हैं, जो कल रख दिये जायँगे। जनवरीके अंत तक सम्पूर्ण मूर्ति सात अरब नाममय बन जायगी।'

8 जनवरीको कैलाश भैयाको अपनी मनःस्थिति बतायी– 'तुम्हारी बात ठीक है। शुकतीर्थमें अप्रैलसे सितम्बर तकका समय ठीक है। हनुमान् दादाको न सर्दी लगती है और न गर्मी, किन्तु मैं तो इनकी तरह वज्रदेह हूँ नहीं, सर्दीसे पैरोंमें सूजन और दाहिने पैरमें छाले भी पड़ गये हैं। जौनपुरसे श्रीकृष्ण प्रकाशजी, अधिशासी अभियन्ताने तुम्हारे यहाँ चमेलीके तेलका टीन भेजा होगा। बेटी महिमाके विवाहके सामानके साथ तेल कैसे भेजा जाय? ऐसी द्विविधा मत करना। यह तो हनुमान् दादाकी सेवा है। इसे सिन्दूरमें मिलाकर चोला अर्पित किया जायगा। शरीर अस्वस्थ हो जाय अथवा हृद-शूल (Angina) पड़े, कन्हाई ऐसा कुछ करता ही रहता है कि उसके सुखद सान्निध्यका अनुभव प्रतिक्षण बना ही रहता है, उसे तो झगड़नेमें भी आनन्द आता है–

कबहूँ मनुहार करै रिझावै दृगनीर भरे मुख दीन बनावै।
कै कबहूँ खिजवै झगरै करताल दिखाय अँगूठो दिखावै।।
गावे बजावै सिखावै बजाइबो, कण्ठ लगाय सुहेतु बतावै।
नन्द को लाल लरेउ हरै मन कानन संग धेनु चरावै ही।।

'यह वर्ष तो श्रीहनुमान् दादाकी सेवामें समर्पित है।' 5 फरवरी 1979 तक चार ऑपरेशन होनेके बाद जीवनमें कदाचित् ही कोई वर्ष ऐसा बीता, जिसमें वे पूर्णतया स्वस्थ रहे हों। पूरे वर्षभरकी लगातार की गयी यात्राएँ श्रीमद्भागवतके अन्वय, पदच्छेद, टीकाका अनवरत श्रम और स्थान-स्थानकी बदलती जलवायुने उनकी पाचन-क्रिया अव्यवस्थित कर दी। मथुरामें बार-बार अतिसार हो जाता जिसे अपनी होम्योपैथी दवाओंसे ठीक करते रहते।

अस्वस्थ होनेपर शामको भोजन बन्द कर देते। श्रीचक्रजीने पत्र द्वारा अपनी स्थिति बतायी— 'हरिद्वारकी मेरी पिछली अन्तिम यात्रामें आयु 73 की हो गयी है। एक महीने तक ज्वर आता रहा। कफ, खाँसी भी उग्र हो गयी। पेटमें कुछ पचता नहीं। दुबर्लता इतनी है कि पत्र लिखते ही थक गया हूँ। अतः वर्ष 1985 से ग्रीष्म-ऋतुमें पहाड़ोंकी यात्रा बन्द करनी पड़ी।' अतः वे 1985 से शुकतीर्थमें रहे। बार-बार ज्वर आनेपर 'जय मंगल रस' आदि सेवन करते रहते। अपने संकल्प तथा निष्ठासे शरीरकी अवहेलना करते हुए निर्धारित पथपर चलते रहे।

जल्दी-जल्दी अस्वस्थ होनेसे और बार-बार हृद-शूलके झटकेसे क्लांत होकर जनवरी 1987 के अन्तिम सप्ताहमें प्रातः हनुमद्धाम आये और हनुमान्जीके मॉडल बने श्रीविग्रहके श्रीचरण पकड़कर बोले— दादा! अब खड़ा हो जा। इस वृद्धावस्थामें मुझमें कहाँ सामर्थ्य है? तेरा अनुज अब जर्जर हो गया। बस, अब थक गया हूँ... अन्तिम संकल्प तुम्हारे ही हाथ है... अब... अब बस-अब धाममें जाना चाहता हूँ और थके-थके टूटे स्वरमें अपनी बात कह दी—

मेरे दादा—

आशा, इच्छा और दुराग्रह, यह मेरा अज्ञान।
तुम भी हठ रख लेते मेरा, इतने कृपानिधान।।

श्रीचक्रजीकी इस प्रार्थनाके बाद नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी बार-बार स्वीकार कर इस बातको कहते हैं— निर्माण-कार्यमें आनेवाली सारी रुकावटें ऐसे दूर होती चली गयीं— जैसे कोई अलौकिक शक्ति अलक्ष्य रूपसे कार्य करा रही है। जनवरीमें श्रीचक्रजीकी अस्वस्थताका समाचार पाकर कैलाश भैया शुकतीर्थ, दण्डी आश्रम आये। उन्होंने घर आकर बताया— इतनी सर्दीमें पूज्य बाबा अपने संकल्प-बलसे ही वहाँ टिककर कार्य करा रहे हैं।

विश्वकी वानर-जातिकी मूर्तियोंका अद्भुत संकलन

श्रीचक्रजीने हनुमान्‌जीके विग्रह निर्माणके साथ-साथ विश्वकी जितनी वानर जातियाँ हैं, उनके चित्र मँगाकर मूर्तियाँ बनवायीं। उनसे सीमा प्राचीरकी सज्जा करायी। ये मूर्तियाँ परकोटेके कँगूरोंपर, द्वारपर, साधक कुटियोंके ऊपर जीवन्त एवं सजीव जान पड़ती हैं। हनुमद्-द्वारपर ही लीजिये—मुख्य प्रवेश-द्वारके ठीक ऊपर भारतीय कपि, लंगूर एवं सुग्रीव कपि (इण्डोनेशिया)-की बड़ी भव्य सजीव मूर्तियाँ हैं। इसी प्रकार थिकटेडबुश, बेबी कपि (सीलोन), स्नोकपि—जापान, डाक लंगूर (चायना, आइसलैण्ड), गिलाडा बबून कपि (इथोपिया), हीमोहबीलीज गौरिल (सैनडियागो), एपस प्रौसीमैन कपि (ब्लयू), एसोसन प्रोसी मैन ब्राउन ज्यूनन कपि (अफ्रीका), वनमानुस (अफ्रीका), मैकेक्यूज (वियतनाम) हरित कपि (पश्चिमी-अफ्रीका), अर्धहरित कपि (इथोपिया—उत्तर अफ्रीका), यूतान कपि (सुमात्रा), दीर्घनामा कपि (बेनिया), स्कबैरिल मन्की (दक्षिण अमेरिका), ब्राजां मंकी (ब्राजील), जिब्बान कपि (सुमात्रा, जावा, बेर्निया), दीर्घ पुच्छ कपि (मध्य अमेरिका), आई आई कपि (आइसलैण्ड), बैबून कपि (ब्राजील, दक्षिण अमेरिका), बुश बैबीज कपि (अफ्रीका) आदि कपियोंकी जीवंत मनोहर मूर्तियाँ प्राचीरकी शोभा बढ़ा रही हैं।

17 फरवरीको आवश्यक निर्देश नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीको दिये। आगेकी

रूपरेखा समझाई। उत्सवके कार्यक्रमकी व्यवस्थाका उत्तरदायित्व उन्हें सौंपकर मथुरा आ गये मात्र 25 दिनोंमें अप्रैल, मई, जून, जुलाई, अगस्त तककी श्रीकृष्ण-संदेश-पत्रिकाका अग्रिम सम्पादन करके 16 मार्चको श्रीशक्तिस्वरूपजी तथा नै०ब्र० केशवानन्दजीके साथ कारसे शुकतीर्थ चले आये— प्रतिष्ठा-महोत्सवकी तैयारीके लिये।

प्रतिष्ठा-समारोह

श्रीहनुमद्धामका प्रतिष्ठा-समारोह 23 मई 1987 से 9 जून 1987 तक मनाया गया। इसमें जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीशान्तानन्दजी महाराज, आचार्य भागवतानन्दजी महाराज एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालयके आचार्यप्रवर पं० बाँके लालजी शास्त्री, विहार घाट (उ०प्र०) प्रभृति विद्वान् 22 मईको ही आ गये थे। आना तो अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज सरस्वतीका पक्का था, किन्तु अस्वस्थ होनेसे न आ सके। पूज्य ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराज भी दो दिन पश्चात् पधारे।

23 मई 1987 का मंगलमय दिवस। प्रातःकालके समय शंखध्वनि संकीर्तनके तुमुलनाद, ब्राह्मणोंके स्वस्तिवाचन, जयघोष और कन्याओं द्वारा पुष्प-वर्षण करते हुए मांगलिक गानके साथ बदरिकाश्रम ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीशान्तानन्दजी महाराजको श्रीहनुमद्धाम मंचपर लाकर आसीन कराया गया। श्रीचक्रजीने स्वस्ति वाचन एवं पूजनके साथ माला धारण करायी। मंचपर विराजमान सभी संतोंका सत्कार-पूजन और माल्यार्पण किया गया। अध्यक्ष पदसे जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराजने मंगलाचरण करते हुए कहा— यह उत्सव श्रीहनुमानूजीका है। वही उत्सवके आयोजक-संचालक तथा हम सबके आराध्य हैं— सहसा निर्मल आकाशसे वायुके कुछ झोंके आये, जिससे वस्त्र-निर्मित पण्डालके पर्दे थोड़ेसे हिले। अकस्मात् लोहेके अस्सी-फुट ऊँचे चारों खम्भे जो श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठासे पूर्व अभिषेकके उद्देश्यसे

श्रीहनुमान्‌जीके चारों ओर लगाये गये थे। जिसपर पालकीके समान लिफ्ट द्वारा चढ़कर श्रीहनुमान्‌जीका मूर्धाभिषेक किया जाना था। इन चारों खम्भेंको सशक्त गाटरसे जोड़ा गया था। एक दिन पहले पूर्वाभ्यासके लिये दो बालक ऊपर तक जाते थे, उतरते थे। श्रीचक्रजीको बच्चोंका यह खिलवाड़ पसन्द नहीं आया और निश्चित कर लिया कि अभिषेकके पश्चात् इन्हें हटा दिया जायगा। हटानेके लिये पैंतीस हजारका ठेका भी दिया जा चुका था। गम्भीर मेघगर्जनाके साथ भूमिसे निकलकर खम्भे एक साथ पीछेकी ओर जा गिरे जैसे किसीने उन्हें एक साथ उखाड़ कर फेंक दिया हो। दाहिने खम्भेपर बँधी ध्वजा भूमिपर न गिरकर वृक्षकी ऊँची शाखामें अटककर ऐसे खड़ी थी, जैसे किसीने पूर्व नियोजित ढंगसे बाँध दी हो।

हनुमद्धामके परिसरमें हजारोंकी भीड़ थी। खम्भोंके धराशयी होनेकी ध्वनिसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीकेशवानन्दजी कई कार्यकर्ताओंको लेकर एक साथ दौड़ आये कि न जाने कितनी क्षति हो गयी होगी, किन्तु समीप पहुँचकर सभी चकित, स्तब्ध रह गये, किसी भी निर्माण, सम्पत्ति अथवा मनुष्यको तनिक भी क्षति नहीं पहुँची थी। श्रीहनुमद्-विग्रहमें खरोंच तक नहीं आयी। यदि खम्भे सामने गिरते तो पण्डालमें कथा-श्रवण करनेवालोंकी जनहानि होती और कितने लोग हत-आहत होते, बायें गिरनेसे साधक कुटियाएँ ध्वस्त होतीं, दायें गिरनेसे 'श्याम सदन' ही धराशायी होता। पीछेकी ओर केवल दो-चार झोपड़पट्टी थी— खम्भे ऐसे गिरे कि किसीको तनिक भी हानि नहीं हुई। इस अचानक आये संकटका निवारण संकटमोचनके अतिरिक्त कौन करेगा? करुणावतार मारुतनन्दनने इस नाममय श्रीविग्रहमें स्वयंके प्रतिष्ठित होनेका स्पष्ट आभास करा दिया। यह घटना बादमें समाचारके रूपमें विभिन्न समाचारपत्रोंमें भी प्रकाशित हुई।

खम्भे गिरनेकी आवाजसे चौंककर सब लोग उठकर कोलाहल करने

लगे थे, किन्तु श्रीचक्रजी अडिग विश्वास एवं सहज निष्ठासे उठे और हनुमद्विग्रहकी ओर देखकर आनन्दसे मुस्करा दिये, मानो कह रहे हों— दादा! आ गये आप? अच्छा किया।

तब जनताकी ओर हाथ उठाकर आश्वस्त करते हुए बोले— कुछ भी तो नहीं हुआ। इन मंगलमूर्ति आञ्जनेयके द्वारा मंगल ही तो रहा है। अमंगलकी आशंका भी अपराध है। इन्होंने श्रीविग्रहमें अपनी उपस्थितिका सुखद अनुभव करा दिया है। इन्हें बन्धन स्वीकार ही कब हुआ? भव्य स्वरूपके दर्शन तो खुलकर अब हो रहे हैं।

श्रीचक्रजीने दृढ़तासे यह भी कहा— पवनपुत्रके उत्सवमें पिता पवन तो आयेंगे ही। उन्हें आना भी चाहिये, क्योंकि जिस उत्सवमें उनका पुत्र स्वयं आयोजक-संयोजक है, उनके उत्साहवर्धनको वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु पंचशती महोत्सवमें भी पधारे, पर कोई क्षति नहीं की। इसी प्रकार सात सौ करोड़ रामनाममय श्रीविग्रहमें अपने आत्मज आंजनेयको प्रथम आशीर्वाद पिताका मिलना चाहिये। अतः उत्सवमें ठीक प्रथम दिन शुभारम्भमें पधारे और बिना कुछ व्यवधान डाले खम्भोंको गिरानेमें उनका सहयोग भी कर गये। वे अपने सुतका भव्य स्वरूप निहार कर प्रसन्न हो गये।

उसी दिन संध्या समय नित्यकी भाँति पूजाके आसनपर बैठकर अपने कन्हाईको आशीर्वाद अंकमाल देते हुए सहज ही पूछा— कनूँ! यह क्यों और कैसे हो गया? अब दादा अच्छे लग रहे हैं न! इनके चिर-चपल कन्हाईने सस्मित कहा— दादा! ये आपकी जानकी अम्बाके ज्येष्ठ पुत्र होनेके नाते आपके अग्रज हुए न! इनका मूर्धाभिषेक इनसे बड़े ही कर सकते हैं— यथा महर्षि वसिष्ठजी अथवा श्रीरघुनाथजी। आप अनुज होकर यह करने चले थे, अतः श्रीरघुनाथजीने प्रेरणा दी तो आपके दादाने स्वयं खम्भे उठाकर फेंक दिये। आप और सभी सेवक वृन्द चरणभिषेकके ही अधिकारी हैं, अतः

वही कीजिये। अपने कन्हाईकी प्रेमभरी मीठी वाणी द्वारा किये गये समाधानपर श्रीचक्रजी रीझ गये और आनन्द-हर्षमें छके हुए-से रात्रिको 9 बजे कक्षसे बाहर आये और अपने अनुगतोंको इस तथ्यसे अवगत कराया।

भारतके सभी प्रान्तोंसे श्रद्धालु जन एवं भावुक भक्त आये हुए थे। यद्यपि उत्सवके दो दिन पूर्व मेरठ एवं अलीगढ़में 'हिन्दू-मुस्लिम दंगा' होनेके कारण सीमाएँ सील कर दी गयीं, फिर भी आनेवाले दिल्ली या अन्यत्र मार्गसे आ ही रहे थे।

ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु वरिष्ठ शंकराचार्यजी महाराजके प्रवचनके पश्चात् इनकी अध्यक्षतामें तपोनिष्ठ संत आचार्य भागवतानन्दजी महाराजके द्वारा नौ दिवसीय वाल्मीकि रामायणकी कथा अपने निश्चित समयपर प्रारम्भ हो गयी। प्रातः 8 से 11 और सायं 3 से 6 बजे तक दोनों सत्रमें कथा चलने लगी। नित नया आनन्द और उल्लास था। चाकुलियासे आई हुई संकीर्तन-मण्डली द्वारा अखण्ड संकीर्तनका अपना अद्भुत आनन्द ही रहा। आचार्य भागवतानन्दजी द्वारा की गयी वाल्मीकीय रामायणकी नवदिवसीय कथा 31 मईको प्रातः सत्रमें सानन्द पूर्ण हुई। 31 मईको ही सायं 3 बजे 108 कुमारिकाएँ और सौभाग्यवतियों द्वारा मंगलकलश सिरपर लिये 11 संकीर्तन-मण्डलियोंके संकीर्तनके साथ श्रीशुकदेवजीके पास जाकर चरणवन्दना करके गंगाजी पहुँचे। वहाँ विधिपूर्वक गंगाजीका पूजन करके कलशोंमें गंगाजल भरकर संकीर्तन करते हुए यह शोभायात्रा पाँच घंटेमें हनुमद्धाम पहुँची और श्रीहनुमानूजी के श्रीचरण-सन्निधानमें कलशोंको क्रमबद्ध सजा दिया गया।

1 जूनको चरणाभिषेकका कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। प्रातः 6 बजेसे वरण किये गये ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन, श्रीगणेश-गौरी पूजनके पश्चात् जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीशान्तानन्दजी सरस्वती महाराज और श्रीचक्रजीने षोडशोपचार पूर्वक चरणाभिषेक करते हुए पूजन सम्पन्न कर नीराजन किया। संकीर्तनके साथ नै०ब्र० केशवानन्दजीने पुष्प, फल, मेवा, वस्त्र, मिठाई और द्रव्य न्योछावर

करके जन-सामान्यपर बरसाये। उस समयके जयघोष एवं संकीर्तनके तुमुल-नादसे दिशाएँ गुंजित हो उठीं। पुष्प-वर्षाके साथ पुष्पांजलि अर्पित करते हुए श्रीचक्रजीने स्तवन किया—

जय जय श्रीरामदूत पवनपूत आंजनेय
अतुलबल
अमिततेज
ज्ञानधाम
अप्रमेय।
श्रीरामचरण पंकज
चारू चञ्चरीक
आञ्जनेय।
राम-श्याम स्वजनोंके सहायक स्वजन नित्य
सर्वकाल संकटमें अभय देय।।
'दादा', कृपा यह—
श्यामका स्मरण
चित्त चाह वृद्धि
देहका ममत्व भोग
अन्तरमें रहे हेय!
जय जय श्रीरघुवीर समर्थ।

दो जूनको प्रातः 6 बजेसे यज्ञ प्रारम्भ हुआ। इसमें आहुतियाँ देनेके लिए बारह व्यक्ति बैठे, जिनमें घृताहुति श्रीचक्रजी दे रहे थे। शेष अन्य लोगोंमें श्रीब्रह्मचारीजी, श्रीप्रभुदयालजी झुनझुनवाला, डॉ० ब्रह्मदत्त पाठक, हरिनारायणजी, फकीरचन्दजी, सर्वशक्तिस्वरूपजी, दीनदयालजी, जनेश्वरजी, राजेन्द्र प्रसाद सिंघलजी, देवेन्द्रकुमारजी एवं श्रीरामजी शास्त्री सामग्रीकी आहुतियाँ दे रहे थे।

पूर्णाहुतिके पश्चात् यज्ञान्त अवभृत स्नानके लिये सभी गंगाजीपर गये। लौटते ही तीव्रतम वृष्टिकी ऐसी झड़ी लगी—मानो इन्द्रदेवने पवनतनयके श्रीविग्रहको यज्ञान्त स्नान कराया हो। मध्याह्नको ब्रह्मभोज एवं भण्डारा रात्रि-पर्यन्त चलता रहा। तत्पश्चात् तीन जूनसे 9 जून पर्यन्त आचार्य बाँके लालजी त्रिवेदी द्वारा श्रीमद्भागवत्की कथा दोनों सत्रोंमें चलती रही। 10 जून तक यज्ञ एवं भण्डारा सम्पन्न हो गया।

ज्योतिषी-परामर्श

उत्सव सम्पन्न होनेपर श्रीचक्रजी, पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजको दण्डी आश्रमसे हनुमद्धाममें ले आये। सायं 4 से 6 बजे तक पूज्य शंकराचार्यजी महाराजका प्रतिदिन प्रवचन-सत्संग प्रारम्भ हो गया। इन्हीं दिनों कभी-कभी शंकराचार्यजी महाराज अन्तरंग वार्ताके लिये श्रीचक्रजीके कक्षमें पहुँच जाते। एक दिन ऐसे ही पहुँचे थे और वहाँ बैठे हम सभी लोगोंको बाहर जानेका आदेश देकर कक्ष बन्द करके एकान्तमें सत्संगके बीच अपने महाप्रयाणके विषयमें प्रश्न किया। पूज्य शंकराचार्यजीको पूरा विश्वास था कि श्रीचक्रजीको ज्योतिषका अच्छा ज्ञान है, किन्तु वे किसीको कुछ बताते नहीं हैं। उनके आग्रहपर श्रीचक्रजीने बताया— ज्योतिषके अनुसार मैं तो दो वर्ष तीन महीने बाद जा रहा हूँ। आप अभी रहेंगे, जल्दी क्या है? और यह बतानेका विषय भी नहीं है। उनके अतिशय आग्रहपर संकेत दे दिया।

दो दिनके अन्तरालसे नै०ब्र० केशवानन्दजीने अपनी जन्मकुण्डली दिखायी। देखकर गम्भीर स्वरमें बोले— अरे! इस तिथिको तुमपर बहुत बड़ी विपत्ति आनेवाली है, जिनपर तुमने अटूट विश्वास किया है, वही तुमपर आघात और प्रहार भी करेंगे; किन्तु तुम प्रतिशोध मत लेना, धैर्य रखना। अगले तिथिको सब बाधाएँ दूर होती जायँगी और वे ही तुम्हारे समक्ष नतमस्तक हो जायँगे (दोनों तिथियाँ श्रीचक्रजीने लिखकर दे दी थीं। यही

जैसी-की-तैसी उनके जीवनमें क्रियान्वित हुईं) इसके बाद श्रीब्रह्मचारीजीको श्रीहनुमद्विग्रहके पीछेके भागमें कार्यालय एवं व्यवस्थाके लिये दो कमरे बनवानेका निर्देश तथा श्याम सदनके बगीचेके लिये रातकी रानी, बेला, गुलाब, जूही, रजनीगंधा आदि पौधे लगवानेकी आज्ञा देकर 11 अगस्तको श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरा आ गये।

स्वामी अखण्डानन्दजीका महाप्रयाण

19 नवम्बर 1987 की रात्रिको 2 बजकर 5 मिनटपर श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थानके अध्यक्ष, देशके मूर्धन्य आध्यात्मिक शलाका पुरुष, श्रीमद्भागवत और शांकर वेदान्तके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजने पार्थिव शरीर त्याग दिया।

प्रातः 5 बजे समाचार पाते ही श्रीचक्रजी वृन्दावन गये और उनके पार्थिव शरीरको माल्यार्पण किया। ये उनके वियोगको सहन नहीं कर पा रहे थे। अवरुद्ध कंठसे स्वर निकले... चले गये?

चले गये... आज... आज मेरी स्थिति ऐसी ही है—जैसी श्रीकृष्णके तिरोधानपर अर्जुनकी।

महन्त श्रीओंकारानन्दजी महाराज कुछ कहनेको कि पुनः बोले— वे मेरे तो बालमित्र थे, सगे अग्रज-जैसे थे... उनका संरक्षण मुझे बचपनसे प्राप्त था। अब इस समय मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि उनके विषयमें कुछ कह सकूँ। बादमें चर्चा चलनेपर अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराजके विषयमें कहा करते— ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष यदा-कदा ही संसारमें आते हैं और उनका लोक-पावन शरीर जब तक व्यवहार जीवनमें रहता है, अपने सम्पर्कमें आये अनन्त प्राणियोंका कल्याण करता है। उनकी स्मृति भी अनेक शताब्दियों तक लोक-मानसको पवित्र करती रहेगी। उनके चरणोंमें शत-शत नमन।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर इन्हीं दिनों श्रीचक्रजीसे मिलने मुजफ्फरनगरसे पं० सीतारामजी चतुर्वेदी वेदपाठी (अवकाश प्राप्त हिन्दी-विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) दो दिनको आये। इनके जानेके बाद महामहिम श्रीविष्णुकान्तजी शास्त्री राज्यपाल, (उ०प्र०) आनन्द वृन्दावनसे मिलने आये। उन्होंने कक्षमें प्रवेश करते ही देखा—श्रीचक्रजीने अपने श्यामसुन्दरको गुलाबके पुष्पोंसे सजा रखा है और संध्याके चार बजेका समय जानकर पुष्पोंको उतारकर उन्हें दुलारते हुए बड़े स्नेहसे आशीर्वाद दे रहे हैं। शास्त्रीजी उन्हें अवाक् खड़े-खड़े देखते रहे। जैसे ही वे पूजाके आसनसे उठे, तब तुलसी प्रसादी शास्त्रीजीको देते हुए बैठनेका संकेत किया और शास्त्रीजीने प्रणाम कर कुर्सीपर बैठते ही पहला प्रश्न आश्चर्यसे किया— आप श्रीकृष्णको आशीर्वाद देते हैं?

'हाँ! देता हूँ। यह मेरा छोटा भाई है। इस सम्बन्धकी स्वीकृति इसकी ओरसे भी है, तभी तो मुझे कोई झिझक या संकोच नहीं है।'

जीते रहो! जीवन मेरे अनुज शत सहस्र वर्ष।
भजनीय मेरा नन्दनन्दन वदनारविन्द।।

इस वर्ष स्वास्थ्य अधिक गिर जानेसे यात्राएँ स्थगित कर दीं। सेवामें संस्थाकी ओरसे बच्चू सिंह रहता। नै०ब्र० केशवानन्दजीके अतिशय अनुरोधपर शुकतीर्थसे आनन्दजीके आ जानेपर रखना स्वीकार कर लिया। आनन्दजी पृथक् कक्षमें रहते, किन्तु मंगला आरतीके समय छायाकी तरह साथ-साथ रहते। अनुरूप जलपान, भोजन बना लेते और शयनपर्यन्त देखभाल करते। राधाकृष्ण चौधरीने प्रकाशन विभागका कार्य सँभाल लिया। वे समय-समयपर श्रीचक्रजीसे निर्देश प्राप्त करते रहते और इनके डगमगाते स्वास्थ्यको देखकर कई बार दिनमें आया करते। दिल्लीके श्रीजयदयालजी डालमियाके आदेशपर श्रीचक्रजीकी शारीरिक दुर्बलता एवं स्वास्थ्यका समाचार फोनसे बताते रहते।

शारीरिक दुर्बलता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। एकान्तमें रहना अभीष्ट था। बिना बात किये अपना नित्यका कार्य, पूजा, मंगला करके अधिक आग्रह करनेपर हल्का-सा जलपान लेकर शान्त लेटे रहते। अन्तर्मुखता ऐसी बनी रहती कि प्रायः राधाकृष्ण चौधरी एवं बच्चू सिंहके आने-जानेका भी आभास नहीं रहता। दीवालकी ओर करवट किये कभी शान्त, कभी अस्फुट स्वरमें कहते—

वे मिलेंगे प्राणके भी प्राण
वे मिलेंगे
नित्य मिलकर भी सदा जो—
अनमिले अनजान।
वे मिलेंगे
मिलन आशामें कि जिनकी
भटकता है बौखलाया हुआ मन
वे मिलेंगे
न्यस्त जिनमें हम स्वयं, वे प्राणधन

स्तब्ध वातावरणमें राधाकृष्ण चौधरीने दत्तचित्त हो सुना भी और लिखा भी। वे शान्तभावसे बिना विक्षेप डाले लौट गये। सहज गतिसे चिन्तन-धारा चलती रही। अनुकूल अवसर जानकर राधाकृष्ण चौधरी पुनः कक्षमें आये और प्रतीक्षा करते रहे। बाह्य ज्ञान होनेपर उन्होंने प्रकाशन सम्बन्धी चर्चा की और आवश्यक निर्देश लेकर चले गये।

डॉ० ब्रह्मदत्त पाठक सदा इनके डगमगाते स्वास्थ्यके विषयमें चिन्तित रहते। उनके पत्रके उत्तरमें श्रीचक्रजीने लिखा— इस समय मेरा शरीर गिरा-गिरा रहता है। रातमें बैचेनी बढ़ जाती है। मंद ज्वर रहने लगा है । जयमंगल रस एक हफ्तेसे ले रहा हूँ। घुटनोंका दर्द थोड़ा-सा घटा है। 'कलकेरिया फास' ले रहा हूँ। पर मन अपने ठिकाने लगा है। कन्हाई विशेष

रूपसे अपने सान्निध्यका अनुभव कराये रखता है—

'चपल कन्हाईकी झगरन अनुहार प्रीति
धूम किये रहती है क्या-क्या न कर जाती है।।'

20 मार्चको श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरामें श्रीचक्रजीको देखने डॉ० ब्रह्मदत्त पाठक भैया देखने आये। राधाकृष्ण चौधरीको उनका पूरा चैकअप दिल्लीमें करवा कर उसकी रिपोर्ट भेजनेका निर्देश दिया, जिससे औषधियाँ बदली जा सकें।

शुकतीर्थको प्रस्थान

श्रीचक्रजीके आदेशपर नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी शुकतीर्थसे आये और कार द्वारा उन्हें शुकतीर्थ ले गये। कार्यालय एवं पुस्तकालयके लिये जिन कक्षोंको बनवानेका आदेश दे गये थे, वे बनकर तैयार हो गये थे। अतः 19 अप्रैल 1988 को अक्षय तृतीयाका उत्तम मुहूर्त देखकर कार्यालय एवं पुस्तकालयका उद्घाटन किया और नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीपर अनुकम्पा करते हुए स्नेहसे उनका हाथ पकड़कर उन्हें कार्यालयकी कुर्सीपर बैठाकर स्निग्ध स्वरमें कहा— यहाँ बैठो, हनुमद्धामकी व्यवस्था तो स्वयं आञ्जनेय ही करेंगे। यह सिद्धपीठ नाममय है। अतः नामका आश्रय लेनेवालोंके मनोरथ मेरे श्रीहनुमान् दादा ही सदा पूरे करते आये हैं और करते रहेंगे। तुम तो इनके श्रीचरण सन्निधानमें बैठकर देखभाल और व्यवस्था करते हो। सब विघ्नोंका निवारण ये स्वयं ही करेंगे। मेरा संकल्प पूरा हो गया। अब मुझे कुछ नहीं करना, न कुछ सोचना। मेरा नाम नहीं, सर्वत्र जय-जयकार आञ्जनेयकी होनी चाहिये। कहते हुए सिर उठाकर अपने हनुमान् दादाका मुख निहारते हुए प्रसन्नवदन बोले—

विमल रघुवीर विरद, वायुपुत्र साकार।
विघ्नहरण क्लेश शमन बुद्धि ज्ञान गुणागार।।

वन्दन विवेकनिधि पावन वैराग्य मूर्ति।
वारिय विकार राम सुयश गान काम पूर्ति।।

इस विशाल श्रीविग्रहसे प्रभावित होकर मुजफ्फरनगर के ही 'बालमुकुन्द सुरेन्द्र कुमार धर्मार्थ संस्थान' के श्रीसुखवीर तायलने श्रीचक्रजीसे निवेदन किया— मैं शुक्रतालमें एक विग्रह निर्माण कराना चाहता हूँ। किस विग्रहका निर्माण किया जाय?

श्रीचक्रजीने सिद्धि-बुद्धि प्रदाता विघ्न-विनाशक श्रीगणपतिके विग्रहकी राय दी और विग्रहका प्रारूप भी तैयार करके दे दिया। यहाँ यह श्रीविग्रह बना। उसका नाम 'गणेशधाम' रखा गया। यह विग्रह चार फुट ऊँची पीठिकापर श्रीचरणोंसे मुकुट तक 42 फुट ऊँचा है। इस श्रीगणपतिमें नर्मदेश्वर शिवलिंग समाविष्ट हैं। नै०ब्र० केशवानन्दनने इस निर्माणकार्यमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपसे बहुत सहयोग दिया।

नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीकी सक्रिय सेवा

22 अप्रैल सन् 1986 को श्रीचक्रजीसे नै०ब्र० केशवानन्दजीका प्रथम परिचय हुआ। इस प्रथम मिलनमें ही वे श्रीचक्रजीका ममत्व पाकर मुग्ध हो गये। दूसरे ही दिन हृदयमें श्रीचक्रजीसे प्राप्त अपनत्वकी अनुभूति सँजोये हुए ठीक समयपर दण्डी आश्रम, शुकतीर्थमें उनके निर्देशित समयपर पहुँच गये। श्रीचक्रजीका सिद्धान्त था— 'समय ही भगवान् है' अतः श्रीब्रह्मचारीजीकी समयनिष्ठा देखकर प्रसन्न हो गये। शुकतीर्थमें आते-जाते रहनेसे पूज्य स्वामी श्रीरामधारीजी महाराजसे श्रीचक्रजीका परिचय था। ये इनकी स्पष्टवादिता, सत्यनिष्ठा, त्याग एवं तपश्चर्याका सम्मान करते थे। नै०ब्र० केशवानन्दजीको इन्हीं महापुरुषका कृपापात्र शिष्य जानकर आश्वस्त हो गये। श्रीचक्रजीको लगा—मेरे श्रीहनुमान् दादाने मेरे शारीरिक शैथिल्यको देखकर अपने

भगवन्नाममय श्रीविग्रह-निर्माण-कार्यमें सक्रिय सेवा-रूपी- यंत्रके रूपमें नै०ब्र० केशवानन्दजीको दे दिया है।

उसी समयसे श्रीचक्रजीका स्नेहमय संरक्षण पाकर, उनके परामर्शसे, उनकी देख-रेखमें बड़े उत्साह, धैर्य, लगन और तन-मनसे भूमिपूजनसे लेकर श्रीविग्रहनिर्माण, कुटिया निर्माण, विश्वके बन्दरोंकी मूर्ति निर्माण, उत्सव-व्यवस्था आदि कार्योंको तत्परता एवं मनोयोगसे सँभालने लगे। 'हृदयाघात' पड़नेपर डगमगाते पैरोंसे श्रीचक्रजीने श्रीहनुमान् दादासे अनुरोध किया — दादा! तू खड़ा हो जा। अब मैं तो असमर्थ हो गया। श्रीब्रह्मचारीजी दृढ़ता सहित स्वीकार करते हैं कि उसके बाद ही निर्माण-कार्यमें आनेवाले सारे व्यवधान, कारीगरोंकी रुकावटें, ऋतुका प्रकोप ऐसे दूर होते चले गये — जैसे कोई अलौकिक शक्ति अलक्ष्य रूपसे कार्य करा रही है। प्रतिष्ठा-महोत्सवमें पूज्य श्रीशंकराचार्यजी, श्रीआचार्यजी एवं विद्वानोंकी सेवा-व्यवस्थाका कार्य तन-मनसे समर्पित होकर श्रीब्रह्मचारीजी सँभालते रहे। उस समय इनकी उमंग, उत्साह, उल्लास और आनन्द देखते ही बनता था।

एक दिन ब्रह्मचारीजीने श्रीचक्रजीको अपनी जन्मकुण्डली दिखायी। तब श्रीचक्रजी दो मिनट तक आश्चर्यसे देखते ही रह गये, तुरन्त चौंककर बोले— अरे! तुम्हारा बड़ा संकटका विपरीत समय आ रहा है। जो व्यक्ति सदासे तुम्हारे अनुकूल रहे हैं, उनमें एक व्यक्ति भी तुम्हारे पक्षमें नहीं रहेगा। मैं तुम्हें दो सूत्र बताता हूँ—

1. धैर्य मत छोड़ना— जैसे समुद्र-स्नान करते समय सिर झुका लेनेकी पद्धति है, उससे हजारों मन पानी सिरके ऊपरसे निकल जाता है और व्यक्तिका कुछ नहीं बिगाड़ पाता।
2. दुष्ट ग्रहोंके समय श्रीहनुमान्‌जीका स्थान छोड़कर मत जाना— यह

संकटमोचन अपने स्थानपर अपने आश्रितकी रक्षा स्वयं करेंगे।

श्रीब्रह्मचारीजीने बड़े धैर्य एवं संयमसे काम लिया तथा निर्देशित तिथिके पश्चात् सभी विघ्न-बाधाएँ स्वतः दूर होती गयीं।

उत्सवकी सम्पन्नतापर 19 अप्रैल सन् 1988 की अक्षय तृतीयाको श्रीचक्रजीने कृपाकी वर्षा करते हुए नै०ब्र० केशवानन्दजीको स्वयं हाथ पकड़कर कार्यालयकी कुर्सीपर बैठाया और कर्तव्यबोधकी शिक्षा देते हुए सेवारूपी उत्तराधिकार सौंपकर कहा— श्रीहनुमान्‌जीकी भगवदीय शक्ति ही प्रच्छन्नरूपसे सर्वकार्य करेगी और श्रीहनुमत्-कृपाशक्ति ही तुम्हारे जीवन-नौकाकी पतवार सँभालेगी। नामका आश्रय लेनेवालोंके मनोरथ मेरे हनुमान् दादा सदा पूर्ण करते रहेंगे। श्रीब्रह्मचारीजी असीम सुखकी अनुभूति करते हुए कहते हैं— श्रीचक्रजीकी वह प्रेमामृत वाणी और संतोचित रहनीकी विलक्षण छवि मेरे मानसपटलपर आज भी ज्यों-की-त्यों अंकित है। तबसे यह अनवरत हनुमद्धाममें संत-भगवंतकी सेवा-व्यवस्था, कथा-उत्सव, हनुमत्-रसोई (अन्नक्षेत्र) गोसेवा संवर्धनकी सक्रिय सेवामें संलग्न हैं।

रुग्णतामें चिन्तन

उपचारके अनन्तर भी स्वास्थ्य सँभल नहीं पा रहा था। शारीरिक दुर्बलता तेजीसे बढ़ रही थी। 19 अप्रैलको डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाको पत्र लिखा— कई लोग चैकअप पर जोर दे रहे हैं। श्रीशक्तिस्वरूपजी मुझे मुजफ्फरनगर ले जाकर चैकअप करवा लाये। रक्तकी जाँचसे ज्ञात हुआ कि मधुमेह नहीं है। मूत्रकी जाँचसे पता चला कि वृक्क-शोथके कारण 'किडनी-इन्फेक्शन' (Kidney Infection) है। डॉक्टरकी दवासे भूख बन्द हो गयी है। मैं तो अपनी होम्योपैथी दवा लूँगा। कमजोरी क्यों बराबर बढ़ती जा रही है, यही समझमें नहीं आता। मईके द्वितीय सप्ताहमें डॉ० ब्रह्मदत्त भैया माँ एवं मुन्नी जीजीको लेकर आ गये। पूज्य श्रीचक्रजीके स्वास्थ्यकी रिर्पोट देखी और उनके

लिये अनुकूल दवाएँ देकर और समझा कर माँ एवं मुन्नी जीजीको शुकतीर्थ छोड़कर एटा आ गये।

श्रीचक्रजीके दाँतोंमें पहलेसे दर्द रहता था और पानी भी लगता था। दाँतोंमें मसूड़ोंकी सूजन (Gingivitis) के कारण पाचन-शक्ति प्रभावित हो रही थी। दो-चार दाँत तो मथुरामें पहले ही निकलवा चुके थे, किन्तु अब डॉक्टरके परामर्शपर धीरे-धीरे दो-दोके क्रमसे सभी दाँतोंको निकलवानेका निश्चय किया।

मुजफ्फरनगरमें सर्वशक्तिस्वरूपजीके निकटके सम्बन्धीका निधन होनेसे मरणसूतक लगे थे, अतः चक्रजीको मुजफ्फरनगर श्रीसुखवीरजी तायलके घरपर अलग फ्लैटमें नै०ब्र० केशवानन्दजी ले गये। साज-सँभालके लिये आनन्दजीको भी साथ ले गये।

दाँतोंके निकलवा देनेसे शरीरपर असर तो पड़ना नहीं था। दैनिक दुर्बलता अतिशय बढ़ गयी थी। चिन्तित होकर मुन्नीजीने फोनसे अपने भाई डॉ० ब्रह्मदत्तजीको सूचना दी। उन्होंने फोनसे बता दिया— मैं तुरन्त चल रहा हूँ। आते ही उनकी स्थिति देखी और बताया कि आवश्यकतासे अत्यधि क कम कैलोरी पहुँच रही है। थोड़े-थोड़े समयमें अन्तरसे कुछ थोड़ा-थोड़ा पेय फलका रस आदि देते रहना चाहिये।

इस स्थितिमें भी इन्हीं दिनों श्रीचक्रजीको नयी-नयी झाँकियोंके दर्शन एवं नित्य-नूतन अनुभूतियाँ होती रहती थीं। अस्वस्थ होनेसे ठीकसे निद्रा भी नहीं आती थी। एक दिन स्नान-पूजासे निवृत्त हो चुके थे। सेवामें रहने-वाले आनन्दजी भी प्रातःकी सेवा करके पुष्प आदि रखकर अपना नित्य-नियम करने चले गये थे। जलपानका समय जानकर मुन्नी जीजी कुछ लेकर कक्षमें पहुँची तो देखा— वे कक्षमें विराजे हुए खुले द्वारसे आकाशकी ओर निर्निमेष देख रहे हैं। आनन्दानुभूतिमें खोये हुए हैं। उनकी भावविभोरता और प्रेमपुलकित वपु देखकर लगता था कि किसी दिव्य झाँकीका दर्शन कर रहे

हैं। उनकी चित्तवृत्ति जगत्‌को छोड़ चुकी है। विलम्ब होनेसे माँ भी समीपके कक्षसे आ गयीं। वे यह दृश्य देखकर मुग्ध हो गयीं और भाव-चिन्तनमें व्यवधान न पड़े, अतः दूसरे कक्षमें द्वारसे सट दोनों वहीं बैठ गयीं।

एक घंटेसे अधिक बीतनेपर उनके मुखसे धीरे-धीरे मधुर स्वर निकला— गोविन्द... श्यामसुन्दर... श्रीकृष्ण। इससे दोनोंको आभास हो गया कि चक्रजीबाबाको धीरे-धीरे बाह्य ज्ञान हो रहा है। कुछ देर पश्चात् उनकी दृष्टि उन दोनोंपर पड़ी। हाथके संकेतसे ही पूछा— क्या है? माँने भावभरी मुद्रा एवं संकेतसे ही पूछा— आकाशमें क्या देख रहे थे? दोनोंकी प्रबल अभिलाषा देखकर धीरे-धीरे बोले— अभी कुछ समय पहले आकाशकी नील कान्ति देखकर मुझे कन्हाईका स्मरण आ गया। मैं एकटक देखने लगा तो सहसा नील गगनमें जैसे एक साथ कोटि सूर्य उदित हो गये हों, किन्तु शत सहस्र ज्योत्स्नाके समान स्निग्ध शीतल प्रकाश है वह— बस... बस उसीके मध्य श्रीनारायणकी त्रिभुवन मोहिनी छवि प्रकट हो गयी।

उन परम सुकुमार पीताम्बर परिधान, नीलमनोहर वपु, कौस्तुभ कंठ, श्रीवत्स-वक्ष, चतुर्भुज, कमललोचनकी सेवामें शंख, चक्र, गदा, पद्म साकार समुपस्थित हैं।

उन सर्वेश्वरका श्रीविग्रह लगता है जो कृपाके घनीभावसे ही बना है। अनन्त अजस्र करुणार्णवके रोम-रोमसे झर रही है।

उन ज्योति स्वरूपके श्रीविग्रहसे जो राशि-राशि रश्मियाँ विकीर्ण हो रही हैं— मैं और हम सब उन रश्मियोंके ही रूप हैं।

जाने कैसे? मैं उन अखिलेशके श्रीचरणोंके समीप आ गया हूँ और उनके विशाल लोचन एकटक मेरे मुखपर लगे अजस्र वात्सल्यकी वर्षा कर रहे हैं—बोलते-बोलते पुनः ध्यान रसमें डूब गये।

उस समयकी बाबाकी भावमयी स्थितिका वर्णन करना कठिन है। उनके

सान्निध्य सामीप्य मात्रसे उनके रोम-रोमसे निःसृत महासत्त्वमयी भावके परमाणु ऐसे सूक्ष्म रूपसे बिखरने लगे कि सुनते हुए हम सब आनन्दकी धारामें निमग्न होते जा रहे थे—

सो सुख जानहिं मन अरु काना।
नहि रसना पहि जाइ बखाना।।

इधर, अवधेशको ज्ञात हुआ कि पूज्य बाबा अस्वस्थ हो गये हैं और पिताजी मुजफ्फरनगर देखने गये हैं, अतः वह दिल्लीसे घर न जाकर सीधे मुजफ्फरनगर सुखवीरजीके घर पहुँचा। श्रीचक्रजीका थोड़ा स्वास्थ्य सुधरते ही डॉ० ब्रह्मदत्त भैया उनकी रुचि, इच्छा और अनुकूलता देखकर शुकतीर्थ ले आये। श्रीब्रह्मचारीजीको आवश्यक दवाएँ एवं उन्हें देते रहनेकी विधि समझाकर लौट गये।

जूनके प्रथम सप्ताहमें जगद्गुरु शंकराचार्य पूज्य श्रीशान्तानन्दजी महाराज शुकताल आ गये। सायं चार बजेसे छः बजे तक इनका प्रवचन-कथाका क्रम चलने लगा जिसे श्रीचक्रजी कक्षसे बाहर आकर आराम कुर्सीपर बैठकर श्रवण करते थे।

अत्यधिक कमजोरीमें भी धीरे-धीरे बाँधपर होकर गंगा-स्नानको जाते और कक्षमें चिन्तनमें ही डूबे रहते। एकान्तमें रहना प्रिय था। अन्तर्मुखता बढ़ती जा रही थी। कभी नीरव निशीथमें एकान्तमें मौन होकर निहारते रहते, कभी मिलनकी ललकमें व्यथित हो अनुजको प्रेमाश्रुका अर्घ्य देते हुए हृदयके भावोंको कहने लगते—

कण-कण आर्त्त पुकार रहा है, आओ कुँवर कन्हैया,
कहाँ छुपा प्राणों का प्रियतम प्रणतपाल मम भैया।
अब भी मेरे अन्तर उज्ज्वल है अटूट विश्वास,
मरणोन्मुख हूँ चिर-निद्रामें श्याम-मिलनकी आस।
कृष्ण-करोंसे साग्रह माखन मोदक मैंने खाया,
आज चील-गृद्धोंको सादर अर्पित है यह काया।

इसी चिन्तन धारामें उन्हें नित-नयी श्रीकृष्णपरक अनुभूतियाँ होती ही रहती थीं।

मथुरामें डगमगाता स्वास्थ्य

गुरु पूर्णिमाके पश्चात् जुलाईके अन्तिम सप्ताहमें उपचार, परिचर्चा एवं समय-समयपर अनुकूल दवाएँ दी जा सकें, स्वयं कर सकें इस दृष्टिसे डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाने अतिशय श्रद्धापूर्ण आग्रह किया और प्रेमपरवश होकर वे एटा आ गये। अगस्तमें जगद्गुरु शान्तानन्दजी महाराज भी संयोगवश कानपुर जाते समय एक दिनको श्रीचक्रजीको देखने पधारे। नित्यकी चिकित्सा-संबंधी देखभालसे स्वास्थ्यमें थोड़ा सुधार रहा, शारीरिक दुर्बलता तो थी ही। सितम्बर, अक्टूबर रहकर दीपावलीके पश्चात् भातृ द्वितीयाको श्रीकृष्णजन्म-स्थान, मथुरा आ गये।

मथुरामें सेवामें बच्चू सिंह एवं शुकतीर्थसे आये आनन्दजी बराबर साथ रहे। इन्हीं दिनों संयोगसे मैं (सौभाग्य कुँवर राणावत) वृन्दावन आयी हुई थी। आनन्द वृन्दावनमें रहकर घर जाने लगी तो महन्त श्रीस्वामी ओंकारानन्दजीसे ज्ञात हुआ कि श्रीचक्रजी श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर आ गये हैं। आनन्दभरा समाचार पाकर मन प्रसन्नतासे भर गया कि मेरे तात मुझे मिल जायँगे। तुरन्त ही मैं श्रीकृष्णजन्म-स्थान मथुरा पहुँच गयी। मेरे साथ बापू दलपति सिंह और काकी सास ईश्वर कुँवर भी थीं।

अपने तातके दर्शन कर जहाँ मेरी प्रसन्नताका पारावार न था, वहीं तातका शिथिल स्वास्थ्य देखकर मन चिन्तित हो उठा।

शामको ही उन्होंने आनन्दको बुलाकर कहा– देखो! मेरी बेटी आयी है। उसे कोई असुविधा नहीं होनी चाहिये। कोई वस्तु-सामान न हो तो बाजारसे ले आना। वह संकोची है। कुछ कहेगी नहीं, किन्तु ध्यान रखना है।

तात उन दिनों पाँव उठाकर चल नहीं पाते थे। दाहिने पैरको भूमिपर

सरकाते हुए आगे बढ़ाते थे।

मैंने पूछ लिया— तात! क्या घुटनोंमें दर्द है? आप पाँव क्यों नहीं उठा पाते?

'बेटा, घुटनों और शरीरके सब जोड़ोंके बीचमें तरल द्रव रहता है। इसीसे जोड़ आसानीसे हिल पाते हैं। मेरे घुटनोंका तरल द्रव सूख गया, हड्डियाँ, आपसमें टकराती हैं इससे असह्य दर्द होता है। 'इसकी कोई औषधि नहीं होती तात'?— मैंने पूछ लिया।

'नहीं, कोई दवा इसमें जल नहीं भर सकती। वैसे औषधि ले रहा हूँ। शरीर तो शरारती है। यह कुछ-न-कुछ खटपट करता ही रहता है। इधरसे मन ही हटा लेना चाहिये।

वे पाँव घसीटते हुए कमरेसे बाहर पधारते और मेरे कमरेके बाहर आकर धीरेसे स्नेह-स्निग्ध स्वरमें पुकारते— गोविन्द!

'हुकुम फरमाइये तात!'

'बेटा! तुम्हें कोई असुविधा तो नहीं?' वे पूछते।

'नहीं तात! हम तो ठीक हैं। मेरा मन भर आता। स्वयं अस्वस्थ होनेपर भी तात मेरी सुख-सुविधाकी इतनी चिन्ता कर रहे हैं।'

'मेरे योग्य कोई सेवा तात?' प्रातः प्रणामके समय मैं पूछ लेती।

'मेरी क्या सेवा बेटा! भजन करो, यही सबसे बड़ी सेवा है।'

बहुत आग्रह करनेपर कहते— अच्छा, मैंने धोती धोकर तारपर ऐसे ही डाल दी है, तुम उसे फैला दो।

फिर समझाने लगते— कन्हाईका चिन्तन करती रहो तो यह स्वयं तुम्हारे चित्तको अपनी ओर खींच लेगा... कभी कहते... एक दीपकसे दूसरे दीपकके जलनेके समान जिसके हृदयमें श्रीकृष्ण प्रेम है उसके सम्पर्कसे तुम्हारे हृदयमें श्रीकृष्ण प्रेमकी ज्योति जगेगी।

वे अक्सर गहन चिन्तनमें डूबे रहते। उनमें चिन्तनकी परम्परा

सोते-जागते, चलते-फिरते, बात करते टूटती नहीं थी, अनवरत बनी रहती थी। देखनेपर भले ही लगता कि सो रहे हैं, किन्तु कभी शान्त भावसे चिन्तन करते तो कभी प्रीतिपूर्वक मनुहार करते हुए अपने कन्हाईसे देह-बन्धन काटनेको कहते—

विमल बन्धु, ब्रजेन्द्रनन्दन!
तुम चपल तुम अति सदय
तुम स्नेह धन।
बहुत क्रीड़ा हो चुकी
अब थक चुका मन।
अब पधारो ध्वस्त कर दो
भटकता भव देह बन्धन।।
दूरियाँ सब दो मिटा—
अब कनूँ मेरे।
अब पुकारो श्यामसुन्दर
नन्दनन्दन लाल मेरे।।

अपने तातसे विदा होते समय मेरा मन वियोगकी पीड़ासे भर गया चलते समय प्रणाम करते हुए पूछा— तात! अब दर्शन कब होंगे? बड़ी निश्चिन्ततासे समझाया— बेटा शरीर तो नदीके कगारका जर्जर वृक्ष है, कब जलके प्रवाहमें या वायुके झोंकेमें गिर जाय, क्या पता? इसका मोह छोड़ो, श्रीकृष्णके चारु चिन्तनमें मनकी धारा बहने दो। मैं मनसे जानेको तैयार हूँ। प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

वर्ष 1989, फरवरीमें श्रीजयदयालजी डालमिया दिल्लीसे श्रीचक्रजीको देखने मथुरा आये। उनकी अतिशय दुर्बलता देखकर चिन्तित थे। उन्होंने दिल्ली चलनेकी प्रार्थना की— मैं दिल्लीमें डॉक्टरको दिखाता रहूँगा। आप घरपर रहिये और सेवा मैं और विष्णु (श्रीविष्णुहरिजी डालमिया) -की माँ

करेंगे। श्रीचक्रजीने कहा—मुझे यहीं रहने दो। डॉक्टरोंके चक्करमें मत डालो। मैं उनकी सब दवाएँ भी नहीं ले सकता। जीवन ऐसे रखना चाहिये जैसे आज जाना या कल मर जाना हो, तभी स्वस्थ-निश्चिन्त रह सकते हैं।... शरीर तो कालका ग्रास है, भला इसमें क्या आसक्ति।

श्रीडालमियाजीने इनके दिल्ली न जानेपर राधाकृष्ण चौधरीको आदेश दिया—श्रीचक्रजीकी सब प्रकारसे साज-सँभाल और सेवा करना। स्वास्थ्यकी गतिविधिसे डॉ० साहबको अवगत कराते रहना। कल वे एटासे आने ही वाले हैं। मैं आज दिल्ली जा रहा हूँ। स्वास्थ्यकी पूरी सूचना मुझे पहुँचाते रहना। यदि चैक-अपकी राय दें तो तुरन्त गाड़ीसे दिल्ली ले आना। मैं कल स्वयं फोनसे तुमसे बात करूँगा। इस प्रकार समझा कर वे दिल्ली लौट गये।

होलीपर वाराणसीसे श्रीविश्वम्भरनाथजी द्विवेदी (आत्मज— स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज) वृन्दावन आये हुए थे। होलीके बाद वे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीचक्रजीको देखने आये। इनका दुर्बल स्वास्थ्य देखकर उन्होंने प्रार्थना की—

आप आनन्द-कानन, वाराणसी चलिये। मैं पुत्रवत् आपकी सेवा करूँगा। इस समय आपके प्रति मेरा यही कर्त्तव्य है। श्रीचक्रजीने सहज निश्चिन्त स्वरमें सस्मित कहा— सचमुच, तुम मेरे पुत्र हो। चिरंजीव सोमदत्त एवं शिवदत्त मेरे पौत्र हैं। तुम्हारा कहना भी उचित है... अब देह कहीं रहे, जब इसे जाना हो, जाय, मैं तैयार हूँ और बड़े स्नेहसे, कहा... मैं तुम्हें कर्त्तव्य-मुक्त करता हूँ। उदास मन श्रीविश्वम्भरनाथ द्विवेदीजी वृन्दावन लौट गये।

दो दिन पश्चात् ही प्रातः पूजा करके आसनसे उठने ही वाले थे कि अचानक 'हृद शूल' हुआ। दो क्षण ज्यों-के-त्यों रह गये। तनिक संयत होते ही कन्हाईसे बोले— 'चल' और दूसरे हाथको बढ़ाकर होम्योपैथीकी छोटी पेटी उठायी। जैसे-तैसे खोलकर अपनी दवा मुखमें डालकर दीवालका सहारा लेकर तख्त तक पहुँच कर लेट गये। मंगलाके लिये पाँच बजे प्रातः कक्षसे

नहीं निकले तो माँने पूछा— आज क्या हो गया? तुम लोग जाकर देखो। तुरन्त आनन्दजी कक्षमें आ गये। स्थिति समझते देर न लगी। इतनी देरमें चक्रजीको ज्वर भी तेज हो गया। संकेतसे दवा ले लेनेकी बात कह दी। आज मंगला–आरतीमें नहीं आ सके –यह समाचार पुजारीजी श्रीबजरंग लालजीसे पाकर श्रीकृष्णजन्मस्थानके अधिशासी अधिकारी श्रीशिवनाथजी शर्मा, राधाकृष्ण चौधरी एक डॉक्टरको साथ लेकर आ गये। श्रीचक्रजीने डॉक्टर साहबकी दवा रखवा ली और डॉक्टर साहबके जानेपर श्रीशिवनाथजी शर्मासे बोले— मैंने अपनी दवा ले ली है। दो घंटेमें ज्वर चला जायगा, बादमें ज्वरांशके लिये मैं 'जयमंगलरस' लेता रहूँगा आप लोग सब ऐलोपैथी दवाओंके लिये बाध्य न करें। मैं सब डॉक्टरोंकी दवा नहीं ले सकता।

श्रीहरि–हरमें एकत्व

महाशिवरात्रिसे दो दिन पहले जयपुरसे श्रीहरिनारायणजी गोयल अपनी पत्नी सरलाके साथ श्रीकृष्णजन्मस्थान, मथुरा श्रीचक्रजीके पास 3-4 दिनको आये हुए थे। सरला (पुत्री-सुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग) -की अनुरक्ति बालकृष्णमें देखकर श्रीचक्रजीने बचपनमें ही इन्हें कन्हाईके चिन्तन करनेमें लगा दिया, हरिनारायणजीकी अटूट निष्ठाके अनुसार श्रीचक्रजीने इन्हें भगवान् आशुतोषकी आराधनामें ही लगाया। नित्यका अति आवश्यक कार्य सम्पन्न होते ही ये जपमें लगे रहते हैं–मानो जप ही इनका प्राण और जीवन है। इनका 'अजपा-जप' निरन्तर चलता ही रहता है।

संयोगसे इस वर्ष महाशिवरात्रिके पावन पर्वपर भगवान् केशवेश्वरका रात्रिके तृतीय प्रहरमें रुद्रार्चनका सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ।

श्रीचक्रजी प्रथम प्रहरका रुद्रार्चन करके अपने कक्षमें आ गये थे। हरिनारायणजी प्रथम एवं द्वितीय प्रहरके रुद्रार्चनमें सम्मिलित होकर तृतीय प्रहरका रुद्रार्चन स्वयं करके, चतुर्थ प्रहर तक रुद्रीका पाठ श्रवण कर

रात्रि-जागरण करते हुए प्रातःकी मंगला आरतीके पश्चात् श्रीचक्रजीके कक्षमें आकर उन्हें प्रणति सहित वन्दन करके बैठ गये। श्रीचक्रजीसे कुछ सुननेकी अभिलाषासे इन्होंने प्रश्न कर दिया— श्रीरामचरितमानस तथा सभी शास्त्र हरि-हरमें अभेद-बुद्धिसे आराधना करनेकी बात कहते हैं। आप समझानेकी कृपा कीजियेगा—

श्रीचक्रजीने सस्नेह समझाया— सिद्धान्तकी दृष्टिसे विष्णुसहस्रनामका पहला नाम है– 'विश्वं'। भगवान् विष्णु विश्वरूप हैं और भगवान् शिव 'भव' हैं। इसका अर्थ ही है कि वस्तुतः विष्णु और शिव एक ही हैं, परस्पर अभिन्न हैं।

भगवान् शिव 'प्रलयंकर' हैं तो कन्हाई? गीता वक्ताने अपनेको कालोऽस्मि कहा है या नहीं?

स्वभावकी दृष्टिसे — भोले बाबा तो आशुतोष हैं। इनके यहाँ कोई अनधिकारी माना ही नहीं जाता। कन्हाईको भी 'ना' करना नहीं आता। जो भी चाहे—उसे आत्मीय बना ले। वह सबको अपनानेको तैयार रहता है।

नीलकण्ठ प्रभु तो कल्याणस्वरूप हैं। मृत्युसे अभय करनेमें मृत्युञ्जय प्रभु ही समर्थ हैं। मैं तो अपने कन्हाईको इनसे सदा अभिन्न ही मानता हूँ—

मेरा नटनागर गोपाल
भले बने महाकाल।
प्रचण्ड प्रलयंकर
सृष्टि विध्वंसकारी—
प्रदोष नृत्य महाताण्डव
ध्वस्त, त्रस्त, स्रस्त सब

विनाशी मायिक महाजाल

मुझे क्या? मैं अमृत-पुत्र

प्रलयंकर भी अपना मेरा

नटनागर नँदलाल।

हरिनारायणजी व्याख्या सुनकर प्रसन्न हो गये। अब इन्होंने 'मुक्ति' के विषयमें प्रश्न कर दिया।

श्रीचक्रजीने उनकी रुचिके अनुसार चिन्तनकी दृष्टिसे कहा— तुम अपने आराध्य नटराज-राजकी नृत्यगतिमें मन-प्राणको एक हो जाने दो। मुक्ति और क्या है? इन परम पुरुषसे तादात्म्य। तादात्म्य तो वे स्वतः कर लेंगे। तुम ध्यान तो करो— महादेव डमरू बजाते, त्रिशूल उठाते आनन्दमग्न नृत्य कर रहे हैं— यह नृत्य तुम्हारी सब दुर्बलताओंको ध्वस्त कर देगा।

मेरे एक मित्रने कहा— 'कोमल हृदय इसका ध्यान नहीं कर सकता' तो मैंने कहा—नटराजकी एक कोमल मूर्ति भी है। कन्हाई भी यही है। यमुना ह्रदमें शतैकशीर्षाकालियके फणोंपर नृत्य करते हुए श्यामका ध्यान कर लो। नटराजके ध्यानका ही फल देगा यह ध्यान भी। हरिनारायणजी प्रसन्न मन अपने कक्षमें लौट आये। दूसरे दिन श्रीचक्रजीका स्वास्थ्य शिथिल हो गया था, ज्वरांश भी था। हरिनारायणजीने उनसे विश्राम करते रहनेका निवेदन किया। तीसरे दिन रात्रिको नौ बजे श्रीचक्रजीके दूध पी लेनेके पश्चात् सोनेका समय जानकर हरिनारायणजी, सरला, बच्चू सिंह, राधाकृष्ण चौधरी एवं शैफाली आदि सभी कक्षसे बाहर आ गये। सभी अपने-अपने कक्षमें चले गये।

सोनेसे पहले हरिनारायणजी बरामदेमें टहल रहे थे। करीब साढ़े दस बजे होंगे। जब बरामदेमें श्रीचक्रजीके कक्षके सामनेसे धीरे-धीरे निकल रहे थे, अनायास उन्हें कक्षके अन्दरसे बहुत मन्द अस्फुट स्वर सुनायी दिया। उनका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे जिज्ञासावश कक्षके द्वारकी जालीसे झाँका।

कुछ समयमें न आनेपर चुपचाप बिना पद-चाप किये कक्षमें जाकर शय्यासे कुछ दूरीपर भूमिपर ही बैठ गये। कक्षमें अंधकार तो था ही, किन्तु द्वारकी जालीसे बरामदेका मंद प्रकाश आनेसे असुविधा नहीं हो रही थी। न जाने क्यों, मनको बहुत अच्छा लग रहा था, अतः बैठे रहे। सोचा—ज्वरकी बेचेनीमें कुछ बोले होंगे, किन्तु बात दूसरी ही निकली। लगा—कक्ष दिव्य अंग-गन्धसे भर गया है, अस्फुट स्वर भी सुनायी दिये— चपल... कनूँ... भला कोई इतनी जल्दी आकर भी भागता है?... यह सुचिक्कन केश-राशि तेरे सिवाय किसकी हो सकती है?... लो भाग गया यह तो—

कनूँ मेरे,
क्षीरोदधि नहीं, होता कोई अमृतोदधि,
उसके मन्थनसे निकलता नवनीत,
उससे भी मधुर बाल चरित तेरे,
आस्वादन करते उनका भाव प्रवण भावुक जन,
उत्कंठित लालायित, आकुल मन,
अन्तरमें आ,
क्रीड़ा कर साथ-साथ यशोदानन्दन,
रात-दिन साँझ-सवेरे... कनूँ मेरे।

अन्तर्लीलामें व्यवधान न पड़े, अतः चुपचाप कक्षसे बाहर आ गये।

पूर्वाभास

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको नववर्षके प्रथम दिन श्रीचक्रजी केशवदेवजी गर्भगृहमें मंगला करके लिफ्टसे भागवत-भवनमें मंगला आरतीके दर्शन करके अपने कक्षमें लौटे। कुछ ही देरमें नववर्षका प्रणाम करने माँके कक्षमें आये और माँने स्नेहपूर्वक आशीर्वाद देते हुए अपने समीप ही बैठा लिया और उन्हें सुप्रसन्न देखकर माँने कुछ सुनानेको कहा। तब बोले—

लो माँ, आजकी ही बात सुनाता हूँ। आज लगभग 2 बजे रात्रिको दिव्य चतुर्भुज पुरुष, पीतवस्त्राभरणोंसे भूषित, वैष्णव तिलक धारण किये कक्षके द्वारकी ओरसे पधारे। वे दोनों शय्यासे थोड़ी दूर खड़े रहकर आपसमें वार्तालाप कर रहे थे। एकने दूसरेसे कहा— तुम प्रार्थना करो। स्वर सुनकर मैंने सिर उठाकर देखा और मैं तो सहर्ष बोल उठा— आइये,... आ गये भाई... चलो मैं प्रस्तुत हूँ। तभी दूसरेने विनम्रतापूर्वक कहा—अभी नहीं— अभी आज्ञा नहीं हुई... अधिक नहीं, कुछ ही समय पश्चात् और वे दोनों किरीट कुण्डलधारी वहीं अन्तर्धान हो गये।

वात्सल्यातिरेकसे माँकी आँखें भर आयीं। वे भरे कण्ठसे बोलीं— मुझे पहुँचाकर जाना। मुस्कराकर चक्रजीने कहा— माँ! तुम तो योगवासिष्ठ पढ़ती हो, उसके अनुसार भी— मृत्युमें मृत्यु रूप होकर वही परमेश्वर स्थित है, फिर आपकी यह कातरता और स्थान-विशेषका दुराग्रह क्यों? उचित तो यह है कि जब मनुष्य यह जान ले कि मृत्युका समय समीप है, तब स्थान और देशका मोह त्याग दे और सर्वेश्वरकी इच्छापर छोड़ दे। माँ, मैं तो तैयार हूँ। वह जैसे चाहे, जहाँसे चाहे— ले जाय, मैं तुरन्त चल दूँगा—

जब मैं शरीर नहीं, महाकाल सिर पीटे।

अजर अविनाशी मेरा, मृत्यु क्या लेगी?

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिसे अन्तिम विदा

स्वास्थ्य सुधारकी ओर नहीं था, किन्तु शुकतीर्थमें श्रीगणेश विग्रह-निर्माण पूरा हो चुका था। इनकी प्राण-प्रतिष्ठा एवं चरणाभिषेक श्रीचक्रजीकी अध्यक्षतामें 6 अप्रैल 1989 को होना निश्चित हुआ था। अतः नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी सर्वशक्तिस्वरूपजीके साथ 1 अप्रैलको कार लेकर मथुरा आये। इनके अन्तर्मनमें चक्रजीके सान्निध्यमें रहनेकी ललक भरी अभिलाषा

थी एवं सेवाका सौभाग्य पानेका उत्साह था, किन्तु डॉक्टर के परामर्शके अनुसार श्रीचक्रजीका स्वास्थ्य यात्राके योग्य नहीं था, अतः ये साथ ले जानेका मन होते हुए भी अनुरोध भरा आग्रह नहीं कर सके। आकांक्षाओंको मनमें सँजोये हुए निराश मन लौट गये।

सदाके चिर-पथिक श्रीचक्रजीको एक स्थानपर अधिक दिन टिकना भला कैसे प्रिय होता? उन्होंने स्वेच्छासे नै०ब्र० केशवानन्दजीको 25 अप्रैल 1989 मथुरा आनेके लिये पत्र लिख दिया। श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीराधाकृष्ण चौधरीको जैसे ही ज्ञात हुआ कि पूज्य बाबाने शुकतीर्थ जानेका संकल्प कर लिया है, वे अकुलाये-से आये और विनम्रतापूर्वक पूछा— बाबा! आप मथुरा कब तक लौट आयेंगे? श्रीचक्रजीने सस्मित स्नेहसे कहा— भैया! कन्हाई जाने! मेरे सब संकल्प उसके साथ हैं। उनके मंगलमय विधानपर अपनेको छोड़ देनेके पश्चात् कुछ भी शेष नहीं रहता। उनके ललित मंजु युगल चरण-कमलारुणकी छायाके अतिरिक्त न कहीं शान्ति है, न सुख।... बस .... अब... नहीं... उनकी इच्छा पूर्ण हो...। हाँ, तुम्हारे लिये मेरा सन्देश है—

इस भव प्रवाहमें भटकते मानवको,
आयुका केवल वही क्षण गणनाके योग्य।
जिसमें किसी वृत्तिसे नवीन मेघ मञ्जु कान्ति,
कन्हाईका ललित चरित बने आस्वाद्य भोग्य।।

उनके एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य मानो साधकके लिये सोपान-प्रति-सोपान पार करते हुए आध्यात्मिक स्थितिकी उपलब्धि करानेवाले थे। राधाकृष्ण विस्मय भावसे सुनते जा रहे थे और उनके मनमें यह भाव भी उठ रहे थे कि पूज्य बाबा किस सीमा तक निज जनोंका दायित्व स्वीकार करते हैं, जिससे उनके चरणाश्रित भवाटवीमें न भटकने पायें।

25 अप्रैल 1989 को निश्चित समयपर नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी मथुरा पहुँच गये और 26 अप्रैल 1989 को प्रातः 7 बजे श्रीचक्रजी आनन्दजीके साथ शुकतीर्थके लिये चल दिये। उनके अन्तर्मनमें शुकतीर्थका सुरम्य एकान्त सात्त्विक वातावरण सदासे प्रिय रहा है, अतः सुप्रसन्नचित्तसे कारमें बैठते-बैठते भागवत-भवनकी ओर निहारते हुए बोले—

प्रणय परिपूत गोपीजनोंसे सुलालित रहते,
योगीन्द्र मुनीन्द्र चित्त भृंग जिनमें बसते।
विकच पद्मारुण उन आपके चारु चरणोंमें,
व्रजराजनन्दन भावाञ्जलि मेरी अर्पित यह।।

काश! किसीको क्या पता था कि श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान, मथुरासे उनकी यह अन्तिम विदाई है।

जीवन-संध्याकी ओर

शुकतालमें किञ्चित् नाममात्रको सुधार प्रतीत हो रहा था। इससे सभी उत्साहित थे कि सम्भवतः धीरे-धीरे ठीक हो जायँगे; किन्तु उनके अनुज उन्हें अपने घर ले जानेको आतुर थे। उनकी इन लीलाओंको कोई अज्ञ-मानव हम-सरीखे साधारण जन क्या जानें? कैसे जानें? नित्य गंगास्नान प्रातः पैदल ही बाँधपर होकर जाते-आते। एक दिन अपराह्नमें दो घंटेको मानसमर्मज्ञ पं० रामकिंकरजी उपाध्याय श्रीहनुमान्‌जीके दर्शनको अपनी किसी यात्रामें आये। वे चक्रजीसे भी मिले और स्वास्थ्य-समाचार पूछा तो बोले शरीर तो शरारती है। मुझे तो याद ही नहीं आता। स्मरणके लिए अपना कन्हाई है ही। नन्दनन्दनको छोड़कर जीवनमें रहा नहीं जा सकता। अब जीवनकी सार्थकता तो इसीमें है—

अपना जो नित्य सखा आज उसे स्मरण करो,
जीवनके उल्लासमें उससे ही मानस भरो।
ब्रजराजनन्दनके साथ ही शाश्वत रंग,
कृष्ण ही उल्लास मम जीवन तरंग।।

दो घंटे पश्चात् वार्तालाप करके चले गये। 10 मई 1989 को शुकतीर्थमें श्रीब्रह्मचारीजीके साथ प्राचीन शिव मंदिरके दर्शन करने चले गये। गाड़ीके उलटनेसे श्रीचक्रजीको चोट आ गयी और किंचित् सँभलते स्वास्थ्यकी गति ह्रासोन्मुख होती चली गयी। श्रीब्रह्मचारीजी अतिशय आग्रह करके श्रीचक्रजीको शुकतीर्थसे दिल्ली जाँचके लिए ले गये। वहाँ श्रीजयदयालजी डालमियाने 'सर गंगाराम हॉस्पिटल' में पूरे शरीर को 'चैकअप' कराया ताकि डाक्टरकी रिपोर्ट देखकर ठीक दवाएँ दी जा सकें। अतः एटासे डॉ० ब्रह्मदत्त भैया, माँ एवं मुन्नी जीजी शुकताल 21 मईको पहुँच गये। औषधि देनेका निर्देश देकर भैया लौट गये।

पाचनक्रिया अत्यन्त मन्द पड़ गयी थी। क्षुधा नहींके बराबर लगती थी। मूत्र जाँचसे ज्ञात हुआ 'किडनी इन्फेक्शन' (Kidney Infection) से प्रभावित है। उपचारसे कुछ लाभ अवश्य है, पर सन्तोषजनक स्थिति नहीं है। दुर्बलता, विस्मृति आदिके रूपसे अनेक उपद्रव हैं, किन्तु शान्तभावसे चुपचाप लेटे रहते। शरीरसे अतीत मनका धरातल कुछ और ही था। हम सभी रह-रह कर विस्मयमें डूबते जा रहे थे कि यह सब क्या अद्‌भुत देखने को मिल रहा है?

परमार्थ-आश्रम, हरिद्वारसे अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें डॉ० स्वामी (जिन्होंने काशी विश्वविद्यालयसे चिकित्साकी डिग्री प्राप्त की थी। बादमें संन्यासी हो गये) शुकतीर्थमें दण्डी आश्रममें आकर रहने लगे थे। ये भी चक्रजीके पास कभी-कभी सायंकाल मिलने आ जाते थे। कुशल-क्षेम पूछकर वार्ताके बीच अद्वैत-वेदान्तकी चर्चा करने लगते। श्रीचक्रजी भी किञ्चित् हँसकर

उनका मन रखनेको कह देते— मैं तुम्हारी बातका विरोध कब कर रहा हूँ? मैं भी कहता हूँ—

एक रस अखण्ड ठसाठस भरपूर,
दो नहीं तब विकार मृत्यु क्लेश क्या?
स्वप्न देखते हो— उठो जागो बस इतना ही
अपना ही आप सब सदासे एक सा।।

तब श्रीस्वामीजीके प्रसन्न हो जानेपर पुनः श्रीचक्रजी कहते— स्वामीजी! योगके सब साधनोंका लक्ष्य चित्त-वृत्ति निरोध रूप समाधि-सिद्धि है, किन्तु भक्ति मार्गके पथिकको समाधि को समाधि तो सिद्ध नहीं करनी। उसके चित्तका सहज स्वभाव कन्हाईके नाम, रूप, चर्चाका चिन्तन करना हो जाता है। तब वह उसका अपना आत्मीय हो जाता है। वह अपना बना रहे — मुझे तो यही अभीष्ट है—

माधुरी मनोज्ञ रसमूर्ति श्यामवपु विभु
बड़े भाग्य मुनियोंके मानसमें आते हैं।
लगा रहे इनके स्मरण भजनमें चित्त
अपने रहें—हम तो इनके ही कहलाते हैं।।

शुकतीर्थमें एक दिन श्रीचक्रजी घूमते-घूमते वटवृक्षके पीछे सघन वन प्रदेशकी ओर चले गये। वहाँके सात्त्विक पवित्र वातावरणमें मन मुग्ध हो गया। उन्हें लगा— यहाँके वृक्ष, लता, पुष्प सब कितने दिव्य हैं? पवन, धरा, गगन भी दिव्य है, उसकी दिव्यता कहनेमें नहीं आती। वहीं वृक्षके नीचे बैठ गये। अपने-आप चिन्तन चलने लगा— इसी तपोभूमिमें श्री शुकदेवजी पधारे परीक्षित्की अकुलाहट भरी प्रतीक्षापर, तब मेरा कन्हाई मेरी प्रतीक्षा करनेपर क्यों नहीं आयेगा? अवश्य आयेगा। उन्हींके शब्दोंमें —

'शुकतीर्थकी मनोरम वनस्थलीके बीच ये हरित लतिकाएँ झूम-झूमकर

अपने कुसुमोंका उपहार उत्साहसे सजा रही हैं। अन्तर्मुखी चेतना सम्पन्न ऋषिसे विटप भी अपने मधुर फल नैवेद्यके लिये तुम्हें अर्पित कर रहे हैं। व्योममें विहंग-बालाएँ स्वागतगान गा रही हैं तुम्हारा। प्रकृति मत्त होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

मैं भी सबके साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मेरे पास तो एक ही हृदय और ये ही भीगी पलकें हैं। पलकोंको पाँवड़े बिछाकर उन्हें अन्तरजलसे आर्द्र करता रहता हूँ कि तुम्हारे पवित्र चरण उसपर पड़ें।

प्रतीक्षामें मेरे समीप तो निद्रादेवी भी नहीं पधारती। दयामय! कहीं मेरे अश्रुस्रोत सूख न जायँ!

तुम्हारे अतिरिक्त मेरा है ही कौन?

किसका आश्रय यह ले सकता है तुम्हें छोड़कर? मुझ अभागेको कौन अपना भार बनाना चाहेगा?

अब मैं थककर भी अथक हूँ। मेरे लिये दूसरी क्या गति है? इसे छोड़कर कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षामें अपनी मूक व्यथाको मिलाये तुम्हारे मार्गकी ओर देखा करूँ? तुम्हीं मेरी चरम गति हो।

जीवन प्रदीप जलाकर अन्तिम श्वासपर्यन्त तुम्हारी प्रतीक्षामें हूँ। तुम्हारे भरोसे पूरा विश्वास है कनूँ। अवश्य सफल होगी मेरी यह प्रतीक्षा कारण कि—

जैसेसे वैसेकी मैत्री तुम निर्गुण मैं सब गुणहीन।
'कनूँ हमारे एक तुम्हीं बस ढूँढ़े औरोंको सुप्रवीण।।'

(श्रीचक्रजीकी डायरीसे)

इन्हीं दिनों ग्रीष्मऋतुमें ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य श्रीशान्तानन्दजी महाराज पधारे। संध्याकालमें 4 से 6 बजे तक इनकी कथा-प्रवचन-सत्संगका आनन्द ऐसा था — मानो सभी आश्रमवासी परमानन्दमें डुबकी लगा रहे हों। इनकी भव्य, शान्त सुप्रसन्न मुखमुद्रा ऐसी थी, मानो हम सबपर कृपाकी

अजस्र वर्षा कर रहे हों। श्रीचक्रजीसे इनका पारस्परिक प्रेम तो दो शरीर एक प्राणके समान था। दिनमें प्रायः दोनों महान् विभूतियाँ थोड़ी देरको अन्तरंग सच्चर्चा कर लेते। इस गोष्ठीमें उल्लासपूर्ण आनन्द एवं सरसताका ऐसा प्रवाह उमड़ता, जो वाणी द्वारा चर्चाका विषय नहीं है। सच्चर्चा गोष्ठीमें सुखानुभूतिका अनुभव कर हम अनधिकारी भी अपना सौभाग्य मानते।

एक दिन पूज्य श्रीशंकरचार्यजीके प्रेमभरे आग्रहपर अपने एकान्त कक्षमें कन्हाईकी प्रीतिसनी लीलानुभूति सुनाने लगे— मध्याह्नका विश्राम कर नींद टूट चुकी थी। उठकर बैठ भी गया, किन्तु मुँदे नेत्रोंमें ही प्राण पुकार उठे— कनूँ... कब आयेगा? बस दो क्षण भी नहीं बीते होंगे कि एक अत्यन्त मधुर बालकण्ठने पीछेसे पुकारा – दादा! मेरा तो रोम-रोम इस स्वरने ही सुधासे सींच लिया। देखता ही रह गया सिरसे पैर तक उसे। लगा—कहीं धूलिमें खेल रहा होगा सखाओंके साथ। मेरी पुकारपर दौड़ा-दौड़ा आ गया है। उसकी घुँघराली काली सुचिक्कन सघन अलकोंसे घिरे मुखचन्द्रपर, चरणपर, उदरपर, भुजाओंपर, तनिक वक्षपर भी धूलि लगी है। आते ही अपना नन्हा सिर मेरे स्कन्धपर रखकर झाँकने लगा मेरी ओर...' बस इतना ही कह सके। उनका रोम-रोम जैसे रूप-माधुरीमें डूब गया। हृदयकी प्रेममत्तता इतनी घनीभूत हो गयी कि बोल पाना वशकी बात रही नहीं। पूज्य शंकराचार्यजी भी कहने लगे— लगता है कि इनसे श्रीकृष्ण-चर्चा विमुग्ध भावसे सुनता ही रहूँ। उनका भाव प्रशमित होनेकी प्रतीक्षा न करके एक-दो जनोंके साथ वे कक्षसे बाहर सीढ़ियोंसे उतर आये। उसी दिन नीचे बरामदेमें हम लोगोंकी प्रार्थनापर पाँच मिनटको कुर्सीपर विराजमान हो गये। हमलोग भी उनके मुखारविन्दसे कुछ श्रवणकी लालसामें उत्सुकतापूर्वक चटाईपर बैठकर चरणवन्दन करते हुए उनकी ओर निहारने लगे। हम लोगोंकी जिज्ञासा देखकर सहजभावसे कहने लगे— 'मैंने श्रीचक्रजीके सामीप्य कालमें

उनकी एक-एक भावोर्मिलको निकटतासे देखा है। इनको रात्रिमें शयनके समय श्रीकृष्णकी दिव्य लीला-स्फूर्तियाँ होती रहती हैं। उस समय उनके कक्षका वातावरण बड़ा दिव्य हो जाता है। सूक्ष्म परमाणुओंसे परिपूर्ण कक्षका आकाश-तत्त्व इतना सशक्त हो उठता है कि उसके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति भी दिव्यानुभूति करने लगते हैं। प्रायः कभी प्रातः मेरे छेड़नेपर अपने अनुभवोंको भाव-विभोर होकर सुनाते, तब-तब कितनी बार प्रेमाश्रुओंमें उनके नेत्र सजल होते, कितनी बार स्वर-भंग होता। मुख वैवर्ण्याछन्न होता और कितनी बार अनुरागभरे नयन कभी निमीलित होते, कभी उन्मीलित। उनकी भावमयी स्थिति मैं विस्मय भावसे देखता हुआ पुलकित हो जाता।' इतना कहते हुए स्वयं भी आनन्दमें डूबे हुए अपने कक्षकी ओर बढ़ गये और निजी आराधनाके लिये अपना कक्ष अन्दरसे बन्द कर लिया।

शुकतीर्थमें हनुमद्धाम का आनन्द द्वय-महाविभूतियोंके विराजनेपर द्विगुणित हो जाता। सबमें नित नया उत्साह, नित नयी उमंग, नित्य नया आह्लाद उमड़ता रहता। 'श्यामसदन' की छतपर श्रीचक्रजी खुले आकाशके नीचे तख्त-पर शयन करते और दाहिनी ओर समीपके कक्षकी छतपर पूज्य शंकराचार्यजी महाराज तख्तपर रात्रि विश्राम करते। वहींसे ही श्रीचक्रजीकी एकान्तके क्षणोंकी विलक्षण रहनी और भावमयी वृत्तिकी झाँकी निकटतासे देखकर मुग्ध होते थे। प्रातः चर्चा करनेपर पूछते—कैसा लगता है? श्रीचक्रजी सुप्रसन्न मन कह देते—

'शुकतीर्थका सात्त्विक वातावरण बड़ा मनमोहक है। यहाँ हवा चलती है तो लगता है – कानोंके समीप कोई भगवन्नाम ले रहा है। वृक्षोंके पत्ते हिलते हैं तो कीर्तनके शब्द मुखर होते हैं – रात्रि होनेपर नीरव स्तब्धतामें भगवन्नामकी गूँज है।'

पूज्य शंकराचार्यजी महाराजके इलाहाबाद जानेके एक दिन पूर्वकी अंतरंग सच्चर्चा गोष्ठीका प्रसंग बिलकुल पृथक् ही हो गया था मानो श्रीचक्रजी अन्तिम मिलन और अपनी जीवनयात्राके उपसंहारका संकेत देना चाहते हों–

'संतों-विचारकोंके मतका मैं समर्थन करता हूँ कि जीवन ऐसे तटस्थ बनाये रखो, जैसे आज या कल ही मर जाना है। इस प्रकार स्वस्थ निश्चिन्त जीवन जी सकते हैं। 'मृत्युमें कोई पीड़ा नहीं है' यह बात अनुसन्धान करके पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकोंने भी सिद्ध कर दी है। शरीर तो कालका ग्रास है, भला इसमें क्या आसक्ति? हम और आप तो कालके भी काल भगवान् मृत्युंजयके पुत्र हैं, तब काल, मृत्युभय और अभाव स्पर्श करनेका साहस कैसे कर सकते हैं? अमृतत्व तो अपना स्वत्व है और स्वरूप भी–

आना-जाना, जीना मरना, जगका सहज स्वरूप।
तू क्यों डरता रे अविनाशी, महाकालका पूत।।

3 जुलाईको दोनों विभूतियोंने परस्पर अभिवन्दन करते हुए विदा माँगी। अध्यात्मनिष्ठ संतोंका सान्निध्य-सत्संग नवीन-गति, नवीन-दृष्टि देता है। मिलन जितना सरस आनन्दप्रद है; वियोग भी उतना ही दारुण और वेदनापूर्ण। नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीने इस अवधिमें सब प्रकारकी सेवा व्यवस्थामें आन्तरिक सुखकी अनुभूति करते हुए कृतकृत्यताका अनुभव किया। प्रातःकाल सभीके साथ इन्होंने भरे मनसे पूज्य शंकराचार्यजी महाराजको माल्यार्पण कर प्रणति सहित चरणस्पर्श करके प्रयागराजके लिये विदा किया।

गुरु-पूर्णिमापर शुकताल ही रहे। सर्वशक्तिस्वरूपजी गुरु-पूजनके लिये आये। श्रीचक्रजीका स्वास्थ्य सुधरता न देखकर डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाने अनुरोध और आग्रह सहित प्रार्थना की – बाबा! आप-अपने आपमें प्रसन्न हैं। आपको न सेवाकी अपेक्षा है और न उपचार की, किन्तु मुझे आपकी

आवश्यकता है। मेरा जीवन आपके श्रीचरणोंके आश्रित है। मुझ अकिञ्चन बालकपर आपकी वत्सलताकी छाया सदा बनी रहे। जैसा भी भला-बुरा हूँ; मुझे सेवाका अवसर देखकर कृतार्थ कीजिये। आप अपने पिताजी श्रीरघुनाथजीके समीप कक्षमें बने रहनेकी कृपा करें। स्वास्थ्यके अनुरूप उपचार एवं सेवा करके मैं धन्यताका अनुभव करूँगा, अन्यथा आपसे दूर रहकर मैं निश्चिन्त नहीं रह पाऊँगा। प्रेमानुरोध एवं बालकोंके बालहठको स्वीकार कर 26 जुलाई 1989 को रामनिकुञ्जमें आ गये। प्रथम मंजिलपर श्रीसीतारामके मंदिरसे सटे कक्षको ही उन्होंने अपना आवास बनाया।

सदाके एकान्तप्रिय श्रीचक्रजी यहाँ भी एकान्तमें प्रातः स्नान-पूजा करके थोड़ा-थोड़ा छतपर टहलते। सूर्योदयपर श्रीसूर्यनारायणको अर्घ्य अर्पित कर हल्का-सा जलपान कर विश्राम करते। बोलना बहुत कम कर दिया था। दुर्बलता थी ही, साथ ही अन्तर्मुखता बढ़ती जा रही थी। प्रतिदिन डॉ० ब्रह्मदत्त भैया प्रातः प्रणति सहित चरणवन्दन करके चैक-अप करते, तब थोड़ा-बहुत बोले लेते। कभी कहते— कैलाश। स्मरण ही सार है। कभी कहते कि तुम लोग व्यर्थ ही इस शरीरको लेकर चिन्तित हो। मृत्यु टाली नहीं जा सकती, किन्तु रोग, पीड़ा, अभाव दुःख न दे, यह किया जा सकता है। वह कैसे बाबा? भैयाने प्रश्न किया? श्रीचक्रजी बोले—मृत्यु मंगलमय बनायी जा सकती है। यह जाननेकी इच्छा जग जाय तो मार्ग दूर नहीं है—

कन्हाई—

स्वयंको कालोऽस्मि कह सका वह नन्दलाल
अतिशय दुर्धर्ष अजेय दुरतिक्रम काल!
सबसे बड़ा, सबसे अजय भुवन भयंकर।।

लगता होगा आपको अप्रीतिकर।।

किन्तु, नव नव सर्जक शुभ मनोहर

वह भी कलना अपने कन्हाईकी

कन्हाई ही, अपना यही गोपाल।।

उनके चले जानेके बाद हल्के पदोंसे अकेले छतपर धीरे-धीरे टहलते रहते और मन्द स्वरमें अपने अनुजसे मनुहार करते—कन्हाई अब घर चल न!-कनूँ मेरे—

बीत गये बहुत दिन वियोगमें तेरे,

देह और दैहिकीका जंजाल।

मोहमयी मायाका,

जाल काट दे नन्दलाल।

बहुतकी तूने मेरी मनुहार,

बहुत दिया अकल्पनीय प्यार।

देना मुझे था पर तूने दिया,

लेनेके अयोग्य भी, मैंने लिया।

अब और मत प्रतीक्षा करा थक गया,

बुला अब, कर मै त्वरा।

आ! आ!! पथ देखता, तेरे कनूँ मेरे।।

कभी कन्हाईके पुष्प उतारते समय चौकीपर बैठे-बैठे कहते— कनूँ! मेरी मनुहार मान लेनेमें तुम्हें कोई हानि तो प्रतीत नहीं होती। मेरे आर्द्र आँसुओंको अपनाकर तुम्हारी दिव्यता इनमें और चौगुनी चमक उठेगी। यह गीले उद्‌गारोंका उपहार तुम्हें शैत्य प्रदान कर सुख पहुँचानेको सामग्री बनेगा। एक बार तुम्हारी बाँकी-झाँकीकी एक झलक अपने अपलक नयनोंसे निहारना चाहता हूँ—

चपल-चरन, चलित-नयन, नन्द-नन्दन आओ,
मुरलि-अधर, मधुर-स्वर, नटवर सुनाओ।
परम-सुघर, गिरवर-धरन, कमल-कर उठाओ,
भव-भय हर, उरसे लग, ताप-त्रय मिटाओ।।

अनन्तकी ओर

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे राधाकृष्णजी चौधरी महीनेमें दो बार अवश्य आते। 26 अगस्तको जब राधाकृष्ण चौधरीने प्रकाशन-विभागसे सम्बन्धित कोई बात पूछी तब श्रीचक्रजीने आवश्यक निर्देशन देते हुए कहा— अब तुम प्रकाशन-विभाग एवं 'श्रीकृष्ण-संदेश' पत्रिकाका सम्पादन सँभालो, मेरा समय आ गया है। अब यह सब चर्चा मेरे सामने मत करो। अवरुद्ध कण्ठसे राधाकृष्णजीने कहा— बाबा! मैं आपके साहित्य-साधनाका पुजारी हूँ। मैं यह सब कैसे सँभाल पाऊँगा? स्नेहपूर्वक सिरपर हाथ फेरते हुए कहा— 'भैया! सबका समय निश्चित होता है। अब यह सब करनेमें मैं अक्षम हो गया हूँ। अब तो निश्चित रूपसे तुम्हींको सब देखना है।'

दैवका विधान! राधाकृष्ण इस स्पष्ट संकेतको भी नहीं समझ पाये कि बाबा! अब मथुरा कभी नहीं आयेंगे। वे तो यही समझ रहे थे कि कमजोरी विशेष होनेके कारण ही ऐसा कह रहे हैं बाबा। स्वास्थ्यके सुधरनेपर मथुरा आयेंगे ही। अपनी सम्पादककी कुर्सीपर बैठकर सदाकी भाँति मुझे आदेश देंगे।

राधाकृष्णजीके जानेके दो दिन बाद ही हृद-शूल (Angina) -का दौरा पड़ा। ब्रह्मदत्त भैया प्रतिदिन देखते हुए भी अपनी सन्तुष्टिके लिये हृदय-रोग विशेषज्ञ डॉ० मुकेश जैन एवं डॉ० नरेन्द्रपाल उपाध्यायको दिनमें एक बार अवश्य दिखा लेते। सभी डॉक्टर पूर्ण विश्राम (Complete Bed Rest) -की प्रार्थना चक्रजीसे करते।

इधर घरपर डॉ० ब्रह्मदत्त पाठककी पत्नी श्रीमती जगदम्बा देवी (भाभी), जो कई वर्षोंसे रुग्ण चल रही थीं और चार महीनेसे तो विशेष अस्वस्थ थीं। बराबर शय्यापर रहीं। वे कुछ ठीक हो रही थीं कि उसी दुर्बलतामें हरितालिका तीजका व्रत किया और निष्ठापूर्वक नियम-पालन करते हुए एक दिन प्रथम रात्रिसे पूर्व जल त्याग कर दिया। व्रतवाले दिन बिना जल ग्रहण किये स्नान आदि करके रात्रिके चारों प्रहरका पार्थिव गौरी-शंकर पूजन विधिपूर्वक रात्रि जागरण करते हुए प्रातः विसर्जन कर, स्नानादिके पश्चात् केवल पंचामृत प्रसादी ग्रहण की। दुर्बलताके कारण पुनः शय्या पकड़ ली और स्थिति ऐसी हो गयी कि ऑक्सीजन चढ़ाया जाने लगा। स्थिति नियंत्रणमें न आनेसे 6 सितम्बरको उन्हें आगरा ले गये। आगराके वरिष्ठ चिकित्सक डॉ० एम०जी० गुप्ताने देखकर पूरा चेकअप करके अपनी रिपोर्ट दी — उपचार, दवाएँ बिल्कुल ठीक चल रही हैं। मैं भी यही सब करता, पर इनकी स्थिति ऐसी है कि जीवनकी आशा नहीं है। निराशा होकर 9 सितम्बरको आगरासे उन्हें एटा घर ले आये और 10 सितम्बरको प्रातः ठीक 6 बजे उनका देहावसान हो गया।

इस परिवारकी गृहलक्ष्मी और कुलवधू जो केवल चौवन (54) की थी। अपने पीछे वृद्धा सास, ननद, पति, पुत्र अवधेश तथा अविवाहित पुत्रियों-को छोड़कर परलोक सिधार गयी। मातृविहीन बालकोंका क्रन्दन असह्य था। बड़े एवं समझदार सदस्य संयत होकर अश्रु-विमोचन कर रहे थे। नीचे कक्षमें, बरामदेमें, लॉनमें, सड़कपर जनसमूह एकत्रित हो गया था। इस दुःखद घटनाके होनेपर परिवारका धैर्य श्लाघनीय था कि इस घटनाका तनिक भी आभास ऊपरकी मंजिलके कक्षमें विराजमान श्रीचक्रजीको नहीं होने दिया।

इन दिनों भी श्रीचक्रजीकी परिचर्या और औषधि यथाविधि चल रही थी। डॉ० शिवदेव शर्मा दोनों समय देख-रेख कर रहे थे। शुकतीर्थसे श्रीकेशवानन्दजीने श्रीचक्रजीकी सेवाके लिये महीपालको भेज दिया था, जो

उनके कक्षसे सटकर सोता-जागता रहता—छायाकी भाँति चौबीस घंटे पृथक् नहीं होता। तख्तकी मसहरीसे सटी घंटीका स्विच था। उसकी ध्वनिके साथ ही एक-दो जन दौड़ पड़ते। एक दिन चक्रजीने महीपालको एक रजिस्टर–पर लिखकर दिया— 'महीपाल बेटेको' और राम-राम लेखनका आदेश दिया, जिसे महीपालने अपना सौभाग्य मानकर रामनाम-लेखन एक करोड़ पूरा करके अयोध्यामें छोटी छावनीके महन्त श्रीनृत्यगोपाल दासजी महाराजके यहाँ जमा कर आया, किन्तु चक्रजीके गोलोक पधारनेके पश्चात्।

15 सितम्बरको शुद्धि-संस्कार सम्पन्न करके डॉ० ब्रह्मदत्त भैया श्रीचक्रजीके श्रीचरणोंमें चरणवन्दना करने पहुँचे। पृथ्वीपर मस्तक टेकते समय श्रीचक्रजीकी दृष्टि उनके मुण्डित मस्तकपर पड़ी। वे सहसा चौंक पड़े — यह क्या?

डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाने असीम धैर्यका परिचय देते हुए संयत स्वरमें कहा—आपकी पुत्रवधू लम्बे समयसे बीमार थी न! उन्हें गंगा पहुँचा दिया। जैसी आपके श्यामसुन्दरकी इच्छा। आप निश्चिन्त रहें, अभी आपको पूर्ण विश्राम-की आवश्यकता है।

ब्रह्मदत्त भैयाकी धैर्ययुक्त वाणी सुनकर श्रीचक्रजी गम्भीर हो गये। उनका मुखमण्डल तेजोमय आभासे दीप्त हो उठा और ओजपूर्ण स्वरमें बोल पड़े—कैलाश! बताना तो नहीं चाहता था, किन्तु अब सुन लो— मेरी ज्योतिषके अनुसार मेरा समय पूरा हो चुका है। एकादशी, पच्चीस तारीख, सोमवारको मैं जा रहा हूँ। इस शरीरको भी भगवती भागीरथीके अंक तक पहुँचा देना—

यमवैवस्वत बहुत भयंकर होंगे जगको? कालदण्ड वे आर्य हैं।
किन्तु कन्हाईके अपने प्रियजनके वे अपने हैं, आचार्य हैं।।

कक्षमें उस समय ब्रह्मदत्त भैया और उनकी छोटी बहिन मुन्नी जीजी ही केवल थे। अन्य दो लोगोंको नीचे जानेका आदेश देकर हटा दिया था।

ये दोनों चक्रजीकी बात सुनकर स्तब्ध रह गये। पूज्य तातका उस समयका स्वास्थ्य और गतिविधि इस प्रकार थी— प्रातः तीन बजे उठकर स्नान, पूजा-पाठ, सूर्यको समयपर अर्घ्य अर्पित करना, कन्हाईके श्रीविग्रहकी पुष्प-सज्जा करके आठ बजे हल्का-सा जलपान, मध्याह्नमें हल्का भोजन, अपराह्नमें एक सेब, रात्रि 8 बजे हल्का भोजन और 9 बजेसे पूर्व दूध लेनेका क्रम पूर्ववत् चल रहा था। विश्राम करते हुए अपने कन्हाईका चिन्तन ही करते रहते। शय्यापर लेटे-लेटे एक ही वाक्य धीरेसे निकलता— श्यामसुन्दर... गोविन्द। शरीरपर सात्त्विक भाव, कम्प और पुलक प्रकट होते रहते, जिन्हें देखकर आभास होता रहता कि वे इस रुग्णतामें भी अपने कन्हाईका मंगलमय सुखद स्पर्श प्राप्त कर रहे हैं।

ऐसी अवस्थामें किसीको आभास नहीं हो सका कि इतनी जल्दी महाप्रयाणका समय आ गया है।

घबड़ाहटमें मुन्नी जीजीने एकान्तमें जाकर पंचांग (चिन्ताहरणजंत्री) खोलकर अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर और जनवरीको क्रमशः देखा तो जनवरी 1990 में 25 तारीख, एकादशी, सोमवार एक साथ मिल गये। हृदयमें एक तीव्र आघात लगा कि क्या बाबा इतनी जल्दी महाप्रयाण करनेवाले हैं? मोहवश, अज्ञानवश अथवा मतिभ्रम कहिये, उन्होंने सितम्बरकी 25 तारीखकी ओर दृष्टि डाली ही नहीं, जबकि 15 सितम्बरको ही बाबाने संकेत दे दिया था। बाह्य रूपसे नहीं लगता था कि मात्र दस दिनोंमें ही महाप्रयाण हो जायगा।

बाबाकी बात सुनकर ब्रह्मदत्त पाठक भैया अवश्य गम्भीर हो गये थे। चिकित्सक होनेसे उन्हें कुछ आभास था ही, इसीलिये जब 20 सितम्बर 1989 बुधवारको उनकी धर्मपत्नीका त्रयोदशाह संस्कारका कार्य सम्पन्न हुआ, उसी दिन बाहरसे आनेवालोंमें शुकतीर्थसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्रीकेशवानन्दजी एवं सर्वशक्तिस्वरूपजी आये हुए थे। उस व्यस्ततामें भी उन्होंने अकेलेमें

दोनोंको बुलाकर पूज्य श्रीचक्रजी बाबाकी स्थितिका आभास करा दिया। ई०सी०जी० की रिर्पोट, उच्च रक्तचापकी रिर्पोट, हृदयाघात (Heart-Attack) की स्थिति समझा दी और कहा— अपने-जैसा भरसक प्रयास कर रहा हूँ, आगराके वरिष्ठ चिकित्सक डॉ० एम०सी० गुप्तासे भी परामर्श लेता रहता हूँ।

सर्वशक्तिस्वरूपजीने कहा— डॉक्टर साहब! पूज्य बाबाकी जैसी भी स्थिति रहे, कृपा करके फोन द्वारा सूचना देते रहनेकी अनुकम्पा करते रहियेगा।

ब्रह्मचारीजीने मुन्नी जीजीसे कहा— बहिन! ऐसा न हो आप मुझे सूचना न दें। डॉक्टरोंने जो कुछ रिर्पोट दी है, सुनकर मैं आशंकित हो उठा हूँ। अब अधिक समय नहीं है। जो भी हो, आप मुझे सूचना अवश्य देती रहियेगा।

बाहरसे आये सगे-सम्बन्धियोंमें अधिकांशतः बुधवार 20 तारीखकी शाम तक चले गये। समाचार सुनकर भँवर सिंहके साथ मैं भी 20 तारीखको आ गयी थी।

22 सितम्बर शुक्रवार प्रातः दस बजे मैं अपने ताতसे विदा लेने उनके कक्षमें गयी। वे विश्राम कर रहे थे। लेटे हुए मैंने प्रणाम करते हुए सिर तख्तके किनारेपर रखा तो उन्होंने अपना वात्सल्यपूर्ण कर सिरपर रखते हुए कहा— लड़कीका आज मौन है, कोई साथमें है कि नहीं? मुन्नी जीजीने कहा— एक लड़का है।

'किसी जिम्मेदार आदमीको भेजना, जो ठीकसे गाड़ीमें बैठा दे, इसे ठीकसे विदा करना।'

मैंने फिरसे सिर झुकाया तो पुनः वह वात्सल्यपूर्ण कर-कमल सिरपर आ गया— 'जाओ बेटी'।

अपने वात्सल्यधन तातकी ऐसी स्थिति देख मेरे नेत्र भर आये। संयम रखते हुए भी अश्रुधारा रुकी नहीं। जाने अब कब पुनः दर्शन होंगे?

मैंने मन-ही-मन सोचा और सचमुच वह अन्तिम दर्शन था। 'जाओ बेटी, अन्तिम ये अन्तिम शब्द थे, जो कानोंमें गूँजते रहते और वह काँपते करका दुलारभरा स्पर्श... वह भी अन्तिम... ही था। अब मैं सदा-सदाके लिए इस स्पर्शसे वंचित हो गयी।... लौट पड़ी हृदयमें उमड़ते भावको लिए। बाह्य व्यवहारमें यह सब होते हुए भी मैंने उनकी मनःस्थिति निकटतासे देखी— मेरे तात जगत्में रहते हुए भी जगत्में नहीं हैं। ये सदा लोकातीत भावोंमें डूबे रहते हैं। अपने कन्हाईके दिव्य रूप, दिव्य लीला चिन्तनमें निमग्न रहना इनका सहज स्वभाव बन गया है और यही है इनके अन्तरंग जीवनका वास्तविक सहज-स्वरूप।

मेरे जानेके बाद मध्याह्नमें हल्का भोजन किया। अपराह्नमें चार बजे कटोरीसे दो-चार घूँट दूध ही पी सके कि अचानक हिचकी आयी। पुनः अपनेको सँभालकर दो-चार घूँट पिये और मना कर दिया। श्वासकी गति बढ़ी और धीरे-धीरे हिचकी आनी प्रारम्भ हो गयी। लेट जानेपर सबने देखा कि उदर भी फूलने लगा है। अपराह्न तीन बजे डॉ० ब्रह्मदत्त भैया श्रीचक्रजीको देखकर इक्कीस दिनोंके बाद एक घंटेको डिस्पेन्सरी चले गये थे। पूज्य श्रीचक्रजीबाबा की स्थिति देखकर घबड़ाकर मुन्नी जीजीने भैया ब्रह्मदत्तको उसी समय जाकर फोनसे सब बताया। हालत सुनते ही डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाको लगा— जैसे पैरोंसे जमीन खिसक गयी है, सारा ब्रह्माण्ड घूम रहा है। सिरमें एक अजीब-सा चक्कर आ गया। एक मिनटमें अपनेको संयत करके तुरन्त हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ० मुकेश जैनको फोनपर संदेश दिया—मैं घर जा रहा हूँ, आप तुरन्त घर पहुँचिये। डॉ० मुकेशके घर पहुँचने तक 5 मिनटके अन्तरसे दोनों ऊपर कक्षमें पहुँचे। उन्होंने ई०सी०जी० किया और कई प्रकारकी दवाएँ इन्जेक्शनसे डालकर ग्लूकोज चढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। सब व्यवस्था मंदिरसे सटे कक्षमें ही थी।

22 सितम्बरकी रात दो बजे संकेतसे श्रीचक्रजीने अस्फुट स्वरमें पुष्प माँगे। उस समय ठाकुरजीकी छोटी-सी बगीचीमें चमेलीके श्वेत पुष्प खिले थे। उन्हें तुरन्त लाकर उनके करोंमें थमा दिये। उन्होंने भावविभोर होकर लीलाराज्यमें खोये हुए-से कौशेय आस्तरणपर सुसज्जित विराजमान कन्हाईको बड़े प्रेमसे निहारा— उनका दाहिना कम्पित कर पुष्प सहित दुलारभरा आशीर्वाद देनेको बढ़ा, साथ ही रसभरी वाणीसे मन्दस्वरमें रुक-रुक कर अनुजपर लाड़-लालितभरे उद्गारोंके सरस सौरभ बिखरने लगे—

पटपीत धरे घन सुन्दर हे!
दृग पद्म विशाल दृगञ्चल हे!
मुरलीधर गोरज मण्डित हे!
कौस्तुभ धर ज्योति हृदयमें रहे!

उस समयकी भावमयी स्थिति देखते ही बनती थी। चित्त तो अचिन्त्य अनिर्वचनीय आनन्द सुधामें निमग्न था, तब रुग्णताके कष्टकी अनुभूति कौन करे? विचार-शक्ति ऐसी सजग एवं सक्रिय थी कि भीष्म-स्तुतिके श्लोक अस्फुट स्वरमें स्वतः निकल रहे थे—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या।।

(श्रीमद्भागवत 1।9।33)

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।
.... स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः।।

साथ ही गजेन्द्रमोक्षके श्लोक अस्फुट स्वरमें निकलते हुए भी स्पष्ट सुननेमें आ रहे थे—

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्त शक्तये।
अरूपायोरुरूपाय नमः आश्चर्यकर्मणे।।

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि।।

. . . .

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च।।

. . . .

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय।
एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थ वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः।।

. . . .

नारायणे.......अखिले.......गुरो.......भगवन्नमस्ते।

महापुरुषोंकी ऐसी भागवती स्थिति देखनेको भला कहाँ मिल पाती है?

23 सितम्बरका प्रातःकाल उनके जीवनका प्रथम दिन था, जब दैनिक पूजा करनेमें असमर्थ थे। उन्होंने मुन्नी जीजीको आदेश दिया— इसे (कन्हाई) स्नान कराकर भागवतका पाठ सुना दो। वे शय्यापर लेटे हुए पाठ-श्रवण करते रहे।

प्रातः 9 बजे डॉ० मुकेश जैनको लेकर ब्रह्मदत्त भैया आ गये। उन्होंने नाड़ी परीक्षण और ई०सी०जी० किया। डॉ० शिवदेव शर्मा और डॉ० नरेन्द्रपाल उपाध्याय भी दस बजे तक आ गये थे। डॉ० मुकेश जैन (हृदय रोग विशेषज्ञ)-ने डॉ० ब्रह्मदत्तसे कहा— हृदयकी गतिमें अधिक अनियमितता है और स्वास्थ्यकी गम्भीरताको देखकर बोले— लगता है कि आजकी रात पूज्य बाबा श्रीचक्रजी अपनी संकल्पशक्तिसे ही रुक गये हैं, अन्यथा इस स्थितिमें कभी भी कुछ हो सकता है? 23 सितम्बरको प्रातः श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरा,

श्रीजयदयालजी डालमिया नयी दिल्ली, श्रीप्रभुदयालजी झुनझुनवाला चाकुलिया, श्रीहरिनारायणजी गोयल, जयपुर, नै०ब्र० केशवानन्दजी, सर्वशक्तिस्वरूपजी, सुखबीरजीको शुकतीर्थ एवं मुजफ्फरनगर फोन द्वारा यथास्थितिकी सूचना दे दी गयी। समाचार मिलते ही श्रीकृष्णजन्मस्थानसे श्रीराधाकृष्ण चौधरी एवं बच्चू सिंह और कासगंजसे श्रीफकीरचंदजी अपनी पुत्री श्रीमती मिथिलेश सहित आ गये। सूचना मिलते ही तुरन्त रातमें चलकर 24 को प्रातः 3 बजे ही नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी, शक्तिस्वरूपजी एवं सुखबीरजीके साथ आ गये। हरिनारायणजी गोयल सपत्नीक सरलाजीके साथ जयपुरसे आ गये।

24 सितम्बरका प्रातःकाल उनके मुखमण्डलपर अद्भुत निश्चिन्तता, अलौकिक प्रसन्नता, सहज गम्भीरता, तेजोमयता आभा परिलक्षित हो रही थी। शारीरिक कष्ट होनेपर भी शरीरका भान नहीं था। मन आनन्दसिन्धुकी पावन स्मृतिमें निमग्न था। रोम-रोम कन्हाईकी स्मृतिमें छके थे। एक स्पष्ट स्वर निःसृत हो जाता— कनूँ... आ... रहा... हूँ तेरे... पास। गजेन्द्रमोक्ष एवं भीष्मस्तुतिके श्लोक स्वतः निकल रहे थे। उनकी विचारशक्ति और मानसिक स्मृतिका अद्भुत सन्तुलन देखकर डॉक्टरोंका हृदय श्रद्धाभिभूत होकर स्वतः झुक जाता था।

24 सितम्बरको सायंकाल डॉ० मुकेश जैन (हृदय रोग विशेषज्ञ) डॉ० नरेन्द्र उपाध्याय, डॉ० शिवदेव शर्माके आनेपर पुनः जाँचका क्रम चला। सभीने हताश होकर ब्रह्मदत्त भैयाको स्थितिसे अवगत कराया जो पहले ही सब समझ कर निराशासे सिरपर हाथ रखकर बैठ गये थे। पूरी रात नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजी, डॉ० शिवदेव, श्रीफकीर चंदजी, मिथिलेश बहिन, मुन्नी बहिन, पद्मा, दिव्या, जया, संध्या, लाखन, महीपाल जागते हुए पल-पल पूज्य बाबाकी गतिविधि और भावोंको देख रहे थे। मन-ही-मन सर्वेश्वरको मना रहे थे।

25 सितम्बरका प्रातःकाल बड़ा दारुण, वेदनापूर्ण, निराशासे भरा था। हिचकीकी गति कुछ तीव्र हो गयी थी। उदरका फूलना भी उपचारसे कम

नहीं हुआ। इतने कष्टमें भी 'आह' 'कराह' का नाम नहीं था। मुख-मण्डलपर असीम शान्ति एवं निश्चिन्तता थी। उनके जीवनका एक-एक श्वास, उनके हृदयका एक-एक शब्द अपने परमाराध्य श्यामसुन्दरकी स्मृतिमें निमग्न था। अहर्निश अनवरत उन्हींके चिन्तनमें कभी भीष्मस्तुतिके श्लोक, कभी गोविन्द आदि नाम निकल रहे थे। मध्याह्न लगभग बारह बजे परिचर्यारत लोगोंको लगा कि कुछ बोलना चाहते हैं। समीप जाकर धीरेसे पूछा— आप क्या चाहते हैं? शिथिल स्वर, किन्तु प्रसन्न मनसे पूछा— 'एकादशी कब?' अन्तर्व्यथाको छुपाये मुन्नी जीजीने तुरन्त बताया— बाबा! एकादशी आज ही है।

भौतिक रूपसे लगा—जैसे रेलके प्लेटफार्मपर आ जानेसे प्रतीक्षारत यात्रीको अपने गन्तव्य-पथ पानेसे परम सन्तुष्टि होती है, किन्तु पूज्य बाबा श्रीचक्रजीका उल्लास देखकर ऐसा लगा— जैसे प्राणान्तक पीड़ासे त्राण पानेको 'प्राण-संजीवन रूपी साँवरिया' का सान्निध्य मिल रहा हो। मन, प्राण, आत्मा तो पहलेसे ही समर्पित थे, किन्तु अब तो तनकी आहुति भी अपने जीवन-सर्वस्वको अर्पित करनेकी आतुरतामें हैं। भाव-भीने स्वरमें बोले— तब ठीक है। जैसे इसी क्षणकी प्रतीक्षा हो और गहरी भाव निमग्नतामें ही हृदयकी सरस अन्तिम अभिलाषाकी अभिव्यक्ति करते हुए संकेतसे अपने पूजाविग्रह कन्हाईके चित्रपटको समीप लानेका संकेत किया। पुष्प-सज्जासे सुसज्जित अपने प्राणधनको कम्पित करोंसे सँभालते हुए वक्षःस्थलसे लगाकर सदाकी भाँति अंकमाल देते हुए आशीर्वादकी झड़ी लगा दी मन-ही-मन।

बाह्यरूपसे उनके अधरोंसे निःसृत वाणी हम लोगोंके कर्ण-कुहरोंमें गूँजी— गोविन्द... आ रहा हूँ... कनूँ मेरे... बस वे अलौकिक दिव्य भावोंके अनिर्वचनीय आनन्दमें ऐसे लीन हुए कि सदा-सदाके लिये नेत्र पटल बन्द हो गये और उनके लाड़ले कन्हाईको यथास्थान विराजमान करा दिया। ऐसा व्यक्तित्व भला कहाँ देखने-सुननेको मिलता है?

प्रदोष बेला आते-आते श्वासकी गति तीव्र होती गयी। चरण बर्फके समान ठंडे होने लगे। उधर, पं० शिवेन्द्रदेव मिश्रके अन्तर्मनमें आभास हुआ कि श्रीचक्रजी बाबा धराधाम छोड़कर महाप्रयाण करनेवाले हैं। वे दो दिनसे आ नहीं सके उन्हें देखने और तेजीसे गिरते स्वास्थ्यकी गम्भीरताका आभास भी नहीं था, केवल बस इतना था, बीमार हैं, डॉक्टर उपचार कर रहे हैं। कोई विशेष बात नहीं है। ऐसा ही मस्तिष्कमें था, किन्तु तीव्रताके साथ मनमें ऐसा आभास हुआ कि बस... अब नहीं, अब नहीं। वे तुरन्त कॉलेजसे घर न जाकर सीधे रामनिकुंज आये और ब्रह्मदत्त भैयासे बोले—

भैया! एकादशीकी पुण्यतम वेलामें अभी नौ बजकर पन्द्रह मिनट तक श्रेष्ठ समय है। लगता है— पूज्य बाबा इसी समयकी प्रतीक्षामें हैं। यदि वे संकल्प-शक्तिसे रुक भी गये तो प्रातः तीन बजेका समय भी अच्छा है। सम्भवतः उस समय ...। बाबाने कहा भी था — जीवनमें मैंने एकादशीको नहीं छोड़ा है तो एकादशी मुझे कैसे छोड़ेगी? स्मरण है आपको? मेरे सामने ही तो कहा था।

इस वार्तालापके पश्चात ही दोनों पूज्य श्रीचक्रजीके कक्षमें आ गये। सहसा रात्रि आठ बजेसे श्वास-गति ऊर्ध्वगामी हो गयी। मुँदे हुए नेत्र स्वतः अचेतन अवस्थामें शनैः-शनैः खुलते गये। पलकोंका संचालन बन्द था। उस समय समस्त परिकर ब्रह्मचारी श्रीकेशवानन्दजी, हरिनारायणजी गोयल, डॉ० शिवदेव शर्मा तथा और भी घर-बाहरके लोग कक्षमें उपस्थित थे। सभी किंकर्तव्यविमूढ़-से मूकभावसे निहार रहे थे। कई छतपर परस्पर अपनी वेदना व्यक्त कर रहे थे, किन्तु कक्षमें सघन नीरवता व्याप्त हो गयी थी। इतने जनोंके रहनेपर भी स्तब्धता (Pindrop Silence) -का सघन वातावरण था। ब्रह्मदत्त भैयाके पुत्र अवधेशने मुझे बताया था— बुआजी! शान्ति एवं

नीरवता इतनी सघन थी कि मेरे मनकी चंचलता, संकल्प-विकल्प भी बन्द हो गये। उसी समय कक्ष अनायास ही दिव्य प्रकाशसे भर गया कि कक्षकी जलती हुई ट्यूब लाइटें और बल्ब बिल्कुल निस्तेज हो गये। केवल प्रकाश ही नहीं, अपितु दिव्य गन्धसे वातावरण परिपूर्ण हो गया। ठीक नौ बजकर पाँच मिनटपर शारीरिक पीड़ासे युक्त श्रीचक्रजी बाबाके मुखमण्डलपर असीम शान्ति, ललाटपर तेज झलक रहा था। उनके मुखसे अस्पष्ट स्वर गो... वि...न्द के साथ रक्त वमनकी धार निकली, जिसे मेरे पिताने वस्त्र लेकर साफ कर दिया और धीरेसे स्वतः उनका सिर दाहिनी ओर झुक गया। इसके साथ ही हम सबको जाने क्या हुआ कि उनके स्वरके साथ हम सभी लोगोंके मुखसे एक साथ 'गोविन्द' 'श्रीकृष्ण' 'श्यामसुन्दर' ये भगवन्नाम अपने-आप जोर-जोरसे उच्चरित होते रहे। पूज्य श्रीचक्रजी बाबाके नेत्रोंसे एक दिव्य ज्योति निकली और अनन्ताकाशमें समा गयी।

उधर, डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाकी बहिन श्रीमती उर्मिला द्विवेदी अपनी भाभीके निधनका समाचार सुनकर हैदराबादसे आयी थीं और श्रीचक्रजी को अस्वस्थय देखकर रुक गयी थीं। वह नीचेके कक्षमें अपनी माँको सान्त्वना दे रही थीं। उनका मन बार-बार ऊपर आकर पूज्य चक्रजी बाबाको देखनेको अकुला रहा था, पर माँके पास किसे बैठायें? उसी क्षण पं० शिवेन्द्रजी मिश्र ऊपरसे नीचे आये हुए थे, उन्हींसे व्याकुल होकर बोलीं— पण्डित जी! आप पाँच मिनट माँको समझाइये। तब तक मैं अभी बाबाको एक बार देख आऊँ। वे उन्हें बैठाकर ऊपर चलीं। शीघ्रतासे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँची ही थीं। उनका एक पैर छतकी ओर जानेवाले द्वारपर था और दूसरा छतपर रखा ही था कि उन्होंने देखा—आँखोंको चकाचौंध करनेवाली एक दिव्य ज्योति श्रीचक्रजीके कक्ष-द्वारसे निकलती हुई अनन्त आकाशमें विद्युत् गतिसे चली

गयी। अनजानेमें ही उर्मिला दीदीने उस दिव्य तेजको देखकर स्वतः हाथ जोड़ लिये और मनमें आया— अभी तो आकाशमें बादल-बिजली कुछ भी नहीं है, फिर यह तीव्र प्रकाश कैसे हुआ?

वे अवाक् स्तब्ध खड़ी रहीं एक क्षण। फिर दो पद आगे बढ़कर वे श्रीचक्रजीके कक्षमें प्रविष्ट हुई तो ज्ञात हुआ अभी-अभी इसी क्षण श्रीचक्रजीका महाप्रयाण हो गया और भगवन्नामकी गूँज चल रही थी। अब वे मन-ही-मन समझ गयीं कि मैंने जो ज्योति देखी, वह पूज्य श्रीचक्रजी बाबाकी प्राण-ज्योति ही थी।

डॉ० ब्रह्मदत्त भैयाकी तृतीय पुत्री श्रीमती उपमा शंखधरकी भी पूज्य श्रीचक्रजीमें असीम श्रद्धा थी। उसे प्रायः पूर्वाभास हो जाता था। अपनी माँके त्रयोदशाह संस्कारके पश्चात् ही उसे अपने पति राजदीपजी शंखधरके साथ मथुरा रिफाइनरी नगर जाना पड़ा। उसे बाबाकी अस्वस्थताकी जानकारी तो थी, पर गम्भीर हालतकी नहीं। माँकी सेवामें जागने और व्यवस्थाके कारण मथुरामें पच्चीस तारीखको रात पौने नौ बजे नींदमें सो गयी और निद्रामें उसने नौ बजकर 5 मिनटसे 10 मिनटके बीचमें देखा कि उसके पूज्य श्रीचक्रजी बाबा एक तेजोमय पालने-जैसी कोई चीजमें हैं, जिसमें वे और उनके अनुज कन्हाई खड़े हैं और वह पालना-जैसी सवारी आकाशकी ओर धीरे-धीरे उठती जा रही है। वह तब तक देखती रही, जब तक ओझल न हो गयी और ओझल होते ही जल-विहीन मछलीकी तरह वह जागकर रो पड़ी। मेरे 'बाबा' चले गये हैं... अभी-अभी गये हैं। उसके ससुरालवाले सभी लोग हैरान हो गये उसके रोनेपर; किन्तु उसका रोना बन्द ही नहीं हो रहा था। ठीक 9 बजकर 15 मिनटपर उसके पति राजदीपजी शंखधरने फोन करके श्रीचक्रजीके स्वास्थ्यकी जानकारी ली। यथार्थ सत्य उन्हें ज्ञात हो चुका। उसे धैर्य देनेके सिवाय उपाय ही क्या था? वह तुरन्त अपने श्रद्धेय

बाबाकी महायात्रामें सम्मिलित होने चल पड़ी।

अन्तिम यात्रा

परम भाग्यशाली हैं वे, जिनकी पार्थिव देह किसी पुण्यकालमें छूटकर परमपावनी भगवती गंगाके किनारे प्रज्वलित चितारूपी अग्निमें आहुति बनती है। श्रीचक्रजीका पार्थिव-शरीर एक खुली गाड़ीमें विराजमान करवाकर प्रातः तीन बजे शुकतीर्थ गंगातटकी ओर सबने प्रस्थान किया। इस गाड़ीमें अवधेश, शिवेन्द्रजी मिश्र, हरिनारायणजी, सत्यदेव पाठक आदि दस लोग साथ थे। पीछे तीन गाड़ियाँ और थीं जिनमें बैठे लोग अपने आदर्श श्रद्धेय बाबाको अन्तिम विदा देने साथ-साथ जा रहे थे।

शक्तिस्वरूपजी एवं सुखबीरजी श्रीचक्रजीको देखकर एक दिन पहले ही लौट गये थे। श्रीचक्रजीका महाप्रयाण होते ही नै०ब्र० श्रीकेशवानन्दजीने फोनसे सर्वशक्तिस्वरूपजीको तथा शुकतीर्थमें सूचना दे दी – जिससे वे शुकतीर्थमें सारी तैयारी व्यवस्था रखें। सबके शुकतीर्थ पहुँचनेपर दिल्लीसे श्रीजयदयालजी डालमियाकी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णादेवी डालमिया एवं पुत्रवधू श्रीमती कविता डालमिया भी समाचार पाकर शुकतीर्थ समयसे पहुँच गयीं। जिन्हें भी समाचार मिला, वे सीधे शुकतीर्थ ही पहुँचने लगे थे।

श्रीहनुमद्धामके प्रांगणमें 26 सितम्बर प्रातः 10 से पूर्व ही गाड़ी पहुँच गयी। वहाँ पर्दा लगाकर श्रीचक्रजीके पार्थिव शरीरको गंगाजलसे स्नान कराकर नवीन कौशेय श्वेत वस्त्र धारण कराया गया और फिर सुसज्जित मंचपर तख्तके ऊपर बर्फकी शिलापर लिटाया गया। मस्तकपर श्रीहनुमान्जीका प्रसादी चन्दन और सिन्दूरका तिलक और प्रसादी मालाएँ धारण करायी गयीं तो लगता ही नहीं था कि यह प्राण-शून्य शरीर है। लगता था— उनका तेजोमय मुखमण्डल है और वे प्रसन्नमुद्रामें विश्राम कर रहे हैं। सभी प्रदक्षिणा करते हुए पुष्पमालाओंसे श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे थे। नै०ब्र० केशवानन्दजीने

विमानको पुष्पमालाओंसे सुसज्जित कराकर उन्हें विमानपर लिटाकर कई शालें ओढ़ायीं। पुनः पुष्पांजलि अर्पित करते हुए प्रदक्षिणा करके प्रणति सहित चरणस्पर्श किये सभीने। उन्होंने अपने कन्धोंपर उठाकर संकीर्तनकी तुमुल ध्वनिके साथ उनके पूज्य दादा श्रीआञ्जनेयकी प्रदक्षिणा करवायी और अन्तिम पड़ाव गंगातटकी ओर ले चले।

26 सितम्बर 1989 की संध्यापर सूर्यास्तसे पहले पार्थिव शरीरको पुनः गंगास्नान कराकर अन्तिम शय्यापर पौढ़ाया गया और चन्दन, अगुरु, नारियल, कपूर, घृत आदि सुगन्धित पवित्र सामग्रीके साथ ही श्रीचक्रजीके जीवनयज्ञकी पूर्णाहुतिमें मुखाग्नि देनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ उनके लाड़ले मानसपुत्र कैलाशको। आचार्य पण्डित शिवेन्द्रजी मिश्रने मन्त्रोचारणके साथ सभी कार्य सविधि पूर्ण सम्पन्न कराये।

कुछ घंटोंमें ही चिताग्निकी ऊँची लपटें श्रीचक्रजीकी पार्थिव देहको आत्मसात् करती चली गयीं। उनकी चिर-अभिलाषा श्मशान-बिहारी मृत्युंजयको भी सम्भवतः स्मरण आ गयी हो – जिसे कभी उन्होंने अपने आशुतोष भोलेबाबासे अनुरोध किया था–

आशुतोष औढरदानी!
प्रार्थना एक रख लेना जनकी टेक!
चिताभस्म आपका नित्य अंगराग, मिले उसमें इस कायाको
किंचित भाग! भस्म तो बनना ही है देहको,
धन्य कर देना यह धूर्जटि! इस खेहको।
अपने श्रीकरोंसे उठा लेना इस जनकी चिता-भस्म,
अपने श्रीअंगमें लगा लेना, 'एवमस्तु' कह दो वरदराज!
आज, इतनी रख लो जनकी लाज!!

वसीयत

'अपनी वसीयतमें मैं पहले ही भगवान् विश्वनाथको अपनी चिताभस्म आज ही निवेदित कर रहा हूँ– 'बाबा! आप अपने श्रीअंगपर चिताभस्म धारण करते ही हैं, मेरी चिताभस्म जब जलेगी, तब मैं उसकी भस्म आपको अर्पित करनेकी स्थितिमें नहीं रहूँगा। इतनी अनुकम्पा आप ही करना कि मेरी चिताकी भस्म एक चुटकी, एक मुट्ठी, जितनी आप उचित समझें, श्रीअंगपर धारण कर लेना।'

श्रीचक्रजी गोलोक अपने अनुजकी नित्य सन्निधिमें स्थिति पाने सिधार गये; किन्तु मानव मात्रको अन्तर्मुख होकर आनन्दके अथाह सागरमें अवगाहन करनेका पथ सुझा गये हैं– अपनी कलम द्वारा लिखित श्रीकृष्ण-चरित, श्रीरामचरित, शिवचरित, हनुमत्चरित आदि अनेक ग्रन्थ मानो भव-वारिधिमें भटकते जनोंके लिये प्रकाश-स्तम्भ हैं।

जिस आनन्द-उल्लासका जीवनमें अन्तर्मुख होकर उन्होंने स्वाद पाया।' वही स्वाद, वही आह्लाद, वही शान्ति सभी पा सकें, इसके लिये लिखकर ही नहीं, अपितु अपने जीवनको आदर्श बनाकर भरसक प्रयत्न करके प्रस्तुत किया।

जगत्में साधनहीन, धनहीन, एकाकी, निराश्रय होकर कैसे जीवनको सफल बनाया जा सकता है, इसे अपनी रहनी-करनी कथनी-जीवनी द्वारा भरपूर समझा गये हैं।

यही मानो हमारे लिये पर्याप्त न मानकर आते-जाते अपने अनुजसे प्रार्थना करते गये कि – जो तुम्हें पाना चाहें, तुम जिन्हें प्रिय लगो, जो तुम्हारी ओर चलना चाहें अथवा इस पथपर चलकर भटक गये हों, यही नहीं, जो भूलसे भी तुम्हें याद कर लें, उन्हें मैं तुम्हें अर्पित करता हूँ। अर्पित करता हूँ उन्हें–जो इन पुस्तकोंको पढ़नेमें रुचि रखें, इन्हें अवलम्बन रूपमें स्वयंको देना तुम्हारा दायित्व है। मानो श्रीचक्रजी हम सबके ही उद्धारके

लिये यह वसीयत अपने अनुजके नाम लिख गये हैं—

कनूँ मेरे,
अपने चारु चरितोंका तुमने प्रकाश दिया,
अन्तर पवित्र किया।
किसमें सामर्थ्य है—
कोई शक्ति—कोई साधन तुमको छुए।
अपना बनाया मुझे,
स्वतः तुम मेरे हुए।
अपना यह चरित अब तुम्हीं स्वीकार करो।
इसको कृतार्थ करो।
इतना और—
कृपासिन्धु, रसिक-सिरमौर!
तुमको अपनावे जो,
पढ़ें-सुनें अपनावे—
जिनको तुम्हारा उज्ज्वल सुयश भावे,
उन्हें अपनाओ, उन्हें स्वीकार करो।
उनमें प्रीति भाव भरो।
उनपर रहो सदय
नन्द-तनय!